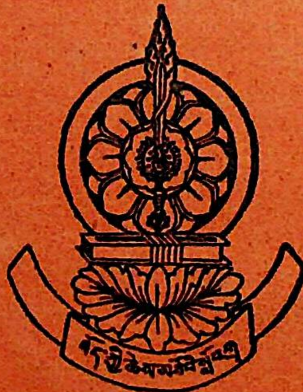
दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थमाला-७

वसन्ततिलका

रहस्यदीपिकाव्याख्यया सहिता

དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེ་དང་།

དེའི་འགྲེལ་པ་གསང་བ་སྒྲོན་མ།



दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी

बुद्धाब्द २५३४ खीस्ताब्द १९९०

RARE BUDDHIST TEXT SERIES–7

VASANTATILAKĀ

OF

CARYĀVRATĪ ŚRĪKṚṢṆĀCĀRYA

WITH

COMMENTARY : RAHASYADĪPIKĀ

BY

VANARATNA



Editors

PROF. SAMDHONG RINPOCHE — **Project Director**

PROF. VRAJVALLABH DWIVEDI — **Deputy Director**

RARE BUDDHIST TEXT RESEARCH PROJECT

Central Institute of Higher Tibetan Studies

SARNATH, VARANASI

B. E. 2534 **C. E. 1990**

Co-Editors

Pt. Janardan Pandeya
Dr. Banarsi Lal
Dr. Tashi Samphel

Dr. Thakur Sain Negi
Dr. Wangchug Dorje Negi
Thinlay Ram Shashni

First Edition : 550, Copies.

Price : HB Rs. 95.00
PB Rs. 70.00

Published by :
Central Institute of Higher Tibetan Studies,
Sarnath, Varanasi.

Printed by :
Shivam Printers,
C 27/273 Indian Press Colony
Maldahiya, Varanasi-2

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थमाला-७

चर्याव्रति-श्रीकृष्णाचार्य-विरचिता

वसन्ततिलका

श्रीमद्वनरत्नप्रणीतया
रहस्यदीपिकाव्याख्यया सहिता

དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེ།

མཛད་པ་པོ། ནག་པོ་སྤྱོད་པ་པ།

དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པ་གསང་བ་སྒྲོན་མ།

མཛད་པ་པོ། ནགས་ཀྱི་རིན་ཆེན།



सम्पादकौ

प्रो० सम्‌दोङ् रिनपोछे
योजनानिदेशकः

प्रो० व्रजवल्लभ द्विवेदी
उपनिदेशकः

दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी

बुद्धाब्द २५३४ | खीस्ताब्द १९९०

सहायक मण्डल

पं० जनार्दन पाण्डेय
डॉ० बनारसी लाल
डॉ० टशी सम्फेल
डॉ० ठाकुरसेन नेगी
डॉ० वङ्छुगदोर्जे नेगी
ठिनलेराम शाशनी

प्रथम संस्करण : ५५० प्रतियाँ

मूल्य : सजिल्द : रु० ९५.००
अजिल्द : रु० ७०.००

प्रकाशक :
केन्द्रीय उच्च तिब्बती शिक्षा संस्थान
सारनाथ, वाराणसी-२२१००७

मुद्रक :
शिवम् प्रिन्टर्स
सी २७/२७३, इण्डियन प्रेस कालोनी
मलदहिया, वाराणसी-२

प्रस्तावना

आज बौद्ध तन्त्रशास्त्र के अनुरागियों के सामने दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थमाला के सप्तम पुष्प के रूप में चर्याव्रती कृष्णाचार्य रचित वसन्ततिलका नाम की साधनोपायिका को वनरत्न कृत टीका के साथ प्रस्तुत करते हुए हमें प्रसन्नता की अनुभूति हो रही है। इस ग्रन्थ में दस निर्देश हैं। १२ निर्देश वाला वसन्ततिलक (मूल मात्र) भी उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त दशबलाचार्य और आचार्य श्रीघन के भी दस निर्देश वाले वसन्ततिलक नाम के ही दो अलग-अलग ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। प्रस्तुत संस्करण के विभिन्न परिशिष्टों में इनका भी समावेश कर दिया गया है। इन सभी ग्रन्थों के संशोधन एवं सम्पादन में जिन हस्तलेखों से सहायता ली गई है, उनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

वसन्ततिलक

क—राष्ट्रीय अभिलेखालय काठमाण्डू. लगत सं० १/३५६, पत्र सं० १९, लिपि-नेवारी (हस्तलेख प्रति प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय जी के व्यक्तिगत संग्रह से प्राप्त)।

ख—प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय जी के संग्रह से प्राप्त हस्तलेख की दूसरी प्रति।

ग—इंस्टीच्यूट फार एडवांस स्टडीज आफ वर्ल्ड रिलिजन्स, न्यूयार्क, माईक्रोफिश प्लेट नं० एम० बी० बी० III-१९, पत्र सं० १४ (माईक्रोफिश के० उ० ति० शि० सं० सारनाथ से प्राप्त)

घ—बिब्लियोथेक नेशनले, पेरिस-सं० १११, आकार-२७५×६४ mm. पत्र सं० ३१, लिपि-नेवारी, (माइक्रोफिल्म प्रति के० उ० ति० शि० सं० सारनाथ से प्राप्त)

ङ—बिब्लियोथेक नेशनले, पेरिस-सं० ११२, आकार-२०३×९० mm. पत्र सं० ३५. लिपि-देवनागरी (माईक्रोफिल्म प्रति के० उ० ति० शि० सं० सारनाथ से प्राप्त)।

च—रा० अ० का०, लगत सं० ३/३२४, पत्र सं० ११ लिपि-देवनागरी पूर्ण, (जेराक्स प्रति के० उ० ति० शि० सं० सारनाथ से प्राप्त)

छ—टोक्यो विश्वविद्यालय लायब्रेरी, पाण्डुलिपि सं० ३५४, पत्र सं० १७, आकार–३३⁄४×९३⁄४ इंच, लिपि-देवनागरी, (माईक्रोफिल्म के० उ० ति० शि० सं० सारनाथ से प्राप्त) ।

ज—राष्ट्रीय अभिलेखालय काठमाण्डू, लगत सं० ३/५९८, पत्र सं० २३, लिपि-नेवारी, पूर्ण, (जेराक्स प्रति. के० उ० ति० शि० सं० सारनाथ से प्राप्त)

झ– इंस्टीच्यूट फार एडवांस स्टडीज आफ वर्ल्ड रिलिजन्स, न्यूयार्क, माईक्रोफिश प्लेट नं० एम० बी० बी०—III–१८, पत्र संख्या–६१, (माईक्रोफिश के० उ० ति० शि० सं० सारनाथ से प्राप्त)

ञ—इंस्टीच्यूट फार एडवांस स्टडीज आफ वर्ल्ड रिलिजन्स, न्यूयार्क, माईक्रोफिश प्लेट नं० एम० बी० बी०—II–५१, पत्र सं० १४, लिपि-नेवारी, (माईक्रोफिश के० उ० ति० शि० सं० सारनाथ से प्राप्त)

ट—इंस्टीच्यूट फार एडवांस स्टडीज आफ वर्ल्ड रिलिजन्स, न्यूयार्क, माईक्रोफिश प्लेट नं० एम० बी० बी०—III-१७, पत्र सं० ११, लिपि-नेवारी, (माईक्रोफिश, के० उ० ति० शि० सं० सारनाथ से प्राप्त)

ठ—फोटो प्रति प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय जी के व्यक्तिगत संग्रह से प्राप्त, पत्र सं० ११, लिपि नेवारी ।

ड—इंस्टीच्यूट फार एडवांस स्टडीज़ आफ वर्ल्ड रिलीजन्स न्यूयार्क, माईक्रोफिश प्लेट संख्या डब्ल्यू० जी० एस०-१८, पत्र सं० ९, लिपि-देवनागरी । (माईक्रोफिश के० उ० ति० शि० सं० सारनाथ से प्राप्त)

ढ—गायकवाड ओरियन्टल इंस्टीच्यूट बडोदा, सं० १३२७६/७१, पत्र सं० २९ (२१-२९) लिपि–देवनागरी ।

वसन्ततिलकटीका रहस्यदीपिका

क—राष्ट्रीय अभिलेखालय काठमाण्डू, नेपाल, लगत सं० ३/२९०, पत्र सं० ४१ पूर्ण, लिपि–नेवारी । (हस्तलेख प्रति प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय जी के व्यक्तिगत संग्रह से प्राप्त) ।

ख—इंस्टीच्यूट फार एडवांस स्टडीज आफ वर्ल्ड रिलिजन्स, न्यूयार्क, माईक्रोफिश प्लेट सं० डब्ल्यू० जी० एस०-२४, पत्र सं० ५०, (माईक्रोफिश के० उ० ति० शि० सं० सारनाथ वाराणसी से प्राप्त) ।

ग—इंस्टीच्यूट फार एडवांस स्टडीज आफ वर्ल्ड रिलीजन्स न्यूयार्क माईक्रोफिश प्लेट सं० डब्ल्यू० जी० एस०-१८, पत्र सं० ९, लिपि—देवनागरी। (माई-क्रोफिश के० उ० ति० शि० सं० सारनाथ से प्राप्त)।

घ—रा० आ० का०, नेपाल, लगत सं० ३/६५६, लिपि देवनागरी, पत्र सं० ४३, पूर्ण (फोटो प्रति एवं माईक्रोफिल्म, सरस्वती भवन, संस्कृत विश्वविद्यालय से प्राप्त)।

ङ—फोटो प्रति प्रो० जगन्नाथ उपाध्याय जी के व्यक्तिगत संग्रह से प्राप्त (पहले टीका बाद में मूल ग्रन्थ) पत्र सं० ११, लिपि-नेवारी।

च—रा० आ० का०, नेपाल, लगत सं० ४/१, लिपि-नेवारी, पत्र सं० ९७ खण्डित। (माईक्रोफिल्म के० उ० ति० शि० सं० सारनाथ से प्राप्त, बाक्स नं० ५, रील नं० ए० १४२/५)

छ—इंस्टीच्यूट फार एडवांस स्टडीज आफ वर्ल्ड रिलिजन्स न्यूयार्क, माईक्रोफिश प्लेट सं० एम० बी० बी०—III—१७, पत्र सं० ११, लिपि-नेवारी (माईक्रो-फिल्म के० उ० ति० शि० सं० सारनाथ से प्राप्त, प्रारम्भ में टीका बाद में मूल)।

वसन्ततिलक (दशबलाचार्य)

क—आशा सफुकुटी, काठमाण्डू नेपाल, सं० ११२९-११३०, Run-Nc-२६०६. Cat. no. ३९. पत्र सं० ३९. (१५-३९) लिपि-नेवारी (जेराक्स प्रति के० उ० ति० शि० सं० सारनाथ से प्राप्त)

ख—गायकवाड इंस्टीच्यूट बड़ौदा, सं० १३२७६, लिपि-देवनागरी, पत्र सं० २९ (८-२०) (जेराक्स प्रति केन्द्रीय उ० ति० शि० सं० सारनाथ वाराणसी से प्राप्त)

वसन्ततिलक (श्रीघन)

क—राष्ट्रीय अभिलेखालय, काठमाण्डू, नेपाल, लगत सं०-३/५९८, पत्र सं० ७, आकार १६ × ३१½ सें० मी०।

ख—माईक्रोफिश प्लेट-एम० बी० बी०-१-२७, पत्र सं० १५, इंस्टीच्यूट फार एडवांस स्टडीज आफ वर्ल्ड रिलीजन्स, न्यूयार्क।

ग—आशा सफुकुटी, काठमाण्डू, सं० ११२९–११३० Run. No.–२६०६, Cat. No ३९ पत्र सं० ३९ (१-१४) लिपि-नेवारी

घ—गायकवाड ओरियन्टल इंस्टीच्यूट, बड़ौदा सं० १३२७६/७१ पत्र सं० २९ (१—८) लिपि-देवनागरी (जेराक्स प्रति के० उ० ति० शि० सं० सारनाथ से प्राप्त)।

ऊपर दिये गये हस्तलेखों को सुलभ कराने में जिन व्यक्तियों और संस्थाओं ने सहायता की है, जिनका नामनिर्देश ऊपर किया जा चुका है, उनका हम आभार स्वीकार करते हैं। दुर्लभ ग्रन्थ शोध योजना में कार्यरत विद्वानों को भी हम धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने बड़ी तत्परता से पाठसंकलन, संपादन आदि कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न कर परिष्कृत रूप में इस ग्रन्थ को प्रस्तुत किया।

एस० रिनपोछे
निदेशक

PREFACE

It is with much pleasure that I place into the hands of the readers the great meditator Kṛṣṇācārya's *Vasantatilakā*, a text *par excellence* in the realm of meditational practices. It is being published as no. 7 in the RBT series of publications and acompanies the commentary of Vanaratna.

The text has ten exhortations. A similar work in twelve exhortations called the *Vasantatilaka* is also available in the original. It is known that two more variant texts having ten exhortations each, authored by Daśabalācārya and Ācārya Śrighana are extant, which have been annotated in the appendices of this text.

We have drawn freely on the mss. specified below to collate the material enjoined in the work.

Vasantatilaka Mss.

Ka —National Archive, Kathmandu, Catalogue, no. 1/356 folios 19, Script-Newārī (ms. obtainable in the private collections of Prof. Jagannath Upadhyaya).

Kha—A second copy of the ms. is also available in the private collections of Prof. Jagannath Upadhyaya.

Ga —Institute for Advanced Studies of World Religions, New-York, Microfische Pl. no. MBB–III–19, folios 14, microfische, Śāntarakṣita Library, CIHTS, Sarnath.

Gha—Bibliothēque Nationale, Paris, no. 111, Size 275 × 64 mm. folios .31, Script-Newārī, microfilm copy, Śāntarakṣita Library, CIHTS, Sarnath.

Ṅa— Bibliothēque Nationale, Paris, no. 112, size 203 × 90 mm, folios 35, Script-Devanāgarī, microfilm copy, Śāntarakṣita Library, CIHTS, Sarnath.

Ca— National Archive, Kathmandu, Catalogue, 3/324, folios 11, Script-Devanāgarī, complete, Photostat copy, Śāntarakṣita Library, CIHTS, Sarnath.

Cha—Tokyo University Library, ms. no. 354, folios 17, Size 3 ¾ × 9 ¾", Script-Devanāgarī, microfilm copy, Śāntarakṣita Library, CIHTS, Sarnath.

Ja— National Archive Kathmandu, Catalogue No 3/598, Folios 23, Script-Newārī, complete, Photostat-copy, Śāntarakṣita Library, CIHTS, Sarnath.

Jha— Institute for Advanced Studies of World Religions, New York, microfische Pl. no. MBB-III-18, folios 61, microfische, Śāntarakṣita Library, CIHTS, Sarnath.

Ña— Institute for Advanced Studies of World Religions, New-York, microfische Pl. no. MBB-II-51, folios 14, Script-Newārī, microfische, Śāntarakṣita Library, CIHTS, Sarnath.

Ṭa— Institute for Advanced Studies of World Religions, New York, microfische Pl. no. MBB-III-17, folios 11, Script-Newārī, microfische, Śāntarakṣita Library, CIHTS, Sarnath.

Ṭha—A Photostat Copy is available in Prof. Jagannath Upadhyaya's private collections, folios 11, Script-Newārī.

Ḍa— Institute for Advanced Studies of World Religions, New York, microfische Pl. no. WGS-18, folios 9, Script-Devanāgarī, microfische is available in Śāntarakṣita Library, CIHTS, Sarnath.

Ḍha—Gaekwad Oriental Institute Baroda, No. 13276/71, folios 29 (21–29) Script-Devanāgarī.

Vasantatilaka Tīkā Mss. (Rahasyadīpikā)

Ka— National Archive, Kathmandu, Nepal, Cat. no 3/290, folios 41, complete, Script-Newārī, (ms. is availabe in Prof. Jagannath Upadhyaya's private collections).

Kha—Institute for Advanced Studies of World Religions, New York, Microfische Pl. no. WGS–24, folios, 50 (Microfische, Śāntarakṣita Library, CIHTS, Saranath.

Ga— Institute for Advanced Studies of World Religions, New York, Microfische Pl. no. WGS–18 folios–9, Script-Devanāgarī (Microfische, Śāntarakṣita Library, CIHTS, Sarnath.

Gha—National Archive, Kathmandu, Nepal, Cat. 3/656, Script-Devanāgarī, folios-43, complete (photo copy and microfilm are available in Sarasvati Bhavan Library, Sanskrit University, Varanasi.)

Ṅa— A photostat copy is available in the private collections of Prof. Jaganna h Upadhyaya. (The comentary preceds the text in original) folios 11, script Newārī.

Ca— National Archive, Kathmandu, Nepal. Cat. 4/1, Script-Newārī, folios 97 (fragile, broken), Microfilm is available in Śāntarakṣita Library, CIHTS Saranath, Box no. 5, Reel no. A 142/5.

Cha—Institute for Advanced Studies of World Religions, New York, Microfische Pl. no. MBB–III–17, folios 11, Script-Newārī (Microfilm is available in Śāntarakṣita Library, CIHTS, Saranath.)

Vasantatilaka Mss. (Daśabalācārya)

Ka— Āśā-Sphu Kuṭī, Kathmandu, Nepal, nos 1129–1130, Run-no. 2606, Cat. no. 39, folios 39 (15–39) Script-Newārī (Photostat Copy in Śāntarakṣita Library, CIHTS, Saranath.)

Kha—Gaekwad Oriental Institute, Baroda, no. 13276, Script-Devanāgarī, Folios 29 (8–20), Photostat Copy, Śāntarakṣita Library, CIHTS, Saranath.

Vasantatilaka Mss. (Śrīghana)

Ka— National Archive, Kathmandu, Nepal, Cat. no. 3/598, folios 7, Size 16 × 31 ½ cms.

Kha—Microfische Pl. no. MBB–1–27, Folios 15, procured from the Institute for Advanced Studies of World Religions, New York.

Ga— Āśā sphu Kuṭī, Kathmandu, Nepal, no. 1129–1130, Run-no. 2606, Cat. no. 39, folios 39 (1–14), Script-Newārī.

Gha—Gaekwad Oriental Institute, Baroda, no. 13276/71 folios 29 (1–8) Script-Devanāgarī, Photostat copy is available in Śāntarakṣita Library, CIHTS, Saranath.

We gratefully acknowledge the help received from various institutions and scholars toward procurement of the above mss. providing the source material.

As we publish this and other works of this class my awareness of the hard pursuit of my colleagues to process sacred esoteric texts and their commentaries grows evermore toward trustfulness.

S. Rinpoche
Director

གླེང་བརྗོད།

ད་ལམ་ནང་པའི་སློབ་གཞུང་ལ་ཐུགས་སེམས་གནང་མི་རྣམས་ཀྱི་སྤྱན་ལམ་དུ་ནང་པའི་ཆོས་དཀོན་པའི་གསུང་རབ་བོད་འགྱུར་བདུན་པའི་ཚུལ་དུ་བརྟུལ་ཞུགས་སྤྱོད་པའི་སློབ་དཔོན་ནག་པོ་པས་མཛད་པའི་དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེ་ཞེས་བྱ་བའི་སྐབས་ཐབས་པཎ་ཊིད་ནགས་ཀྱི་རིན་ཆེན་གྱིས་མཛད་པའི་འགྲེལ་བཤད་མཉམ་དཔར་འགྲེམས་ཞུས་ཐུབ་པར་དགའ་སྤྲོ་སྐྱེས། གསུང་རབ་འདིའི་ནང་ངེས་པར་བསྟན་པ་བཅུ་ཡོད། ངེས་བསྟན་བཅུ་གཉིས་ཅན་གྱི་དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེའི་རྩ་བའི་དཔེ་གཞན་ཡང་རྙེད་རྒྱུ་ཡོད་པ་མ་ཟད། སློབ་དཔོན་སྟོབས་བཅུ་པ་དང་ཨཙ་ཏྲ་ཤྲཱི་ཛྙཱ་ན་གཉིས་ཀྱི་ངེས་པར་བསྟན་པ་བཅུ་ཅན་གྱི་དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེ་ཞེས་བྱ་བའི་གསུང་རབ་གཉིས་སོ་སོར་རྙེད་རྒྱུ་ཡོད་པ་དག་ཀྱང་པར་ཐེངས་འདིའི་ཁ་སྐོང་ལྷན་ཐབས་སུ་ཚོགས་ནང་འདུས་པ་བྱས་ཡོད། གསུང་རབ་འདི་དག་ཐམས་ཅད་ཀྱི་དག་བཅོས་དང་ཞུ་སྒྲིགས་བྱེད་རྒྱུར་གོ་བསྒྲུར་བྱས་པའི་ལག་བྲིས་མ་དཔེ་ཁག་གི་ངོ་སྤྲོད་མདོར་བསྡུས་ཧིན་དི་དང་དབྱིན་ཇིའི་གླེང་བརྗོད་ནང་བྱས་ཡོད།

ལག་བྲིས་མ་དཔེ་ཁག་རྙེད་ཐབས་སུ་སྤྱི་སྐྱེར་ཁག་མང་པོ་ཞིག་ནས་རོགས་རམ་གནང་བ་རྣམས་ལ་བཀའ་དྲིན་རྗེས་དྲན་ཞུ་ཡི་ཡོད། ཐུགས་སྣང་ཆེན་པོས་དག་ཞུས་དང་ཞུ་སྒྲིགས་སོགས་ཀྱི་བྱ་བ་ལེགས་པར་མཇུག་བསྒྲུངས་ཏེ་དེབ་འདི་སྤུས་ཚད་ལྡན་པར་དཔར་བསྐྲུན་ཞུས་པར་ནང་པའི་ཆོས་དཀོན་པའི་གསུང་རབ་ཉམས་ཞིབ་འཚར་གཞིའི་ལས་བྱེད་པ་མཁས་དབང་རྣམས་ལའང་ཐུགས་རྗེ་ཆེ་ཞུ་རྒྱུ་བཅས་ཡུ་ཏ་དབུས་བོད་ཀྱི་ཆེས་མཐོའི་གཙུག་ལག་སློབ་ཁང་གི་ངེས་སྟོན་པ་ཟམ་གདོང་སྤྲུལ་སྐུས་ཕྱི་ལོ་ ༡༩༩༠ ཟླ་༤ ཚེས་ ༢༡ ལ་བྲིས།



उपोद्घात

उद्देश और निर्देश तन्त्र

उद्देश शब्द का प्रयोग भारतीय दर्शन की अन्य शाखाओं में भी हुआ है। जैसा कि—"नाममात्रेण वस्तुसंकीर्तनमुद्देशः"[1]। अर्थात् केवल वस्तुओं के नामों को गिना देना 'उद्देश' कहलाता है। बौद्ध तन्त्रों में उद्देश के साथ निर्देश शब्द भी मिलता है। संक्षेप में किसी बात को कह कर फिर उसका विस्तार से वर्णन करना प्रायः सभी शास्त्रों की परिपाटी है। [2]इस विस्तार के लिये ही बौद्ध शास्त्रों में निर्देश शब्द प्रयुक्त हुआ है। संक्षेप और विस्तार के आधार पर यहाँ तन्त्रों का भी विभाजन हुआ है। जिन तन्त्रों में संक्षेप में सारे विषय वर्णित हैं, उनको उद्देश तन्त्र और अधिक विस्तार वाले तन्त्रों को निर्देश तन्त्र कहते हैं। [3]सेकोद्देश-टीकाकार ने सकल योगियोगिनीतन्त्रों को त्रिविध उद्देश और त्रिविध निर्देश-तन्त्रों में विभक्त किया है। उनके अनुसार समस्त लघुतन्त्र उद्देश तन्त्र और समस्त मूल तन्त्रराज निर्देश तन्त्र हैं। वहां १८०० श्लोक वाले श्रीसमाज को लघुतन्त्र और

---

१. "तत्र नामधेयेन पदार्थमात्रस्याभिधानमुद्देशः" (न्यायभाष्य, १।१।३)।

२. "उद्देशो हि संक्षेपेण प्रतिपादनम्। निर्देशो विस्तरेणेति शेषः" (व० ति० टी०, पृ० २८)। उद्देश और निर्देश शब्दों का एक साथ प्रयोग इन्हीं अर्थों में असंग के महायानसूत्रालंकार (दरभंगा संस्करण, पृ० ७७) में तथा मध्यान्त-विभागशास्त्र (मोतीलाल बनारसी दास, पृ० १४८) में भी मिलता है। अर्थ-विनिश्चयसूत्र (पटना संस्करण, पृ० ७३) में भी इन शब्दों का विवरण देखा जा सकता है।

३. "सर्वस्मिन्नेव योगियोगिन्यादितन्त्रे उद्देशस्त्रिविधः, निर्देशोऽपि। तत्रोद्देशः स्वनाम्नैव कथितः। प्रत्युद्देशो द्वितीयः। महोद्देशस्तृतीयः। एवं निर्देशोऽपि स्वनाम्नैव व्याख्यातः। प्रतिनिर्देशो द्वितीयः। अपर इति महानिर्देशस्तृतीयः। उद्देशनिर्देशौ द्वावेव तन्त्रसंगीतिः। तत्रोद्देशेन संगीतिः समस्तलघुतन्त्रम्। यथाऽष्टादशशतग्रन्थश्रीसमाजादिका। निर्देशेन संगीतिः सकलमूलतन्त्रराजदेशना। यथा पञ्चविंशतिसहस्रश्रीसमाजादिका। एवं प्रत्युद्देशेन लघुतन्त्रे पञ्जिका। इह निर्देशः प्रतिनिर्देशोऽभिमताः। तेन मूलतन्त्रे पञ्जिका। तथा महोद्देशेन लघुतन्त्रे टीका। इह निर्देशो महानिर्देशोऽभिमतः। महानिर्देशेन मूलतन्त्रे टीका" (सेकोद्देशटीका, पृ० ४-५)।

२५ हजार श्लोक प्रमाण श्रीसमाज को मूलतन्त्रराज बताया है। इस प्रकार यहां ये शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त हैं। एक ही ग्रन्थ में पहले उसके प्रतिपाद्य विषय का संक्षेप में उल्लेख कर बाद में उसका विस्तार करना और लघुतन्त्रों में संक्षेप में वर्णित विषयों का मूल तन्त्रराजों में विस्तार से विवरण देना। वसन्ततिलका नाम साधनोपायिका में पहले अर्थ को स्वीकार किया गया है।

निष्पन्नक्रम-साधनोपायिका

इस ग्रन्थ के रचयिता चर्याव्रती कृष्णाचार्य हैं (पृ० ८९)। ग्रन्थकार का कहना है कि [1]योगपीठविनिर्गत इस साधनोपायिका की रचना इन्होंने चक्रसंवर-तन्त्र के आधार पर की है (१।३)। टीकाकार ने योगपीठ के आत्म, पर, मन्त्र और तत्त्व नामक चार विभाग किये हैं और इनमें से प्रत्येक का स्थान क्रमशः नाभि, हृदय, कण्ठ और शीर्ष माना है (पृ० ६)। ग्रन्थकार के उक्त वचन का अभिप्राय यह है कि उसने चक्रसंवर तन्त्र की पद्धति से चार योग-पीठों की साधना पूरी करके आत्मप्रत्यय के आधार पर, अर्थात् अपने ज्ञान के सहारे इस ग्रन्थ की रचना की है।

प्रत्येक विषय का यहाँ बाह्य और आन्तर स्वरूप स्पष्ट रूप से बताया गया है, अर्थात् उत्पत्तिक्रम और निष्पन्नक्रम की प्रक्रिया का निरूपण किया गया है। अधिक स्पष्ट शब्दों में हम कह सकते हैं कि यहाँ सारी बाह्य प्रक्रिया उत्पत्तिक्रम के तथा आन्तर (आध्यात्मिक) प्रक्रिया निष्पन्नक्रम के अधीन मानी गई है। उदाहरण के

---

१. चतुष्पीठ महातन्त्र में आत्म, पर, योग और गुह्य नामक चार पीठ वर्णित हैं और यहाँ टीकाकार इनको योगपीठ के चार भेदों के रूप में प्रस्तुत करते हैं। ज्ञानोदय-तन्त्र (पृ० ६) में पर, आत्म, याग और तत्त्व नामक चार पीठ निर्दिष्ट हैं। यहाँ गुह्य के स्थान पर तत्त्व नामक विभाग उल्लिखित है, जो कि टीकाकार की नामावली में भी है। योगपीठ के ये चार भेद हैं या ये स्वतन्त्र चार पीठ हैं, इस पर अभी विशेष प्रमाणों के अभाव में कुछ नहीं कहा जा सकता। ब्रह्मयामल में विद्या, मन्त्र, मुद्रा और मण्डल नामक चार पीठों में तन्त्रों को बाँट कर विद्यापीठ और मुद्रापीठ के प्रतिपादक तन्त्रों के नाम गिनाये गये हैं। स्वच्छन्दतन्त्र अपने को चतुष्पीठ-संहिता कहता है। इसका अभिप्राय यह है कि तन्त्रों के क्रिया, चर्या आदि विभागों की तरह विद्या, मुद्रा आदि विभाग भी मान्य रहे हैं। उनके अलग-अलग तन्त्र भी उपलब्ध थे। स्वच्छन्दतन्त्र में इन सभी विषयों का समाहार किया गया था। इस विषय के विस्तार के लिये नित्याषोडशिकार्णव का उपोद्घात (पृ० ५६-५७) देखिये। हमें अनेक बौद्ध तन्त्रों में भी क्रिया, चर्या आदि सभी विषयों का वर्णन मिलता है। यह तो स्पष्ट ही है कि इस चतुर्विध पीठ विभाग का योगपीठ अथवा चतुष्पीठ विभाग से कोई सम्बन्ध नहीं है।

लिये उत्पत्तिक्रम की पद्धति से ३७ बोधिपाक्षिक धर्मों की बाह्य मण्डलचक्र में स्थापना की जाती है और निष्पन्नक्रम की पद्धति से ३७ नाड़ीचक्रों में इनकी भावना की जाती है। इतना होने पर भी यहाँ प्रधानता निष्पन्नक्रम की ही है। इसीलिये टीकाकार इसको निष्पन्नक्रम-साधनोपायिका कहते हैं। प्रथम निर्देश में स्वयं ग्रन्थकार ने बाह्य प्रक्रिया को हेय माना है।

ग्रन्थरचना का प्रयोजन

यहाँ बताया गया है कि वज्रडाकिनी तो प्रत्येक प्राणी के देह में विद्यमान है, किन्तु उसको जानने की जिज्ञासा कुछ ही लोगों को होती है। ऐसे ही कुछ लोगों का मार्ग-दर्शन करने के लिये इस ग्रन्थ की रचना की गई है। यहाँ बताया गया है कि स्वभावतः देखा जाय तो मण्डल, होम, भावना (ध्यान), जप आदि सारे विधिविधान कृत्रिम हैं, [1]कर्मकाण्ड से भरे हुए हैं। अपने सहज स्वरूप को जानने में इन उपायों से कोई सहायता नहीं मिल सकती। हाँ, इन कृत्रिम उपायों से सहज स्वरूप को जानने की योग्यता प्राप्त हो सकती है, लेकिन इससे अपने सहज स्वरूप की प्रतिपत्ति नहीं हो सकती। अतः व्यक्ति को नदी पार कर लेने के बाद जैसे नाव की आवश्यकता नहीं रह जाती, उसी तरह से इस कृत्रिम प्रक्रिया की भी स्थिति है। अभ्यास में प्रथमतः प्रवृत्त योगी इनका सहारा लेते हैं। शास्ता ने तथा अन्य आप्त जनों ने शास्त्रों में नाना प्रकार के उपदेश दिये हैं। ये सब शब्दजाल मात्र हैं। इनके अनुष्ठान में क्लेश अधिक है। इतने पर भी वे अपने चित्त को स्थिर नहीं कर पाते। अतः ग्रन्थकार का कहना है कि मण्डल आदि के सारे विधिविधान व्यक्ति को मोक्ष की प्राप्ति नहीं करा सकते। बुद्धत्व की प्राप्ति तो निर्विकल्प और सविकल्प इन दोनों स्वरूपों से परे विद्यमान सुविशुद्ध तत्त्व के ज्ञान से ही हो सकती है। वस्तुतः क्रिया और कारक की कोई वास्तविक स्थिति नहीं है। परम तत्त्व का स्वरूप तो इन दोनों से अतीत है। सारी कृत्रिम प्रक्रिया को छोड़कर अपने सहज स्वरूप को समझने पर ही इस तत्त्व की प्रतीति हो सकती है।

---

१. ठीक इसी अभिप्राय के वचन कश्मीरी योगशास्त्र के ग्रन्थ विज्ञानभैरव के प्रारम्भ और अन्त में भी मिलते हैं। यहाँ भगवान् भैरव के सकल स्वरूप को निःसार बताया गया है और कहा गया है कि साकार की उपासना मातृमोदक के समान है (श्लो० १३)। माता जैसे लड्डू देने का लोभ देकर बच्चे को कड़वी दवा खिलाती हैं, उसी तरह से निराकार स्वरूप में प्रवेश पाने के लिए साकार की उपासना का विधान है। यहाँ हम इस साकार और निराकार की उपासना को क्रमशः उत्पत्तिक्रम और निष्पन्नक्रम की प्रक्रिया से जोड़ सकते हैं।

इस सहज स्वरूप की प्रतीति कैसे हो, इसकी प्रक्रिया को बताने के लिये ही आगे के नौ निर्देशों की रचना की गई है। यहाँ बताया गया है कि उत्पत्तिक्रम की सारी कृत्रिम प्रक्रियाओं को छोड़कर उत्पन्न (निष्पन्न) क्रम की प्रक्रिया का वरण करना चाहिये।

इसीलिये टीकाकार ने स्पष्ट कर दिया है कि यह साधनोपायिका बाह्य अभिनिवेश का त्याग करा कर अध्यात्म में प्रवेश कराती है, क्योंकि सुविशुद्ध तत्त्व के परिज्ञान से ही बुद्धत्व की प्राप्ति होती है। टीकाकार ने इस प्रसंग (पृ० ८) में रत्नपुद्गल, चन्दन आदि का उल्लेख किया है। [1]शास्त्रों में रत्न, चन्दन, पद्म, पुण्डरीक और उत्पल नामक पाँच प्रकार के पुद्गलों का निरूपण मिलता है। इन पाँच प्रकार के पुद्गलों में से रत्नपुद्गल को ही वहाँ शास्त्र का अधिकारी माना गया है। यहाँ (पृ० ८) टीकाकार ने भी बताया है कि रत्नपुद्गल अपने पूर्व जन्मों के संस्कार के कारण इस जन्म में अकृत्रिम स्वरूप को अधिक सरलता से समझ सकता है। ग्रन्थ और टीका के आधार पर इस अकृत्रिम सुविशुद्ध स्वरूप सहज तत्त्व की व्याख्या आगे विस्तार से की गई है। इस विषय का विस्तार करने से पहले यहाँ ग्रन्थकार, टीकाकार आदि के विषय में कुछ कह देना अप्रासंगिक नहीं होगा।

ग्रन्थकार कृष्णाचार्य

इस ग्रन्थ के रचयिता कृष्णाचार्य को यहाँ चर्याव्रती कहा गया है। उन्मत्तव्रत, विद्याव्रत, गुह्यचर्या, कापालिकचर्या आदि शब्दों का प्रयोग सिद्ध-साहित्य में मिलता है। हम समझते हैं चर्याव्रती शब्द का प्रयोग इन्हीं अर्थों में यहाँ हुआ है। कृष्णाचार्य की दोहाकोश आदि रचनाओं में हमें इन सब चर्याओं के दर्शन होते हैं, जो कि ऊपर विविध शब्दों के द्वारा सूचित हैं। सिद्धाचार्यों की अपभ्रंश रचनाओं का अब तक प्रायः स्वतन्त्र अनुशीलन प्रस्तुत किया गया है, किन्तु हम देखते हैं कि अनेक सिद्धाचार्यों की अपभ्रंश रचनाओं के साथ संस्कृत भाषा में निबद्ध वचन या ग्रन्थ भी मिलते हैं। इस योजना से प्रकाशित हुए "लुप्त बौद्ध वचन संग्रह" (प्रथम भाग) में जिन अनेक सिद्धाचार्यों के ऐसे वचन संकलित किये गये हैं, उनमें कृष्णाचार्य भी

---

१. गुह्यसमाज-प्रदीपोद्योतन में उद्धृत किसी व्याख्यातन्त्र में सप्तविध अलंकार, षट्कोटि-व्याख्यान आदि का विवरण उपलब्ध है। 'धीः' के छठे अंक में प्रकाशित "सप्तविधालंकाराख्यायिका न्याय" शीर्षक निबन्ध से इन सब विषयों का, विशेष कर रत्न, चन्दन आदि पुद्गलों का परिचय प्राप्त किया जा सकता है (पृ० ८५)।

एक हैं। कम्बलाम्बरपाद की आलोकमाला का प्रकाशन हो चुका है। सरहपाद के भी "प्रबन्ध" नामक संस्कृत ग्रन्थ की सूचना हमें मिलती है। इस उभयविध सिद्ध-साहित्य में प्रतिपादित चर्याओं का आचरण करने के कारण ही संभवतः कृष्णपाद अपने को चर्याव्रती कहते हैं।

बौद्ध वज्रयान साहित्य (अपभ्रंश और संस्कृत) में कृष्णपाद या कृष्णाचार्य आदि नाम वाले अनेक आचार्यों की सत्ता मानी गई है और इनका समय ७००–१२०० ई० के बीच निर्धारित है। जालन्धरपाद के शिष्य कृष्णपाद के अनेक ग्रन्थों का विवरण "न्यू कैटलागस् कैटलागरम्" (भा० ४, पृ० २२९-२३१) में मिलता है। अभी हाल में प्रकाशित हुए नागेन्द्रनाथ उपाध्याय के ग्रन्थ "बौद्ध अपभ्रंश कवि कृष्णपाद" में भी इस विषय पर अनेक स्थलों से सूचनाएँ एकत्र की गई हैं। वसन्त-तिलक, हेवज्रतन्त्रटीका (योगरत्नमाला), दोहाकोश आदि के रचयिता एक ही कृष्णपाद हैं, इसमें भी मतभेद दृष्टिगोचर होता है।

लामा तारानाथ ने कृष्णाचार्य को सम्पुटतिलकतन्त्र का आविष्कारक माना है। सम्पुटतिलक के वचन यदि सम्पुटतन्त्र में मिल जाते हैं, जिनकी कि अधिक संभावना है, तो निश्चय ही ये एक ही ग्रन्थ के दो नाम हैं। सम्पुटतन्त्र सम्पुटोद्भव के नाम से भी प्रसिद्ध है। 'दुर्लभ ग्रन्थ परिचय" (प्रथम भाग, पृ० १७५–१७८) में गुह्यसमाज-परार्धं का परिचय देते समय विशेष वक्तव्य (पृ० १७७-१७८) में बताया गया है कि यह ग्रन्थ सम्पुटोद्भव से अभिन्न है। "एन इंट्रोडक्शन टू तान्त्रिक बुद्धिज्म" के लेखक डॉ० एस० बी० दासगुप्त ने "सम्पुटिका" अथवा "सम्पुटोद्भव-कल्पराज" कह कर इसको उद्धृत किया है। इस तरह से यह एक ही ग्रन्थ अनेक नामों से प्रसिद्ध माना जायगा। दुर्लभ बौद्ध ग्रन्थ शोध योजना से इसका परिष्कृत संस्करण तैयार किया जा रहा है। पाठ-संकलन करते समय हमने देखा है कि वसन्ततिलक और सम्पुटतन्त्र में अनेक वचन आनुपूर्वी से मिलते हैं। इसी तरह से अनंगवज्र की प्रज्ञोपायविनिश्चयसिद्धि के भी अनेक वचन सम्पुटतन्त्र में आनुपूर्वी से मिलते हैं। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि काल की दृष्टि से कृष्णाचार्य अनंगवज्र के परवर्ती हैं और चार विभिन्न नामों से प्रसिद्ध सम्पुटतन्त्र के आविष्कारक तथा वसन्ततिलक के रचयिता चर्याव्रती कृष्णाचार्य ही हैं और ये ही हेवज्रतन्त्र की योगरत्नमाला टीका के भी कर्ता हैं। यह सब अनुमान मात्र है। अभी इस विषय पर पर्याप्त गंभीरता से विचार करने की आवश्यकता है।

दोहाकोशटीका (पृ० १३०) में इनको जालन्धरिपाद का शिष्य बताया गया है। इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि कृष्णाचार्य जालन्धरिपाद के साक्षात् शिष्य थे

अथवा ये उनकी शिष्य-परम्परा में आते हैं। [1]डॉ० नागेन्द्रनाथ उपाध्याय ने सूचना दी है कि महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने तिब्बती परम्परा के आधार पर जालन्धर-पाद का जन्मस्थान नगरभोग बताया है। वास्तव में यह नाम नगरकोट है। आधुनिक कांगड़ा प्राचीन काल में इस नाम से प्रसिद्ध था। जालन्धर पीठ की देवी वज्रेश्वरी मानी जाती है और वज्रेश्वरी देवी का एक मन्दिर कांगड़ा में है। इस मन्दिर में स्थित शिलालेख में वज्रेश्वरी देवी का स्तोत्र उत्कीर्ण है। जालन्धर क्षेत्र की स्थिति तो अतिविस्तृत है, किन्तु जालन्धर पीठ की स्थिति कांगड़ा में ही माननी चाहिये। ज्वालामुखी देवी का मन्दिर जालन्धर क्षेत्र के अन्तर्गत आवेगा।

का = कामरूप, पू = पूर्णगिरि, जा = जालन्धर और ओ = ओडयाण- इन चार पीठों की स्थिति शैव, शाक्त और बौद्ध सभी तन्त्रों में समान रूप से मान्य है। हमारी समझ में कृष्णपाद को जालन्धर पीठ की परम्परा में कहीं स्थान देना होगा। इस परम्परा के संस्थापक जालन्धर नाथ माने जा सकते हैं। सिद्धों और नाथों की परम्परा का हमारी समझ में अभी प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत नहीं हो सका है। जिन भारतीय अथवा तिब्बती साक्ष्यों के आधार पर इनका इतिहास प्रस्तुत किया गया है, उन पर पूरी तरह से भरोसा नहीं किया जा सकता। हमारी समझ में मत्स्येन्द्र-नाथ और गोरक्षनाथ की तरह जालन्धरिपाद और कृष्णपाद का भी दृढ़ प्रमाणों के अभाव में कोई साक्षात् संबन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता।

कृष्णपाद को भद्रपाद का गुरु सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है, किन्तु कुद्दालपाद ने अचिन्त्याद्वयक्रमोपदेश में भद्रपाद को अपना गुरु माना है। भद्रपादक्रम के अनुसार उन्होंने अपने ग्रन्थ की रचना की है। यहाँ उन्होंने अपनी गुरुपरम्परा दी है (श्लो० ८८-८९)। उसमें धर्मपाद को भद्रपाद का गुरु बताया गया है। कृष्णपाद का वहाँ कहीं भी नाम नहीं है। कृष्णपाद के समान भद्रपाद ने भी हेवज्रतन्त्र पर टीका लिखी है। उसको देखने पर संभवतः इस विषय में कुछ निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है।

कम्बलपाद विरचित आलोकमाला का प्रकाशन सन् १९८५ में कोपेनहेगेन से हुआ है। इसके सम्पादक डॉ० सी० लिंडनर ने अपनी प्रस्तावना में इनका समय ४५० से ५२५ ई० निर्धारित किया है। हमारी समझ में शून्यवाद के आचार्यों के बीच इनकी स्थिति न मानकर सिद्धाचार्यों के बीच ही इनकी गणना होनी चाहिये, जैसा कि अब तक माना गया है। इनके अनेक वचनों का संग्रह "लुप्त बौद्ध वचन

---

१. देखिये—बौद्ध अपभ्रंश कवि कृष्णपाद, पृ० ३०, ३२.

संग्रह" में किया गया है और ये सभी वचन प्रस्तुत आलोकमाला में उपलब्ध हो जाते हैं। हम यह भी बता चुके हैं कि बौद्ध ग्रन्थों के अतिरिक्त शैव-शाक्त तन्त्र-ग्रन्थों में भी यहाँ के वचन उद्धृत मिलते हैं। इस परिस्थिति में डॉ० लिंडनर का कम्बलपाद का उक्त काल-निर्धारण कुछ अस्तव्यस्त सा लगता है। सिद्धाचार्यों के काल और क्रम को निर्धारित करने के लिये अभी बड़े प्रयास की आवश्यकता है। सौभाग्य से इनमें से अनेकों सिद्धाचार्यों के संस्कृत ग्रन्थ अथवा वचन और उनके भोट भाषा के अनुवाद भी उपलब्ध हैं। इनकी सहायता से पहले हमें यह निश्चित करना होगा कि कौन आचार्य किसको स्मरण कर रहा है, किसके वचनों को प्रमाण रूप से अपने ग्रन्थ में उद्धृत कर रहा है? इन प्रमाणों से परिपुष्ट क्रम को ही हमें सही मानना होगा। जल्दबाजी में आतुर भाव से किया गया अनुशीलन हमें सही निष्कर्षों तक नहीं पहुँचा पाता।

टीकाकार

चर्याव्रती कृष्णाचार्य रचित वसन्ततिलक का यह संस्करण वनरत्न कृत टीका के साथ यहाँ प्रकाशित किया जा रहा है। टीका के किसी भी हस्तलेख में इसके रचयिता का नाम नहीं मिलता, किन्तु इस टीका का भोट अनुवाद भी उपलब्ध है और वहाँ टीकाकार का नाम वनरत्न दिया गया है। इसके भोट अनुवादक भी स्वयं टीकाकार ही हैं। संस्कृत टीका की एक दूसरी त्रुटि हमें यह मिलती है कि इसकी सभी मातृकाओं में प्रथम निर्देश का अन्तिम भाग तथा द्वितीय निर्देश का प्रारम्भिक भाग उपलब्ध नहीं है, जब कि भोट अनुवाद में यह अंश उपलब्ध है। स्पष्ट है कि संस्कृत की वर्तमान उपलब्ध सभी मातृकाएँ उस मूलपाठ का अनुसरण नहीं करती। लगता है किसी खण्डित मातृका से, जिसके कि एक दो पत्र नष्ट हो गये, वर्तमान के उपलब्ध सभी हस्तलेख तैयार हुए।

'ब्ल्यू एनल्स' (पृ० ७९७-८०५) में इनका विस्तार से परिचय दिया गया है। यहाँ बताया है कि सन्नगर (चटगाँव, बंगलादेश) के राजवंश में १३८५ ई० में इनका जन्म हुआ। ८ वर्ष की आयु में इन्होंने बुद्धघोष नामक भिक्षु से श्रामणेर दीक्षा ली थी और २० वर्ष की आयु में अपने उपाध्याय और आचार्य से भिक्षु दीक्षा ग्रहण की। भिक्षु के रूप में इन्होंने सिंहल द्वीप की यात्रा की थी, जहाँ वे ६ वर्ष तक रहे। इन्होंने धान्यकटक (आन्ध्रप्रदेश), उत्कल आदि की भी यात्रा की थी। यात्रा के प्रसंग में इन्होंने अनेक आचार्यों से शिक्षा प्राप्त की। इन्होंने वर्षों तक षडंगयोग का अभ्यास किया। नेपाल और तिब्बत की भी इन्होंने यात्रा की। इनकी पहली

---

१. देखिये—'धीः' अंक ६, पृ० ८८–९२.

तिब्बत यात्रा १४२६ ई० में हुई। सन् १४३६ और १४५३ में भी ये तिब्बत गये थे। महापण्डित वनरत्न के रूप में ये वहाँ प्रख्यात हुए। उस समय तिब्बत की यात्रा करने वाले भारतीय विद्वानों में ये अन्तिम माने जाते हैं। उसके बाद संभवतः वर्तमान समय में तिब्बत की यात्रा करने वाले पहले भारतीय विद्वान् महापण्डित राहुल सांकृत्यायन थे। ८५ वर्ष की अवस्था में १४६८ ई० में वनरत्न ने तुषित लोक के लिये प्रस्थान किया। तिब्बती तंग्युर में इनके निम्न ११ ग्रन्थों की सूचना मिलती है—

११५४	बुद्धस्तवदश
११७४	लोकेश्वररत्नमालास्तवनाम
११७५	गणेश्वरस्तव
११७६	श्रीशबरपादस्तोत्ररत्न
१४४६	वसन्ततिलकटीका (अनुवाद भी स्वयं)
१६०४	सर्वार्थसाधकवज्रवाराहीसाधननाम
१६०५	वज्रवाराहीसाधन
१६०८	अनुज्ञाविधि
१७६९	धूमाङ्गारीसाधन
१७७०	वलिविधि
१७८३	अचलाभिसमयहृष्टाभिधान

संस्कृत साहित्य में टीका-ग्रन्थों का अपना महत्त्व है। अनेक विशिष्ट आचार्य अपने टीका-ग्रन्थों के कारण ही प्रसिद्ध हुए हैं। वनरत्न का भी इनमें अपना स्थान है। अनेक ग्रन्थों, ग्रन्थकारों और मतमतान्तरों का इन्होंने उल्लेख किया है। इनके अतिरिक्त पृ० ५ पर उद्धृत चार श्लोक, पृ० २३–२४ पर के सात श्लोक, पृ० ५९ पर उद्धृत पाँच श्लोक और पृ० ६४ पर उद्धृत आठ श्लोक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषयों पर प्रौढ़-गम्भीर भाषा में प्रकाश डालते हैं। इनके रचयिता अतिविशिष्ट आचार्य होने चाहिये। किन्तु यहाँ इनमें से किसी ग्रन्थ या ग्रन्थकार का नाम लिये बिना ये वचन उद्धृत हैं। इन सब वचनों की तथा 'उक्तम्, एके' इत्यादि कह कर उद्धृत किये गये वचनों के मूल स्थान की हमें खोज करनी होगी।

यहाँ उद्धृत ग्रन्थों में गुह्यसमाज, समाधिराजसूत्र और हेवज्रतन्त्र प्रकाशित हो चुके हैं। आलिचतुष्टय और गुह्यतत्त्वप्रकाश कृष्णपाद के ही ग्रन्थ माने जाते हैं। गुह्येन्दुतिलक गुह्येन्दुमणितिलक अथवा गुह्येन्द्रतिलक से अभिन्न ही होना चाहिये। चक्रसंवर अतिविशिष्ट बौद्ध तन्त्र है। इसका मूल स्वरूप अभी संस्कृत में उपलब्ध नहीं हुआ है। ज्ञानपाद, डाकिनीवज्रपंजर, मूलतन्त्र, वज्रडाक, वज्रपंजर, वज्रपाणि, सन्ध्या-

व्याकरण, सम्पुट, सम्पुटतिलक आदि का विवरण हम 'लुप्त बौद्ध वचन संग्रह" प्रथम भाग के उपोद्घात में दे चुके हैं। वज्रपंजर डाकिनीवज्रपंजर से अभिन्न हो सकता है। डाकार्णव के कुछ संस्कृत वचन वसन्ततिलक की केवल 'ज'मातृका में मिलते हैं। स्पष्ट है कि अपभ्रंश भाषा के छपे ग्रन्थ डाकार्णव से यह भिन्न है। तथागत-गुह्यसूत्र के यहाँ टीका में उद्धृत वचन के अतिरिक्त अन्य अनेक वचन शिक्षासमुच्चय की टीका में मिलते हैं। इन सबका 'धीः' के नवम अंक में संग्रह किया गया है। इनमें से कोई भी वचन गुह्यसमाजतन्त्र में नहीं मिलता। स्पष्ट है कि तथागतगुह्यसूत्र गुह्यसमाजतन्त्र से भिन्न है।

सीताहरण काव्य यहाँ केवल उदाहरण के रूप में चर्चित है, तन्त्र साहित्य से इसका कोई संबन्ध नहीं है। इसी प्रकार धातुपारायण शब्द पाणिनीय धातुपाठ को सूचित करता है। तन्त्रराज शब्द से शायद यहाँ चक्रसंवर अथवा सम्पुटतन्त्र का ग्रहण हुआ है। क्रियातन्त्र, क्रियाचर्यातन्त्र, चर्यातन्त्र, योगचर्योभयतन्त्र, योगतन्त्र, योगिनी-तन्त्र—ये सब शब्द यहाँ तन्त्रशास्त्र के उपभेदों के सूचक हैं। परयूथ्य और स्वयूथ्य शब्द परपक्ष और स्वपक्ष के अनुवर्ती आचार्यों या शास्त्रों के लिये प्रयुक्त होते हैं।

अव्याकृतवितर्क, निराकारविज्ञानवादी और शान्तब्रह्म-सांख्यपुरुषवादी—ये तीन शब्द भारतीय दर्शन के विभिन्न मतवादों को सूचित करते हैं। यहाँ अव्याकृत वितर्कवादी उनको बताया गया है, जो मरणोपरान्त मुक्ति की बात स्वीकार करते हैं। टीकाकार ने इस मत का खण्डन करते हुए शास्त्रों के वचनों को उद्धृत कर बताया है कि सारा जगत् ही पंचबुद्धात्मक है। ऐसा एक भी प्राणी नहीं है, जो कि स्वयं बुद्ध न हो। निराकार विज्ञानवाद का प्रतिपादन विज्ञानवादी बौद्ध करते हैं। इनको यहाँ स्वयूथ्य, अर्थात् बौद्ध दर्शन का अनुसरण करने वाला कहा गया है। शान्तब्रह्मवादी वेदान्ती को और नित्यपुरुषवादी सांख्यों को यहाँ परयूथ्य, अर्थात् बौद्ध दृष्टि का अनुसरण न करने वाला कहा गया है। इस प्रकार इन तीनों प्रकार की दृष्टियों को टीकाकर वनरत्न स्वीकार नहीं करते। टीकाकार ने यहाँ इसी अभिप्राय को व्यक्त किया है। तन्त्ररत्नावली में अद्वयवज्र ने भी मन्त्रनय की सर्वोत्कृष्टता का प्रतिपादन करते समय श्रावकयान, प्रत्येकयान और महायान दर्शन की समालोचना की है। इनमें से प्रत्येक दर्शन की दृष्टि को उन्होंने समल माना है और कहा है कि चित्त की प्रभास्वरता के लिये, सभी प्रकार के मलों से चित्त को मुक्त करने के लिये, मन्त्रयान की दृष्टि अपेक्षित है।

ग्रन्थकार और टीकाकार के विषय में कुछ लिखने के बाद अब हम ग्रन्थ का संक्षिप्त परिचय दे देना उचित समझते हैं।

ग्रन्थ संक्षेप

इसके प्रथम सूत्र में सम-विषम-महासुख स्वभाव ३७ बोधिपाक्षिक धर्मों का, नाड़ियों और चक्रों का, पाँच स्वर, द्वादश मात्रा और ३४ व्यंजनों का, पीठों और भूमियों का तथा इनके अधिपति, सभी प्राणियों के हृदय में निवास करने वाले परम तत्त्व का उल्लेख (उद्देश) किया गया है और आगे दस निर्देश वाले इस पूरे ग्रन्थ में इन विषयों की विस्तार से व्याख्या मिलती है।

पहले निर्देश में कृत्रिम मण्डल, होम, जप आदि का परित्याग कर सुविशुद्ध स्वभाव सहज तत्त्व की उपासना के लिये कहा गया है। यहाँ बताया गया है कि तन्त्रों का सारा विस्तार सहज की संवित्ति के लिये है। शैव तन्त्र विज्ञान-भैरव साकार उपासना को मातृमोदक मानता है। कड़वी दवा खिलाने के लिये जैसे माता बच्चे को लड्डू दिखाती है, उसी तरह सहज में प्रवेश के लिये कृत्रिम होम, मण्डल आदि का विधान है। प्रथम निर्देश के अन्त में संक्षेप में बताया गया है कि अकार में ही समस्त जागतिक भेद-प्रभेद छिपे हुए हैं। इस विषय का विस्तार नवें निर्देश में मिलता है। नामसंगीति की पद्धति से अकार की महिमा का वर्णन करते हुए वहाँ बताया गया है कि अकार से ही सारे वर्ण, पद, वाक्य, महावाक्य की और ८४ हजार[1] धर्मस्कन्ध की उत्पत्ति होती है। "अकारो वै सर्वा वाक्"[2] जैसे वचन आरण्यकों और उपनिषदों में भी मिलते हैं। शैव, विशेष कर शाक्त तन्त्रों में भी नामसंगीति की पद्धति से अकार को सर्ववर्णाग्र्य[3] बताया गया है।

सुविशुद्ध स्वभाव सहज तत्त्व की संवित्ति के लिये यहाँ द्वितीय निर्देश में बताया गया है कि स्कन्ध, धातु और आयतन स्वरूप प्राणियों का यह देह कैसे

---

१. धर्मस्कन्ध शब्द से त्रिपिटक साहित्य का ग्रहण किया जाता है। इसको ८४ हजार धर्मस्कन्ध प्रमाण माना गया है। "एतान्येव त्रीणि पिटकानि चतुरशीतिधर्मस्कन्धसहस्राणि भवन्ति" (पृ० ९७) अभिधर्मसमुच्चयभाष्य के इस वचन से इस बात की पुष्टि होती हैं। प्रो० रामशंकर त्रिपाठी द्वारा सम्पादित अभिधम्मत्थसंगहो के प्रथम भाग की भूमिका (पृ० १७–१९) में इस विषय पर विस्तार से विचार किया गया है।

२. ऐतरेयारण्यक (२।३।६; २।३।८) द्रष्टव्य।

३. अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः।
हकारोऽन्त्यः कलारूपो विमर्शाख्यः प्रकीर्तितः॥
योगिनीहृदयदीपिका प्रभृति ग्रन्थों में संकेतपद्धति का यह वचन अनेक स्थलों पर उद्धृत मिलता है।

देवस्वरूप हो जाता है। अभिनवगुप्त द्वारा उद्धृत नकुलीश के एक वचन में भी मनुष्य के शरीर को सर्वदेवमय[1] कहा गया है। इस निर्देश के अन्त में बताया गया है कि इस शरीर के देवस्वरूप हो जाने पर फिर भव और निर्वाण में कोई भेद नहीं रह जाता। कश्मीर के प्रत्यभिज्ञावादी तान्त्रिकों ने तो बन्ध[2] (भव) और मोक्ष (निर्वाण) की सत्ता को ही अस्वीकार कर दिया है।

वसन्ततिलका के आगे के प्रत्येक निर्देश के उद्देश वाक्य में 'तथागतकाय' का उल्लेख मिलता है। यह देवस्वरूप काय ही तथागतकाय है। इस शब्द की व्याख्या करते हुए टीकाकार का कहना है कि यह 'तथागतकाय' किसी विशेष व्यक्ति का न होकर सर्वसत्त्वसाधारण है, अर्थात् इस तथागतकाय को प्रयत्न करने पर प्रत्येक प्राणी प्राप्त कर सकता है। तृतीय निर्देश में इस तथागतकाय के काय, वाक् और चित्त के भेद से क्रमशः अधम, मध्यम और उत्तम द्वारों का उल्लेख कर एकस्तम्भ, नवद्वार कायद्वार का, चतुर्विध वाचिक द्वार का और चन्द्रसूर्यात्मक मानस द्वार का निरूपण कर मानस द्वार की श्रेष्ठता बताई गई है। मानस द्वार के यहाँ ऊर्ध्वद्वार और अधोद्वार नामक दो भेद किये गये हैं। ऊर्ध्वद्वार से विज्ञान की और अधोद्वार से धातुओं की प्रवृत्ति होती है। वैरोचन आदि बुद्धों का आवाहन, स्थापन और विसर्जन इन्हीं की सहायता से किया जाता है। उक्त त्रिविध द्वारों में ही नाडीचक्रस्वभाव समस्त त्रैयध्विक संबुद्ध, डाकिनियाँ (योगिनियाँ), वीर और सिद्ध सहज रूप में विद्यमान हैं।

चतुर्थ निर्देश में तथागतकाय की दशभूमीश्वरता प्रतिपादित है। [3]दशविध पीठों को यहाँ दस भूमियों के रूप में प्रतिष्ठापित किया गया है और इनके नाम गिनाये गये हैं। दस और बत्तीस नाड़ियों के स्थानों का निरूपण करने के साथ यहाँ [4]खेचरी, भूचरी और पातालवासिनी नामक योगिनियों की काय, वाक् और चित्त

---

१. "सर्वदेवमयः कायः" (१५।६०४) तन्त्रालोक देखिये।

२. वस्तुस्थित्या न बन्धोऽस्ति तदभावान्न मुक्तता।
विकल्पघटितावेतावुभावपि न किञ्चन ॥
(स्पन्दप्रदीपिका, पृ० ८८ पर उद्धृत आत्मसप्तति)

३. हेवज्रतन्त्र (१।७।१२-१८) में द्वादशविध पीठ, उपपीठ आदि निरूपित है। तदनुसार ही टीकाकार ने वहाँ (प० २५ b) बारह अथवा तेरह भूमियों के नाम गिनाये हैं। इन भूमियों का विशेष विवरण वहाँ नहीं मिलता।

४. खेचरी, भूचरी जैसे शब्दों का प्रयोग महार्थमंजरी आदि क्रम सम्प्रदाय के ग्रन्थों में प्रमाता प्रमाण, प्रमेयगत शक्तियों के लिये किया गया है। देखिये—महार्थमंजरीपरिमल, पृ० ८५-८८.

चक्रों में स्थिति बताई गई है एवं सहज रूप में स्थित पीठ आदि दस भूमियों के चौबीस भेद और देह के विभिन्न भागों में उनकी स्थिति वर्णित है। यह तथागतकाय समस्त स्कन्ध, आयतन और धातुओं का ही नहीं, बुद्धों और बोधिसत्त्वों का भी आश्रय स्थान है। बोधिचित्तवाहिनी नाड़ियों की निर्मलता के साथ ही व्यक्ति को बुद्धत्व की प्राप्ति हो जाती है। यहाँ बताया गया है कि इस तथागतकाय में ही बुद्धत्व स्थित है, इसकी अन्यत्र स्थिति अज्ञानी लोग ही मानते हैं।

पाँचवें निर्देश में दस स्थानों में स्थित दस नाड़ियों, दस भूमियों और दस पीठों के अतिरिक्त काय, वाक् और चित्त चक्र स्थित चौबीस पीठों के स्थानों का निरूपण कर बताया गया है कि इन स्थानों में डाकिनियाँ नाड़ी के रूप में विद्यमान हैं।

छठे निर्देश में तथागतकाय स्थित नाडीचक्र का विस्तार से वर्णन है। चौबीस पीठों, चौबीस नाड़ियों के अतिरिक्त यहाँ हेवज्रतन्त्र में प्रतिपादित बत्तीस नाडियों और ३७ बोधिपाक्षिक धर्मों के अन्तर्गत सैंतीस नाड़ियों का भी निरूपण किया गया है। यहाँ अष्टपत्र हृदय-कमल स्थित त्रिवृता[1] नाड़ी का, [2]सर्षप प्रमाण वीर वसन्त का, वडवानलरूपा वाराही तिलका का, भगवान् श्रीहेरुक का, ह्रस्व-दीर्घ-प्लुत मात्राप्रमाण बीजाक्षरों का, अनाहत नाद-बिन्दु का, चार चक्र, [3]चार

---

१. "इह सर्वदेहिनां हृदये धर्मचक्रकर्णिकाकेशरान्विताष्टदलं नाडीचक्रं प्रहराष्टकविशुद्धिस्वभावं विद्यते। तस्य मध्ये तैलवह्निस्वरूपिण्यधोमुखी कदलीपुष्पसदृशी त्रिवृता नाडी" (व० ति० टी०, पृ० ३७)।

२. तन्मध्ये (त्रिवृतानाडीमध्ये) रविकिरणनिकरविगलितप्राभातिकावश्यायकणसदृशबिन्दून् मुञ्चन् सूक्ष्मसर्षपप्रमाणो हूंकार उच्चारयितुमशक्यत्वादनाहतः सर्वविकल्पभयेभ्यो निर्गतत्वाद् वीरः, स एव सर्वदेहिनां हृदयानन्दजनकत्वाद् वसन्त इव वसन्तो भगवान् श्रीहेरुक इति ज्ञातव्यः। न तु चतुर्वक्त्रो द्वादशभुजः" (व० ति० टी०, पृ० ३७-३८)।

३. "अहोरात्रे चतस्रः सन्ध्या मध्याह्नप्रदोषार्धरात्रप्रत्यूषलक्षणाश्चक्रवाहिन्यश्चतुःपञ्चाशच्छतश्वाससंख्याः, ता एव तस्य प्रज्ञासनाथस्य चत्वारो मुखाः" (व० ति० टी०, पृ० ३९)। प्रातः, मध्याह्न, सायाह्न और अर्धरात्रि की चार सन्ध्याएँ सभी तान्त्रिक सम्प्रदायों में मान्य हैं। दिन-रात में मनुष्य २१६०० बार श्वास लेता-छोड़ता है, इस बात को भी सभी स्वीकार करते हैं। यहाँ दिये गये टीकाकार के वचन में प्रत्येक सन्ध्याकाल की श्वास-प्रश्वास संख्या ५४०० बताई गई है। चार सन्ध्याओं में मिलाकर श्वास-प्रश्वास की संख्या २१६०० होगी। शैव-शाक्त तन्त्रों में यह विभाजन भिन्न प्रकार से मिलता है। वहाँ गणेश, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, आत्मा, परमात्मा और गुरु के निमित्त इनको समर्पित किया जाता है। गणेश को ६०० सौ, ब्रह्मा, विष्णु और शिव को ६-६ हजार और आत्मा, परमात्मा एवं गुरु को एक-एक हजार जप अर्पित किये जाते हैं। इस तरह से यहाँ भी सब मिलाकर जपसंख्या २१६०० हो जाती है।

सन्ध्या, चार क्षण, चार आनन्द, चार योग, चार पूजा और चार नाड़ियों का उल्लेख कर [1]पाँच नाड़ियों का तथा काय-वाक्-चित्त चक्र स्थित अन्य नाड़ियों का विस्तार से वर्णन किया गया है। यहाँ टीकाकार ने हेवज्रतन्त्र में वर्णित ३२ नाड़ियों की भी निरुक्ति दी है। चार सन्ध्या-नाड़ियों को मिलाकर इनकी संख्या छत्तीस बताई गई है और कहा गया है कि इनमें से चार [2]सन्ध्या-नाड़ियों एवं त्रिवृता आदि पाँच और अवधूती आदि तीन-कुल आठ नाड़ियों को हटा देने पर हेवज्रतन्त्र की अभेद्या आदि नाड़ियाँ ही वसन्ततिलका में वर्णित प्रचण्डा आदि चौबीस नाड़ियाँ हो जाती हैं। यहाँ टीकाकार ने पीठों के साथ डाकिनियों और वीरों की भी निरुक्ति बताई है।

सातवें निर्देश के उद्देश वाक्य में ३७ बोधिपाक्षिक धर्मों का उल्लेख कर आगे पूरे निर्देश में नाडीरूप योगिनियों की बोधिपाक्षिक धर्मस्वरूपता का निरूपण किया गया है। टीकाकार ने इनके देवता, वर्ण, भुजा, संस्थान, आयुध आदि का भी वर्णन किया है। टीकाकार ने यहाँ ३७ बोधिपाक्षिक धर्मों का पाँच मार्गों में अन्तर्भाव कर उनका परिचय दिया है और अन्त में ३७ धर्मों का दस में, दस का तीन में और तीन का भी एक में अन्तर्भाव माना है।

आठवें निर्देश के पहले वाक्य में बाह्य और आन्तर मण्डल, होम, [3]याग, जप और भावना का उल्लेख कर आगे तथागतकाय की मण्डलरूपता का प्रतिपादन

---

१. "पञ्च नाड्यस्त्रिवृताद्याः" (व० ति० टी०, पृ० ४३)। "त्रिवृता कामिनी गेहा चण्डिका मारदारिका" (हे० त० १।१।१८) इस प्रकार हेवज्रतन्त्र में इनके नाम बताये गये हैं। पञ्चव्योम शब्द की व्याख्या करते हुए टीकाकार (पृ० ६) ने बताया है कि त्रिवृता आदि पाँच नाडियों के स्पर्श से इनकी अनुभूति होती है।

२. "एता द्वात्रिंशत् सन्ध्यानाडीचतुष्टयेन सह षट्त्रिंशत्। त्रिवृताद्या अवधूत्याद्याश्चाष्टौ वर्जयित्वा परिशिष्टा अभेद्याद्याश्चतुर्विंशतिः प्रचण्डाद्या विज्ञेयाः" (व० ति० टी०, पृ० ४३)। चार सन्ध्यानाडियों के नाम तो यहाँ कहीं नहीं मिलते, किन्तु चार सन्ध्याओं का अवश्य उल्लेख है। उनमें से प्रत्येक सन्ध्या में ५४०० श्वास-प्रश्वास के प्रवाह की बात भी यहाँ बताई गई हैं। संभव है इन चार सन्ध्याओं को ही यहाँ नाडियों के रूप में मान्य किया गया हो। ३७ वीं नाडी तो हेरुकस्वभाव ही मानी जायगी। टीकाकार ने आगे (पृ० ५८) नाडियों की गणना करते समय अवधूती को ३७वीं नाडी के रूप में रखा है। प्रस्तुत प्रसंग से यह विपरीत पड़ता है।

३. वसन्ततिलक (८।२२) के अधिकांश हस्तलेखों में 'योगः' पाठ है। केवल 'ञ' मातृका में 'याग' पाठ मिलता है, किन्तु सही पाठ यही है। अग्नि में दी गई आहुति 'होम' तथा प्रतिमा आदि का पूजन 'याग' कहलाता है। इस तरह से यहाँ "यागः पूजा समाख्याता"

करते हुए बाह्य और आन्तर द्रव्यों से इसमें होम, याग, जप, भावना आदि कैसे किये जाते हैं और यहाँ आचार्य कौन होता है? इनका निरूपण किया गया है। टीकाकार ने मूल ग्रन्थ में अनुक्त मण्डल की रचना के आन्तर उपकरण सूत्र आदि का सम्यक् विश्लेषण किया है।

नवे निर्देश में तथागतकाय स्थित मन्त्र-चक्र के उद्धार की पद्धति बताई गई है। धर्मोदय नामक त्रिकोण मण्डल स्थित अष्टपत्र कमल में आलि और कालि (स्वर और व्यंजन) में विभक्त आठ वर्गों को शास्त्रीय पद्धति से स्थापित किया जाता है। इन पचास अक्षरों से ही सारे परनिकाय-प्रसिद्ध चतुर्दश विद्यास्थानों की और स्वनिकाय-प्रसिद्ध पाँच विद्यास्थानों की, अर्थात् समस्त शास्त्रों की रचना होती है और ये वर्ण ही मन्त्रों का रूप धारण कर प्राणियों को नाना प्रकार की सिद्धियाँ प्रदान करते हैं। समस्त मन्त्रों और तन्त्रों का निर्माण इन्हीं अक्षरों से होता है। अ क च ट त प य और श—ये ही आठ वर्ग हैं और इनकी स्थिति अष्टदल कमल की चारों दिशाओं और विदिशाओं (कोणों) में मानी जाती है। इस अष्टदल कमल की मध्य-स्थित कणिका में वर्गेश्वर अकार स्थित है। यह अकार सभी वर्णों में श्रेष्ठ है। इसी से सारे अक्षरों और मन्त्रों की उत्पत्ति होती है और यही खड्ग, अंजन आदि नाना सिद्धियों को देने वाला है। प्राणी जो कुछ भी बोलता है, वह सब मन्त्रमय ही है। वस्तुतः नाद ही मन्त्र है और नाभिदेश के उच्चरित यह महानाद ही वर्ण, पद, वाक्य और महावाक्य के क्रम से चतुरशीति[1] धर्मस्कन्ध के रूप में अपना विस्तार कर लेता है। मन्त्र का कोई निश्चित आकार नहीं है, किन्तु भावना के बल से ही मन्त्र नाना प्रकार के विविध कर्मों की सिद्धि का हेतु बन जाता है।

दसवें निर्देश में तथागतकाय धर्म, संभोग और निर्माणकाय की सहायता से कैसे महासुखकाय तक पहुँचता है, इसकी प्रक्रिया बताई गई है। यहाँ एकाराकृति और वंकाराकृति चक्रों के स्थान का निर्देश कर चार चक्रों तथा उनमें स्थित चार कायों का संक्षेप में स्वरूप बताकर इनमें भावनीय बीजाक्षरों का तथा मदवहा और रक्तवहा चन्द्र और सूर्य नाम से प्रसिद्ध दक्षिण और वाम, ललना-रसना नामक नाड़ियों का, जो कि वीरों और योगिनयों की गति और आगति में, अस्तमन और

यही पाठ उचित है। यह पूजा बाह्य और आन्तर दोनों प्रकार की होती हैं (देखिये—"तान्त्रिकी वरिवस्या तस्या भेदाश्च" शीर्षक निवन्ध, सारस्वती सुषमा, व० ३९, अं० १-४, पृ० १२७-१३९)।

१. पृ० १८ की पहली टिप्पणी देखिये।

उदयन क्रियाओं में, स्वप्न और प्रबोध अवस्था में हेतुभूत हैं, वर्णन किया गया है। इन्हीं में स्वर और व्यंजनों की स्थिति भी यहाँ निरूपित है।

इतना सब बता देने के बाद यहाँ पुनः चार कायों के स्वरूप का स्पष्ट निरूपण किया गया है और तन्त्र की [1]घुणरूपता सूचित है। यह घुण ह्रास, दर्शन और पाण्याप्ति रूप त्रिविध तन्त्रों से तथा राग और विराग से भी मुक्त है, इन सब क्रियाकलापों से ऊपर इसकी स्थिति है। पृथिवी आदि पाँच धातु, आदर्श आदि पाँच ज्ञान और वैरोचन आदि पाँच बुद्धों का समष्टीभूत धर्मकाय ही महासुखकाय अथवा हेरुकस्वरूप बन जाता है और इसकी सहज प्रज्ञा भगवती वाराही है। योगी के प्रयत्न से यह जब नाभि स्थान में प्रज्वलित होती है, तो उसे ही वसन्ततिलका कहते हैं। हेरुकवाराही अथवा वसन्ततिलका के इस स्वरूप पर टीका की सहायता से आगे विचार किया जायगा।

ग्रन्थ की इस संक्षिप्त रूपरेखा से स्पष्ट हो जाता है कि ग्रन्थ के प्रारंभ के उद्देश वाक्य में जिन विषयों का संक्षेप में उल्लेख किया है, उन सबका विवरण इसके अलग-अलग निर्देशों में दिया गया है। टीकाकार ने इनको और भी अधिक स्पष्ट किया है। हम यहाँ क्रमशः उन पर विचार करना चाहते हैं।

३७ बोधिपाक्षिक धर्म

सबसे पहले ग्रन्थ में सम-विषम-महासुख स्वभाव ३७ महाबोधिपाक्षिक धर्मों का उल्लेख है। टीकाकार ने इसके दो अर्थ किये हैं। पहले के अनुसार सम का अर्थ उपायस्वभाव और विषम का प्रज्ञास्वभाव है। महासुख प्रज्ञा और उपाय की अद्वय सत्ता, समरस स्थिति है। उपाय, प्रज्ञा और अद्वय स्वभाव ३६ बोधिपाक्षिक धर्मों को यहाँ पाँच मार्गों में बाँटा गया है। सातवें निर्देश में टीकाकार ने संभार मार्ग, प्रयोग मार्ग, दर्शन मार्ग, भावना मार्ग और अशैक्ष मार्ग के नाम से इन पाँच मार्गों का विवरण दिया है और मूल ग्रन्थ में कायानुस्मृत्युपस्थान से लेकर सम्यक् समाधि पर्यन्त निर्दिष्ट ३७ बोधिपाक्षिक धर्मों को इनमें बाँटा है। जैसे चार स्मृत्युपस्थान,

---

१. यहाँ (१०।२३-२४) टीकाकार ने मन्त्र की घुणरूपता का प्रतिपादन कर त्रिविध तन्त्रों का उल्लेख किया है। टीकाकार का कहना है कि जहाँ घुन लग जाती है, वहाँ सब कुछ बर्बाद हो जाता है, उसी तरह से मन्त्र भी राग आदि सारे क्लेशों को खा जाता है। मूल ग्रन्थ में यहाँ त्रिविध तन्त्रों का उल्लेख है। तन्त्रों में विविध मन्त्रों का उपदेश हुआ है। अतः राग-विराग आदि के परिहाण में मुख्यतः तन्त्रों की ही घुणरूपता माननी उचित होगी।

चार सम्यक्प्रहाण और चार ऋद्धिपाद—ये बारह धर्म संभार मार्ग के अन्तर्गत, पाँच इन्द्रिय[1] और पाँच बल प्रयोग मार्ग के अन्तर्गत, सात बोध्यंग दर्शन मार्ग के और आठ आर्य अष्टांगिक धर्म भावना मार्ग के अन्तर्गत आते हैं। यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि वसन्ततिलका में सम्यक्प्रहाण धर्मों का निरूपण स्मृत्युपस्थान और ऋद्धिपाद के साथ न कर इस निर्देश के अन्त में किया गया है।

टीकाकार का स्पष्टीकरण

इन पाँच मार्गों का टीकाकार ने लौकिक और लोकोत्तर मार्ग में संग्रह किया है (पृ० ५२)। इनमें सम (उपाय) स्वभाव प्रथम २२ धर्मों का लौकिक मार्ग में और बाद के विषम (प्रज्ञा) स्वभाव १५ धर्मों का लोकोत्तर मार्ग में समावेश माना जाता है। इन ३७ बोधिपाक्षिक धर्मों का दस में, दस का तीन में और तीन का केवल एक तत्त्व में संग्रह का प्रकार भी टीकाकार (पृ० ५७-५८) ने ही बताया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के पाँचवें और छठे निर्देश में एवं उनकी टीका में तथागतकाय में नाडी रूप से अवस्थित ३७ संवित्स्वरूपिणी डाकिनियों का निरूपण मिलता है। टीकाकार ने सातवें निर्देश के अन्त में (पृ० ५८) शिर से जानुपर्यन्त स्थित २४ नाडियों, नाभिचक्रान्त की चार, द्वाराष्टक की आठ तथा मध्य में स्थित अवधूती नाडी को मिला कर इनकी संख्या ३७ बताई है और बाद में इनका भी तथागतकाय के नवद्वार और दशम नाभि स्थित मध्यनाडी में समावेश किया है। दस नाडियों का ललना, रसना और अवधूती में और बाद में ललना एवं रसना का भी एक ही मध्यनाडी में समावेश कर दिया है। वहाँ बताया गया है कि यह सारा नाडीचक्र वज्रवाराही स्वभाव मध्यनाडी अवधूती से प्रादुर्भूत होता है और फिर उसी में विलीन (समवशरण) हो जाता है। इससे संवृति और परमार्थ की अद्वयस्वभावता, युगनद्धता सिद्ध होती है। यह प्रज्ञा और उपाय की अद्वय सत्ता, समरस स्थिति ही ३७ बोधिपाक्षिक धर्मों की महासुख-स्वभावता है। इसी स्थिति को यहाँ वसन्ततिलका-योग कहा गया है। सम-विषम-महासुख शब्द से उपाय और प्रज्ञा की अद्वयता का बोध कराते हुए टीकाकार ने यहाँ (पृ० ५८) बताया है कि शान्तब्रह्मवादी वेदान्ती तथा सांख्यदर्शन के अनुयायी (परयूथ्य=बौद्धेतर दार्शनिक) और

---

१. वसन्ततिलक और उसकी टीका के आधार पर पाँच इन्द्रियों और बलों की पातंजल योग से तुलनात्मक समीक्षा "बौद्ध तन्त्र कोश" भा० १ के उपोद्घात, पृ० १९ पर देखिये।

निराकार विज्ञप्तिवादी (स्वयूथ्य=बौद्ध दार्शनिक) संवृति और परमार्थ के भेद के प्रति अत्यन्त आग्रहशील हैं। अतः ये सब सत्य का दर्शन नहीं कर सकते।

इस ग्रन्थ में प्रत्येक वस्तु की बाह्य और आन्तर रूप में व्याख्या की गई है। ३७ बोधिपाक्षिक धर्मों के प्रति भी वही पद्धति अपनाई गई है। सातवें निर्देश में प्रदर्शित कायानुस्मृत्युपस्थान से लेकर सम्यक्समाधि पर्यन्त ३७ बाह्य बोधिपाक्षिक धर्म और पाँचवें तथा छठे निर्देश में और आठवें निर्देश के प्रारंभ में वर्णित संवित्स्वरूपिणी ३७ नाडियाँ (डाकिनियाँ) आन्तर बोधिपाक्षिक धर्म हैं। टीकाकार ने सम-विषम-महासुख शब्द की दूसरी व्याख्या कर इस अर्थ को स्पष्ट किया है (पृ० २)। यहाँ 'सम' का अर्थ दक्षिण नाडी से निकली संवित्स्वरूपिणी डाकिनियाँ तथा 'विषम' का अर्थ वाम नाडी प्रसूत डाकिनियाँ किया गया है। चक्षु आदि छः विज्ञानों में से प्रत्येक में चार-चार प्रकार के आनन्द विद्यमान हैं। मिलकर इनकी संख्या २४ होती है। इसी प्रकार चार चक्रों में से प्रत्येक में प्रवेश, स्थिति और उत्थान के क्रम से तीन-तीन प्रकार के आनन्द स्थित हैं। मिलकर इनकी संख्या १२ होती है। इन छत्तीस प्रकार के आनन्दों का जहाँ लय हो जाता है, उस सहज-स्वभाव हेरुक को यहाँ ३७ वाँ आनन्द माना गया है। इस प्रकार यह सहजमूर्ति भगवान् श्रीहेरुक ही सप्तत्रिंशत् बोधिपाक्षिक धर्मस्वभाव है। इसका अभिप्राय यह है कि इस ग्रन्थ के प्रथम उद्देश वाक्य के—"समविषममहासुखसप्तत्रिंशन्महाबोधि-पक्षस्थधर्मस्वभावस्थितम्" इस प्रथम विशेषण से बाह्य और आन्तर रूप में ३७ बोधिपाक्षिक धर्मों से संवलित भगवान् श्रीहेरुक को स्मरण किया गया है, अर्थात् बाह्य और आन्तर ये सभी धर्म भगवान् श्रीहेरुक से ही प्रादुर्भूत होते हैं और उन्हीं में विलीन हो जाते हैं, समवशरणता को प्राप्त कर लेते हैं।

चक्रेश्वर

"स्वाङ्गनाडीचतुश्चक्रमुख्यम्" भगवान् श्रीहेरुक का यह दूसरा विशेषण है। टीकाकार ने इस विशेषण को स्पष्ट करते हुए बताया कि साधक के अपने काय (शरीर) के आठ द्वारों में काकास्या आदि आठ डाकिनियाँ (६.४१-४३) स्थित हैं। चक्षु, कर्ण, घ्राण, जिह्वा और काय (त्वक्) नामक इन्द्रियों की सहायता से ये दर्शन, श्रवण, मोदन (आमोद=गन्ध), आस्वादन और स्पर्शन व्यापार का सम्पादन करती हैं। निर्माण, धर्म, सम्भोग और स्वभाव (सुख) नामक चार चक्रों की स्थिति क्रमशः नाभि, हृदय, कण्ठ और मूर्धा में है और ये क्रमशः निर्माण, धर्म, संभोग और स्वभाव (सुख) काय स्वरूप हैं। ज्ञान, चित्त, वाक् और काय चक्र के रूप में भी इनका विभाग किया जाता है। यहाँ इनका क्रम काय, वाक्, चित्त और ज्ञान—इस प्रकार रहना चाहिये। इसी क्रम से इनका ऊपर के चक्रों, उनके स्थानों और कायों के

साथ सम्बन्ध बन सकेगा। इन नाडियों और चक्रों में चक्रेश्वर भगवान् श्रीहेरुक संवृति और परमार्थ रूप उभय स्थितियों में अभिन्न अद्वय बोध रूप में स्थित रहते हैं।

मन्त्रेश्वर

भगवान् श्रीहेरुक का तीसरा विशेषण है—"सपञ्चस्वरद्वादशमात्राचतुस्त्रिंशदाभूषितव्यञ्जनम्"। यहाँ मन्त्रमूर्ति भगवान् श्रीहेरुक का स्वरूप प्रदर्शित किया गया है। टीकाकार ने पञ्चस्वर पद की आवृत्ति स्वीकार कर धर्मचक्र के मध्य में और चारों दिशाओं के दलों में क्रमशः हूँ ॐ आः ह्रीं खं—इन पाँच स्वरों (बीजों) की तथा संभोगचक्र में ॐ आ ई ऊ ऐ—इन पाँच स्वरों की स्थिति बताई है। इन तथागत बीजों के न्यास से क्रमशः स्कन्धों और धातुओं की विशुद्धि होती है। अकार से विसर्ग पर्यन्त सोलह स्वरों में से ऋ ॠ लृ ॡ—इन चार नपुंसक स्वरों को हटा देने पर इनकी संख्या १२ रह जाती है। इनकी स्थिति वाम नाडी में अधोमुख और दक्षिण नाडी में ऊर्ध्वमुख रहती है। इस तरह से इन स्वरों की संख्या २४ हो जाती है। इन २४ स्वरों के साथ [1]ककार से लेकर भकार पर्यन्त २४ व्यंजनों की भी स्वरों के अनुसार ही स्थिति रहती है। [2]मकार स्वभाव अनुस्वार इन सबके साथ जुड़ा रहता है। यह क्रम संभोगचक्र का है। महासुखचक्र में नपुंसक स्वरों के साथ १६ स्वरों की ऊर्ध्व और अधोमुख स्थिति रहने से इनकी संख्या ३२ हो जाती है। कालि के ३४ व्यंजनों में से प्रथम और अन्तिम वर्णों को हटा देने पर इनकी भी संख्या ३२ रह जाती है। ऊपर स्वरों के लिये बताई गई पद्धति से ही इन ३२ वर्णों को भी ऊर्ध्व और अधोमुख क्रम से रखने पर स्वरों और वर्णों की मिलकर संख्या ६४ होती है। निर्माण चक्र में इनकी स्थिति मानी जाती है। मतान्तर में २४ नाडियों का ही न्यास किया जाता है। तब य र ल व की धर्मचक्र के कोणों में और श ष स ह की उसके बाहर भाजन रूप में स्थिति रहती है। चारों चक्रों के मध्य में स्वराद्य (अकार), मेघनाद (हूँ), ब्रह्म (ॐ) और अनाहत अक्षर स्थित (हं) हैं। रेफ को जालन्धर में तथा क्षकार को अधोद्वार के आगे लिखा जाता है। यही भगवान् श्रीहेरुक का मन्त्रोलिमय स्वरूप है।

---

१. योगिनीहृदय (३।१०१) और अन्य तन्त्र-ग्रन्थों में भी सूर्य की द्वादश कलाओं में अनुलोम क्रम से ककार से ठकार पर्यन्त बारह तथा विलोम क्रम से भकार से डकार पर्यन्त बारह–कुल २४ वर्णों का विन्यास प्रदर्शित है।

२. शाक्त तन्त्र के ग्रन्थ योगिनीहृदय और उसकी टीका दीपिका में भी इसी प्रकार मकार का विन्यास कहीं नहीं बताया गया। दीपिकाकार के मत का सामंजस्य बैठाते हुए वहाँ (पृ० २६) टिप्पणी में बताया गया है कि मकार को बिन्दु का प्रतीक मानकर और इस तरह से प्रत्येक बीजाक्षर में इसकी सत्ता के कारण मूल ग्रन्थ और अमृतानन्द की व्याख्या की संगति बैठाई जा सकती हैं। प्रस्तुत प्रसंग से भी उक्त टिप्पणी को समर्थन मिलता है।

नाडीचक्र के अधिपति भगवान् श्रीहेरुक की मन्त्रेश्वरता का प्रतिपादन छठे निर्देश के प्रारंभ में तथा पूरे नवम निर्देश में भी हुआ है। नवें निर्देश में मन्त्रचक्र का उद्धार भी प्रदर्शित है। इसके आधार पर वर्णों में अकार की श्रेष्ठता, उससे प्राप्त होने वाली सिद्धियाँ, मन्त्र का स्वरूप एवं उससे संबद्ध नाद और बिन्दु तत्त्वों का निरूपण "बौद्ध तन्त्र कोश" प्रथम भाग के उपोद्घात (पृ० ३१-३७) में विस्तार से किया जा चुका है। उसको यहाँ पुनः दुहराने की आवश्यकता नहीं है।

दश भूमीश्वर

"कायवाक्चित्तभेदस्थितानां च पीठादिकानां दशानां भुवामीश्वरम्" यह भगवान् श्रीहेरुक का चौथा विशेषण है। यहाँ भगवान् की दशभूमीश्वरता प्रतिपादित है। बोधिसत्त्व की प्रमुदिता आदि दस भूमियाँ ही काय आदि चक्रों में पीठ आदि के रूप में स्थित हैं। शिर आदि स्थानों में अभेद्या आदि नाड़ियों की स्थिति मानी जाती है। भगवान् श्रीहेरुक इन सबके स्वामी हैं। बोधिसत्त्व की दस भूमियों का वर्णन प्रज्ञापारमिता [1]दर्शन में भी मिलता है। यहाँ बोधिसत्त्व [2]क्लेशावरण और ज्ञेयाकरण का नाश कर सत्य का दर्शन करते हैं। अविकल्प धातु का साक्षात्कार हो जाने पर भी प्रज्ञापारमिता नय में अनन्त कल्पों की साधना के उपरान्त[3] ही बोधि की प्राप्ति होती है। इसके विपरीत मन्त्रनय में पुल्लीर आदि के संकेतों से वर्णित दस भूमियों में संचार करने से लय[4] आदि स्वभाव कायत्रय की प्राप्ति हो जाने पर स्वसंवेद्य

---

१. दशभूमिकसूत्र और उसके परिशिष्ट में दिये गये मैत्रेयनाथ के अभिसमयालंकार के कुछ श्लोकों में इन दस भूमियों का स्वरूप देखा जा सकता है। इस ग्रन्थ के दरभंगा संस्करण के अंग्रेजी और हिन्दी प्राक्कथन में इन सबका संक्षिप्त स्वरूप प्रदर्शित है।

२. महायानीय अनुत्तरतन्त्र रत्नगोत्रविभाग (५।१४) में ज्ञेयावरण और क्लेशावरण का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

त्रिमण्डलविकल्पो यस्तज्ज्ञेयावरणं मतम्।
मात्सर्यादिविकल्पो यस्तत् क्लेशावरणं मतम्॥

क्लेशावरण और ज्ञेयावरण का दार्शनिक विवेचन प्रो. रामशंकर त्रिपाठी द्वारा सम्पादित विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि (संस्कृत विश्वविद्यालय, सन् १९७२), पृ० ८९-९० मूल और टिप्पणी में देखा जा सकता है।

३. भगवद्गीता भी पारमितानय की इस दृष्टि का ही समर्थन करती है—"अनेकजन्मसंसिद्ध-स्ततो याति परां गतिम्" (६।४५)।

४. नित्याषोडशिकार्णव (४।२) में मन्त्रों के उत्पत्ति, व्याप्ति और लय (विश्रान्ति) स्थानों की चर्चा आई है। टीकाकारों ने विभिन्न दृष्टियों से विभिन्न स्थानों पर विभिन्न मन्त्रों

महासुख-स्वभाव सम्यक्संबोधि रूप भगवान् श्रीहेरुक का साक्षात्कार इसी जन्म में हो जाता है। प्रज्ञापारमिता दर्शन से [1]मन्त्रदर्शन की यही विशेषता है। पीठों, भूमियों और धर्म आदि कायों में सर्वत्र सहज का ही आधिपत्य है। इस सहज तत्त्व का साक्षात्कार कर साधक दशभूमीश्वरता को प्राप्त कर लेता है, अपने सहज हेरुकस्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है।

भगवान् श्रीहेरुक

उक्त चारों विशेषणों से युक्त भगवान् श्रीहेरुक सर्वग, अन्तर्यामी, व्योमरूप और परम शान्त हैं। स्कन्ध आदि सभी यहाँ धर्म रूप में स्थित हैं, अतः ये सर्वग हैं, सर्वत्र विद्यमान हैं। इसी लिये ये धर्मधातु के नाम से प्रसिद्ध हैं। पशु, पक्षी, सरीसृप, मनुष्य आदि सभी प्राणियों के अपने-अपने [2]हृदयों में इनका निवास है, अर्थात् हृदयकमल की कर्णिका में स्थित पृथिवी आदि चतुर्धातुस्वभाव सूर्य और चन्द्रमण्डल के मध्य में स्थित अत्यन्त सूक्ष्म रूप वाले धर्मधातु के स्वरूप में ये सभी चक्रों, डाकिनियों और वीरों में अभिन्न रूप से स्थित हैं। हृदय में अनक्षर बिन्दु के रूप में वर्तमान इस तत्त्व की भावना करने से श्रेष्ठ ज्ञान की उत्पत्ति होती है। सम्पुटीभाव की स्थिति में इस बिन्दु का साक्षात्कार होता है और असम्पुटीभाव की अवस्था में यह बिन्दु परम तत्त्व में विलीन हो जाता है। धर्मकायात्मक होने से यह व्योमरूप है अथवा त्रिवृता आदि पाँच नाड़ियों के स्पर्श से इसकी प्रतीति होने से यह पंचव्योमरूप है। भगमध्य स्थित आकाश पंचव्योम स्वरूप माना जाता है। भगवान् श्रीहेरुक का यह स्वरूप परम शान्त है। पारमार्थिक बोधिचित्त स्वरूप होने से यह परम और निष्प्रपंच होने से शान्त है।

इस प्रकार वसन्ततिलकाकार ने अपने प्रथम उद्देश वाक्य में भगवान् श्रीहेरुक के आठ विशेषणों के बहाने पूरे ग्रन्थ के प्रतिपाद्य विषय की ओर इंगित

की इन तीन अवस्थाओं पर अनेक स्थलों पर प्रकाश डाला है। उसी पद्धति से हम प्रत्येक भूमि के उदय, व्याप्ति और लय स्थान की व्याख्या कर सकते हैं।

१. एकार्थत्वेऽप्यसंमोहाद् बहूपायाददुष्करात्।
तीक्ष्णेन्द्रियाधिकाराच्च मन्त्रशास्त्रं विशिष्यते॥
अनेक स्थानों पर उद्धृत यह वचन मन्त्रनय की विशेषता को बताता है। यहाँ एक ही जन्म में मुक्ति के सिद्धान्त की भी गणना होनी चाहिये। तन्त्रशास्त्र की सभी शाखाओं को यह सिद्धान्त मान्य है। देखिये—गुह्यादि-अष्टसिद्धिसंग्रह, उपोद्घात, पृ० ३७-३८

२. भगवद्गीता के निम्न वचन में भी प्रकारान्तर से यही बात कही गई है—"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति" (१८।६१)।

किया है। इसके बाद 'श्रीहेरुकम्' इत्यादि श्लोक में वे वसन्ततिलकास्वभाव श्रीहेरुक को नमन करते हैं। यहाँ 'वसन्त' पद भगवान् श्रीहेरुक का तथा 'तिलका' भगवती वाराही का वाचक है। संवृतिपरमार्थाभिन्न अद्वय स्वभाव वसन्ततिलका के नमन से ग्रन्थकार का स्वार्थ तो सिद्ध होता ही है, इसके साथ ही ग्रन्थकार की यह भी मंशा है कि इस ग्रन्थ की सहायता से अद्वय तत्त्व का बोध कर अन्य व्यक्ति भी कल्याण मार्ग की ओर अग्रसर हो सकें। इस प्रकार ग्रन्थकार यहाँ स्वार्थ और परार्थ उभय प्रयोजनों की सिद्धि के लिये प्रवृत्त है।

भगवान् श्रीहेरुक परम निवृ॑ति तत्त्वरूप हैं। यद्यपि बोधिचित्त की विवृति और संवृति रूप दोनों ही दशाएँ सत्य हैं, किन्तु वस्तुतः यह परम निवृ॑ति रूप हैं, तन्त्रशास्त्र में वर्णित चतुर्विमोक्ष स्वरूप हैं। यह सहज रूप में परिणत धर्मकायमय है। वसन्ततिलका का स्फरण यहीं से होता है। निर्माण चक्र से ऊपर उठती हुई वाराही स्वभाव चण्डाली वसन्त काल के आगमन पर जब हेरुक से संयुक्त होती है, तो उसके प्रकाशपुंज से भरी ज्ञानाग्नि की ज्वाला उठती है। यह स्कन्ध, धातु और आयतन रूप त्रैधातुक जगत् को भस्म कर देती है और फिर मध्य मार्ग से स्फुरित हो आगे के तीनों चक्रों को अपने प्रकाश से भर देती है। यह प्रकाशपुंज ही भगवान् श्रीहेरुक का अपना निजी रूप है। ये भगवान् श्रीहेरुक काय, वाक् और चित्त नामक चक्रों में फैली रसना आदि नाडियों के स्वामी हैं। इन्हीं नाडियों के सहारे इनका पुल्लीर-मलय आदि स्थानों में प्रसार होता है। यह प्रसार प्रथमतः चौबीस, पुनः एक सौ बीस, २१ हजार या ७२ हजार नाड़ियों के रूप में होता है। यह नाडीचक्र अनन्त सिद्धों (वीरों) और योगिनियों (वीरिणियों) का निवासस्थान है। इन सब में संवृति बोधिचित्त के रूप में भगवान् का निवास है, अर्थात् भगवान् श्रीहेरुक विभिन्न संस्थानों में विभक्त इस नाडीचक्र के अधिपति हैं, चक्रेश्वर हैं। यही भगवान् का धर्मकाय है।

ग्रन्थकार ने इस प्रकार उक्त विशेषणों के माध्यम से सहजकाय और धर्मकाय के स्वरूप का संक्षेप में वर्णन किया है। "जगतः स्वपरार्थसौख्यम्" यहाँ स्वसौख्य से संभोगकाय और परसौख्य से निर्माणकाय का ग्रहण किया जाता है। इन चार कायों का निरूपण आगे विस्तार से किया जायगा।

टीकाकार ने यहाँ श्रीहेरुक को नमन करने वाले एक और श्लोक की व्याख्या की है। मूल ग्रन्थ की किसी मातृका में यह उपलब्ध नहीं है। भोट अनुवाद में यह श्लोक उपलब्ध है। टीकाकार ने इसकी व्याख्या की है और भोट भाषा में इसका अनुवाद भी मिलता है। अतः मानना पड़ेगा कि यह श्लोक मूल में कभी अवश्य

रहा होगा। सभी उपलब्ध संस्कृत मातृकाएँ इस विषय में मौन[1] है, यह एक आश्चर्य का ही विषय है। इस श्लोक में बताया गया है कि भगवान् श्रीहेरुक का यद्यपि कोई नाम नहीं है, तो भी हम हेरुक के नाम से उनको जानने का प्रयत्न करते हैं। हूँकार की प्रतिध्वनि सरीखे नाद में यह गूँजता रहता है, अतः इसका स्वरूप अतीव मनोहारी है। नाद वसन्ततिलका को भी कहा जाता है। इस नाद के अभ्यास से बिन्दु तत्त्व उद्घाटित होता है। अतः नाद और बिन्दु के संघट्ट से ही, समापत्ति से ही, वाराही समालिंगित भगवान् श्रीहेरुक के सहज स्वरूप की निष्पत्ति होती है। यहाँ पहुँच कर साधक योगी क्रम से अतीत हो जाता है, वह उत्पत्तिक्रम की प्रक्रिया से ऊपर उठकर उत्पन्नक्रम अथवा निष्पन्नक्रम में प्रविष्ट हो जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि ऊपर बताई गई बोधिपाक्षिक ३७ धर्मों की मण्डलचक्र की प्रक्रिया उत्पत्तिक्रम में तथा महासुख स्वरूप नाड़ीचक्र की प्रक्रिया निष्पन्नक्रम में आती है। अधिक स्पष्ट शब्दों में हम कह सकते हैं कि सारी बाह्य प्रक्रिया उत्पत्तिक्रम के तथा आन्तर प्रक्रिया निष्पन्नक्रम के अधीन है।

स्थूल से सूक्ष्म में प्रवेश

स्कन्ध, धातु और आयतनों के संघात स्वरूप सभी प्राणियों के देह में देवत्व की भावना करने में ही निष्पत्तिक्रम की भावना का रहस्य छिपा हुआ है, स्थूल के सहारे ही सूक्ष्म की तरफ बढ़ा जा सकता है। यह कैसे संभव हो सकता है? इसकी प्रक्रिया को यहाँ आगे के निर्देशों में बताया गया है।

प्राणियों का देह रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान नामक पाँच स्कन्धों, नेत्र, श्रुति, घ्राण, मुख, काय और मन नामक छः आयतनों, तथा पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश नाम की पाँच धातुओं का संघातात्मक रूप है। स्कन्धों में वैरोचन आदि पाँच बुद्धों की, आयतनों में मोहवज्र आदि तथा महाबल आदि छः छः वीरों की तथा धातुओं में पातनी आदि पाँच देवियों की भावना करने से प्रत्येक प्राणी का देह देवमय हो जाता है।

टीकाकार ने सम्पुटतन्त्र के प्रमाण से मनुष्य के देह को षाट्कौशिक पिण्ड बताया है और कहा है कि इसमें छः तथागतों की भावना करनी चाहिये। पाँच

---

१. मूल ग्रन्थ के इस श्लोक के समान संस्कृत टीका के प्रथम निर्देश के अन्तिम भाग और द्वितीय निर्देश के प्रारंभिक भाग के अनुपलब्ध होने की चर्चा हम यहाँ पहले (पृ० १७) कर चुके हैं। गुह्यसिद्धि के भोट अनुवाद में उपलब्ध अनेक श्लोक उसकी संस्कृत मातृकाओं में नहीं मिलते। इस तरह की अनुवादगत इन समस्याओं पर विचार करने की आवश्यकता है।

बुद्ध ही पाँच तथागत हैं और भगवान् श्रीहेरुक को सर्वरूप षष्ठ तथागत माना गया है। पाँच तथागत आदर्श आदि पंचज्ञानात्मक अथवा पंचाकाराभिसंबोधि स्वरूप हैं और छठे तथागत भगवान् श्रीहेरुक सहज (महासुख) स्वरूप हैं। छठे आयतन मन के अधिपति भी श्रीहेरुक ही हैं। छः आयतनों के अधिपति षट्चक्रवर्ती के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। इनको वीर भी कहा जाता है। इनके नाम टीकाकार ने क्षिति-गर्भ, वज्रपाणि, खगर्भ, लोकेश्वर, विष्कम्भी और समन्तभद्र दिये हैं। यहाँ प्रयुक्त सभी शब्दों की व्याख्या टीका में की गई है और बताया गया है कि सभी देवताओं का निवासस्थान यह देह ही है। इस देह में ही देवता की भावना करनी चाहिये। बाह्य मुख, भुजा, आयुध आदि से अलंकृत प्रतिमा आदि में देवत्व की भावना व्यर्थ है।

तथागत काय

इससे आगे के सभी निर्देशों में प्राणी मात्र के देह को तथागतकाय कहा गया है और बताया है कि यह पंचतथागतात्मक स्थूल काय एक स्तम्भ और नवद्वार (स्रोत) वाला है। ग्रन्थ-संक्षेप में इस विषय का उल्लेख हो चुका है। यहाँ तथागत-काय से संबद्ध कुछ विशेष विषयों की चर्चा करना जरूरी है। पूरे तृतीय निर्देश में मनुष्य देह के आन्तर स्वरूप का निरूपण किया गया है। टीकाकार ने यहाँ नवस्रोतात्मक दो चक्षु, दो श्रोत्र, दो घ्राण, वक्त्र (मुख), गुह्य और गुदा नामक प्रत्येक द्वार के नौ भेद किये हैं और इनको पंचबुद्धात्मक एवं चतुर्योगिनीस्वभाव माना है। इन नवगुणित नवद्वारों के कारण यह देह एकाशीति (८१) द्वार वाला हो जाता है। इस प्रकार इस देह का प्रत्येक स्पन्दन तथागतस्वभाव माना जाता है। मध्यम वाचिक द्वार में यहाँ आग्नेय, वायव्य, माहेन्द्र और वारुण मण्डलों की स्थिति मानी गई है। टीकाकार ने ही त्रिचक्रस्थ धातुरूप वीरों की संख्या चौबीस बताकर श्रीहेरुक को पचीसवां वीर कहा है और काय, वाक्, चित्त और ज्ञानचक्र स्थित नाडीस्वभाव डाकिनियों की संख्या २८ बताई है। सहज सिद्धों और योगिनियों की भी यहाँ चर्चा है (पृ० २४-२५)

चतुर्थ निर्देश में टीकाकार कहते हैं कि तथागत और पृथग्जन में कोई भेद नहीं है[1]। निरे अज्ञानी जन ही यह सोचते हैं कि इस देह से अन्यत्र अभिरति आदि बुद्धक्षेत्रों में बुद्ध अवस्थित हैं। बुद्ध की दस भूमियाँ, दस अथवा चौबीस पीठ आदि भी इसी देह में स्थित हैं, अर्थात् देह स्थित दस प्रधान नाडियाँ ही बुद्ध की

---

१. तत्त्वतस्तथागतपृथग्जनयोरभेदात्" (व० ति० टी०, पृ० २९)।

दस भूमियाँ और योगियों के दस पीठ हैं। २४ पीठों का विस्तार भी नाडियों के रूप में इसी देह में स्थित है। अनेक आचार्य इस देह में ३२ अथवा ३६ नाडियों की भी स्थिति मानते हैं। काय, वाक्, चित्त चक्र अथवा मण्डल के अतिरिक्त ज्ञानमण्डल की भी स्थिति इसी देह में है। इन सभी विषयों का निरूपण पाँचवें निर्देश में भी हुआ है और बताया है कि चतुर्विंशति धातुरूप वीर तथा अभेद्या आदि चौबीस नाड़ियाँ बुद्धस्वरूप ही हैं। इन सबकी स्थिति इसी देह में है। ये सारी भूमियाँ सभी प्राणियों के लिये सुलभ हैं।

छठे निर्देश में नाड़ीचक्र की डाकिनीस्वभावता और इनके अधिपति श्रीहेरुक की मन्त्रात्मकता प्रतिपादित है। यहाँ और सातवें निर्देश में ३७ बोधिपाक्षिक धर्म और चौबीस, बत्तीस अथवा ३७ नाड़ियाँ निरूपित हैं। इनका परिचय पहले दिया जा चुका है। मन्त्रमूर्ति भगवान् श्रीहेरुक का भी मन्त्रेश्वर शीर्षक से पहले निरूपण हो चुका है। प्रधान नाड़ी को यहाँ त्रिगुणातीत तथा अन्य नाड़ियों को रजःसत्त्वतमोरूप बताया गया है। त्रिवृता नाड़ी, सर्षप प्रमाण वीर, वसन्त श्रीहेरुक और वाराही तिलका का प्रतिपादन भी इस निर्देश में हुआ है। इनका विवरण हम अलग से देंगे। टीकाकार ने यहाँ (पृ० ५०) योगिनियों के विषय में एक विशेष सूचना दी है कि लय,[1] भोग और अधिकार के भेद से इनकी संख्या ७२ होती है। वाम और दक्षिण वाह से इनकी प्रवृत्ति होती है। सप्तम निर्देश में टीकाकार ने प्रसंग-वश समाधि के छः दोषों की चर्चा की है (पृ० ५३) किन्तु कौशीद्य (आलस्य), आलम्बन-सम्प्रमोष, लय और औद्धत्य—ये चार नाम ही वहाँ मिलते हैं। टीका के भोट अनुवाद में इन चार दोषों के अतिरिक्त असंस्कार और संस्कार नामक दो अन्य दोष गिनाये हैं। टीकाकार के अभिप्राय को स्पष्ट करते हुए यहाँ यह भी बताया गया है कि लय और औद्धत्य को एक ही मान लेने पर समाधि के दोषों की संख्या पाँच[2] रह जायगी। इन दोषों के परिहार के लिये टीकाकार ने आठ प्रहाण संस्कारों का निरूपण किया है।

आन्तर होम आदि

तथागतकाय की विशद चर्चा के बाद यहाँ आठवें निर्देश में तदनुरूप ही

---

१. शैवसिद्धान्त के मतंगपारमेश्वर नामक आगम के विद्यापाद के तृतीय और चतुर्थ पटल में ईश्वर की लय, भोग और अधिकार नामक तीन दशाओं का वर्णन है। यहाँ भी इन तीन शब्दों का प्रयोग योगिनियों की इस तरह की तीन अवस्थाओं के लिये किया गया प्रतीत होता है।

२. मध्यान्तविभागशास्त्र की—"पञ्चदोषप्रहाणाष्टसंस्कारसेवयाऽजया" (४।३) इत्यादि कारिकाओं और उनकी व्याख्या में यह विषय देखा जा सकता है।

मण्डल, होम, योग (याग), जप और भावना की आन्तर विधि का वर्णन किया गया है। तदनुसार यह तथागतकाय ही मण्डल[1] है। इस आन्तर मण्डल का निरूपण करने के बाद यहाँ बताया गया है कि इस तथागतकाय रूप मण्डल में आन्तर और बाह्य[2] द्रव्यों की प्रज्ञाग्नि में आहुति देनी चाहिये। यही आन्तर होम है। होम के बाद योग की चर्चा कुछ अप्रासंगिक सी लगती है। 'योग' के स्थान पर यहाँ 'याग' पाठ मूल में होना चाहिये। यह याग कैसे सम्पन्न होता है, इसके लिये यहाँ पात्र, स्रुवा, कुण्ड, अग्नि, आचार्य आदि की आध्यात्मिक व्याख्या प्रस्तुत की गई है[3]। इसी पद्धति से यहाँ जप और भावना की भी आन्तर विधि[4] वर्णित है।

काश्मीरी शैवदर्शन और योगशास्त्र के ग्रन्थ विज्ञानभैरव के अन्तिम कुछ (१४२-१४९) श्लोकों में भी जप, ध्यान (भावना), पूजा, होम, याग आदि की परिभाषा इसी प्रकार की दी गई है। वहाँ आन्तर होम का स्वरूप इस प्रकार बताया गया है—

महाशून्यालये वह्नौ भूताक्षविषयादिकम्।
हूयते मनसा सार्धं स होमश्चेतनास्रुचा ॥ १४६ ॥

अर्थात् इस आन्तर होम की प्रक्रिया में पाँच महाभूत, इन्द्रियग्राम और सारे विषयजाल को मन के साथ अपनी चेतनाशक्ति में समेट कर शून्यातिशून्य पदवी (महामाया शक्ति) में स्थित परभैरव स्वरूप वह्नि में उसकी आहुति दी जाती है। इसी अभिप्राय का श्लोक योगिनीहृदय की दीपिका टीका में भी मिलता है—

---

१. चतुरस्र कायमण्डल का सविशेष वर्णन यहाँ अष्टम निर्देश (पृ० ६१-६५) में देखा जा सकता है।

२. आन्तर और बाह्य, स्थूल और सूक्ष्म द्रव्यों का विवरण यहाँ पृ० ६६ पर देखना चाहिये।

३. टीकाकार ने यहाँ (पृ० ७०) सूत्र, रज आदि शब्दों की भी आन्तर और बाह्य द्विविध व्याख्या प्रस्तुत की है।

४. मण्डल, होम, याग, जप और भावना की कृत्रिम और सहज—इन उभयविध दृष्टियों का यहाँ (पृ० ६८) उल्लेख है। सहज में प्रवेश के लिये ही कृत्रिम उपायों की उपयोगिता है। विज्ञानभैरव (श्लो० ८-१३) में शब्दान्तर से यही विषय वर्णित है कि सकल (साकार) स्वरूप की उपासना निष्कल (निराकार) में प्रवेश पाने के लिये की जाती हैं। कृत्रिम की हेयता का सविशेष वर्णन वसन्ततिलककार ने प्रथम निर्देश में भी किया है।

धर्माधर्महविर्दीप्ते आत्माग्नौ मनसा स्रुचा।
सुषुम्नावर्त्मना नित्यमक्षवृत्तीर्जुहोम्यहम् ॥ (पृ० २९६)

यहाँ धर्म और अधर्म रूपी हवि से प्रज्वलित होने वाली आत्मा रूपी अग्नि में मन रूपी स्रुचा से सुषम्ना नाडी के मार्ग द्वारा इन्द्रिय की वृत्तियों की आहुति देने की बात कही गई है। इन सब वचनों से स्पष्ट हो जाता है कि आन्तर होम, याग आदि की प्रक्रिया सर्वत्र एक सी है।

चार काय

इस आन्तर पूजाविधि से परिपुष्ट तथागतकाय की चार अवस्थाएँ क्रमशः निर्माण, संभोग, धर्म और महासुख काय के नाम से प्रसिद्ध हैं। इन सबका निरूपण यहाँ दशम निर्देश में किया गया है। यहाँ प्रथम उद्देश्य वाक्य में धर्म, संभोग और निर्माण नामक तीन कायों से महासुख की अनुभूति की चर्चा है। यह महासुख ही चतुर्थ सहज काय है। यहाँ आगे बताया गया है कि शिर और नाभिगत चक्र एकाराकृति एवं हृदय तथा कण्ठगत चक्र वंकाराकृति है। नाभिगत पद्म में ६४ दल और शिरःस्थित पद्म में ३२ दल हैं। कण्ठगत पद्म षोडश दल तथा हृदयस्थित पद्म अष्टदल है। ६४ दल वाले निर्माण चक्र में निर्माण काय, आठ दल वाले धर्मचक्र में धर्मकाय, षोडशार संभोगचक्र में संभोगकाय तथा ३२ दल वाले महासुख चक्र में सहजकाय स्थित है। निर्माण चक्र में परमाक्षर अकार का, धर्मचक्र में अनाहत हूँकार का, संभोग चक्र में ॐकार तथा महासुख चक्र में हंकार का ध्यान किया जाता है।

ठीक यही विषय छठे निर्देश (पृ० ३८-४०) में भी वर्णित है कि नाभि में ह्रस्व अकार का, हृदय में दो मात्रा वाले हूँकार का, कण्ठ में तीन मात्रा वाले प्लुत ॐकार का तथा शिर स्थित महासुखचक्र में नाद और बिन्दु से विभूषित अनाहताक्षर हँकार का ध्यान किया जाता है।

कण्ठचक्र में महाराग रूप में चन्द्रमा की स्थिति को संभोगकाय तथा नासाग्र अथवा वज्राग्र में अस्तंगत विरागात्मक नाभिगत सूर्य की स्थिति को निर्माणकाय कहा जाता है। इस निर्माणकाय से ही बुद्धों और बोधिसत्त्वों का स्फरण होता है। इन दोनों स्थितियों से, अर्थात् राग और विराग से निर्मुक्त निर्द्वन्द्व परम शुद्ध स्वरूप वाले भगवान् श्रीहेरुक तन्त्रों में घुण के रूप में जाने जाते हैं, अर्थात् जैसे घुन लग जाने पर सब कुछ नष्ट हो जाता है, उसी तरह से हेरुकस्वरूप का साक्षात्कार होने के साथ ही रागविरागात्मक यह संसार सिमट जाता है। पृथिवी आदि पाँच धातु,

आदर्श आदि पाँच ज्ञान और वैरोचन आदि पाँच बुद्धों का स्फरण यहीं से होता है। वज्रसत्त्व, परम सुख स्वरूप यह स्वयंभू काय ही यहाँ धर्मकाय कहा गया है। कायत्रयस्वभाव भगवान् श्रीहेरुक और उसकी सहजा प्रज्ञा वाराही की शिखा (शीर्ष चक्र) में अद्वयभाव से स्थिति ही चतुर्थ महासुखकाय है। इस स्थिति को यहाँ देवतायोग नाम दिया गया है।

हेरुक-वाराही : वसन्त-तिलका

भगवान् श्रीहेरुक के स्वरूप का वर्णन करते समय पहले (६.३-६) बताया गया है कि 'वसन्ततिलका' इस समस्त पद में स्थित 'वसन्त' पद भगवान् श्रीहेरुक का तथा 'तिलका' पद भगवती वाराही का वाचक है। इन पदों की व्याख्या यहाँ छठे (२-८ श्लो०) निर्देश में मिलती है। सभी प्राणियों के हृदय में धर्मचक्र के नाम से अभिहित होनेवाला कर्णिका और केसर से युक्त अष्टदल कमल स्थित है। इसके बीच में तैलवह्निसदृश प्रकाशमान कदलीपुष्प के सदृश अधोमुखी त्रिवृता नाम की नाडी स्थित है। इसके बीच में सर्षप (सरसों) के समान सूक्ष्म आकृति वाला हंकाराकार अनाहत नाद स्थित है। इसको यहाँ वीर संज्ञा दी गई है। सभी प्राणियों के हृदय में आनन्द के उल्लास का जनक होने से इसे 'वसन्त' नाम दिया गया है। 'वाराही' का स्वरूप वाडवाग्नि के जैसा है। इसी को 'तिलका' कहते हैं। कर्म (योगाभ्यास) रूपी पवन की सहायता से यह नाभिमण्डल (निर्माणचक्र) में प्रज्वलित होकर ऊपर उठती है और हृदय स्थित धर्मचक्र में सूक्ष्म सर्षप प्रमाण वीर से संयुक्त होती है। इस वीर वसन्त से संयुक्त होकर वह [1]सन्तुष्ट हो जाती है, उसके साथ समाश्लिष्ट हो जाती है। वसन्त और वाराही की समापत्ति रूप यह अद्वय स्थिति ही वसन्ततिलका के नाम से अभिहित होती है। यह वसन्ततिलका योगिनी का रूप धारण कर सारे चराचर जगत् में व्याप्त है। काय, वाक् और चित्त नामक द्वारों से यह शरीर स्थित चक्रों में गति और आगति करती रहती है। (श्लो० ३०-३७)

गति और आगति की इस प्रक्रिया को यहाँ दसवें निर्देश (श्लो० ३० ३७) में स्पष्ट किया गया है। भगवान् श्रीहेरुक के धर्मकाय का निरूपण करने के बाद यहाँ बताया गया है कि परमसुखस्वरूप, हेतुप्रत्ययनिरपेक्ष, धर्मकायस्वरूप भगवान् श्रीहेरुक की ही सहजा प्रज्ञा 'वाराही' है। कर्म (योगाभ्यास) रूपी पवन की सहायता से नाभिमण्डल (निर्माण चक्र) में प्रज्वलित यह संवित्स्वरूपिणी वाराही चन्द्र

---

१. तुलनीय–"तेन चारेण सन्तुष्टा पुनरेकाकिनी सती" (नि० षो० ४.१५)।

की चन्द्रिका के समान हेरुक से अभिन्न मानी जाती है। यह बाल के अग्र भाग से भी हजारों गुना सूक्ष्म है तथा सैकड़ों बिजलियों की एक साथ पैदा हुई चमक के समान अति कान्तिमयी है[१]। देवता (हेरुक) के साथ योग होने पर, अर्थात् समापत्ति दशा में यह ज्ञानाग्नि की ज्वाला योगी के सभी रोमकूपों की सन्धियों से बाहर निकल कर सुरासुरात्मक, अर्थात् सभी शुभ और अशुभ स्कन्ध, इन्द्रिय आदि विकल्पों को पराहत करती हुई, धर्म और संभोग चक्र के ग्रन्थिरूप समस्त विकल्प-व्यापारों को, अर्थात् स्कन्ध, आयतन और धातुओं को जला डालती है। इसके बाद वह योगी की दक्षिण नासिका के रास्ते बाहर निकलती है और ऊर्णाकोशगत शिखारन्ध्र से पुनः प्रविष्ट होकर दशों दिशाओं में विद्यमान बुद्धों और बोधिसत्त्वों को और चारों चक्रों को दग्ध कर देती है। वह पुनः वाम नासापुट से बाहर निकल कर शिखारन्ध्र से प्रविष्ट होती है और पूर्व दग्ध तथागतों का आप्यायन करती है। इतना करने के बाद वह ज्ञानवह्नि पुनः नाभिमण्डल में स्थिर हो जाती है[२]।

---

१. शैव, शाक्त और वैष्णव तन्त्रों में मूलाधार स्थित कुण्डलिनी शक्ति का स्वरूप भी इसी प्रकार का बताया गया है।

२. ऐसा प्रतीत होता है कि शैव-शाक्त तन्त्रों में वर्णित भूतशुद्धि और कुलकुण्डलिनी की अकुल शिव के साथ सामरस्य की प्रक्रिया को यहाँ एक साथ मिला दिया गया है। भूत-शुद्धि की प्रक्रिया में पाँच भूतों की शुद्धि कर शरीर स्थित पापपुरुष, अर्थात् मलिन वासनाओं का प्राणायाम के पूरक, कुंभक और रेचक व्यापारों के द्वारा शोष, दाह और आप्यायन किया जाता है, अर्थात् पूरक प्राणायाम से मलिन वासनाओं को सुखा कर कुंभक के द्वारा उनको दग्ध कर दिया जाता है और रेचक प्राणायाम के द्वारा दग्ध पाप-पुरुष की भस्म को बाहर निकाल दिया जाता है। इस प्रकार इस भावनात्मक प्रक्रिया के द्वारा पापपुरुष की भस्म के भी बाहर निकल जाने से साधक की सारी मलिन वासनाएँ समाप्त हो जाती हैं और वह देवमय हो जाता है। बौद्ध तन्त्रों की दृष्टि से इसे निष्पन्नक्रम में प्रवेश की प्रक्रिया कहा जा सकता है। निष्पन्नक्रम में स्थित साधक ही आगे की साधना का अधिकारी माना जाता है।

नित्याषोडशिकार्णव (४।१२-१६) में बताया गया है कि मूलाधार स्थित कुल कुण्डलिनी शक्ति चक्रभेद के क्रम से ब्रह्मरन्ध्र स्थित सहस्रारनिवासी पर पुरुष, अर्थात् अकुल शिव के साथ समरस भाव को प्राप्त करती है और पूर्णतया सन्तुष्ट होकर वह पुनः अकेली रह जाती है, अर्थात् जिस मार्ग से वह ऊपर उठी थी, उसी पद्धति से वह पुनः अपने मूल स्थान में आ जाती है। इस द्विविध विवरण के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि वसन्ततिलका का उक्त विवरण इन दोनों प्रक्रियाओं को मिलाकर देखने से सुस्पष्ट हो जाता है।

यहाँ मूल के ३३–३७ श्लोकों में से कुछ का अभिप्राय स्पष्ट नहीं है। टीकाकार की पद्धति से यहाँ ऊपर का विवरण दिया गया है। अपनी इस व्याख्या की पुष्टि में टीकाकार ने कहीं का एक वचन उद्धृत किया है। वहाँ कहा गया है कि मन्थ्य और मन्थान का संयोग होने पर ज्ञानवह्नि उसी प्रकार प्रज्वलित होती है, जैसे कि दो अरणियों के संयोग से लौकिक वह्नि। कर्ममारुत से प्रेरित होकर यह ज्ञानवह्नि नाभिमण्डल में प्रकाशित होती है। वहाँ समयचक्र गत सुगतों को दग्ध कर और संभोगचक्र गत उपाय की तीन प्रदक्षिणा कर [1]ऊर्णाकोशगत उड्डियान संज्ञक मर्मोद्घाटन द्वार में प्रविष्ट होकर दशदिग्गत तथागतों को भस्म कर देती है तथा जालन्धर संज्ञक कनकद्वार में प्रविष्ट होकर चारों चक्रों को भी जला डालती है। कनकद्वार से बाहर निकल कर वह पूर्व दग्ध तथागतों को क्षीरधारा से आप्यायित कर देती है।

वसन्ततिलकास्वभाव वाराहीसमालिंगित मण्डलपति भगवान् श्रीहेरुक चतुश्चक्रस्वभाव हैं, चारों कायों में इनकी व्याप्ति है, इसका निरूपण यहाँ हो चुका है। छठे निर्देश (श्लो० १०–१५) में वसन्ततिलकाकार ने इस विषय को स्पष्ट करते हुए बताया है कि पृथिवी आदि चार महाभूतों में चार चक्रों के रूप में यह स्थित है। चार सन्ध्या, चार क्षण, चार आनन्द, चार योग, चार पूजा—ये सब इसी के स्वरूप हैं। इस सन्दर्भ की व्याख्या करते हुए टीकाकार कहते हैं कि भगवान् श्रीहेरुक नाभिस्थित निर्माणचक्र में ह्रस्व अकार के रूप में, हृदय स्थित धर्मचक्र में नादबिन्दुयुक्त हूँकार के रूप में, कण्ठस्थित संभोगचक्र में तीन मात्रा वाले प्लुत प्रणव (ॐ कार) के रूप में और ललाटस्थित महासुख चक्र में बिन्दुनादविभूषित अनाहत अकार-हकार के समरस रूप में स्थित हैं[2]। यह भगवान् श्रीहेरुक की मन्त्रमयी मूर्ति है। ये चारों चक्र पृथिवी आदि चार भूत स्वभाव हैं। ये सब बुद्धक्षेत्र के अन्तर्गत हैं।

दिन-रात में मिलकर चार सन्ध्याएँ होती हैं। इनके नाम हैं—मध्याह्न, प्रदोष, अर्धरात्र और प्रत्यूष (प्रातःकाल)। प्रत्येक सन्ध्या में प्रवाहित होने वाले श्वासों की संख्या ५४०० है। चारों सन्ध्याओं, अर्थात् दिन-रात में मिलकर इनकी

---

१. हठयोग के ग्रन्थों में उड्डीयान और जालन्धर बन्धों का निरूपण मिलता है, किन्तु उनकी यहाँ वर्णित ऊर्णाकोशगत उड्डियानसंज्ञक मर्मोद्घाटन द्वार तथा जालन्धरसंज्ञक कनकद्वार से कोई समानता नहीं दिखाई पड़ती। इनका विशेष विवरण अपेक्षित है।

२. शाक्त तन्त्र के त्रिपुरा सम्प्रदाय में वर्णित चतुर्बिन्दुमय अकार-हकार की सामरस्य-स्वरूपिणी कामकला से इसकी तुलना की जा सकती है।

संख्या २१६०० होती है। ये चार सन्ध्याएँ ही प्रज्ञासंवलित भगवान् श्रीहेरुक के चार मुख हैं। विचित्र, विपाक, विमर्द और विलक्षण नामक चार क्षण एवं आनन्द, परमानन्द, विरमानन्द और सहजानन्द नामक[1] चार आनन्द बौद्ध तन्त्रशास्त्र में अतिप्रसिद्ध हैं। टीकाकार ने त्वरित, बाष्प, विबन्धक और विश्वस्तक नामक चार[2] योगों के नाम गिनाये हैं। ये चार क्षण, चार आनन्द और चार योग ही भगवान् श्रीहेरुक की बारह भुजाएँ, बारह नेत्र और बारह आयुध हैं। प्रज्ञासनाथ मध्यनायक भगवान् श्रीहेरुक का यह आध्यात्मिक स्वरूप है। चारों दिशाओं और विदिशाओं में स्थित धारण, श्रावण, तेजन और प्रेरण लक्षण डाकिनी, लामा, खण्डरोहा और रूपिणी नामक दिग् डाकिनियों की पूजा चतुःपूजा के नाम से यहाँ वर्णित है। चारों दिशाओं में स्थापित कलशों में इनकी पूजा होती है। विदिक् डाकिनियों के नाम यहाँ नहीं दिये गये हैं, किन्तु सप्तम निर्देश के अन्त में यमदाढी आदि चार देवियों को कोणदेवी कहा गया है। अतः उन्हीं चार कोणदेवियों का चारों विदिशाओं (कोणों) में स्थापित कलशों में पूजन किया जाता है।

भगवान् श्रीहेरुक को[3] चार संख्या बहुत प्रिय है। वसन्ततिलक की पद्धति से इनका निरूपण ऊपर किया गया है। इसके अतिरिक्त टीकाकार तन्त्र, ज्ञान, मन्त्र और गुह्य नामक चार ओलियों का तथा चार प्रत्ययों का भी निरूपण करते हैं। गुह्यतत्त्वप्रकाश के उद्धरण के आधार पर (पृ० ८८–८९) चतुर्विध प्रत्ययों का स्वरूप शैव-शाक्त तन्त्रों की पृष्ठभूमि में "बौद्ध तन्त्र कोश" के उपोद्घात (पृ० २१–२२) में बताया जा चुका है। शैव-शाक्त तन्त्रों में ओलि या ओवल्ली शब्द का प्रयोग परम्परा के लिये होता है। टीकाकार द्वारा प्रयुक्त ओलि शब्द का हम यही अर्थ मान सकते हैं। वसन्ततिलका में विभिन्न स्थलों पर तन्त्र, ज्ञान, मन्त्र और गुह्य नामक तन्त्रशास्त्र की इन चारों परम्पराओं का संक्षेप में किस प्रकार वर्णन किया

---

१. निजानन्द, निरानन्द, परानन्द, ब्रह्मानन्द, महानन्द और चिदानन्द नामक छः आनन्दों का एवं इनके समष्टीभूत जगदानन्द का प्रतिपादन अभिनवगुप्त ने तन्त्रसार (पृ० ३८-३९) और तन्त्रालोक (५।४४–५२) में किया है। इनमें कोई समानता प्रतीत नहीं होती।

२. ज्ञानोदयतन्त्र (पृ० ६) में इनके नाम त्वरित, बाष्प, विवर्च और विश्वस्थात् हैं। अन्यत्र योग, अनुयोग, महायोग और अतियोग नामक योग के चार अन्य प्रकारों का उल्लेख मिलता है। कृष्णयमारितन्त्र की टीका में इनका विशेष विवरण देखा जा सकता है।

३. ज्ञानोदयतन्त्र (पृ० ६ एवं १३) में भी चार संख्या के अतिरिक्त तीन और पाँच संख्या वाले पदार्थ परिगणित हैं। त्रिपुरा सम्प्रदाय के उत्तरषट्क और नित्याषोडशिकार्णव में तीन संख्या, योगिनीहृदय, संकेतपद्धति आदि में चार संख्या तथा महार्थमंजरी जैसे क्रम सम्प्रदाय के ग्रन्थों में पाँच संख्या वाले पदार्थों की प्रधानता है।

है, इसको टीकाकार ने स्थान-स्थान पर स्पष्ट कर दिया है। शब्द-सूची की सहायता से इन स्थलों को देखा जा सकता है। इसीलिये टीकाकार ने (पृ० ६०) कहा है कि सभी तन्त्रों के अर्थ को यहाँ संगृहीत कर दिया गया है। इन विषयों को जानने के लिये किसी अन्य ग्रन्थ की आवश्यकता नहीं है। यह ग्रन्थ अपने में परिपूर्ण है।

गुह्य परम्परा का यहाँ विशेष रूप से वर्णन हुआ है। इसीलिये टीकाकार (पृ० ८८) ने बताया है कि मृदु इन्द्रिय वाले सत्त्वों के लिये यह ग्रन्थ नहीं लिखा गया है। तीक्ष्णेन्द्रिय पुद्गलों (सत्त्वों) का ही यहाँ अधिकार माना गया है। ऐसे सत्त्वों के लिये यहाँ वीर[1] शब्द प्रयुक्त हुआ है। मन्त्रशास्त्र की विशेषता को बताते हुए अद्वयवज्र (पृ० २१) भी इसमें तीक्ष्णेन्द्रिय सत्त्वों का ही अधिकार मानते हैं।



१. शाक्त तन्त्र योगिनीहृदय की टीका दीपिका (पृ० ८२, ३७८) में परापञ्चाशिका के प्रमाण से इदन्ता रूपी शत्रु का अहन्ता में विलय करने वाले, अर्थात् सर्वत्र अद्वय भाव को देखने वाले को 'वीर' कहा गया है।

हूँकारोऽनाहतं बीजं स्रवत्तुषारसन्निभम् ।
वसन्त इति विख्यातो देहिनां हृदिनन्दनः ।।

वडवानलरूपा तु वाराही तिलका स्मृता ।
कर्ममारुतनिर्धूता ज्वलन्ती नाभिमण्डले ।।

वसन्तं प्राप्य सन्तुष्टा समापत्त्या व्यवस्थिता ।
एष श्रीहेरुको वीरो वसन्ततिलका स्मृता ।।

विषयसूची

परिशिष्टम्

वसन्ततिलका

रहस्यदीपिकाख्यव्याख्यासहिता

वसन्ततिलकायां

प्रथमो निर्देशः

ॐ नमः [1]श्रीवज्रसत्त्वाय ।

समविषममहासुखसप्तत्रिंशन्महाबोधि[2]पक्षस्थं[3]धर्मस्वभावं[4]स्थितं[5] स्वाङ्गनाडी[6]चतुश्चक्रमुख्यं [7]सपञ्चस्वरद्वादश[8]मात्राश्च(च)तुस्त्रिंशदाभूषित-व्यञ्जनं[9] कायवाक्चित्त[10]भेदस्थितानां [11]च पीठादिकानां[12]दशानां [13]भुवामीश्वरं सर्वगं[14]सर्वजन्तु[15]स्वहृन्मध्यगं व्योमरूपं परं[16]शान्तम् ॥१॥

रहस्यदीपिकाटीका

ॐ[17]नमः श्रीवज्रडाकाय

षट्त्रिंशत्संविदाऽभिन्न[18]स्वभावं हेरुकं[19] प्रभुम् ।
प्रणम्य विवरिष्यामि वसन्ततिलकां क्रमात् ॥

चतुर्थमहामुद्रासिद्धिप्राप्तः[20] स्वपरार्थसम्पादनबद्धकक्षो[21] विचित्राद्भुतयोगिनी-तन्त्रोपदिष्ट-विशिष्टचरित्र[22]संदर्शनावर्जितविनेयलौकिकलोकोत्तरचमत्कारविकसत्स्व-

---

१. 'श्री' नास्ति-ङ. छ ज. ञ. भो. । इतः परम्-ॐ नमो भगवते वसन्ततिलकाय-च. ज., श्रीगणेशाय नमः, ॐ नमः श्रीसद्गुरुचरणारविन्देभ्यः-झ., नमः सद्गुरुचरणारविन्देभ्यः । ॐ नमः श्रीहेरुकाय-ञ., भगवते चक्रसंवराय नमः-भो. । २. पक्षाष्ट-ग., पाक्षिक-च., पक्षं-झ.ञ. ढ. । ३. स्कन्धधर्म-क. ख. घ. ङ. छ., 'धर्म' नास्ति-ग. । ४. धर्मभाव-झ. ञ. । ५. स्थित-क. ख. ग. घ. ङ. छ. । ६. त्रिचक्र-ञ., चक्राख्यं-ग. । ७. सप्तपञ्च-ञ. ड. । ८. द्वादशस्वरमा-क. ख. ग. घ ङ. छ. ज., मुख्यं स्वरचतुर्दशव्यञ्जनविभूषितं-च. । ९. व्यञ्जनका-क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. ज. । १०. चित्तचक्रप्रभेदे स्थि-क., प्रभेद-ख. ग. घ. ङ. छ. ढ., भेदसंस्थि-च. भो. । ११. 'च' नास्ति-घ. च. झ. । १२. नां चतुर्विंशतीनां दशानां-च. ज. । १३. भुवनानां च. ज. । १४. सर्वजं चैव-च. ज., सर्वजगत्-भो. । १५. सर्वहृन्म-च. ज., मध्ये-ग., मध्यसंगतं-च. । १६. सर्वजन्तुस्वदेहात्मयोगं व्योमरूपं परिशान्तं-ञ. । १७. नमः सर्वबुद्धबोधिसत्त्वेभ्यः-क., ॐ नमो बुद्धाय । नमो धर्माय । नमः संघाय-च. । १८. भिन्नं-ग. ङ. छ. । १९. रुकप्र-ग. घ. ङ. छ. । २०. प्राप्तस्व-ग. छ. । २१. क्ष्यो-क. ख. ग. घ. ङ. च. ज । २२. चरित-क. ।

शेमुषीप्रतिभासमानविविधोपदेशो द्वितीयश्रीहेरुक इव प्रत्यक्षदृश्यः स्वयं प्रतिभासमानमाम्नायविशेषं तदर्थिभ्यः प्रकाशनाशयेन कृतोत्साहः **श्रीकृष्णपादनाममहाचार्य** इमामध्यात्मक्रमेण भगवतः श्रीहेरुकस्य साधनोपायिकां वसन्ततिलकाभिधानामारिप्सुः स्वरूपानुस्मृतये स्वरूपाव्यतिरिक्तं[1] तमेव स्वाभा[2]युक्तं नमस्कर्तुं समविषमेत्यादिना साधनोपायिकायां(याः) पीठिकां रचितवान् ।

तत्रादौ तावदभिधाना[3]दीन्युच्यन्ते । वसन्ततिलकेत्यभिधानम्, निष्पन्नक्रमोऽभिधेयः, वाच्यवाचकलक्षणः सम्बन्धः शब्दार्थयोः, सामान्यलक्षणतः सुखावबोधः प्रयोजनम् । सम्यग्ज्ञानपूर्विका महामुद्रासिद्धिपुरस्सरसकलजगदर्थसम्पत्तिस्तत्प्रयोजनमिति संक्षेपः ।

तं श्रीहेरुकाभिधानं प्रणम्य वसन्ततिलकां वक्ष्य इति सम्बन्धः । कीदृशम् ? **समविषमेत्यादि** । समा उपायस्वभावाः, विषमाः प्रज्ञास्वभावाः, महासौख्यास्तदद्वयरूपिणो य[4] एते सप्तत्रिंशद्बोधिपक्षाः पञ्चमार्ग[5]संगृहीता[6][:] कायानुस्मृत्युपस्थानादारभ्य सम्यक्समाधिपर्यन्ताः स्वभावा यस्य, तेनैव रूपेण यः स्थितः, तम्[7] । तत्र समा द्वात्रिंशतिधर्माः, लौकिकमार्गसंगृहीतत्वात् । विषमाः पञ्चदशधर्माः, लोकोत्तरमार्गसंगृहीतत्वात् । अथवा समाः सव्यनाडीप्रभवाः संविदः, विषमा वामनाडीप्रभवाः । चक्षुरादि[षड्]विज्ञानानां प्रत्येकमा[त्येकं चतुरा]नन्दादिभेदाश्च(च्च)तुर्विंशतिरानन्दाः, चक्रचतुष्टये[8] प्रवेशादित्रय[प्रवेश-स्थिति-उत्थापन]क्रमेणानन्दादित्रयभेदाद् द्वादशानन्दाः, सर्वाङ्गलयादेकः । एवं सप्तत्रिंशद्बोधिपक्षधर्मस्वभावस्थितो भगवान् सहजैकमूर्तिः । बहिरपि [9]तावतीभिर्डाकिनीभिरु(र्यु)क्तः ।

तदेव चक्रेश्वरत्वं [10]प्रतिपादयितुमाह —**स्वाङ्गनाडीत्यादि** । स्वेष्वङ्गेष्वष्टसु कायद्वारेषु या एता नाड्यो दर्शन-श्रवण-मोदनास्वादन-स्पर्शनव्यापाराः [11]काकास्यादिरूपाः, तथा चत्वारि चक्राणि निर्माणादीनि नाभिहृत्कण्ठमूर्द्धस्थानि यथाक्रमं निर्माणधर्मसंभोगस्वभावकायस्वभावानि, तेषु ज्ञानचित्तवाक्कायचक्रात्मकेषु मुख्यं संवृतिपरमार्थाभिन्नबोधिरूपहृदयरूपतया स्वामिभूतम् ।

मन्त्रमूर्तित्वेनापि तत्स्वभावमाह—**सपञ्चस्वरद्वादशमात्राचतुस्त्रिंशदाभूषितव्यञ्जनम्**[12] । पञ्चस्वरपदस्यैकशेषाद् दश संपद्यन्ते । तत्र धर्मचक्र[13]मध्ये दिग्दलेषु चतुर्षु च यथा[क्रमं] हूँ ॐ आः [14]ह्रीं खं इति स्वरोपलक्षितानां तथागतबीजानां न्यासात्

---

१. रिक्तमेव-क. । २. स्वाभाव-च. । ३. धानान्युच्यन्ते-क. । ४. यत्र ते-ग. छ. । ५. र्गगृही-ग. ङ. छ । ६. हीते-ग. छ., हीतका-ङ. च. । ७. 'तम्' नास्ति-ङ. छ. । ८. चतुष्पथे-ख. घ. छ., चतुष्टयप्र-क. । ९ यावती-ख. घ. । १०. त्वमधिगम-भो. । ११. बाह्यकाकास्या-भो. । १२. व्यञ्जनपञ्च घ. छ. । १३. चक्रे-क. । १४. जां-क, जीं-च. ।

स्कन्धविशुद्धिः, संभोगचक्रेऽपि ओं आ ई ऊ ऐ[1] बीजानां पञ्चानां न्यासात् पञ्चधातुविशुद्धिः, तथा द्वादशमात्रा[2] नपुंसकचतुष्टयवर्जिता वामायामधोमुखास्ता एव दक्षिणस्यामूर्द्ध(र्ध्व)मुखाश्चतुर्विंशत्या[3] ककारादिभिरूर्ध्वाधोमुखैर्मकारस्वभावानुस्वाररञ्जितैः[4] परिवृताः। तथा ता एव नपुंसकसहिताः षोडशद्विगुणीभूता महासुखचक्रे [5]ऊर्ध्वाधोऽक्षरवर्जिताः। कादयश्च द्वात्रिंशद्द्विगुणीभूता न्नि(नि)र्माणचक्रे। चतुर्विंशतिनाडीन्यासपक्षे य र ल वा धर्मचक्रकोणेषु ऊष्माणस्तद्बहि[ः] भाजनरूपाः स्थिताः। चतुर्णामपि चक्राणां मध्ये स्वराद्य-मेघनाद-ब्रह्म-अनाहतना(हता)क्षराणि। रेफो[6] जालन्धरे [7]क्षकारोऽधोद्वाराग्र इति। एतैर्भूषितं[8] मन्त्रोलिरूपम्।

दशभूमीश्वरत्वमस्य प्रतिपादयितुमाह—कायवाक्चित्तभेदस्थितानां च पीठादिकानां दशानां भुवामीश्वरम्। अन्यच्च[9] कीदृशं प्रणम्य वसन्ततिलकां वक्ष्ये—प्रमुदितादि[10]स्वभावा या एता दश बोधिसत्त्वभूमयः पीठाद्याः कायादिचक्रेषु विलोमेन भेदेन[11] स्थिताः, शिरआदिस्थानेष्वभेद्यादिरूपा नाड्यस्तासामीश्वरः प्रभुः, तम्। इह बोधिसत्त्वभूमयो दश[12], यासु[13] बोधिसत्त्वः क्लेशज्ञेयावरणं प्रदहित्वा सत्यं[14] पश्यति। अविकल्पधातुसाक्षात्कारात्[15] त्रिकल्पा[16] संख्येय[17] प्राप्यसंबोधिश्च भवति,

> चित्तोत्पादा(दो)धिमोक्षोऽसौ शुद्धाध्या[18]शयिकोऽपरः।
> वैपाक्यो[19] भूमिषु मतस्तथाव[20]रणवर्जितः॥ (म० सू० ४.२)

इति वचनात्। इह तु पुल्लीरादिसंकेतितदशभूमिसंचारसाध्यलयादि[21]स्वभावकायत्रया[22]धिगमप्रधानस्वसंवेद्यश्रीमहासुखापरपर्यायसम्यक्संबोधिरूपश्रीहेरुकत्वसाक्षात्कार आशुतरं च निष्पद्यत इहैव जन्मनीति प्रज्ञापारमितादर्शनाद् विशेषः। अतः पीठादिभूमीनां[23] धर्मकायादिरूपेण [24]सहजस्यैवाधिपत्याद् दशभूमीश्वरत्वं भगवतः प्रतिपादितं भवति। पीठादीनां[25] भूमीनां च निरुक्तिः सामानाधिकरण्यं च उत्तरत्र व्याख्यास्यते।

---

१. ए–घ. च.। २. मात्रान्–ख. घ. छ। ३. विंशत्ये–च., त्या बीजा ज्ञात्वा–छ., विंशतिस्थानैः–भो.। ४. रञ्जितैः–क.। ५. ऊर्ध्वाधोमय–भो.। ६. रेफा–क.। ७. ककारो–ख. घ. छ.। ८. भूषितमन्त्रालि–ख. घ. छ. भो.। ९. न्यत् को–ख. घ. च. छ.। १०. 'दि' नास्ति–क. ख.। ११. भेदतः–ख. घ.। १२. दशधा–ख. घ.। १३. धातु–छ.। १४. सम्प–क. ग. ङ.। १५. काराभत्रि–ख. घ. च. छ.। १६. कल्पो–क.। १७. ख्येयं–क. ख. ग. ङ.। १८. ध्याश–छ.। १९. विपाक्षो–ख., क्ष्यो–घ. च. छ.। २०. चरण–क. ख. ग. घ. ङ.। २१. याधि–च.। २२. सिगमप्र–क, गमप्रध्यान–घ.। २३. भूमी धर्म–ख., भूमिधर्म–छ.। २४. सह यस्यै–क. ख. च. छ.। २५. नां च भू–ख. छ.।

[1]श्रीहेरुकं परमनिर्वृतितत्त्वरूपं
प्रोद्यद्वसन्ततिलका[2]स्फरणोज्ज्वलाभम् ।

अन्यच्च कीदृशम्—सर्वगम्[3] । स्कन्धादयः सर्वे, तत्र धर्मतया स्थितत्वात् सर्वगं[4] धर्मधातुम् ।

सर्वजन्तुस्वहृन्मध्यगमिति । पशुपक्षिसरीसृपमनुजादयः सर्वजन्तवः, तेषां[5] स्वं[6]हृन्मध्यग[7](गं) हृत्पद्मसंपुट[8]सन्निविष्टकर्णिकान्तरस्थितपृथिव्यादिचतुर्धातुस्वभावो-र्ध्वाधः[9]सूर्येन्दुमण्डलमध्यग[10]वालाग्रशतसहस्रभागप्रमाणसूक्ष्मातिसूक्ष्मधर्मधातुस्वभाव - सर्वचक्रडाकिनीवीराद्य(ति ?)भिन्नरूपेण[11] स्थितम् । उक्तं च—

हृदये वर्तते[12] नित्यं बिन्दुरेको ह्यनक्षरः ।
तं च भावयतां पुंसां ज्ञानमुत्पद्यते परम् ॥ इति,
संपुटं संपुटीभावे[13] बिन्दुरेकः प्रकाशते[14] ।
असंपुटपुटो[15] भूत्वा बिन्दुर्निर्बिन्दुतां व्रजेत् ॥ इति वचनात् ।

अन्यच्च कीदृशम्—व्योमरूपं धर्मकायत्वात् । पञ्चव्योमरूपं वा त्रिवृतादिनाडी-स्पर्शगम्यत्वात् । उक्तं च—

भगमध्ये यदाकाशं पञ्चव्योमैरलङ्कृतम् ।
कर्णिकाकेशरैर्युक्तं दलाष्टकविभूषितम् ॥ इत्यादि ।

परं शान्तमित्यादि । [16]पारमार्थिकबोधिचित्तरूपत्वात् परम्, निष्प्रपञ्चत्वात् शान्तम् ॥ १ ॥

[17]श्रीहेरुकमित्यादिना[18] विवृतिसंवृतिरूप[19]बोधिचित्तस्वरूपतां सम्यक् प्रति-पादयितुमाह—श्रीहेरुकम् । तन्त्रोक्तचतुर्विमोक्षात्मकम् । परमनिर्वृतितत्त्वं सहजैकधर्म-कायः, तद्रूपं(पः) तन्मयस्तम् । तथा प्रोद्यन्ती निर्माणादुत्तिष्ठन्ती येयं वाराही-स्वभावा भाविना वसन्तेनाभिज्ञादिकुसुमोद्भवयोगेन[20] हेरुकेण संयोज्यमाना तिलकेव तिलका प्रकाशमयी ज्ञानाग्निज्वाला स्कन्धधात्वायतनेन्धनदाहिका, तस्या यदेतत् स्फरणं [21]मध्यमार्गेणोर्ध्वं त्रिचक्रप्रवृत्तिः, तेनोज्ज्वला तच्छायास्फुरिता भा प्रभा

---

१. 'श्री' नास्ति–च. ज. । २. फुरणो–छ., स्फुर-ज. ड. । ३-४. सर्वाङ्गं–च । ५. एषां–छ. । ६. 'हृन्मध्यग' नास्ति–घ. । ७. ध्यगे–च. । ८. पुटे–च. । ९. भावोऽग्रः–छ. । १०. ध्यगं–छ. । ११. तिलकस्वभावेन–भो. । १२. वर्तन्ते·ख. घ. । १३. भाव–ख. घ. । १४. शन्ते–ख., शनः–घ. । १५. पुटयुतो–च. । १६. परमा–क. ख. छ. । १७. तथा श्री–ख. घ. च. छ. । १८. दिविवृ–ख. घ. छ. । १९. रूपं वा चित्त–ख. । २०. योग्येन–ख. घ. च. छ । २१. स्फुरणं–छ. ।

कायत्रयप्रसरसंचितं[1] नाडिचक्र[2]-
नाथं प्रणम्य जगतः स्वपरार्थसौख्यम्[3] ॥२॥

यस्य तम्। तथा कायवाक्चित्तकुलत्रयरूपस्य रसनादि[4]नाडीत्रयस्य योऽसौ प्रसरः पुल्लीरादिस्थानेषु निर्माणादिषु प्रसरः, तस्य योऽसौ संचयश्चतुर्विंशति-विंशत्यधिकशत-एकविंशतिसहस्र-द्वासप्ततिसहस्रसंख्या, तेन संख्यातं यदेतान्नाडीचक्रमनन्तवीर[5](रि)णी-स्वभावम्, तत्र नाथं संवृतिबोधिचित्तरूपेण प्रभुम्। उक्तं च—

पाद-गुह्य-गुद-नाभि-हृत्-शिरोधातुमण्डलगमेरुपृष्ठगम्।
नाडिकासमयवज्रपद्मगं त्वां नमाम्युभयचित्तहेरुकम्॥

गुह्यकोकनदकर्णिकान्तरव्योमपद्मकमहानभःस्थितम्।
धर्मधातुतिलकाद्वयाद्वयं[6] त्वां नमामि सहजात्महेरुकम्॥

कालमेघपटलान्तरोच्छलद्विद्युदुग्रपटलाधिकत्विषम्।
सत्त्वभाजनयुगप्रदाहिकां[7] त्वां नमामि जगदम्ब[8] हेरुकीम्॥

नाभिचक्रकुह[9]राम्बुराशितो वज्रवारिज[10]समाजसंभवाम्।
सौधसाररस[11]पानलम्पटां त्वां नमामि वडवानलत्विषम्॥ इत्यादि।

धर्मकायस्वरूपं[12]प्रणम्येतराभ्यामपि नमस्कर्तुमाह - जगतः स्वपरार्थसौख्यमिति। जगतस्त्रैधातुकस्य स्वसंवेद्यं सौख्यं स्वसौख्यम्[13], कुलिशमुखादस्फ[14]रणावस्थायां संभोगकायस्वरूपम्। तदन्यस्यां[15] परार्थसौख्यं निर्माणकायस्वभावम्। योऽयं जगदुत्पादः स एव तथागतोत्पादः, तद्रूपत्वाज्जगतः[16]। उक्तं च संपुटतिलके—

---

१. संचित–क. ख. घ. ङ. च. छ. ज., संचय–टी.। २. चक्रं–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. ज.। ३. च. ज. मातृकयोस्तु—

हेरुकं महासंवरं ज्योतीरूपं तत्त्वरूपं वसन्ततिलकाख्यकम्।
नाडीचक्रनाथं प्रणम्य जगतः स्वपरार्थसौख्यम्॥ इति पाठः।

४. 'नाडी' नास्ति–ख. छ.। ५. वीरणा–ख. घ. छ., वारणी–च.। ६. द्वयोद्वयं–ख. घ. छ.। ७. दायिकां–छ.। ८. दर्थहे–क. ख. ग. घ. ङ. च.। ९. कहला–ख.। १०. समोक्ष–ख. घ. छ.। ११. रसयोनिलं–क.। १२. प्रणम्येतराभ्योऽपि–ख., क. मातृकापाठस्त्वस्पष्टः। १३. 'स्वसौख्यं' नास्ति–ख. घ. छ.। १४. स्थूणा–ख., स्फुर–च. छ.। १५. न्यस्या–क. ख.। १६. रूपत्वं जगतः–क.।

वसन्ततिलकां[1] वक्ष्ये योगपीठविनिर्गताम्[2] ।
[3]सबाह्याध्यात्मरूपेण[4] श्रीच[5]क्रसंवरं[6] क्रमात् ।।३।।

सर्वडाकिनीमयो(यं) रक्तं सर्ववज्रसमुद्भवम् ।
पद्मनर्तेश्वरः ख्यातः [7]पद्मप्रकाशयोगतः ।
वज्रसूर्यः परं ख्यातः [8]स्फुरदूर्द्धं(र्ध्वं)प्रभास्वरम्(रः) ।।

श्रीवज्रडाकेऽपि—

रोचते [9]दीप्यते यत्तन्महावैरोचनो मुनिः ।
विरमान्त[10]परमाश्वे[11](श्वो)ऽसौ वायूनां[12] विश्वसंभवात् ।।
अत एव वाराह्या समालिङ्गितविग्रहम्, पूर्वोक्तेनैव न्यायेनेति वाक्यशेषः ।। २ ।।

[**श्रीहेरुकाभिधानमिति** । अनामानमपि भगवन्तं संवृत्या श्रीहेरुक इत्यभिधानेन प्रतिपाद्यम् । हूँकारेण प्रतिरवसदृशेन नादेन रम्यं मनोहरम् । यतो[13]या वसन्ततिलका स एव नादः, तेन ध्वनिनोद्घाटितो बिन्दुर्भगवानत एव नादबिन्दुसंघट्ट एव तयोः समापत्ति[14]रुत्पत्ति[:], क्रमातीतत्वादुत्पन्न[15]क्रमस्वभावं प्रणम्येति पूर्वेण सम्बन्धः ।। २ ।।]

कीदृशीं **वसन्ततिलकां वक्ष्ये—योगपीठविनिर्गताम्** । चत्वारि योगपीठानि आत्म-पर-मन्त्र-तत्त्वपीठाख्यानि यथाक्रमं नाभिहृत्कण्ठशिरांसि, तेभ्यो विनिर्गतां गमनागमनयोगेन प्रवृत्ताम् । [16]तद्वाचिका साधनोपायिकाऽपि वसन्ततिलकेत्युच्यते, सीताहरणकाव्यवत् । कुत इयं समुद्धृतेत्याह—**श्रीचक्रसंवरं** नाम तन्त्रम्, तत्र यो **बाह्याध्यात्मलक्षणस्तद्वदुत्पन्ना[17]नुत्पन्नाख्यः क्रमो** मार्गस्तत्त्व(त्स्व)**रूपेण वक्ष्ये**, इति पूर्वेण सम्बन्धः । तथाह्युत्पत्तिक्रमे सप्तत्रिंशदात्मकं [18]मण्डलचक्रम्, निष्पन्नक्रमे तु महासुखे तत्संख्यं नाडीचक्रम्, एवमन्यदप्यूह्यम् ।। ३ ।।

---

१. तिलकं–क. ख. घ. च. ज., वसन्ततत्त्वं–ञ. ढ. । २. तम्–च. ज. । ३. तद्–च. ज. । ४. रूपं च–ज., विधिना–भो. । ५. हेरुकादि यथा–च. ज., श्रीचक्रमूर्ति-प्रक्रमात्–ज. ढ. । ६. संवरं–घ. । ७. पद्मप्रकोण–ख., पद्मेषुकाश–घ. । ८. स्फुरेद्–क., स्फरद्–छ. । ९. दीयते–क, दीप्येन–घ. १०. विरमान्ते–क. । ११. परमाश्चासौ–क. ख. घ., परमाश्वासौ–छ. । १२. वायूनां–क., वायुता–ख. । १३. यतो यो–क. छ, यत्तद्यो–ख.घ. । १४. 'उत्पत्तिः' नास्ति–च. । १५. त्वादित्यत्र–छ. । १६. एतद्वा–च. । १७. दुत्पन्नाख्यः–घ. छ. । १८. त्मकमण्डल–घ. ।

श्रीवज्रडाकिनी[1] सिद्धा[2] स्वदेहे संव्यवस्थिता[3] ।
अतिस्वल्परुचीनां तु स्पष्टावगमहेतुना[4] ॥४॥

कृत्रिमं मण्डलं त्यक्त्वा कृत्रिमं होमकर्म च ।
कृत्रिमां[5] भावनां[6] [7]चापि कृत्रिमं जपमेव च ॥५॥

कृत्रिमं सर्वमित्यादि स्वभावयोगरूपतः ।
कृत्रिमा[8] प्रक्रिया[9] बाह्या[10] स्वरूपप्रतिपत्तये ।

प्रयोजनमाह—**श्रीवज्रडाकिनीत्यादि** । येयं भगवती वज्रडाकिनी, वज्रं[11] संवरमनाहताक्षरद्वारस्थमनाहतं खगमुखैकरसं स्रवत्सुधं[12] दुग्धाब्धि[13]तरङ्गभङ्गान् मुञ्चन्तम्, डयति[14] गच्छतीति वज्रडाकिनी विद्युच्छटासहस्रवद्[15]दीपिताङ्गी भगवती ज्ञानाग्निप्रभा वाराही, [16]सा सिद्धा धर्मतारूपत्वात् प्रकृत्यैव निष्पन्ना, सर्वैरेव वेद्यत्वात् । किं बहिः स्थिता ? नेत्याह[17]—स्वदेहे स्कन्धादिमये काये, व्यवस्थिता तिष्ठति, प्रागुक्तेन क्रमेण तत एव तस्या उपलब्धेः । ततश्च [18]विस्तरतन्त्रमवगाहितुमस(श)क्तानामति-स्वल्परुचीनां [19]पुद्गलानां [20]स्पष्टावगमस्तदवबोधो यथा स्यादित्यतो हेतोर्वक्ष्ये, स्वल्प-ग्रन्थेन परिपूर्णनिष्पन्नक्रमावबोधायेत्यर्थः ॥ ४ ॥

इह निष्पन्नक्रमारूढो योगीन्द्रो मण्डलहोमभावनाजापान् किं कुर्यात् ? नेत्याह—**कृत्रिमे(ममि)त्यादि** । य एते बहिरुत्पत्तिक्रमे वा प्रतिमादयः, सर्वे[21] ते कल्पितत्वाद् बाह्योपकरणसाध्यत्वाच्च कृत्रिमाः कृतकाः, सामग्रीविनाशाद् विनाशधर्मिणो घटा-दिवत् । ततश्च किं तैर्वृथा विक्षेपकारिभिः कृतैर्भावितैर्वेति भावः । यद्येवं किमिति

---

१. नीं-क. ख., श्रीमहात्रिपुरे-ञ. ढ. । २. द्धां-क. ख. च. छ., द्ध-ज. । ३. स्थितं-च. ज., ताम्-क. ख. ग. घ. ङ. छ. । ४. हेतु च-क. ख. ग. घ. ङ., हेतवे-टी. । ५. कृत्रिमं-ग. ज., मा-क. ख. घ. ङ. छ. । ६. भावना-क. ख. ग. घ. ङ. छ. । ७. वापि-क. ख. ग. घ. ङ. छ. । ८. मां-क. ङ., मं-च. ज. । ९. प्रतिमा-क. ख. ग. घ. छ. ञ., मां-ङ. च. । १०. बाह्यां-क. ङ. च., ह्यं-ग. ज. । ११. चक्रं-क., वज्रसं-छ, 'संवरम्' नास्ति-भो. । १२. सुवा-ख., सुधा-घ. । १३. दुग्धार्चि-क. ख. घ. छ. । १४. त्रयमभि ग-ख. घ. । १५. दीप्ता-च. छ. । १६. सा आभा सिद्धा-भो. । १७. त्यादि-क. । १८. स्तरेण तन्त्र-छ, स्तरे तत्र-ख. । १९. पुङ्गला क. घ. च. । २०. पुष्टाव-ख. छ. । २१. सर्व ए[व] ते-ख. घ. छ. ।

स्वरूपप्रतिपत्तौ[1] तु[2] प्रक्रिया नैव कारणम् ।
यथा पारार्थिभिः कैश्चित् [3]कोलो वा सुप्रयुज्यते ।
त्यज्यते पारमागम्य प्रक्रियापि तथैव सा[4] ॥७॥

भगवता तदादिष्टमित्याशङ्क्याह—**कृत्रिमा प्रक्रियेत्यादि**। येयं प्रागुक्ता मण्डलादिप्रक्रिया कृत्रिमापि सती सा स्वरूपस्य स्वभावसिद्धस्य मण्डलादेः प्रतिपत्तयेऽवगतये देशिता, न सैव फलरूपा। अत एव स्वभावरूपं सहजसिद्धं मण्डलादि वक्ष्यमाणं तद्योगमाश्रित्य सर्वं बाह्यं कृत्रिममेव। तेन मण्डलं काये भावनीयं [5]चेत्यभिप्रायः। मण्डलाद्यधिमुक्ताः प्रवर्तन्तां तावत्तत्कारणभावनायां पश्चात्तद्द्वारेणैव[6] ते स्वभावसिद्धानीति तानि सन्ति स्वभावसिद्धानि तानीति बाह्याभिनिवेशं त्याजयित्वाऽध्यात्मे[7]ऽवतार्यन्त इति तद्देशनाऽपि प्रयोजनवती ॥ ५-६ ॥

दृष्टान्तमाह—**यथा पारार्थिभिरित्यादिना**। यथा समुद्रादेः पारे प्राप्त्यर्थिनो[8] नौकायानं [9]तरण्डमादौ प्रयत्नत आश्रयन्ते, पारं प्राप्य तृणवत् त्यजन्ति, तथैव बाह्यमण्डलमासाद्याध्यात्मिकं यदाप्नुवन्ति, तत्प्राप्य बाह्यं त्यजन्तीत्यर्थः, "उपेये सति ये हेयास्तानुपायान् प्रचक्षते"[10] इति वचनात्।

ये रत्नपुद्गलाः[11] [12]पूर्वाभ्यस्ता(स्त)कृत्रिममण्डलादयस्ते झटित्येवाकृत्रिममण्डलाधिमुक्तिका [13]अकृत्रिममासादयन्त्येवेति विशेषः। तादृग्गोत्रमतिदुर्लभम्। निष्पन्नक्रमे दुरभि[14]ग्रहद्वारश्चन्दनाद्यैर्निमित्तविशेषैश्च [15]तद्गोत्रको ज्ञायते,

धूमेन ज्ञायते वह्निः सलिलं तु बलाकया ।
निमित्तैर्ज्ञायते गोत्रं बोधिसत्त्वस्य धीमतः[16] ॥ (त० प०, पृ० २३०)

इति वचनात् ॥ ७ ॥

---

१. पत्त्यै-घ, ङ. छ. झ. ञ. । २. च-च. ज. । ३. कालो-क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. ज. । ४. च-ञ. ढ. । ५. वेत्य-ख. घ. छ. । ६. तत्त्वद्वारेणैव-भो. । ७. त्मे व्यव-ख. घ. छ । ८. र्थिना-ख. घ. छ. । ९. तरङ्ग-ख. घ. छ. । १०. प्रवक्षते-ख. । ११. पुङ्गला-क ख. छ. । १२. पूर्वन्यस्ता-ख., पूर्वात्मन्य-घ. । १३. सुकृत्रि-ख. घ. । १४. भिशरद्वार-ख. घ. छ. । १५. भग्नोत्र-ख. । १६. धीमता-छ. ।

यन्मण्डलादिकर्माणि कुर्वन्ति कृत्रिमाशयाः[1] ।
[2]सर्वं साधु न चासाधु तत्प्रयुक्तमपि स्फुटम्[3] ॥८॥

सकर्मप्रसरस्तन्त्रः[4] सद्वस्तुसंविदे[5] जिनैः ।
[6]शब्दज्ञानाय तच्छास्त्र[7]मृषिभिः क्रियते[8] यथा ॥९॥

इह तावत् स्वरूपपरिज्ञानमेव बोधिः । भाव्यमा[न]मसत्यमपि स्फुटीभवतीति स्फुटास्फुटेन बोधिहेतू[9] भवत इत्याशङ्क्याह—यन्मण्डलादीत्यादि । कृत्रिमाशयाः कल्पितयोगिनो[10] यन्मण्डलादिकं प्रागुक्तं लिखनेन मनसा वा कुर्वन्ति, तत्सर्वं साध्वसाधु वा भवतु[11], तद्भाव्यमानं स्फुटं तावद्भवति, [12]तत् तत्त्वमिति वाक्यशेषः ।

"मण्डूकोऽपि[13] जटाभारभासुरो भस्मधूसरः ।
शुक्लयज्ञोपवीतश्च स्कन्धार्पि(र्पि)तकमण्डलुः ॥ (आ० मा० ११८)

भाव्यते यद्यदेवेह पौनःपुन्येन बालिशैः ।
तत्तदेव [14]पुरः ख्याति" (आ० मा० ५७)

इति वचनात् ॥ ८ ॥

मण्डलादिवत् कर्मप्रसरोऽपि न तत्त्वं स्यादित्याशङ्क्याह—सकर्मप्रसर इत्यादि । यदपि भगवता नानाप्रयाससाध्यं कर्मप्रसरयुक्तं तन्त्रं देशितम्, न[15] तत् [16]तत्त्वाभिप्रायेणापि तु सद्वस्तुनः सहजस्य संविदेऽनुभूतये, यतः कर्मप्रसरसाधनार्थं ते भावनायां प्रवर्तमानास्तन्मुखेनैव तत्संस्कारतिरस्कारात् स्वभावसिद्धधर्मतात्मकपरमाकाशरूपे सहजे प्रवेश्यन्त इत्याभिप्रायिकी तद्वत् तत्तन्त्रदेशना, न[17] तु तदनर्थकत्वमिति । दृष्टान्तमाह—शब्दज्ञानायेति । यथा ऋषिभिर्बाह्यैः शब्दमात्रपरिज्ञानाय तच्छास्त्रं तच्छब्दशास्त्रं क्रियते, न तु तत्करणे काचित् तत्त्वावगतिः, तथैव कर्मानुसारेण तदनुरूपवर्णसंस्थानानुगुणे[18] प्रक्रियां नटगायनवद् विदधति गोत्रमित्रप्राक्पुण्योपचय-

---

१. शया–क. ख. घ. ङ. च. छ. ज. झ, श्रया–ग. । २. स च–च. ज., सर्वसा–झ. । ३. स्फुटाः–च., टः–ज. । ४. स कर्मप्रसरस्तत्र–भो. । ५. दैर्जिनैः–ज., दे शिवम्–ञ. ङ. । ६. सर्वज्ञा–च. ज. ञ. । ७. स्त्रस्मृतिभिः–क. ख. घ. ङ. च. छ., स्त्रः स्मृतिभिः–ग. । ८. देवकर्म यथा–घ. ङ. । ९. हेतु–घ. च. । १०. योगि यन्म–ख. । ११. भवन्तद्भा–ख. घ. छ. । १२. न तु–सार्वत्रिकः पाठः, गृहीतपाठस्तु भो. । १३. मञ्जुकस्तु–सा. । १४. पुनः–क. । १५. 'न' नास्ति–ख. घ. छ. । १६ तथाभिप्रा–ख. घ. छ. । १७. तन्त्र–ख. । १८. नुगुण्ये–क., गुण–घ., ण्यैः–च. ।

२

तथा कर्मानुसारेण कुर्वन्ति[१] प्रक्रियां नराः ।
यत्नेन क्लेशमुत्थाप्य [२]स्वचेतो विद्रवन्ति हि ॥१०॥

तस्मात् सर्वप्रकारेण[३] मण्डलादिविधिक्रियाः[४] ।
[५]विमोक्षावाहिका नैव [६]परमायासकारणम्[७] ॥११॥

सम्यक्[८]प्रणिधानाभावान्न निष्प्रपञ्चलाभिनो भवन्ति, ये तु गोत्रादिमन्तस्ते तत्साक्षात्कारिण एव स्युः । यदुक्तम्—

उदारधर्मश्रवणाद् [९]भद्रमित्रोपसेवनात् ।
गोत्रतश्चाधिकारोऽत्र भवेत् [१०]प्राक्पुण्यकारिणाम् ॥ इति ।
(आ० मा० २०४)

न केवलं तत्त्वं न[११] लभन्ते, यावत् कायक्लमथयोगात् स्वचेतोविक्षेपे भाव्यमानं[१२] कृत्रिमं तदपि नासादयन्तीत्युभयभ्रष्टत्वात् प्रतिपत्तिमूढा व्यामोहमापद्यन्ते, "सुखितस्य चित्तं समाधीयते । समाहितचित्तो तथाभूतं प्रजानाति" इति वचनात् । श्रीगुह्यसमाजेऽपि—

मन्त्रमूर्तिप्रयोगेण[१३] न बोधिर्न च भावना ॥
विचार्योक्तं[१४] समासेन कायवाक्चित्तलक्षणम् ।
भावयेद् बोधिसंयोगं समाधिं[१५] मन्त्रकल्पितम् ॥ (६।५-६)

इत्यादि, इत्याशङ्क्याह[१६]—यत्नेन क्लेशमुत्थाप्येत्यादि । सुगमम् ॥ ९-११ ॥

---

१. कुर्वन्तीः–क. ख. घ. ङ. छ. झ. । २ स्वरेतो–क. ख. ग. ङ. च. छ., स्वरतो–घ. । ३. प्रयत्नाङ्गी–क. ख. ग. घ. ङ. ज झ. ञ. ढ. । ४. क्रिया–क. ख. ग. घ. ड. झ. ञ. ड., क्रियां–च. ज. । ५. विवाच्य–च. ज. । ६. परं ह्य व्योम–क. ख. ग. घ. ङ. छ., परभव्याय कारणात्–च. ज. झ., परं ह व्यासकारणम्–ञ. ढ. । ७. मात्रकम्–भो. । ८. सन्निधान–छ. । ९. भवमि–छ. । १०. प्रोक्षण्य–ख. । ११. 'न' नास्ति–ख. छ. । १२. भाष्यमानं–ख. छ । १३. गे न–ख. च. छ. । १४. र्योत्थं–ख. च. । १५. माधिमन्त्र–ख. । १६. अमुमर्थमाह–भो. ।

[1]निर्विकल्पान्न[2] बुद्धत्वं सविकल्पाच्च नो[3] तथा[4]।
सुविशुद्धपरिज्ञानाद् भवेदेव[5] मनीषिणाम् ॥१२॥

केचिदाहुः—निर्विकल्पं समाधिमागम्य बुद्धत्वमधिगम्यते, शून्यताभावनावत्। तस्यां हि[6] सांक्लेशिक[7]वैयवदानिकविकल्पाभावात्। बुद्धत्वं च तन्मयमेव। उच्यते—निर्विकल्पान्न बुद्धत्वमिति। शून्यता हि तादृशी प्रतिभासमयरूपोच्छेदपक्षे। उभयपक्षोज्झितं[8] च बुद्धत्वमिति विरोधः। अथ चन्द्रवज्रादिक्रमोत्पन्नदेवतामूर्तिस्तथागताहङ्कारेण विशिष्टविकल्पसहितबुद्धत्वप्राप्तिहेतुर्भविष्यतीति तन्निराकरणार्थमाह—सविकल्पाच्च नो भवेत्। एवंविधादाकारविशेषाद् भावितादपि न बुद्धत्वम्, विशिष्टाविशिष्टयोर्विकल्पयोर्भेदाभावे संसारहेतुत्वात्। उक्तं च—

को हि भेदो विकल्पस्य शुभे वाऽप्यशुभेऽपि वा[9]।
नाधारभेदाद् भेदोऽस्ति वह्नेर्दाहकतां प्रति ॥ (आ० मा० ६-७)

इत्यादि। कुतस्तर्हि तत् स्यादित्याह—सुविशुद्धेत्यादि। स्कन्धादेः स्वभावपरिज्ञानात् तद् भवति। यतोऽमी स्कन्धादयः स्वभावत एव महासुखपर्यायसहजविशुद्धाः, तत एषां न[10] केनचिद्धर्मेण वियोगः संयोगो वा कर्तुं[11] पार्यते। आकाशस्यैं(स्ये)व कव्यादिभिः[12]। स्वभावपरिज्ञानमात्रमेव च[13] मुख्यं तत्कारणम्, [14]न त्वन्यदिति तत् कथितं भवति। तच्च निर्देष्टृगुर्वधीनम्। समयमात्रमन्यत्[15] ॥ १२ ॥

ननु परिज्ञानं परिज्ञातारं विना न संभवतीत्युभयस्मिन् कथमद्वयं तत्त्वं स्यादिति क्रियाकारकभावं निराकर्तुमाह—स्वरूपतः क्रिया नास्तीत्यादि। भावानां

---

१. झ. मातृकायामेतावत्पर्यन्तं मूलपाठो वर्तते, अतः परं टीकाऽस्ति। ट. ठ. ड. मातृकासु लिपिकप्रमादादेतावत्पर्यन्तं टीका लभ्यते रहस्यदीपिका, 'निर्विकल्पान्न' इत्यतः परं मूलपाठः प्रवर्तते। २. ल्पाच्च–च. ज. ढ., ल्पानुबद्धत्वं–ड.। ३. न–च. ज.। ४. भवेत्–टी., ५. भवेद् देवं मुनीश्वरम्–ज.। ६. 'हि' नास्ति च.। ७. वैद्यव–ख. च. छ.। ८. क्षोन्मितं–ख. छ.। ९. ततो वाप्यन्यतोऽपि वा–सार्वत्रिकः पाठः, गृहीतः पाठस्तु मुद्रितग्रन्थस्य। १०. 'न' नास्ति–क. ख.। ११. संधायते–ख. छ.। १२. कविभिः–ख. छ., वमित्यादिभिः–भो। १३. 'च' नास्ति–छ.। १४. तत्त्वन्य–क. ख.। १५. मन्यत्र–क. ख. घ.।

स्वरूपतः क्रिया [1]नास्ति कारकं[2] च स्वरूपतः ।
क्रियाकारकभावेन[3] त्यक्तं[4] वस्तु स्वरूपतः ॥१३॥

गमनागमनादिलक्षणा क्रिया कारकाद् गन्तुरभिन्ना भिन्ना [5]वेति पक्षद्वयम्। आद्ये कर्तैव, क्रिया न प्राप्नोति। द्वितीयस्मिन् कर्तुः किम् ? क्रियाऽभिन्नत्वात्। तयोः सम्बन्धस्तस्मिन् सति चेत्, तस्मिन्[6] तादात्म्ये भेदाभावात् प्रागुक्तो दोषः। तदुत्पत्तौ[7] कार्योत्पादे कारणविनाशात् कस्य क्रिया। सकर्तृका च क्रियेष्यते। क्षणिकेषु भावेषु कस्य केन सम्बन्धः ? [8]सन्तानकृतश्च सम्बन्धः कल्पितो न वास्तवः, तस्यातीतादिष्वसत्त्वात्,

ज्ञेयात्पूर्वं यदि ज्ञानं किमालम्ब्यास्य संभवः ।
ज्ञानात्पूर्वं यदि ज्ञेयं किमालम्ब्यास्य संभवः ॥
ज्ञेयेन सह चेज्ज्ञानं किमालम्ब्यास्य संभवः ॥
(बो० च० ९।१०५-१०६)

इति वचनात्। कार्यकारणभावकृतोऽपि सम्बन्धो नोपपद्यते, हेतुफलयोरसिद्धेः सापेक्षत्वादिति क्रियाकारकभावोज्झितं सर्वमिदं वस्तु। ततश्च परिज्ञातृपरिज्ञानाभावादद्वयमेव तत्त्वं सिद्धम्। एतच्चोद्भावना संवृत्या प्रतिपाद्यते, स्वरूपप्रकाशपरिज्ञानस्यापि तत्रैवास्तमयात्। तैलभूर्ति[9] समुत्सृष्टमुकुरक[10] इव श्वासवातस्य। दाह्याभावादग्नेरिव ज्वालापुञ्जस्य प्रयोगः। यो यस्मादभिन्नः स तदात्मा[11], गुडमाधुर्यवत्। क्रिया च कर्तु[12]रनुरक्तः ....[13] ॥ १३ ॥

---

१. प्यस्ति–क. ख. घ. ङ. च. छ. ज.। २. कारकश्च–ट. ड., ग. मातृकायां तु–'स्वरूपतः क्रियाव्याप्यस्तिलकं च स्वरूपतः' इति पाठः। ३. भेदेन–च. ज.। ४. नेत्युक्तं–ट. ड.। ५. चेति–घ. च. छ.। ६. 'तस्मिन्' नास्ति–क. ख. च. छ.। ७. तदोत्प–क. ख.। ८. सन्त्राक्षतश्च–ख. छ.। ९. भूमि–ख. घ. छ., भूति–भो.। १०. मकुलकयेव–च.। ११. तदात्मो–क.। १२. मनु–क. ख. ग. घ. ङ.। १३. इतः परं प्रथमनिर्देशस्य समाप्तिपर्यन्तो भागः संस्कृतटीकायाः कस्यामपि मातृकायां नोपलभ्यते। तस्य भोटानुवादस्तु विद्यते।

स्वरूपं सर्वभेदाना[1]मकारे संव्यवस्थितम्[2]
अनवराग्ररूपेण रत्नानामिव सागरः ॥१४॥

व्यवहारः सदा लोके तद्विरुद्धं [3]त्वलौकिके ।
अस्ति वा नास्ति वा चैव स्वरूपं[4] नैव बुध्यते ॥१५॥

अनेनैव हि बुद्धत्व[5]मित्यनेनैव मुच्यते[6] ।
स्वभावमार्गमाश्रित्य [7]सर्वं कुर्वन् विमुच्यते ॥१६॥

[8]इति श्री[9]वसन्ततिलकायां[10] कृत्रिममण्डलहोम[11]यागजपभावनादि-
विधिक्रियाग्राह्यग्राहक[12]भावव्यवच्छेदा[13]लिङ्गणपूर्वक-[14]
स्वरूपाख्याननिर्देशः[15] प्रथमः[16] ॥१॥



---

१. मां मकारे–क. ख. ग. घ. ङ., नां जंकारे–च. ज., नामकारः–ञ. ठ. ड., माकारः–ढ.। २. स्थिता–च., स्थितः–ज. ञ. ट. ठ. ड.। ३. च लो–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. ज. झ., न लौ–भो.। ४. स्वरूपान्नैव–ज ञ. ढ., पो नैव–ट. ठ. ड.। ५. त्वं नैत्येतेनैव–क. ख. च., नैह्यतेनै–ग., नैत्यते–घ. ङ., नैत्य नैव–छ., त्वमेत्यनेन वि–ज.। ६. मुह्यते ञ. ट. ड. ढ., त्वमनेनैव च–भो.। ७. सर्वे–घ., सर्व–ग. ज.। ८. 'इति' नास्ति–ग.। ९. 'श्री' नास्ति–क. ख. घ. ङ. च. छ. ज.। १०. तिलके–च. ज., वसन्ततत्त्वे–ञ. ढ.। ११. योग–घ. ड.। १२. ग्राहकव्यव-क. ख. च., भावच्छेदो–छ.। १३. च्छेदोलि–क. ख. ग. घ. ङ. छ. ञ. ट. ठ. ड.। १४. पूर्वस्वरू–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. ज.। १५. निर्देशो नाम–च. ज.। १६. प्रथमः पटलः–च. ज.।

[1]द्वितीयो निर्देशः

अथान्य[2]दुद्देशनिर्देश[3]रूपादितन्त्रात्मकस्य स्कन्धधात्वायतनस्वरूपस्य देहिनां देहस्य यथा[4] स्वदेवतारूपं कथयिष्यामि ।।१।।

रूपं वैरोचनो[5] बुद्धो[6] वज्रसूर्यस्तु[7] वेदना ।
पद्मनर्तेश्वरः[8] संज्ञा संस्कारो वज्रराट् तथा ।।२।।

[9] य एते कुशलादयः संस्कारा व्यक्तिद्वया[10]प्रेरणजनितविचित्र[11]सत्त्वनिर्माणः (णाः), स (त) एव वज्रेषु तथागतेषु मध्ये राजनाद्[12] वज्रराट्[13]। विरमान्ते[14] परमाश्वः कृत्यानुष्ठानज्ञानस्वभावो[15] न तु श्यामः ॥ १-२॥

---

१. अयं निर्देशो ञ. ढ. मातृकयोर्नास्ति। २. थान्यतमस्य उद्दे–च. ज. भो.। ३. निर्देशादि–ट. ङ, शस्वरूपादि–च. ज. भो., रूपोदितं–ट. ठ. ड.। ४. 'यथा' नास्ति–च. ज., 'स्व' नास्ति–ज.। ५. चनं–ट. ठ. ड। ६. बुद्धं–च. ज.। ७. सूर्यं तु वेदनम्–ज.। ८. नृत्येश्वरः–क. ख. ग. घ. ङ. छ., नर्तेश्वरं संज्ञं–ज.,

च. मातृकायामस्य श्लोकस्यायं पाठः—
रूपं वैरोचनं बुद्धं वेदनं रत्नसंभवम्। संज्ञानममिताभं च संस्कारोऽमोघवज्रकम् ॥

ज. मातृकायामत्रायमधिकः पाठः—

रूपं वैरोचनं बुद्धं वेदनं रत्नसंभवम्। संज्ञानममिताभं च संस्कारोऽमोघवज्रकम् ॥
विज्ञानं वज्रसत्त्वं तु सर्वरूपं तु हेरुकम्। इत्येवं देहि[नां] देहे स्कन्धं ताथागतात्मकम् ॥
शुभ्रवर्णं ततः पीतं रक्तं च श्यामवर्णकम्। गौरं चैव महाकृष्णं पञ्चैव वर्णकं विदुः ॥
चक्रायुधं दक्षिणे च वामे घण्टासुसंयुतम्। सगर्वकोटिस्थं वामं रूपस्कन्धं चेति मतम् ॥
रत्नायुधं तु दक्षिणे वामे घण्टासुसंयुतम्। हृदि स्थितं वामकरं द्वितीयस्कन्धसंमतम् ॥
पद्मायुधधरं दक्षिणे वामं घण्टासमन्वितम्। हृदि स्थितं वामकरं तृतीयस्कन्धसम्मितम् ॥
विश्ववज्रायुधं हस्ते वामे घण्टासुशोभितम्। हृदि स्थितं वामकरं चतुर्थस्कन्धकं स्मृतम् ॥
श्यामवर्णमैश्वर्यं च हृद्गतदक्षिणं करम्। घण्टान्वितं वामकरं कटिदेशे स्थितं विदुः ॥

९. इतः पूर्वतनो भागो नोपलभ्यते संस्कृतटीकायाः कस्यामपि मातृकायाम्। १०. द्वयोः–क. छ., अङ्गद्वयप्रेरणा–भो.। ११. सम्बन्ध–छ.। १२. राजनो–क., राजराद्–च. छ.। १३. ध्वजराट्–क.। १४. मा तु–ख. घ.। १५. स्वभावा ख. घ. छ.।

विज्ञानं वज्रसत्त्वस्तु[1] सर्वंरूपस्तु[2] हेरुकः[3] ।
नेत्रं(त्रे) तु मोहवज्राख्यं(ख्ये) द्वेषवज्राभिधा[4] श्रुतिः[5] ॥३॥

[6]यदेतद् विज्ञानं वस्तु[7]परिच्छेदकं स एव वज्रवदभेद्यं सत्त्वं यस्य स वज्रसत्त्वः सत्त्वरजोव्यक्तिद्वयसमरसीकरणलक्षणो[8]ऽक्षोभ्यश्चित्तवज्रः सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानस्वभावो न तु नीलच्छविर्बाह्यः[9]। तथा प्रागुक्तानां पञ्चानां सर्वेषां रूपं सहजात्मकमस्यास्तीति सर्वंरूपी व्यापको यः स श्रीहेरुको भगवान् षष्ठो महावज्रधरः, धर्मतास्वभावो विज्ञेय इति शेषः। उक्तं श्रीगुह्यसमाजे—

पञ्चस्कन्धाः समासेन पञ्चबुद्धाः प्रकीर्तिताः। (१७।५०)

सन्ध्याव्याकरणेऽपि—

स्कन्धा एव हि सम्बुद्धा बोध्यर्थं प्रत्ययोद्भवाः।
ते वै[10] तथागताः ख्यातास्तथताद्वययोगतः॥ इति।

गुह्येन्दुतिलकेऽपि—

पंचबुद्धात्मकु सर्वंजगोऽयं पश्यतु चित्रकु नाटकु दिव्यम्।
यत्र हि एकु[11] महासुखनामा नृत्यति एकु अनेकरसेन॥ इति।

डाकिनीवज्रपञ्जरेऽपि—

अक्षोभ्य[12] एव नाम्योती[13] सर्वं[14]रागविर्वजितः।
सा(शा)श्वतेनायुतं प्रोक्तं कोटिं(टिः) वज्राङ्क[15]वज्रिणे(णा)॥
अमितममितायुनाख्यातं यावदाकाश[16]सप्तिराड्॥ इत्यादि।

तथा संपुटेऽपि—

मातृजास्त्रयमात्राणि पितृजास्त्रयमेव च।
एतत् ष(षा)ट्कौशिकं पिण्डं षट्तथागतरूपकम्[17]॥ इत्यादि।

---

१. सत्त्वं तु–ज.। २. रूपं तु–च. ज.। ३. रुकं–च. ज.। ४. भिधं–ज.। ५. श्रुतिं–घ. च. ज.। ६. यद्विज्ञानं–ख. छ.। ७. वस्त्वप–घ। ८. लक्षणाभ्य–क.। ९. 'बाह्यः' नास्ति–भो.। १०. एव–ख. छ.। ११. येकु–ख. घ. छ.। १२. भ्यमेव–घ. च. छ.। १३. नाणेती–घ., नाम्योति–घ. छ.। १४. रोग–ख. घ.। १५. वज्राङ्ग–च.। १६. सप्त–छ., रात्रीत्या–क. ख. घ.। १७. अयं श्लोकः संवरोदये (१।२८–२९) दृश्यते।

ईर्ष्यावज्र[1]स्तथा घ्राणं रागवज्रो[2] मुखं स्मृतम् ।
कायो[3] मात्सर्यवज्रस्तु[4] पञ्चैते [5]स्थूलदेवताः ॥४॥

सर्वायतनधातुस्तु[6] हेरुकः परमेश्वरः[7] ।
[8]पातनी पृथिवीधातुरब्धातुर्मारणी स्मृता ॥५॥

आयतनानि वीरैर्नियोजयितुमाह—नेत्रे तु मोहवज्राख्ये इत्यादि । नेत्रद्वयं मोहवज्रो रूपविषयं [9]प्रत्यलम्पटत्वेन तदाहरणेन [10]विषयान्तरकरः प्रवृत्तेर्मोहः प्रभास्वरस्तत्र वज्रोऽभेद्यः कायचक्रान्महाबलः । श्रुतिः श्रोत्रेन्द्रियं द्वेषवज्रश्चित्तचक्रात् खण्डकपालिः[11], शब्दग्रहणे सामरस्याद् विकल्पान्तरविद्वेषात् ॥ ३ ॥

[12]घ्राणेन्द्रियमीर्ष्यावज्रो वाक्चक्राद् विरूपाक्षः । अहमेव सर्वात्मना सर्वगन्धोपभोक्ता, नान्यः कश्चिदस्ति, व्यापकत्वात् । मुखं मुखस्थं जिह्वेन्द्रियं रागवज्रो वाक्चक्रादाद्योऽङ्कुरिकः । स्पर्श इति कायेन्द्रियं मात्सर्यवज्रः कायचक्रान्ताद् वज्रसत्त्वो[13] वीरो व्यापकत्वात् । सर्वमुद्रापद्मस्पर्शसुखं मयैवानुभूतं नान्येनेति मात्सर्यम् ॥ ४ ॥

सर्वायतनं मन इन्द्रियम् । हेरुकश्चित्तचक्रान्ताद् वज्रदेहः सर्वेन्द्रियव्यापको ज्ञेयः । षट् चक्रवर्तिन इत्येके—

क्षितिगर्भ-वज्रपाणि-खगर्भ-लोकेश्वरोऽथ विष्कम्भी ।
श्रीमत्समन्तभद्रश्चेत्येतांश्चक्षुरादिसंज्ञातान् ॥

---

१. वज्रं त–ज. । २. वज्रं–ज. । ३. स्पर्शः–भो. टी , कायं–ज. । ४. वज्रं तु–ग. ङ. ज. ट. ड., ज्रं च–ठ. । ५. कुलदे–घ., स्कन्धैव सुगतात्मकम्–ज. । ६. धातुं च–च. ज. । ७. श्वरं–च. ज. । ८. ज. मातृकायामत्रेयं टिप्पणी उट्टङ्किता —
पातनी गौरवर्णाङ्गी कृष्णवर्णा च मारणी । आकर्षणी रक्तवर्णा श्यामवर्णा नर्तेश्वरी ॥
चक्रधरी कर्ति चैव पातनी भुजयोर्द्वयोः । कपालं खट्वाङ्गं चैव वामाभ्यां च धराऽऽयुधम् ॥
वज्रधरी कर्ति चैवमारणी भुजयोर्द्वयोः । कपालं खट्वाङ्गं चैव वामाभ्यां च धरायुधम् ॥
पद्मधरी कर्ति चैवमाकर्षणो देवी स्थिता । कपालं खट्वाङ्गं चैव वामाभ्यां च धरायुधम् ॥
खड्गधरी कर्ति चैव ईश्वरी भुजयोर्द्वयोः । कपालं चैव खट्वाङ्गं वामाभ्यां च धरायुधम् ॥
ज्वालिनी च महादेवी त्रिमुखी षड्भुजधरी । ....रक्तवर्णा आकाशधातुसंस्थिता ॥
भुजैः कपालखट्वाङ्गं पाशं वामैः सुधारिणो । अङ्कुशं छिन्नमुण्डं च कर्ति च दक्षिणैर्भुजैः ॥
९. प्रति लम्प सार्वत्रिकः पाठः, गृहीतस्तु भोटानुसारी । १०. विषयातुरा–ख., यातुर–क. ग. घ. । ११. कपालि–घ., कपालः–च. । १२. प्राणे–ख. । १३. सत्त्ववीरो–ख. घ. छ. ।

आकर्षण्यग्नि[1]धातुस्तु वायुर्नर्तेश्वरी मता[2] ।
आकाशधातु[3]रुक्तस्तु [4]पद्मज्वालिन्यनाकुला ॥६॥

इति वचनात् । मुख्यतस्तु[5] महासुखानुविद्धत्वादेतानि वीरव्यपदेशं लभन्ते, न तु वज्रवज्रघण्टाधराः, कल्पितत्वात् । श्रीसमाजेऽपि—

वज्र-आयतनान्येव बोधिसत्त्वाग्रमण्डलम् ॥ (१७५०)

इति वचनात् ।

धातुतत्त्वमाह—पातनीत्यादि । योऽयं पृथिवीधातुरस्थिमांसादिनिर्माणचक्रं वा समापत्तौ[6] काठिन्यस्पर्शो वा, सा पातनी डाकिनी तदभिनिवेशविकल्पनिर्दलनी शून्यता-आनन्द-मैत्री-उपायस्वभावा ज्ञेया । योऽयमब्धातु[7]र्जलासृगादि धर्मचक्रं वा समापत्तौ द्रवस्पर्शो वा, सा मारणी लामा तदभिनिवेशक्षयकरी अनिमित्त-परमकरुणा-प्रणिधिस्वभावा ज्ञेया । योऽयं तेजोधातुर्गात्रेषूष्मा[8] संभोगचक्रं वा समापत्तावहिमस्पर्शो वा ज्ञानाग्निज्वाला वा साऽऽकर्षणी तदभिनिवेशविध्वंसिका खण्डरोहा अप्रणिहित-विरममुदिताबलस्वभावा ज्ञेया । तथा योऽयं वायुधातुर्गमनागमनाकुञ्चनप्रसारणलक्षणो महासुखचक्रं वा समापत्तौ स्फरणं[9] वा प्रवेशनिर्गमो(मौ) वा प्रवेशोत्थिति[10] व्युत्थानं वा दिवानिशं द्वयुतषोडशशतस्वा(श्वा)ससंचारो वा सा नर्तेश्वरी नृत्यस्य सर्वाङ्ग-साध्यस्य कर्मण ईश्वरी रूपिणी अभिसंस्कार[11]-सहजानन्दा-उपेक्षा-ज्ञानस्वभावा विज्ञेया । एता एव कर्म-धर्म-समय-महामुद्रा एव मया संकेतिताश्च द्रष्टव्याः । उक्तं च—

पृथिवी लोचनाख्याता अब्धातुर्मारणी स्मृता ।
[12]तेजः पाण्डरवासिन्या वायुस्तारा प्रकीर्तिता ॥
(गु० स० १७५१) इति ।

गुह्यतत्त्वप्रकाशेऽपि—

"एकारः पृथिवी ज्ञेया कर्ममुद्रा तु लोचना" इत्यादि ।

तथा—

बोलकक्कोलयोगेन... पृथिवी तत्र जायते" (१।१०।३८)

---

१. आकर्षणी तेजोधातुः-च. ज. । २. स्मृता-क. ख. ग. घ. ङ. छ. । ३. धातुराख्यात-च., ख्याता-ज. । ४. ज्वालिन्यन्यतलां-क. ख. ग. छ., पद्मज्वालिनी डाकिनी-च. ज., लिन्यनेतरा-घ. । ५. सुखेन तु-घ. । ६. पनौ-ख । ७. मधातु-ख. । ८. गात्राण्युष्मा-ख. । ९. स्फुरणं-छः, 'स्थितिर्वा' इत्यधिकः पाठः-भो० । १०. शस्थिति-ख. च. छ. । ११. संस्कारा-छ. । १२. पाण्डराख्या भवेत्तेजो-इति मुद्रिते पाठः ।

इत्येवं देहिनां देहः[१] स्कन्धादिदेवतात्मकः[२] ।
सुखं[३] दुःखं[४] तथा कर्म क्लेशादिकमुपेत्य वै ।
उत्पत्तिभङ्गमाश्रित्य भवनिर्वाणमाप्नुयात्[५] ॥७॥

इति[६] श्रीवसन्ततिलकायां[७] स्कन्धधात्वायतनस्वरूपतथागतकाय-
यथास्थितवैरोचनादिदेवतारूपाख्याननिर्देशो[८] द्वितीयः[९] ॥

●

इत्यादि श्रीहेवज्रवचनात् ।

तथा योऽयमाकाशधातुः सर्वनाडीसौशीर्यमिन्द्रियद्वारसौशीर्यं वा रोमकूपव्योम वा सा पद्मज्वालिनी नाम वाराही पद्मान्तर्नाडीजालस्य स्वामिनी तदुपरागपङ्कैरलिप्ता ग्राह्यग्राहकविकल्पोत्तीर्णप्रागुक्तधातुचतुष्टयव्यापिनी विज्ञेयेति । उक्तं च—

"आकाश[१०] धातुरूपस्था सैव खेचरीति[११] स्मृता" इति ।

वज्रपञ्जरेऽपि—"सर्वधात्वन्तरालयेन" इति वचनात् ।

"आकाशैकस्वभावेऽस्मिन् विजहार महामुनिः"

इति सन्ध्याव्याकरणवचनात् ॥ ५–६ ॥

उपसंहारमाह—इत्येवमित्यादि । अनेन न्यायेन सर्वदेहिनां त्रैधातुकस्थितानां देहः स्कन्धाद्यो[१२] देवतात्मको विज्ञेयः, न बाह्यो[१३] मुखभुजादियुक्तः । तस्माद् य एते स्कन्धकरण्डकान्तर्गताः सुखदुःखक्लेशकर्मोत्पादभङ्गादयः, सर्वे ते[१४] तदभेदाद् देवतात्मका एव । अत एव यः संसारः स एव निर्वाणम्, न तयोः कश्चिद् भेद इति ॥ ७ ॥

इति वसन्ततिलकायां निष्पन्नक्रमसाधनोपायिकायां रहस्यदीपिकायां
द्वितीयनिर्देशस्य[१५] विस्तरव्याख्या ॥ २ ॥

●

---

१. देहे–ज. । २ स्कन्धतथागतात्मकं–च. ज., ताथागता–छ. । ३. सुख–ज. । ४. दुःखादिकं–च. ज. । ५. माप्नुते–क. ख. घ. ङ. छ., मासये–ग. । ६. श्रीनास्ति–क. ख. घ. ङ. च. छ. ज. । ७. तिलके–च. छ. ज. । ८. निर्देशो नाम–क. ख. ग. घ. ङ. छ. । ९. तीयपटलः–ज. । १०. आकाशं–क. घ., धातुरूपस्तु–सा. पाठः, गृहीतपाठस्तु भोटानुसारी । ११. री स्मृता ख. घ. । १२. न्धादयो–घ. च. छ. भो. । १३. वाघो मु–क., बाह्या मु–घ. । १४. एतदुभे–ख. घ. छ. । १५. देशविस्तर–क. ।

तृतीयो निर्देशः

अथान्यतमस्य[1] तथागतकायस्य[2] कायवाक्चित्त[3]गताधममध्यमोत्तम[4]प्रभेदेन[5] द्वारभेदं[6] कथयिष्यामि ॥१॥

> [7]एकस्तम्भं नवद्वारं स्थूलं पञ्चाधिदैवतम् ।
> नवस्रोतोगतं[8] द्वारं [9]नवद्वारं [10]प्रकीर्तितम् ॥२॥

सर्वदेहिनां देहस्तावत् तथागतात्मक इति द्वितीयपटलेन प्रतिपाद्य तेषां यैः प्रवेशनिर्गमौ भवतस्तान्यधममध्यमोत्तमभेदेन द्वाराणि प्रतिपादयितुमथेत्यादिनाऽवतार्यं स्ता(ता)न्युद्दिष्टवान् । तदर्थस्तु[11] सुगमः ॥१॥

निर्देशमाह—एकस्तम्भमित्यादिना । यदेतत् सर्वदैवतं[12] शरीरं तदेकस्तम्भं कङ्कालशब्दवाच्यं पृष्ठभागे कटिकूर्परमध्यादारभ्य तद्यावदर्बुदतलं व्याप्य स्थितं स्थूणाप्रायं यस्य, वामदक्षिणपार्श्वयोश्चतुर्विंशतिवीरप्रायाः पार्श्वस्थितकर्णिकावीरयोगिनीस्वभावास्त्रिचक्रसंगृहीता विद्यन्ते यस्मिंश्च, तेषां मध्ये वर्तमानस्तदाधारो दण्डो भूर्भुवःस्वराधारः श्रीहेरुकरूपेण महाकङ्कालव्यपदेशभाक् । तादृगेकः स्तम्भो यस्य । संपुटेऽप्युक्तम्—

> द्वादशद्विगुणीभूय पार्श्वतन्तु(स्तु) द्विपक्षयोः ।
> वीरयोगिनीवृन्देन समन्तात् परिवारितः ॥
> कङ्कालो दण्डरूपोऽसौ हेरुकः परमाश्रयः ।
> स्कन्धधात्वादिबुद्धानां स्तूप इत्यभिधीयते ॥ इति ।

---

१. अथास्य–ञ. ट. ठ. ड. ढ. । २. गतत्रिपुरकाय–ञ. ढ. । ३. चित्तस्याधम–ज. । ४. त्तमभेदेन–ज. ट. ठ. ड. ढ. । ५. देन च–ग. । ६. द्वारस्तम्भ–ग. । ७. एकस्तम्भनवद्वारस्फुरपञ्चादि–क. ग. घ. ङ. च. छ., पञ्चापि–ढ., स्थूलपञ्चा–ख., पत्रादिदैवताः–ग., एकस्तम्भं नवद्वारं श्रीहेरुकादिदेहकम्–ज. । ८. श्रोतगत–क. ख. च. छ., गतं–ग. घ., श्रोत्रं गतं–ज. । ९. नवधा–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ., नवाकारं–भो. । १०. परिकी–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. । ११. तदर्थः सु–ख. छ. । १२. देवताश–ख. घ. छ. ।

अधमं कायिकं द्वारं [1]स्थूलं दैवतनिर्मितम् ।
अपरं [2]चतुर्विधं द्वारं वाचिकं [3]मध्यमं स्मृतम् ॥३॥

श्रीवज्रडाकेऽपि—

यथा स्तम्भेन महता ध्रियते लीलया गृहम् ।
नवद्वारस्तथा कायः कङ्कालैरेव[4] धार्यते ॥ इति ।

अथवा—एकस्तम्भ इव स्तम्भोऽवधूती, सर्वस्य नाडीचक्रस्य धारणे, एतद्युक्त-[5]त्वादेकस्तम्भम् ।

नाभिमध्ये महाचक्रं षोडशैस्तन्तु[6]सूत्रितम् ।
अकारेण समायुक्तं संपुटीकारयोगतः ॥

सर्वाधारस्वरूपेण तत्र मध्ये व्यवस्थिता ।
स्तम्भभूता महाराज्ञी[7] साऽवधूतीति कीर्तिता ॥ इति ।

नवद्वारमित्याद्युद्देशः । निर्देशमाह—अन्यच्च कीदृशं नवश्रो स्रो)त इत्यादि । नव श्रो(स्रो)तांसि चक्षुर्द्वय-श्रोत्रद्वय-घ्राणद्वय-वक्त्र-गुह्य-गुदाख्यानि यस्मिन् तत्तथा । एकैकं च द्वारं नवधा परिकीर्तितम् । तथाहि-चक्षुरिन्द्रियस्य पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाश-विज्ञानकुशलाकुशलोभयचैतसिकधर्मयुक्तत्वान्नव प्रभेदाः । [8]एवमन्यत्राप्यूह्यम्[9] । ते च पञ्चबुद्धचतुर्योगिनीस्वभावाः । एवं [10]द्वारं द्वारं[11] नवात्मकमण्डलचक्रमु[12](यु)क्तमिति ज्ञातव्यम् । एवं च नवनवे(नव)तिद्वारमपि शरीरमेकाशीतिद्वारं[13] जायते । यत् (ये) तेभ्यो निष्पन्दास्तेऽपि तथागता एवेति बोद्धव्यम् ॥२॥

तदर्थमाह—अधमं[14] कायिकं द्वारं [15]स्थूलं दैवतनिर्मितमिति । यदेतत् कायिकं द्वारं[16] नवधा सपरिच्छदं[17] तदेव [18]प्रतिभावप्रतिभासमानरूपत्वादधर्म[19](मम्), बही-रूपेण प्रकाशनाद(त् । अ)धर्म(म)श्च स्वनिष्पन्दवहनान्न पुनर्हीनत्वात् । अत

---

१. स्फुरद्–घ. ढ., स्थूलदेवनिवासिनम्-ज. स्थूलदेवतानि-ञ. । २. चतुर्विंश–ग. । ३. चिकं च प्रचक्षते–घ. । ४. लैरव–ख. ङ. छ । ५. द्युक्तादेक–ख. छ. । ६. शत-भो. । ७. राज्ञां-क. । ८. त एव–ख. छ. । ९. स्थाप्यम्–ख. घ. छ. । १०. वारं–ख. घ. छ. । ११. वारं–ख. छ., नास्ति–घ. । १२. चक्रमिति–भो. । १३. तिवारं–ख. छ. । १४. अधमं–ख. घ. छ. । १५. स्फू–ख., स्फु-घ. । १६. वारं–ख. घ. छ. । १७. च्छेदं–क. ख. घ. । १८. 'प्रतिभाव' नास्ति–क. ख. च. छ. भो. ।

[1]आग्नेयं चैव वायव्यं माहेन्द्रं वारुणं तथा[2] ।
[3]चक्रे चित्तस्य संचारादूर्ध्वं[4]पार्श्वंज्वंधः[5] स्थितः(तम्) ॥ ४ ॥

एव स्थूलमितर[6]द्वारापेक्षया रूपवत् । प्रागुक्ततथागतदेवीनवकस्वरूपत्वाद् दैवत-निर्मितम् ।

[7]वाग्द्वारमाह—अपरम्[8], इत्याद्युद्देशः । कायचित्तयोर्मध्ये वर्तमानत्वाद् मध्यं वाग्द्वारं चतुर्विधं ज्ञेयम् ॥३॥

निर्देशमाह—आग्नेयमित्यादि । इह चत्वार्यग्निवायुमाहेन्द्रवारुणाख्यानि यथा-क्रमं कण्ठनाभिगुह्यहृदयस्थानि पद्मनर्तेशपरमाश्वरत्नसंभवाक्षोभ्यरूपाणि, खण्डरोहा-रूपिणीलामाडाकिनीस्वभावानि दक्षिणवामोभय[9]स्तच्च(तश्च) मन्दप्रचाराणि रक्तहरितपीतशुक्लवर्णानि प्रधानगुणभेदेन परस्परं तु चतुर्थसंख्यानि दिवानिशं चतुर्विंशतिसञ्चारप्रवेशादिना षोडशशताधिकद्वचयुतश्वासवाहीनि सर्वदेहिस्वसंवेद्यानि नाडीचक्राणि विद्यन्ते । येषु वायुवाहनस्य विज्ञानस्य प्रतिक्षणं संचारः प्रवृत्तिर्गमना-गमनयोगेनानुभूयते । तान्येव वाचिकद्वाराणि । तेभ्य एव वामदक्षिणमध्यनाडीरन्ध्र-युक्तेभ्यो भगवती वर्णमातृकोदेति[10] । हेतुफलयोरभेदान्मुखं[11] तस्या[12] व्यक्तिस्थानमेव । ते[13] च प्रवेशादयो वह्न्यादीनाम् । कथमित्याह[14]—ऊर्ध्वेत्यादि । यथाक्रममूर्ध्वेऽग्नि-मण्डलं प्रवर्तते, हविर्भुजामूर्ध्वतो ज्वलनात् । वायुमण्डलद्वारं[15] पार्श्वाभ्यां वहति, वायोः कुटिलगमनात् । माहेन्द्रमृजु[16] स्पष्टं वहति, तस्य समत्वात् । वारुणमधो[17] वहति, अपामध एव प्रयाणम् । उक्तं च—

दक्षिणान्निर्गतो[18] रश्मिर्हुतभुङ्मण्डलं च तत् ।
रक्तवर्णमिदं व्यक्तं पद्मनाथोऽत्र देवता ॥

---

१ आग्नेये चैव वायव्ये माहेन्द्रे वारुणे–ञ. ट. ठ. ड. । २. स्मृता–ग. घ. ङ. । ३. चक्र–क., चक्रं–ख. घ. । ४. दूर्ध्वे–घ. छ. । ५. पार्श्वेष्वधः–क. ख. ङ. च. छ., पार्श्व-व्यवस्थितः–ग., स्थिता–घ., स्थितम्–ज. ञ. ट. ठ. ड. ढ. । ६. वारा–ख. घ. छ. । ७. वामद्वा-ख. घ. छ. । ८. अपरिमित्या–क. ख. घ. च. । ९. भयस्तब्ध–भो. । १०. कादेवी–ख. छ. । ११. दात् सुखं–च. । १२. तस्य व्यक्तिः–च. । १३. एवं प्रवे–ख. घ. छ. । १४. त्यादि–ख. छ. । १५. द्वार.–क. ग. । १६. ऋजुस्पर्शं–भो. । १७. मध्य–ख. घ., मध्ये–छ. । १८. क्षिणन्निर्ग–क. ख., क्षिणानि–घ. ।

तृतीयं मानसं द्वारं चन्द्रसूर्यप्रभेदतः ।
प्रवेशा[1]न्निर्गमा[2]च्चैव द्वारं [3]चैवोत्तमं भवेत् ॥५॥
[4]प्रधानमुत्तमं [5]द्वारमध ऊर्ध्वं[6] प्रकीर्तितम् ।
[7]अधोद्वारेण विज्ञानमूर्ध्वद्वारेण धातवः ॥६॥

[8]स्तब्धो मन्द[9]प्रचारश्च सितकुन्देन्दुसन्निभः ।
मण्डलं वारुणं ह्येतद् वज्रनाथोऽत्र देवता ॥ इति ।

तथालिचतुष्टयेऽपि[10]—

"चतस्रो गतय ऊर्ध्व(र्ध्वं) पार्श्वमृजुरधश्च" इति ।

सम्पुटेऽपि—

आग्नेये चैव वायव्ये माहेन्द्रे वारुणे तथा ।
चक्रे चित्तस्य संचारादूर्ध्वपार्श्वर्ज्वधोगतिः ॥ इति ।

सन्ध्याव्याकरणेऽपि—

आग्नेये चैव वायव्ये माहेन्द्रे वारुणे तथा ।
चक्रे[11] चित्तस्य संचारादूर्ध्वपार्श्वर्ज्वधोगतिः ॥
तासां मध्ये स्वदैवत्यं [12]तुर्ययोगः परस्परम् ॥ इति ॥ ४ ॥

चित्तद्वारमाह—तृतीयं कायवाग्द्वारापेक्षया । मानसमिति मनोमात्रगम्यम् । कथम् ? चन्द्रसूर्यप्रभेदत इति । चन्द्रसूर्यौ वामदक्षिणाभ्यां नाडीभ्यां [13]द्वाभ्यां [14]भेदाभ्यां वहतः । ऊर्ध्वं वायुक्रमेणाधो द्रव्यक्रमेण प्राणा[15]पानं(न)-शुक्र[16]रक्तवहनात् । अतः सूक्ष्मयोगगम्यत्वादेवोत्तमं द्वारम् । तथा चाह—प्रवेशान्निर्गमाच्चेति । ऊर्ध्वं प्राणापानयोः, अध इति द्रव्ययोः प्रवेशनिर्गमाभ्याम् । अथवा अध इति प्रवेशात्, ऊर्ध्वं निर्गमात् । एतदुत्तमं द्वारम् । केन द्वारेण कस्य प्रवृत्तिरित्याह—अधोद्वारेणेत्यादि ।

---

१. वेश–ज. । २. गंमं चै–ज. । ३. वै चोत्त–क. ख. ग. ङ. च. छ. । ४. द्वाराणामुत्तमं–ज. । ५. त्तमद्वार–क. ख. च. छ. । ६. ऊर्ध्वः–क. ख. च. छ., र्ध्वं–ग. ढ. । ७. अधद्वाराद् विसर्जनमूर्ध्वद्वारात् प्रवेशनम्–ज. । ८. स्तुवो–ख. घ. छ. । ९. प्रवार–क., मण्डलश्च प्रचारश्च–छ. । १०. चतुर्दपिऽपि–भो. । ११. चक्रचित्तसंचा–ख. घ. छ. । १२ चतुर्यो–भो. । १३. नास्ति–ख. घ. च. छ. । १४. नास्ति–छ. । १५. प्राणानपा–घ., प्राणायामं–छ. । १६. शुक्ल–ख. ।

[1]वैरोचनादयो बुद्धा ऊर्ध्वंद्वारे[2] चलाः स्थिताः ।
[3]अधो व्यवस्थितिस्तेषामूर्ध्वेन तु विसर्जनम् ।।७।।

अधोद्वारेण ललनामार्गेण विशिष्टं ज्ञानं विज्ञानं[4] महासुखाख्यं[5] प्रवर्तते, व्यक्तिद्वयस्याधः प्रवृत्तौ सहजोदयाद् वसन्तकालप्रादुर्भावात् । ऊर्ध्वंद्वारेण रसनाख्येन धातवः पृथिव्यादिस्वभावाश्चक्षुरादिमलाः प्रादुर्भवन्ति, क्लिन्नगन्धादिश्मशानरूपत्वात् । अथवा अधोद्वारेण विज्ञानादिस्कन्धपञ्चकं देहिनां देहे प्रादुर्भवति, स्कन्धपञ्चकस्यान्तर्मुखत्वात् । ऊर्ध्वंद्वारेण धातवः पृथिव्यादयः पञ्चमहाभूतानि जायन्ते, बहिर्मुखत्वात् ॥ ५-६ ॥

तथा य एते चक्षुरादि[6]षट्प्रवृत्तिविज्ञानकाया[7] वैरोचनादिबुद्धस्वभावा रूपादिविषयषट्कग्रहणायोर्ध्वंद्वारेण चलाः प्रवर्तमानास्तेषां विषयदेवता निर्विश्याधोद्वारेण [8]परिपूर्णेच्छानां स्थितिः प्रवेशो[9]ऽनुभूयते । अन्तःप्रविष्टानां तेषां पुनरूर्ध्वंद्वारेण विसृ-[10]ज्यन्ते, स्वदेवतोपभोगार्थमिति शेषः । अथवा महासुखचक्राद्विज्ञानं[11] विशिष्टज्ञानं[12] समन्वागतः(तम्) । अधोद्वारेण ललनादिमार्गेण पद्मकोशं प्राप्नोति योगबलात्तदेवोर्ध्वमार्गेणाकृष्टं धातवश्चतुर्विंशतिधात्वतिपुष्टिकरं चतुष्पीठादिपीठेषु जायते । उक्तं च –

रविविकस्वरभास्वरसुन्दरी[13]प्रबलकेशरसंवरकर्णिकात् ।
उदयमस्तकशृङ्गसमुल्लसन्नवसुपूर्णशशाङ्ककराङ्किताम् ॥

विविधपुष्परसासववेद्यपि द्रुतविलम्बितमध्यनदद्ध्वनिः[14] ।
अलिरुपेत्य निशार्धमहोत्सवे[15] धयति तद्गतधीरिति विस्मयः ॥

उदयतेऽस्तमुपैति निशाकरः[16] पुनरतो[17]ऽप्युदयाचलमौलिताम् ।
उभयकोटि[18]कलापिनिरीक्षणे न च शशी न विभाति दिवाकरः ॥

रविरुदेति सरोजदलान्तरे शिखरतोऽपि विधुः प्रविलीयते ।
व्रजति चोर्ध्वमसौ प्रलयानलो गिलति राहुरधः शशिभास्करौ ॥

---

१. निरञ्जनादयो–ज., नीरञ्जना–ढ. । २. द्वारेण–ख., द्वारादये–ज., द्वारे चराः–क. ग. घ. ङ. च. छ. । ३. श्लोकार्धोऽयं नास्ति–ज. । ४. नास्ति–ख. छ. । ५. महासुखं प्रविश्य–भो. । ६. षड्वैवृत्ति–घ. छ., चक्षुरादिषु प्रवृ–च. । ७. कायो–ख. घ. छ. । ८. पूर्णज्ञानां–क. । ९. प्रवेशा–क. । १०. विमृक्षन्ते–ख. छ., परिमृक्षन्ते–घ. । ११. विज्ञानवि–ख. घ. छ. । १२. विशिष्टं–ख. छ. । १३. प्रचल–क. ग. । १४. नयद्गतिः–ख. घ. छ. । १५. त्सवं–ख. घ. । १६. करं–ख. छ. । १७. रता–ख. । १८. कलानिधीक्षणे–क. भो. ।

आवाहनादिरूपेण[1] गत्यागतिप्रवर्तनैः ।
त्रैयध्विकास्तु[2] संबुद्धा डाकिन्यो योगमातरः ॥८॥

प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च गुणदोषस्वभावतः ।
सुखदुःखस्वरूपास्तु[3] सिद्धाः[4] सहजरूपतः ॥९॥

इति [5]श्रीवसन्ततिलकायां[6] स्कन्धधात्वायतनात्मकतथागत-[7]
काय[8]द्वारभेदाख्याननिर्देशस्तृतीयः[9] ॥३॥

•

कमलिनीकमला[10]सनलोचनप्रकटगोचरगोचर[11]मीलनम् ।
प्रथममङ्गमिदं कुलिशाम्बुजद्वयनिमीलनमत्र ततोऽपरम् ॥
सपदि[12] साधकबीजनिघर्षणात् त्रितय[13]मम्बरमेति चतुर्थकम् ।
सहजमक्षयधामकलावलीकलितकालविलापन[14]लेलिहम् ॥
यदि सुशिक्षितवज्रविलासिनीगुरुमुखाधिगमोऽधिगतो[15] भवेत् ।
भवति यस्य [16]तदोत्तममध्यमाधमविनिश्चयमेति स तत्त्ववित् ॥ इति ॥ ७ ॥

अत एवाह—आवाहनेत्यादि । अनेनोर्ध्वाधोद्वारभेदेन ये[17] गत्यागतिरूपे विसर्जनाह्वाने[18] तेन रूपेण त्रैयध्विकाः सर्वबुद्धास्त्रिचक्रस्था [19]धातुरूपाश्चतुर्विंशति-[20] र्वीराः श्रीहेरुकः पञ्चविंशतितमः, तथा डाकिन्योऽष्टाविंशतिर्ज्ञानचित्तवाक्कायचक्रस्था अभेद्यादिनाडी[21]मध्ये योगमातरश्चक्षुरादिद्वारेण नाडीस्वभावाः । सिद्धा वीराः

---

१. आवाहनविसर्जनक्रमेण–क. ख. च., र्जनरूपेण–घ. ङ. छ. ज., नास्ति–ग. । २. का स्वसं–घ., काश्च–ज. । ३. स्वभावस्तु–घ., स्वरूपस्तु–ज. । ४. सिद्धिः–ज. । ५. 'श्री' नास्ति–क. ख. घ. ङ. च. छ. ज. । ६. तिलके–ज., वसन्ततत्त्वे–ञ. । ७. त्मकशिवाय का–ञ. ढ. । ८. कायस्य ञ. ढ. । ९. तीयः पटलः–ज., निर्देशो द्वितीयः–ञ. । १०. लानन–क. घ. च. । ११. चरि–घ. । १२. स यदि-क. ख. घ. । १३. शम्बर–भो. । १४ विलायन–क. ख. घ. । १५. धिगमाधिगता–छ. । १६. तदन्तिम–ख. छ. । १७. गम्यागति–ख. । १८. ह्वानेन–घ. छ. । १९. 'धातुरूपा' नास्ति–भो. । २०. शतिवीरा–घ. छ. । २१. मध्य-क. ख. घ. ।

सहजयोगिन्यः स्थिताः । अथवा सहजसिद्धाः स्वभावसिद्धा एवैता[1] व्यवस्थिताः, न तु कल्पिता इति भेदं दर्शयति । कथम् ? प्रवृत्तिनिवृत्तो उत्पादभङ्गौ व्युत्थानप्रवेशौ समाधानासमाधाने च, गुणदोषौ शुभाशुभौ संक्लेशव्यवदानौ च सुखं दुःखं च [2]साता-सातादिरूपं संस्कारात्मकम्, तत्सर्वं द्वारत्रयेन(ण) [प्र]वर्तमानं सहजसिद्धं वीरयोगिनी-स्वभावं विज्ञेयम् ॥ ८-९ ॥

इति वसन्ततिलकायां निष्पन्नक्रमसाधनोपायिकायां टीकायां[3]
रहस्यदीपिकायां तृतीयनिर्देशे विस्तरव्याख्या ॥ ३ ॥

•

१. एव ताः-ख. घ. छ. । २. 'साता' नास्ति-ख. घ. छ. । ३. नास्ति-ख. घ. छ. ।

[1]चतुर्थो निर्देशः

[2]अथान्यतमस्य तथागतकायस्य[3] दशपीठादिभूमिं[4] दर्शयिष्यामि[5] ॥१॥

[6]नवस्रोतोगता नाड्यो नवद्वारेषु संस्थिताः ।
दशमी भगमध्ये[7] तु तासां श्रेष्ठतरा[8]ऽपरा ॥२॥

[9]ललाटस्थानमारभ्य [10]हंकारचक्रनिर्णयम्[11] ।
स्रवन्त्यो बोधिचित्तानि द्वात्रिंशदप्यहर्निशम् ॥३॥

द्वारत्रयस्थं देवताचक्रं प्रतिपाद्य तस्य पीठादिदशभूमिक्रमेण स्थितिं दर्शयितुमाह—अथेत्यादिना। द्वारनिर्देशानन्तरमित्यर्थ उक्तः। अन्यतमस्येति यस्य कस्यचित् तथागतकायस्य सर्वसत्त्वसाधारणस्य, न मदीयस्यैव। पीठादिस्थानं दर्शयिष्यामीति सम्बन्धः॥ १ ॥

तदाह—नवश्रो(स्रो)तोगतमि(ता इ)त्यादि। प्रागुक्तानि यानि कायद्वाराणि नव श्रो(स्रो)तांसि, तेषु स्थिता या नाड्यः [12]सार्वदैवता नव, तथा शिरस आरभ्य भगमध्यगाऽवधूतीदशमास्ता एव दशबुद्धबोधिसत्त्वभूमय उच्यन्ते। [13]सत्यदर्शनाद्य(द)ध्यात्मनि तदनुभवो दृष्टस्तदा किं बहुप्रयत्नसाध्येन दृङ्मार्गादिनेति भावः॥ २ ॥

भूमीरुक्त्वा भूमिस्था[ना]न्याह—ललाटेत्यादि। इहास्मिन् काये ललाटस्थानं महासुखचक्रमारभ्य नाडीचक्रस्य निर्णयो निश्चयो ज्ञातव्यः। तथाहि तद्गता[:][14]

---

१. ज मातृकायामेष निर्देशो दशमतया स्थापितः। २. अथान्यतमं वक्ष्यामि पीठादिदशदशकं–ज., अथ तथागतस्यान्यतमस्य कायपीठादि दश–भो.। ३. शिवस्य कायस्य–ञ. ढ.। ४. पीठादिदश–भो.। ५. देशयि–ट. ठ. ड.। ६. नवश्रोताशयो–क. ख. घ. छ, स्रोताशया–ग., शयो–ड.,। ७. भगमन्वे–घ., संख्ये(ज्ञे)–ट.। ८. श्रेष्ठोत्तमा मता–ज.। ९. 'ललाटस्थान' इत्यारभ्य 'भूचर्योऽपि तथापराः' इत्यन्तः पाठो नास्ति–ङ. ट. ड., स्थानादारभ्य–ज.। १०. हूंकार–ञ. ढ, कारं–ज.। ११. निर्णयः–ख. ञ भो., विनिर्णयं–घ.। १२. सर्व–ख. च. छ., देवता–ख. घ. च. छ.। १३. सत्त्व–च.। १४. तं गता–ख. घ. छ.।

स्मृताः[1] (एताः) पीठादिरूपेण सबाह्याभ्यन्तर[2] स्थिताः ।
खेचर्याद्यष्टौ[3] योगिन्यो [4]भूचर्योऽपि तथापराः ॥४॥

[5]याश्च पातालवासिन्यः सर्वास्तास्तासु[6] संस्थिताः ।
कायवाक्चित्तचक्रेषु स्थाना[7]न्तरप्रभेदतः ॥५॥
चतुर्विंशतिभेदेन पीठादिदशभूमयः[8] ।
यथास्थानस्वरूपेण [9]भिद्यन्ते [10]सहजस्थिताः ॥६॥

द्वात्रिंशदेव [11]संभोगादौ प्रसृताः, कायवृक्षस्य उष्णीषचक्रमूल(क)त्वात् । अत एवाधःशाखः[12]कायवृक्षः । अपि च, हस्तपादचतुष्टयं विंशतिरधोमुखाः । पार्श्वपृष्ठेषु तिस्रः । हृदि [13]चक्रे च षट् । शृङ्खलाबन्धनाड्यस्तिस्रश्चतुश्चक्रस्तूपस्य । एवं ललाटादावेव नाडीचक्रस्य निर्णयः । द्वात्रिंशत् ता योगिन्यः, यद्बोधिचित्तानि तत्तुल्यानि वहन्ति । त एव वीराः खण्डकपालादयः, वज्रचण्डादयो महावीराः, वज्रमण्डलः[14] श्रीहेरुकश्च । तदर्थमाह—श्र(स्र)वन्त्य इत्यादि ॥ ३ ॥

एता बाह्येषु कायद्वारेषु पूतिगन्धादिपर्यायेषु [15]चण्डोग्रादिष्व(ा)भ्यन्तरेषु[16] च शिरआदिचतुर्विंशतिपीठेषु स्थितानां[17] देशानां जालन्धरादीनाम् । तद्विभागमाह—खेचर्य इत्यादि[18] । पुल्लीरादारभ्य मालवान्तं या [19]नाड्यस्ताः खेचर्यः, कामरूपादारभ्य हिमालयान्तं भूचर्यः, प्रेतपुरीमारभ्य कुलतान्तं पातालवासिन्यः । कायस्योर्ध्वमध्यपर्यन्तभेदाद् एताश्चतुर्विंशतिः खेचर्यादयो दशभूमिप्रतिष्ठिताः । तदवयवेषु द्वारेषु च काकास्यादिस्वभावा नाड्यो व्यवस्थिताः ॥ ४–४½ ॥

---

१. स्मृतः–घ. च., पीठादिदेशभेदेषु बाह्याभ्यन्तरेषु स्थिताः–ज. । २. न्तरं–ख. । ३. र्याष्टौ तु यो–ग. घ. ङ. छ. ज. । ४. मूर्तयो–घ. । ५. पार्श्वे पाता–क. ख. ग. ङ. च. ज. ढ., पार्श्वपा–घ. छ. । ६. सर्वास्त्वेतास्त्र–घ., स्ताः सुव्यवस्थिताः–ज. । ७. स्थाने स्थाने–ज. । ८. नाड्यः–इति सर्वासु मातृकासु, गृहीतपाठस्तु भोटानुसारी । ९. स्थानस्थ–ख., स्वभावेन भो. । १०. सहजे स्थि–ग. घ. ङ. भो. । ११. सद्भोगा–ख. । १२. शाख्यः–ख. छ. । १३. वक्त्रे–च., वज्रे–भो. । १४. वज्रचण्डस्तु–भो. । १५. चण्डाग्रा–क. ख. । १६. भ्यन्तरेषु–ख. । १७. स्थितानां दश–ख., स्थितानां देशे–च., स्थितानादेश–छ, नामसु जालन्धरादिषु–इति सार्व. पाठः, गृहीतस्तु भोटानुसारी । १८. इत्यादिषु–ख. छ. । १९. यो नाघ्न्यो–ख. छ. ।

एता एव समाख्याता मुदिताद्यास्तु भूमयः ।
आलयो [१]बोधिसत्त्वानामिन्द्रियादि[२]स्वरूपिणाम् ।।७।।

आलयः सर्वबुद्धानां[३] स्कन्धादीनां विशेषतः ।
[४]बुद्धानां [५]बोधिसत्त्वानां [६]बुद्धत्वावाहिकाः[७] पराः ।।८।।

एतदाह—**कायवाक्चित्तेत्यादि** । स्थानान्तरप्रभेदः[८] शिरआदिप्रभेदस्तमाश्रित्य, स्थिता इति वाक्यशेषः। अत एव य एते पीठादयश्चतुर्विंशतिराधेयरूपनाड्यो डाकिन्यस्तथा[९] तदाधारभूता दशनाड्यो भूमिरूपास्ताः । यथास्थानस्वरूपेणेति । स्थानमनतिक्रम्य यथास्थानम्, यस्या यस्या योगिन्या यद्यत् स्थानं तस्यास्तस्यास्तत्र तत्र स्थाने सहजस्थितिर्भवति, न कल्पिता[१०] ॥ ५-६ ॥

एता एव प्रमुदितादिदशभूमयो मया प्रोक्ता इति । तत्र शिरःशिखादक्षिणकर्ण[११]पृष्ठानि पीठं बोधिचित्तास्पदं सैव प्रमुदिता, लयादिक्रमेणानन्दत्रयजननात् । वामकर्ण[१२]भ्रूमध्यचक्षुर्बाहुमूलमुपपीठम्, पीठसमीपम् । सैव विमला, ज्ञानाग्निना विकल्पमलदाहात् । कक्षस्तनौ क्षेत्रम्, स्वेदक्षीरव्याजेन बोधिचित्तप्रसेचनात्[१३] । सैव प्रभाकरी, तदवलोकनान्मन[१४] आनन्दप्रभोत्पत्तेः[१५]। नाभिनासाग्रे उपक्षेत्रम्, [१६]बिन्दुसिङ्घानवाहित्वात् । सैवार्चिष्मती, ज्ञानाग्निप्रकाशकत्वात् । मुखकण्ठौ छन्दोह(छन्दोहः), रसोपभोगे छन्दवृत्तेः । सैव सुदुर्जया, रसान्निवर्तयितुमशक्यत्वात् । हृदयमेढ्रे उपछन्दोहः, अर्थाविगतौ भोज्यपाके[१७] तद्वैमुख्यात् । सैवाभिमुखी, तदवधौ पाके चाभिमुख्यात् । गुह्यगुदौ मेलापकम्, प्रज्ञोपाययोः समापत्तौ तन्मीलनान्नाड्यैक्याच्च । सैव दूरङ्गमा, तन्नाडीसौशीर्यस्य दूरत्वात् । ऊरुजङ्घे उपमेलापकम्, पूर्वोक्तयोरपि मीलनात् । सैवाचला, तद्योगस्यानिवार्यत्वात् । अङ्गुलीपादपृष्ठे श्मशानम्, सर्वपीठात्म[१८]त्वादविकल्पपदानुभूतेश्च । सैव साधुमती, साधुनो नैरात्म्यस्य तत्र विद्यमानत्वात् ।

---

१. सदाशिवानां—ञ. । २. दिरूपिणाम्—क. ख. ग. ङ. च. छ. ज. ट. ठ. ड. भो., रूपितम्-घ., समयानां तथैव च—ज. । ३. सर्वशिवानां—ञ. ढ. । ४. शिवानां—ञ. ढ, सर्वेषां बुद्धानां चैव ब्रह्मादीनां विशेषतः—ज. । ५. देवदेवानां—ञ. । ६. शिवेभ्यो-ञ. ढ. । ७. का परा-क. ख. घ. ङ. ट. ढ. । ८. न्तरभेदः—च । ९. न्यस्तदाधार—क. । १०. कथिता—ख. घ. छ. । ११. कर्णे—क. ख. । १२. कर्णे—क. घ., 'भ्रू' नास्ति—ख. घ. छ. । १३. प्रसवनात्—ख. च. छ. । १४. मनः सर्वानन्द-भो. । १५. भोत्पन्नः—ख. । १६. गन्ध—भो. । १७. मोक्षपाके— ख. छ. । १८. पीठात्म्यत्वा—च. ।

द्वात्रिंशद्बोधिचित्तानि[1] यदा यान्तीह पूर्णताम् ।
तदा [2]ससुतबुद्धानां बुद्धत्वं निकटं[3] भवेत् ॥९॥

स्वदेहे[4] चैव [5]बुद्धत्वं स्थितं नान्यत्र कुत्रचित् ।
देहादन्यत्र बुद्धत्व[6]मज्ञानेनावृतैर्मतम् ॥१०॥

अङ्गुष्ठजानुनी उपश्मशानम्, पूर्ववत् । सैव धर्ममेघा,[7] धर्मस्याधारणे स्थिरस्य मज्जोत्तरस्योर्ध्वश्रो(स्रो)तसा[8] मेघवद्वर्षणे नीरुजो वा[9] वृष्टियोगान्त[:][10]। इति दशभूमिसंगृहीतानि चतुर्विंशतिपीठानि । तान्येव दशभूमयो लयादिक्रमेण ज्ञानस्योत्तरोत्तरक्रमेण वृद्धौ ।

कस्य ता दशभूमय इत्याह—आलय इत्यादि । य एते चक्षुरादिषडिन्द्रियस्वभावा बोधिसत्त्वाः, तथा ये रूपादिस्कन्धरूपिणो बुद्धाः प्राक् प्रतिपादिताः, तेषां ता भूमयो भवन्ति. स्वभावेन वर्तन्ते बुद्धबोधिसत्त्वा आस्विति भूमयः । अत एव न केवलमार्याणां बुद्धत्वावाहिका यावत् पृथग्जनानामपि ये स्कन्धेन्द्रियस्वभावा बुद्धबोधिसत्त्वास्तेषामपि बुद्धत्वावाहिका भवन्ति, तत्त्वतस्तथागतपृथग्जनयोरभेदात् ॥ ७–८ ॥

ननु त्रिकल्पासंख्येयं(य)प्राप्य[ा] बोधिस्तत्कथं स्कन्धादयोऽभिसंबुध्यन्ते, इत्याशङ्क्याह—द्वात्रिंशदित्यादि । द्वात्रिंशतो बोधिचित्तानां यदा दम्भोलिमुखे पयोजक्रोडे[11] वा पूर्णत्वमनुभूयते, तदा बुद्धत्वं तेषां निकटे समीपे वर्तते । न कालापेक्षयेति विशेषः[12] ॥ ९ ॥

ननु च मनुष्यभावे वर्तमाना वयम्, बुद्धास्तु बुद्धक्षेत्रेष्वभिरत्यादिषु ज्ञानमण्डलरूपेण तिष्ठन्तीति कुतो बोधिर्निकटेत्याशङ्कां निराकर्तुमाह—स्वदेह एवेत्यादि । स्वरूपावबोधाद् बुद्धस्तस्य भावो बुद्धत्वम्, तत् स्वदेह[13] एव स्थितं[14] व्यवस्थितम् । अत एव तदेव बुद्धक्षेत्रम्, अत्रैव प्रकृतिसिद्धस्य सहजबुद्धस्यावस्थानात् । नान्यत्रै(त्रे)-त्यभिरत्यादौ । तस्माद्देहादन्यत्र बाह्येषु स्थानेषु बुद्धत्वं प्राकृतैः, प्रकृत्यां भवाः प्राकृता

---

१. चित्तानां–सर्वासु मातृकासु, गृहीतपाठस्तु भोटा० । २. समस्त–ढ. । ३. निश्चितं–भो. । ४. देहं–घ. । ५. शिवत्वं–ख. ढ. । ६. मन्देन वृथा मतम्–ज. । ७. 'धर्मस्या… ज्जोत्तरस्य' नास्ति–भो. । ८. स्यार्धश्रो–ख. घ. । ९. ना–क. । १०. ष्टिवोभान्त–ख., वृष्टिर्योगान्त–छ., बोधिचित्तकुन्दुरपातात्–भो. । ११. क्रोढे–ख. घ. छ. । १२. शेषः–भो. । १३. एतदेव–ख. छ. । १४. 'व्यवस्थितम्' नास्ति–ख. घ. छ. ।

पीठं चैवोपपीठं च क्षेत्रोपक्षेत्रमेव च ।
छन्दोहस्तु तथा चान्यदुपच्छन्दोहमित्यपि[1] ॥११॥

मेलापकस्तथा चैव उपमेलापकस्तथा ।
[2]श्मशानोपश्मशानं च पीठादिदशभूमयः ॥१२॥

इति [3]श्रीवसन्ततिलकायां[4] तथागत[5]कायगतनवस्रोतोभगमध्यगत[6]-नाडीदश[7]पीठादिभूमि[8]स्वरूपाख्याननिर्देशश्चतुर्थः[9] ॥४॥

•

यथैव जातास्तथैव स्थिता न तु व्युत्पन्नमतयस्तैः, मतमिष्टम् । निष्पन्नक्रमाधिगमविद्भिस्तु बुद्धत्वं स्वभावसिद्धत्वेनेष्यते, "पञ्चबुद्धात्मकु[10] सर्वंजगोऽयम्" इति वचनात् । "भवति तथागतः [11]परं मरणात्" इत्यव्याकृतवितर्की(र्का)श्च प्रत्याख्याता भवन्ति, "अबुद्धो नास्ति सत्त्वैकः [12]संबुद्धोऽस्त्वस्य स्वस्य च" (२।४।७३) इति हेवज्रवचनात् । आचार्यवज्रपाणिरपि—"नरा वज्रधराकारा योषितो वज्रयोषितः" इत्याह । तथागतगुह्यसूत्रेऽपि—"सर्वसत्त्वानां कायवाक्चित्तव्यवहारा[13]स्त्रिकुल-[14]गुह्यम्" इति । ज्ञानपादैरपि—"एवंविधैश्च चेतसि यत्किञ्चित्कायवाङ्मनस्कर्ममुद्रामन्त्राकारं गदितं सर्वबुद्धैः" इत्युक्तम् ॥ १० ॥

प्रागुक्तानां दशभूमीनां नामान्याह—पीठोपपीठेत्यादि । एषां निरुक्तिः प्रागुक्ता ॥ ११ १२ ॥

इति वसन्ततिलकायां निष्पन्नक्रमसाधनोपायिकायां [15]टीकायां रहस्यदीपिकायां चतुर्थनिर्देशे विस्तरव्याख्या ॥ ४ ॥

•

---

१. ह इत्यपि–ञ. ट. ढ. । 'छन्दोहस्तु ... भूमयः' इत्यस्य स्थाने ज.मातृकायामयं पाठः— 'छन्दोहं चोपछन्दोहं मेलापकं तथैव च । श्मशानोपश्मशानं च पीलवं चोपपीलवम् ।।" इति । २. श्मशानं चोपश्म–ञ. ट. ठ. ढ. । ३. 'श्री' नास्ति–क. ख. घ. ङ. च. छ. ज. । ४. तिलके–ज. ञ. । ५. शिवाय काय–ञ. ढ., तथागतकायनव–भो. । ६. गता–घ. ङ. छ. ज. । ७. पीठादिदशभूमीश्वराख्यान–भो. । ८. भूमिभूरूपा–क. ख. घ. ङ. च. छ. ज. । ९. तृतीयः–ञ., दशमः पटलः–ज. । १०. त्मक–ख. घ. छ. । ११. परमरणा–ख. घ. । १२. संबुद्धान् स्वस्य च–क. ख. घ., द्धात्–च. । १३. हारस्त्रि–क. ख. च. । १४. कुलगु–ख. घ. छ. । १५. 'टीकायां' नास्ति–ख. घ छ. ।

[1]पञ्चमो निर्देशः

[2]अथान्यतमस्य तथागतकायस्य नवस्रोतोभगमध्य[3]गता(त)नाडीस्वरूपपीठादिदश[4] भूमिपारमिताकायवाक्चित्तचक्रगत[5] स्थानान्तरभेदेन [6]देशभेदं कथयिष्यामि ।।१।।

शिरो मलयदेशस्तु[7] शिखा जालन्धर[8]स्तथा ।
[9]ओडियानस्तथा चैष[10] दक्षिणकर्ण[11] उच्यते ।।२।।

अथान्यतमस्येत्यादिना प्रागुक्तचतुर्विंशतिपीठानां शिरआदिस(सा)मानाधिकरण्येन नामानि तत्र स्थितनाडीनां खेचर्यादिस्वभावतामुद्देश[12]निर्देशक्रमेणाह—अथेत्यादि । कथयिष्यामीत्यन्तमुद्देशः सुगमः ॥ १ ॥

शिरो मलयदेश इत्यादिना निर्देशमाह । तत्र मलय इति महासुखस्वभावं[13] संवृतिपरमार्थाभिन्नबोधिचित्तं लीयते यत्र स मलयः, तथाभूतो देशो मलयदेशः शिरः, तत्रैव तस्य भावात् । नाडोजालस्य मूलं तद्वा(द्वा)रणे जालन्धरं शिखा । सव्यकर्णमार्गेण चण्डाल्या [14]ओड्याख्ये खेचरवृत्त्या यानं बहिर्निर्गमनं तत्र उड्डियानं[15] च दक्षिणकर्णः । आभ्यां स्वरव्यञ्जनदूतीभ्यां मुद्रात्रयसमापत्त्या कर्ममारुतेश्वरदण्डभेदादविकल्पसुखानुभव(वो) बुध्यत इत्यर्बुद[:] पृष्ठं शिरसः, पृषोदरादित्वाद्धस्य दः ।

---

१. ञ. ढ. मातृकयोर्नास्त्येष निर्देशः, अत्रान्यदेव प्रकरणमिति परिशिष्टे द्रष्टव्यम् । ज.मातृकायां तु नवमपटलतया स्थापितः । २. अस्य गद्यांशस्य स्थाने ज.मातृकायामयं पाठः—"अथान्यत् संप्रवक्ष्यामि कायं हेरुकस्य वै । चतुर्विंशतिवीरादि यथाभेदेन संस्थितम् ॥" इति । ३. मध्ये–ख. ग., मध्यगतो–घ., स्रोतोमध्य नाडी–भो. । ४. स्वरूपदशपीठादि–ग., 'पारमिता' नास्ति–भो. । ५. 'गत' नास्ति–ट. ठ. ड., 'चक्र' नास्ति–भो. । ६. भेदेन भेदं–ग., दशभेदं–घ. । ७. पीठस्तु–ज., देशश्च–ट. । ८. धरे तथा–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ., धरा–ज. ञ. । ९. ओड्यान–क. च. छ., ओड्यायन–ख. घ. ङ. ज., वडियान–ट. ठ. । १०. चैव–क. ख. ग. ङ. च. छ. ज. । ११. दक्षिणं–घ., कर्णमु–ग. घ. । १२. उद्देशं–क., तद्देश–छ. । १३. स्वभावः–क. । १४. वड्राख्य–ख. घ., वड्राख्ये–छ., ओड्याख्ये यानं बहिर्निर्गमनं तदेव वृत्त्या–क. । १५. ओड्रियानं–क., वुडियान–ख. घ., वडियानं–छ. ।

अर्बुदः [१]पृष्ठदेशस्तु चत्वारः पीठसंज्ञकाः ।
गोदावरी तथा ज्ञेया वामकर्णस्वरूपिका ॥३॥

रामेश्वर[२]स्तथा ख्यातो भ्रूमध्ये[३] त्वथ[४] चक्षुषी ।
देवीकोट्ट[५]स्तथा चान्यो बाहुमूलं[६] तु मालवः ॥४॥

इत्येवमुपपीठास्तु[७] चित्तचक्रे व्यवस्थिताः ।
खेचरीणां समाख्याताः स्थानविशेषरूपिणः[८] ॥५॥

एते पूर्वोक्तेन न्यायेन चत्वारः पीठसंज्ञका ज्ञेयाः, [९]तत्रत्यानां च नाडीनां[१०] चतसृणां खेचरीणां [११]प्रचण्डादिनामधेयानां गोचरा विषया आधारस्वभावा ऊष्मादिसाधर्मे-(र्म्यें)ण चतुष्प्रकारा विकल्पसुखानुभवेन विशिष्टमोदानुभवा मुदिता [१२]भूरपीति ॥ २–२½ ॥

गां [१३]भुवभूव(भुवं भू)स्वभावं निर्माणचक्रं वरत[१४] इति गोदाऽवधूती, तया व्रियते च्छाद्यत इति गोदावरी वामकर्णः, तया तस्य व्याप्तेः। रामा च रामा च ते रामे ललनारसनास्वभावे भ्रुवौ, तयोर्मध्ये ईश्वरत्वं यस्य ज्ञानार्चिषस्तद्[१५] भ्रूमध्यमित्यूर्णाकोषम्। देव्यास्तस्या एव कोट्ट[१६] इह(व) कोट्टो देवीकोट्टः, तदाश्रये नेत्रद्वयम्(ये) तत्प्राप्तेः। तथा बाह्वोरन्तर्भुजयोर्यदेतन्मूलद्वयं स्कन्धद्वयं तत्रैव मालवम्। मालानां विजातीयविकल्पानां लवनात् छेदनाद् मालव इत्युच्यते, तथानुभवात्। एते उपपीठास्तत्रत्यानां नाडीनां वीरमती-खर्वरी-लङ्केश्वरी-द्रुमच्छाया-स्वरूपाणां खेचरीणां गोचरा विषया ज्ञातव्याः। इति चित्तचक्रम् ॥ ३–५ ॥

---

१. पृष्ठवंश–घ., दस्तु शिरःपृष्ठः–ज.। २. श्वरसमाख्याता–क. ख. ग. घ. च. छ. ज., रामेश्वरी समाख्याता–भो.। ३. मध्य–क. घ. ङ. च. ज.। ४. त्वध–क. ख. ग. घ. ङ. च. ज. झ., भ्रूमध्यनयनस्मृता–ज.। ५. कोटच–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ., देवीकोटमहापीठ–ज.। ६. मूलस्तु–क. घ. ज., मूले तु–ग.। ७. पीठस्तु–क. ख. ग. घ. च. छ. ज.। ८. स्वरूपिणः–क. ख. घ. च., पिणी–ठ., शेषचारिका–ज.। ९. तत्रस्थानां–ख.। १०. नास्ति–ख. च.। ११. 'प्र' नास्ति–क.। १२. भ्रूरपी–च.। १३. शास्तवम्भ–ख. छ., शास्तवभू–घ.। १४. वर इति–ख. घ. छ.। १५. स्तज्ज्ञैर्मध्य–ख. छ.। १६. कोटये–ख. छ., कोटयेति कोट- घ.।

कामरूपो[1] मतः [2]कक्षौ [3]स्तनावोड्र[:] प्रकीर्तितः[4] ।
एते[5] क्षेत्रे[6] समुद्दिष्टे[7] नाभिस्त्रिशकुनिर्मतः ॥६॥

कोशलो नासिकाग्रं[8] तु [9]तदुपक्षेत्रमुच्यते ।
कलिङ्गस्तु[10] मुखं[11] प्रोक्तं लम्पाकः कण्ठमध्यके[12] ॥७॥

छन्दोह[13] इति विख्यातो[14] हृदयं काञ्चिरुच्यते ।
[15]मेढ्रे हिमालयं[16] चैव[17] उपछन्दोह इत्यपि ॥८॥

कक्षद्वयं स्तनद्वयं यथाक्रमम्, कामं रूपमभिलषणीयं दर्शनं यस्य स कामरूपः कक्षद्वयम्, [18]ओडचोर्ध्वंगमनेन राति स्वीकरोति चण्डालीति ओड्र[19] स्तनद्वयम्, एतद् द्वयं पूर्वोक्तेन न्यायेन क्षेत्रम् । नाभिर्नासिकाग्रं च द्वे[20] त्रिशकुनिकोशलौ । त्रयः शकुनयः पक्षिसदृशाः खगमुखाकाराः कायवाक्चित्तनाड्यो यत्र तत् त्रिशकुनिर्नाभिस्थानम्, वज्रग्रन्थिरूपत्वात् । तथा कोशलं सिङ्घानं स(श)लति[21] वहति यस्मात् तत्कोशलं नासिकाग्रम् । एते पूर्वोक्तक्रमेणोपक्षेत्रे विज्ञेये ॥ ६-६½ ॥

मुखकण्ठे कलिङ्गलम्पाकौ । कं[22] सुखं[23]लिङ्गयति गमयतीति कलिङ्गम्, सेवा-काले तद्दर्शनादेवानन्दोत्पत्तेः । तथा [24]लम्बिकाऽधराऽमृतास्वादनलम्पटा रसना, तद्योगात् लम्पाकः कण्ठः । तौ पूर्वोक्तव्याख्यया च्छन्दोह इत्युच्येते[25] । हृदयं मेढ्रश्च

---

१. रूपमतं-क. ग. घ. ङ. च. छ. ज., मत-ख. । २ कुक्षौ-ग. घ., कक्षः-ज. । ३. स्तना ओड्र-क. ख. ग ङ छ. भो., स्तनाधो ओडुकी-ज. । ४. तिताः-ग. ट. ठ. । ५. एतौ-क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. भो., द्वौ च-ज. । ६ क्षेत्र-क. ख. घ ङ च. छ, क्षेत्रौ-भो ज. । ७. द्दिष्टौ-घ., क्षेत्रमुद्दिष्टे-ट. ठ. । ८. ग्रस्तु-क. ख. च. ज. । ९. उपक्षेत्रौ प्रकीर्तितौ-ज. । १०. ङ्गं तु-क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. ज. । ११. मुखे-ङ. । १२. मध्यकः-घ., संज्ञिकः-ज., ध्यगे-ट. ठ. । १३. हमिति-ग, हाविति-ज., हस्तौ तु-ट. ठ. ड. । १४. ख्याता-ग., ख्यातौ-ट. ठ. ड. । १५. ओष्ठे-भो. । १६. लये-घ. छ., यश्चैव-ट. ठ. ड । १७. प्रोक्तं-ज. । १८. वड्यो-घ., उड्यो-च. । १९. वड्रं-ख. घ. छ., उड्रं-च, । २०. 'द्वे' नास्ति-ख. घ. छ. । २१. समलति-ख. घ. छ. । २२. मुखं-क. ख. । २३. लिङ्गयतीति-क. । २४. लम्पिका-क. ख. च. छ. । २५. त्युच्यते-क. ख. ।

इत्येवं [1]सर्वदेशास्तु वाक्चक्रे संव्यवस्थिताः ।
भूचरीणां समाख्याताः स्थानविशेषरूपिणाम्[2] ।।९।।

प्रेताधिवासिनी लिङ्गे गुदं तु गृहदेवता ।
[3]एतौ मेलापकः [4]प्रोक्तावूरू सौराष्ट्र उच्यते ।।१०।।

काञ्चीहिमालयौ। तथा हि—कं [5]सुखमञ्चति गच्छति धावति, कदलीपुष्पसंकाशं (श)-लम्बमानाधोमुखीस्रवदमृतबिन्दुहूँकाराकारमारदारिकानालिकासम[6]न्वागतत्वात्। हिमवर्णं बोधिचित्तम्, तस्यास्पदत्वाद् हिमालयो मेढ्रं इत्युच्यते। उपछन्दोहः पूर्ववत्। इत्येवमित्यादिना तत्रत्यानां नाडीनाम् ऐरावती-महाभैरवा-वायुवेगा-सुराभक्षी-श्यामा-देवी-सुभद्रा-हयकर्णा-खगाननानां भूचरीणामेतानि स्थानानि ज्ञेयानीति। भूचर्यः, कायस्य मध्ये स्थितत्वात् ॥ ७-९ ॥

तथा लिङ्गं द्विधा—स्त्रीलिङ्गं पुल्लिङ्गं च। गुदेऽपि तथैव। तौ यथाक्रमं प्रेत-पुरी-गृहदेवते [7]ज्ञेये। तथाहि—प्रेतानां पञ्चानामाकाशानां पुरी इव[8] पुरी [9]प्रेतपुरी सा ध्वजयुगली[10]। गृहस्य शरीरस्य देवता वैरोचनो[11] गृहदेवता विड्धातुः, तदाधारत्वाद् गृहदेवता गुदद्वारम्। ते यथाक्रमं मेलापकसंज्ञके ज्ञेये, ध्वजद्वयस्यापानमार्गस्य च समापत्तिकाले समायोगात्।

तथा ऊरुद्वयं जङ्घाद्वयं च सौराष्ट्रं सुवर्णद्वीपं च विज्ञेयम्। तथाहि—सौख्यस्य राष्ट्रम्, विशिष्टकालदर्शने[12] च ऊरुद्वयमेवान्योन्यम्। तथा सुवर्णस्य सुसितत्विषश्चित्तस्य द्वीपमिव द्वीपं जङ्घाद्वयमेवैतत्[13] पूर्ववदुपमेलापकं विज्ञेयम्।

तथा पादाङ्गुल्योऽष्ठौ पादपृष्ठं च नगरं सिन्धुश्च ज्ञातव्यौ। न गच्छन्तीति नगा अङ्गुल्यः, अतः परमप्रसरणान्नगरम्। [14]पादपृष्ठादङ्गुष्ठे बोधिचित्तस्य स्पन्दनात् सिन्धुः पादपृष्ठम्। एतद् द्वयं पूर्वोक्तेन न्यायेन श्मशानम्।

---

१. उपपीठास्तु-ज.। २. रूपिणी–ग. घ. ङ. छ., चारिकाः–ज.। ३. द्वौ च मेलापकौ-ज.। ४. प्रोक्तमुरू-क. ख. घ., प्रोक्ता–ग., कक्षौ ऊरू–ट. ठ. ड.। ५. मुख–क. ख.। ६. समत्वात्–ख. छ.। ७. ज्ञेयं-ख छ.। ८. पुरी च-क. ख.। ९. नास्ति–ख. घ. छ.। १०. मुगरी–घ.। ११. रोचना–क. ख. घ. छ.। १२. दर्शनं-छ.। १३. द्वयमेव तेन पूर्व-छ.। १४. यदङ्गुष्ठा–ख. घ.।

जङ्घाद्वयं तु विख्यातं सुवर्णद्वीपसंज्ञकम् ।
उपमेलापक[1]श्चैव अङ्गुल्यां नगर[:][2]स्मृतः ॥११॥

सिन्धुस्तु पादपृष्ठं वै[3] श्मशानं समुदाहृतम् ।
अङ्गुष्ठस्तु[4] मरुः[5] प्रोक्तः कुलुता[6] जानुरुच्यते ॥१२॥

उपश्मशानमेतत्तु[7] पीठादिदशभूमयः ।
एताः स्वदेहजाः सर्वा भिद्यन्ते स्थानभेदतः ॥१३॥

सबाह्याभ्यन्तरस्थास्तु[8] बुद्धानां दशभूमयः ।
कायवाक्चित्तचक्रेषु चतुर्विंशतिभेदतः ॥१४॥

पादाङ्गुष्ठे जानुनी च मरुकुलते विज्ञेये । [9]मस्य महासुखस्य रवनाद् नदनाद् मरुः । कुविकल्पानां लवनात् कुलता । ते द्वे यथाक्रमं पूर्ववदुपश्मशाने इत्युच्येते[10] । एता[11] दशभूमयः पीठाद्या इति पीठादिसंकेतिताः ॥ १०-१२½ ॥

स्वदहेजा इति दशमासक्रमजाः स्वदेहेन सह जाताः, न तु दृङ्मार्गक्रमेण प्राप्या इति । ताः पुनः स्थानभेदेनोक्तप्रायेण भिद्यन्ते । अत एव बाह्यद्वारैः सह नवभि-राभ्यन्तर्या चैकया संकलय्य दशभूमय उच्यन्ते । कस्य ता भूमयः ? बुद्धानामिति रूपस्कन्धादिरूपिणां ज्ञानैकात्मनाम् । अथवा बुद्धाश्चतुर्विंशतिधातुरूपा वीराः । बुद्धाश्चाभेद्यादयश्चतुर्विंशतिनाड्यः । एकशेषे सति वीरयोगिनीनां सहजा एता दश भूमयः, न तु कल्पिताः साध्या वेति भावः ॥ १३-१३½ ॥

नैता आर्याणामेव भूमयः, अपि तु पृथग्जनानामपीति दर्शयितुमाह—चित्त-[12]वाक्कायचक्रेष्वित्यादि । प्रागुक्तक्रमैश्च देहस्थितचित्तादिचक्रेषु चतुर्विंशतिस्थानभेद-

---

१. पकौ प्रोक्तौ–ज. । २. स्मृताः-क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. ज. । ३. च–ठ., सिन्धुस्तु पादपीठाख्यः श्मशानौ समुदाहृतौ–ज. । ४. ष्ठं तु-क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. ज. । ५. मेरुः–ख. ज. । ६. 'कुलता' इति सर्वमातृकासु, गृहीतपाठस्तु भोटानुसारी । ७. श्मशानौ विख्यातौ–ज. । ८. स्था ये–ग ङ., स्थाने–ज. । ९. अस्य–क. घ., यस्य–छ. । १०. च्यन्ते–क. ख. । ११. एते– छ. टी. । १२. कायवाक्चित्तचक्रेषु-भो. ।

स्थानानि सर्वनाडीनां समाख्यातानि सर्वतः ।
एषु स्थानेषु डाकिन्यो [1]नाडीरूपेण संस्थिताः[2] ॥१५॥

इति [3]श्रीवसन्ततिलकायां पीठादिदशभूमि[4]देश-
भेद[5]निर्देशः पञ्चमः[6] ॥५॥



भिन्नेषु सर्वदेहिनामपदद्विपदचतुष्पदबहुपदानामपि नाडीरूपेणैता भूमयो दश स्थिता इति, तत्त्वतः सर्वेषामेव सत्त्वानां भूमीश्वरत्वात् ॥ १४-१५ ॥

इति वसन्ततिलकायां निष्पन्नक्रमसाधनोपायिकायां रहस्यदीपिकायां
टीकायां[7] पञ्चमनिर्देशविस्तरव्याख्या ॥ ५ ॥



---

१. नाडि–क. ख. घ. ङ. च. छ. ज. । २. अतः परं ज मातृकायामधिकः पाठः– सर्वासां डाकिनीनां च प्रभुः श्री हेरुकेश्वरः । ३. 'श्री' नास्ति–क. ख. घ. ङ. च. छ. ज. भो. । ४. भूमिविस्तारभेद–भो., दशभूमिनिर्देशः–ज. । ५. भेदेन·ट. ठ. ड. । ६. नवमः पटलः–ज. । ७. नास्ति–ख. घ छ.

षष्ठो निर्देशः

अथान्यतमस्य तथागतकायस्य[1] [2]यथास्थानगतनाडीचक्रं पिण्डतः [3]सूचयिष्यामि ॥१॥

[4]स्वहृन्मध्यगतं पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम् ।
तस्य [5]मध्यगता नाडी ज्वलद्वह्निस्वरूपिका[6] ॥२॥
कदलीपुष्पसंकाशा लम्बमाना[7] त्वधोमुखी ।
तस्य मध्ये स्थितो[8] वीरः सर्षपस्थूलमात्रकः[9] ॥३॥

इदानीं स्वदेहस्थितनाडीचक्रमेव सर्वचक्रस्थितडाकिनीस्वभावं तदधिपतेश्च स्वभावसिद्धमन्त्रात्मतां प्रतिपादयितुं षष्ठनिर्देशमवतारयितुमथेत्याद्याह । अन्यतमस्येति सर्वसत्त्वधातुगतस्य । तथागतकायस्येति पूर्ववत् । स्कन्धादिस्वभावाद् वा [10]नवतिदेवातामयस्य । यथास्थानं स्थानमनतिक्रम्य । नाडीचक्रमेव योगिनीगणम् । सूचयिष्यामः[11] कथयिष्याम इत्युद्देशः ॥ १ ॥

[12]तत्राधिपतेर्मन्त्र[13]रूपेण स्थितिमाह—हृन्मध्यगतमित्यादि । इह सर्वदेहिनां हृदये धर्मचक्रकर्णिकाकेशरान्विताष्टदलं नाडीचक्रं प्रहराष्टकविशुद्धिस्वभावं विद्यते । तस्य मध्ये तैलवह्निस्वरूपिण्यधोमुखी कदलीपुष्पसदृशी त्रिवृतानाम्नी[14] या, तन्मध्ये रविकिरणनिकरविगलित[15]प्राभातिकावश्यायकण[16]सदृशबिन्दून् मुञ्चन् सूक्ष्मसर्षपप्रमाणो हूँकार उच्चारयितुमशक्यत्वादनाहतः सर्वविकल्पभयेभ्यो [17]निर्गतत्वाद्वीरः, स एव

---

१. गतस्य–ञ. । २. यथागतनाडी–ञ. ढ., स्थानगतं नाडीस्वरूपं डाकिनीचक्रं–ज. । ३. सूचयामि–ञ. ट. ठ. ड. ढ. । ४. हृन्मध्यमतं–ञ. ट, ठ. ड. ढ. भो., संगतं–ज. । ५. मध्ये गता–घ. ञ. ढ. । ६. पिता–ख. । ७. मानामधो–क. ख. ग. ङ. च. छ. मानमधो–घ., माना अधो–ज. भो. । ८. स्थितं वीरं–ज. । ९. र्षपं''''त्रकम्–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. ज. । १०. 'नवति' नास्ति-भो. । ११. ष्यामि–भो. । १२. वज्राधि–ख. घ. छ. । १३. पतेर्धर्ममन्त्र–ख. छ. । १४. नाम्ना–क. । १५. गनित–क. ख. । १६. करकसदृ–छ. । १७. निर्भीतत्वा–क. ख. घ. छ. ।

हूँकारोऽनाहतं[1] बीजं [2]स्रवत्तुषारसन्निभम् ।
वसन्त[3] इति विख्यातो देहिनां हृदिनन्दनः[4] ।।४।।

वडवानलरूपा तु[5] वाराही तिलका स्मृता ।
कर्ममारुतनिर्धूता ज्वलन्ती नाभिमण्डले ।।५।।

[6]वसन्तं प्राप्य सन्तुष्टा समापत्त्या व्यवस्थिता ।
[7]एष श्रीहेरुको वीरो वसन्ततिलका[8] स्मृता ।।६।।

सर्वदेहिनां हृदयानन्दजनकत्वाद् वसन्त इव वसन्तो भगवान् श्रीहेरुक इति ज्ञातव्यः। न तु चतुर्वक्त्रो द्वादशभुजः ॥ २-४ ॥

येयं[9] वाडवाग्निसदृशी ज्ञानाग्निर्मन्थ[10]मन्थानसंयोगलक्षणकर्ममारुतोद्बोधिता नाभिदेशाज्ज्वलन्ती ऊर्ध्वमार्गेण गत्वा तं वीरं हृदयस्थं तदमृतनिर्झरधारासारेण तथैव द्रावितेन स्पृष्टा, अत एवाद्वययोगात् समापत्त्याऽवस्थिता वसन्ततिलकेत्युच्यते ॥ ५-५½ ॥

अत एवाह—एष श्रीत्यादि। योऽयं हूँकारः प्रागुक्तलक्षण उक्तः, स[11] एव श्रीहेरुकः। ज्ञानज्वाला तु वज्रवाराही तिलकेत्युच्यते। सैव सचराचरे स्थावरजङ्गमात्मके जगति प्रागुक्तं योगिनीरूपं रक्तवर्णमादाय स्थिता। तथा सैव भगवती कायादिभेदभिन्नाऽधममध्यमोत्तमद्वारत्रयेणाभिद्य पञ्चदशभेदेन[12] गमनागमनस्थितीः[13] करोति। न च सैवापि तु सर्वदेहे व्यवस्थितेत्यर्थः ॥ ६-७½ ॥

मण्डलाधिपतेश्चतुश्चक्रव्याप्तिं दर्शयितुमाह—नाभावित्यारभ्य क्रीडतीह यथासुखमित्यन्तेन। तत्र निर्माणचक्र(क्रे) नाभौ स एव वसन्तो अकारो ह्रस्वरूपः। हृदि धर्मचक्रे नादबिन्दुयुक्तहूँकाराकारः। संभोगचक्रे कण्ठे स एव त्रिमात्रः प्लुतः

---

१. हूँकारप्रभवं–ज.। २. श्रवसाररसं यथा–ज.। ३. न्तमिति विख्यातं–ज., वसन्ता इति–ठ.। ४. नन्दनम्–ज.। ५. हि–ज.। ६. वसन्तेनापि पतिना समाश्लेषव्यवस्थिता– ज.। ७. तस्मात् श्री–ज.। ८. कः स्मृतः–ज. ढ.। ९. येयं च–छ.। १०. मन्थ्य–क. ख.। ११. 'स एव श्री हेरुकः' नास्ति–ख. घ. छ.। १२. 'पञ्चदशभेदेन' नास्ति–भो.। १३. स्थितीन्-क., तिं–छ.।

[1]योगिनीरूपमाधाय[2] संस्थिता[3] सचराचरे ।
कायवाक्चित्तभेदेन त्रिविधो द्वारनिर्गमः[4] ॥७॥
गत्यागती[5] करोत्येष[6] सर्वदेहे व्यवस्थितः[7] ।
[8]नाभावकाररूपेण [9]ह्रस्वस्तु परिकीर्तितः ॥८॥
हृदयेऽपि हि हूँकारो[10] दीर्घमात्राद्वयस्मृतः[11] ।
कण्ठे [12]ॐकाररूपेण त्रिमात्रः[13] प्लुत उच्यते ॥९॥

प्रणवरूपः । नाडीकौटिल्यात्तस्य त्रिपरिवर्तश्चाण्डाल्याः प्रवेशान्निर्गमा[14]च्चेति कृत्वा । ललाटे महासुखचक्रे विन्दुनादभूषितोऽनाहताक्षरो हंकारः[15] । तदेव विलोमेन शिरः-कण्ठहृदयनाभिरूपः श्रीहेरुको मन्त्रमूर्तिः । तदाधारमाह—पृथिव्यादिस्वभावानि यानि चत्वारि चक्राणि तानि तस्य बुद्धक्षेत्रम् । अहोरात्रे[16] चतस्रः सन्ध्या मध्याह्न-प्रदोषार्धरात्रप्रत्यूषलक्षणा[17]श्चक्रवाहिन्यश्चतुःपञ्चाशच्छतश्वाससंख्याः, त एव तस्य प्रज्ञासनाथस्य चत्वारो[18]मुखाः । य एते विचित्रादयश्चत्वार आनन्दोपलक्षणभूताः

---

१. इतः पूर्वं ज. मातृकायामधिकः पाठः—

तद्बीजं सर्वलोकानां चराणां स्थिराणामपि ।
स्थितं तद्बीजजातेन व्यक्ताव्यक्तस्वरूपतः ॥
सर्वेषां देहिनां देहं तस्मादुत्पन्नं जायते ।
स्रवदमृतरूपेण व्यवस्थितमहर्निशम् ॥
तेनैव जायते कामो जगत्सृष्टिप्रहेतुना ।

२. मादाय-क. ख. ग. घ. ङ. च. छ झ. । ३. स्थितः-क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. ज. । ४. घे द्वारनिमित्ते-ज., धाङ्गारनिर्गमे-ट. ठ. ड., धाद्वार-ढ. । ५. गत्यागति-क. ख. ग. ङ च. छ. ज., गम्या-घ. । ६. त्येषु-ट. ठ. ड, ढ. । ७ स्थिताः-ट. ठ. ढ. । ८, नाभौ वंकार-सर्वासु मातृकासु, गृहीतपाठस्तु टीकाकारसम्मतः । ९. ह्रस्वत्वेन सबिन्दुना-ज. । १०. पि हूकारेण-ज, ये स्थित हूँ-ञ. ट. ठ. ड. । ११. दीर्घत्वेन सबिन्दुना-ज., द्वयस्मृताः-क. ख. च., द्वये स्थिताः-ञ. ट. ठ ड. ढ., द्वये स्थितः-भो. । १२. हूंकार-ग, चाकार-ज. भो., वांकार-ञ., वोकार-ट. । १३. मात्र-क. ख. च, मात्रा-ग. घ. ङ. छ., प्लुतत्वेन व्यवस्थितः-ज. । १४. गमश्चे-घ. च. छ. । १५ हूँकारः-ख. घ. छ । १६. रात्रेश्च-क, रात्रेण-ख. घ. छ. । १७. लक्षणश्च-ख. घ. छ. । १८. 'रश्चरणाः' इति सार्वत्रिकः पाठः, गृहीतस्तु भोटानुसारी ।

ललाटे तु[1] हंकारोऽसौ नादो[2] बिन्दुरनाहतः ।
पृथिव्यादिमहाभूते[3] चतुश्चक्रप्रभेदतः ॥१०॥

चतुःसन्ध्या[4]मधिष्ठाय चतुःक्षणसमुद्भवः[5] ।
चतुरानन्दरूपस्तु[6] चतुर्योगपरायणः[7] ॥११॥

परमान्दरूपेण क्रियाकारकभावतः[8] ।
[9]श्रीवज्रसत्त्वरूपेण क्रीडतीह[10]यथासुखम् ॥१२॥

दलानां[11]चतुष्टयेऽपि चतुर्दिक्षु व्यवस्थिताः[12] ।
चतस्रो[13]भूतनाड्यस्तु चित्तवज्रपदे स्थिताः[14] ॥१३॥

क्षणा आनन्दादयश्च[15] चत्वारस्त्वरितबाष्पविबन्धकविश्वस्तकाश्चत्वारो योगाः [16]प्रत्याख्यातास्त एव तस्य द्वादशभुजास्त एव[17] चोर्ध्वंप्रवृत्ता द्वादश नेत्राणि त एव मध्यवर्तिनो[18]द्वादशायुधानि। अत एव क्रियाकारकयोर्दाहिकाऽऽप्या[19]यिकयोर्भाविन सामरस्येन श्रीस्तिलका, वज्रसत्त्वो वसन्तस्तयो रूपम्, तेन यथासुखं चतुरानन्द-रूपत्वमाश्रित्य क्रीडति, सर्वदेहिनां देहे[20] रमत इत्यर्थः ॥ ८-१२ ॥

एवं मध्यनायकं सप्रज्ञं मुखभुजवर्णसंस्थानचिह्नमध्यात्मरूपं प्रकाश्य ज्ञानचक्र-डाकिनी[21]पूजाकलशचतुष्टयं च प्रतिपादयितुमाह—दलानां तु चतुष्टयमित्यारभ्य पञ्च-नाड्यो व्यवस्थिता इत्यन्तेन ग्रन्थेन। तत्र धर्मचक्रस्य [22]पूर्वोत्तरपश्चिमदक्षिण-दिग्भागस्थिताश्चतस्रो धारणस्रावण[23]तेजनप्रेरणलक्षणास्त(ा) एव चित्तवज्रस्य

---

१. ऽपि हकारेण रूपेण बिन्दुना सह–ज, तु हूँकारो–ञ. ढ. । २. नाभेर्वि–ग. । ३. भूताश्चतु–क. ख. ग. ङ. च. छ. । ४ सन्ध्य–ज. । ५. चतुःक्षणे व्यवस्थितः–ज. । ६. रूपास्तु–क. ख. ग. च छ. झ., रूपेभ्यश्च–घ., रूपेण–ज. । ७. र्योगभरेण हि–ज. । ८. भावकः–ट. ठ. ड. भो. । ९. खवज्रस्वरूपेण–घ. । १०. महासुखम्–ज. । ११. दलानान्तु चतुष्टेऽपि– क ख. च, दत्त्वानान्तु–ग. ङ. छ., दत्त्वा तं तु –घ, चतुष्के–भो., द्वाराख्ये हि दलेऽपि च–ज., चतुष्टये वापि–ञ., चापि–ढ. । १२. स्थिते–ज. । १३. नाड्यभूत्वा तु–ज. । १४. स्थितः–घ. ङ. छ. ज । १५. दयश्चत्वार–क. ख. घ. छ. । १६. प्रति आख्याताः प्रत्येकमाख्याता इत्यर्थः । १७. एवोर्ध्व–क. ख. छ. । १८ द्वादशानि–ख. छ. । १९. ध्यायि–क. च । २०. देहमत–ख., देहे रत–छ. । २१. प्रजा–ख. छ । २२ पूर्वोक्ता पश्चि–ख. छ. । २३. श्रावण–छ. ।

डाकिनी च[1] तथा लामा [2]खण्डरोहा च रूपिणी ।
विदिक्षु[3] व्यवस्थिता नाड्यश्चतस्रस्तद्गता[4] अपि ॥१४॥
पञ्चामृतवहास्तास्तु[5] [6]तत्पूजारूपतां गताः ।
चतुःपूजेति[7] विख्यातास्तद्रूपा[8] एव भावतः ॥१५॥
इति देहस्य हृन्मध्ये पञ्चनाड्यो व्यवस्थिताः ।
कायवाक्चित्तचक्रेषु[9] चतुर्विंशत्युदाहृताः[10] ॥१६॥

श्रीहेरुकस्य पदे ज्ञानचक्रे स्थिता यास्ता एव डाकिन्यादयो डाकिनी-लामा-खण्डरोहा-रूपिण्यो विज्ञेयाः। तत्र पृथिव्याकाशे डयनाद् डाकिनी। अब्धात्वाकाशे लसनात् लामा। छान्दसो वर्णव्यत्ययः। तेजआकाशः, शे) खण्डयति गच्छतीति [11]खण्डम्, तद्विशुद्धया तत्रैव रोहतीति खण्डरोहा। ततः समानाधिकरणसमासः। वाय्वाकाशं रूपयति विशोधयतीति रूपिणी। दिग्डाकिनीरुक्त्वा विदिक्षु पूजाकलशानाह—**विदिक्षु व्यवस्थिता** इति। तत्रैव ज्ञानचक्रे हृदि याः पञ्चामृतवाहिन्यः कोणस्था नाड्यस्ता एव कलशाकृतयस्तद्भूतशुषिर[12]कपालमालास्थितसुधात्मानश्चतस्रः पूजा ज्ञातव्याः। उपसंहारमाह—**इति देहस्ये**त्यादि। एवमुक्तेन न्यायेन शरीरमध्ये पञ्चनाड्यस्त्रिवृताद्या ज्ञानपद्मडाकिन्यश्चतुःपूजाभिः सह ज्ञेयाः। न तु बाह्याः कल्पिताः, अनुभवनादरूपत्वात् ॥ १३-१५½ ॥

त्रिचक्रनाडीरूपा योगिनीराह—**कायवाक्चित्ते**त्यादि। चित्तवाक्कायेति वक्तव्ये विलोमपाठोऽभव्येषु गोपनार्थः। ततश्च चित्तादिचक्रे शिरआदिचतुर्विंशतिपीठाद्यात्मके प्रचण्डाद्याश्चतुर्विंशतिनाडीरूपेणैव स्थाने स्थाने इति पीठोपपीठादिके उपश्मशानपर्यन्ते जानुद्वयान्ते स्वभावसिद्धा एव व्यवस्थिताः,[13] मूलतन्त्रेऽपि—"योगिन्यः

---

१. तु–क. ख. ग. ङ. च. ज. । २. खण्डारोहा तु–घ., तु–क. ख. ग. ङ. च. छ. ञ. ।
३. दिक्षु व्यव–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ., दिक्षु स्थिता नाड्य–ज. । ४. स्तश्चामृतावहाः–ज. ।
५. हाश्चैव–ज. । ६. पञ्चाङ्कुशधराः पराः–ज. । ७. पूज्येषु–ग., पूज्येति–ज. ड. ।
८. द्रूपादेव–ज. । ९. चक्रे तु–ञ. ठ. । १०. विंशतिभेदतः–ज., विंशदुदा–ञ. ट. ठ. ढ ।
११. खाण्ड–क. ख. घ. च. । १२. काकपालावली–क. ग., डाक–ख. घ. छ., ताक–च., गृहीतपाठस्तु भो. । १३. 'मूलतन्त्रे " शिरसिजाः स्मृताः' अयमंशो नास्ति–च. ।

पीठादिभेदमाश्रित्य स्थाने[1]स्थाने व्यवस्थिताः ।
शिरसस्तु[2] समुद्भूता नाड्यः शिरसिजाः स्मृताः ॥१७॥

रजःसत्त्वतमोरूपास्तासां मध्ये तु[3] नायिकाः ।
पुल्लीरे[4] तु प्रचण्डाख्या नखदन्तवहा स्मृता[5] ॥१८॥

जालन्धरे तु[6] चण्डाक्षी केशरोमवहा तथा[7] ।
[8]ओडियाने महापीठे प्रभावती[9] व्यवस्थिता ॥१९॥

[10]दक्षिणकर्णमाश्रित्य स्थिता त्वङ्मलधारिणी[11] ।
अर्बुदे तु[12] महानासा डाकिनी [13]पिशिताशिनी ॥२०॥

चतस्रस्तु समाख्याता डाकिन्यः पीठनायिकाः[14] ।
[15]महोरुस्था [16]तु या नाडी गोदावर्यां[17] व्यवस्थिता ॥२१॥

वं रमतीति विख्याता स्थिता[18] सा दृढरूपतः ।
रामेश्वरे तु[19] या नाडी प्रसिद्धा खर्वरीति सा ॥२२॥

सहजा[ः] सिद्धा[ः]" इति वचनात्। ता एवाह—**शिरसस्तु समुद्भूता नाड्यः शिरसिजाः स्मृता** इति। इह महासुखचक्राद् द्वात्रिंशन्नाड्यः प्रादुर्भवन्ति, हिमवत्त[20] इव सरितः ॥ १६-१७ ॥

---

१. स्थामास्थाने–क. ख. घ. ङ. च. छ. झ., स्थानस्थाने-ट. ठ. ड., स्वस्वस्थाने–ञ. ढ. । २. शिरस्तस्तु–क. ख. ग. ङ. च. छ. झ., अस्य श्लोकार्धस्य स्थाने–'त्रिगुणत्वं समागम्य नाडी त्रिगुणजा स्मृता' इति पाठः–ज. । ३. च–ज. । ४. रेति–क. ख. च. झ., रे च–ज. । ५. स्थिताः–ज., स्मृताः–ढ. । ६. च–ज. । ७. स्थिताः–ज. । ८. ओड्यायने–क. ख. ङ. च. छ. ज. झ., चण्डारण्ये–घ., वडियाने–ट. ठ. ड. ढ. । ९. मति–घ., वति–ञ., मती-ट. ठ. ड. । १०. दक्षिणपीठ–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. झ., दक्षिणे–ठ. ड., दक्षिगं–ञ. ढ. । ११. वाहिनी–ञ. ढ. । १२. च–ज. । १३. पिशितवहा–ज., घ. मातृकायां 'अर्बुदे……शिनी' नास्त्ययं श्लोकार्धः । १४. नायकाः-क. ख. घ. च. ज. । १५. नहारस्था-क, नहारु–ख. भो., नखान्तस्था-ग., नहोरु–ञ. ट. ड. ढ. । १६. वामकर्णे च-ज. । १७. गोदावरी–ट, गोडावली–ञ. ढ । १८. हनुशिरवहा स्थिता-ज. । १९. च–ज. । २०. वर्त–क., वन्त–घ. च. छ. ।

[1]अस्थिमालाव्यवस्था हि[2] स्थिता कठिनभावतः ।
देवीकोटे[3] तु[4] या नाडी मृद्वी[5] लङ्केश्वरी मता[6] ॥२३॥
[7]बुक्कं वहति या नित्यं सर्वदेहा[8]धिवासिनी ।
मालवे[9] तु द्रुमच्छाया[10] हृदयस्था[11] जिनेश्वरी ॥२४॥
उपपीठसमाख्याता डाकिन्यो [12]लोकमातरः ।
चित्तचक्रे तु[13] खेचर्यः पीठोपपीठसंस्थिताः ॥२५॥

तासां च शुक्ररक्ततदुभयसंग्रहकारिण्यो ललनारसनावधूतिकाः सकलत्रैधातुकोत्पत्तिभूताः सत्त्वरजस्तमोमय्यः[14] कायवाक्चित्तात्मिका बोद्धव्याः[15]। तत्र द्वात्रिंशतो[16] नाडीनां नामानि श्रीहेवज्रे—

अभेद्या सूक्ष्मरूपा च दिव्या वामा च वामिनी ।
कूर्मजा भाविकी सेका दोषा [17]विष्ठा च [18]मातरी ॥
स(श)र्वरी शीतदा चोष्मा[19] ललनावधूतीरसना ।
प्रवणा[20] हृष्टवदना[21] सामान्या हेतुदायिका ॥
वियोगा [22]प्रेमणी सिद्धा पावकी सुमनास्तथा ।
त्रिवृता कामिनी गेहा[23] चण्डिका मारदारिका[24] ॥
[25]कात्यायनी चेति ....

(१।१।१६-१८)

एता द्वात्रिंशत् सन्ध्यानाडीचतुष्टयेन सह षट्त्रिंशत्। त्रिवृत्ता(ता)द्या अवधूत्याद्याश्चाष्टौ वर्जयित्वा परिशिष्टा अभेद्याद्याश्चतुर्विंशति[ः] प्रचण्डाद्या विज्ञेयाः ।

---

१. अन्त्रमज्जावहा चैव-ज. । २. दि-ग. । ३. कोट्टे-घ. । ४. च-ज. । ५. मृदु-क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. ज. । ६. स्मृता-घ., स्थिता-ज. । ७. वक्षं-ढ. । ८. देहे निवा-ज. । ९. वेति-क. ख. ग. ङ. च. छ., घारवती-घ., वे च-ज. । १०. द्रुमस्था-ख. । ११. हृदयजालीवहा स्थिता-ज. । १२. योगमातराः-क. ख. ङ. च. छ., मातर-ग. घ. ज. ट. ठ., गृहीतपाठस्तु भोटानुसारी । १३. च-ज. । १४. मयाः-ख. । १५. इमास्तिस्रो नाड्यो मुख्या इति ग्रन्थाभिप्रायः । १६. त्रिशता-ख. घ. । १७. घिष्ठा-ख. घ. छ. । १८. मातरा-क. च. टी. । १९. चोष्णा-क. ख. च. छ. । २०. श्रवणा-घ. छ. । २१. कृष्णवदना-ख. । २२. प्रेमणा-ख. छ., प्रमणा-घ. । २३. द्रोहा-ख. घ., सहा-छ. । २४. दायिका-ख. घ. छ. । २५. 'कात्यायनी' नास्ति हेवज्रे ।

[1]चक्षुर्वहति या [2]नाडी कामरूपे व्यवस्थिता ।
ऐरावतीति विख्याता [3]रूपदर्शनभाविता[4] ॥२६॥

[5]ओड्रे पित्तवहा नाडी महाभैरविका स्मृता ।
[6]एते क्षेत्रसमुद्दिष्टे डाकिन्यौ योगमातरौ ॥२७॥

त्रिशकुनौ[7] समुद्भूता[8] वायुवेगा [9]सफुप्फुसा ।
[10]अन्त्रमालाकुला[11] दिव्या सुराभक्षी तु कोशले ॥२८॥

आसां तु नखदन्तादयश्चतुर्विंशतिधातवः खण्डकपालादयो ज्ञातव्याः। तत्र नाडीपीठडाकिनीनां निरुक्तिः —

नखदन्तानामभेद्यानां प्रसवनादभेद्या शिरसि। केशरोम्णां[12] सुसूक्ष्माणां वहनात् सूक्ष्मरूपा शिखायाम्। त्वङ्मलस्य बहिर्द्योतमानस्य वहनाद् दिव्या सव्यकर्णे। वामनस्यैव पूर्णस्य मांसस्य वहनाद् वामा पृष्ठे। तदुदये वा वामनाकारे सत्त्वधातूत्पादात् स्नायूनां वहनाद् वामनी, तदुदये वा भुक्तस्य वमनाद् वामकर्णे। कूर्मपृष्ठमिवाभेद्यमित्यस्थिमालावहनात् कूर्मजा भ्रूमध्ये। वुक्कं[13] भावयतीति स्रवतीति भाविकी[14] चक्षुर्द्वये। सिञ्चति हृदयान्[15] सुधारसेनेति सेका बाहुमूलद्वये। एताः पीठोपपीठेष्वष्टौ नाड्यः खेचर्यः सोपायाश्चित्तचक्रे।

दुष्यते[16] या स्वविषयेन(ण) विक्रियत इति दोषा [17]चक्षुर्धातुवहा कक्षयोः,[18] कक्षदर्शनान्मनोविकृतेः,[19] ममेयमिति द्वेषोदयाच्च। द्वेषो दोष इति पर्यायौ। [20]पित्ताख्यं विष्ठं वहतीति विष्ठा स्तनद्वये। विड्धातुः प्रेरणे। ऊर्ध्वं [21]फुप्फुसवहनान्मातेव

---

१. चक्षू–ज. ञ. ढ। २. नित्यं–ज.। ३. क्लेदवहा सदा स्थिता–ज.। ४. व्यवस्थिता–ञ. ट. ठ. ड. ढ., लालसा–भो.। श्लोकोऽयं (२६) ग. मातृकायां नास्ति। ५. चण्डे–घ., उड्रे–ट. ठ. ड., ओड्रे पित्तावहा–क. ख. ग. ङ. च. छ., ज. मातृकायां तु 'ओड्रे पित्तानिलवहा नाडी च महाभैरवी' इति पाठः। ६. द्वौ च क्षेत्रौ समाख्यातौ–ज., एते क्षेत्रे–ढ.। ७. शकुनि–ड. ज., नी घ. छ.; नेः–भो.। ८. स्थिता नाडी–ज.। ९. फुस्फुसा–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ., नालफूफ्फूसा–ज.। १०. अन्नलाभा–घ.। ११. माला वस्त्रवहा–ज.। १२. म्णां सूक्ष्मा–क. ख.। १३. वुघं–ख. घ.। १४. भावकिकी–ख. छ। १५. हृदयात्–क. ख. घं., यात् सुधी–ख.। १६. युष्मते–ख. घ. छ.। १७. 'चतुर्धातु' इति सार्वत्रिकः पाठः, गृहीतपाठस्तु–भो.। १८. वक्षयोः–ख. छ.। १९. मनोविक्षतेः–ख. घ. छ.। २०. चित्ता–च.। २१. ऊर्ध्वे–क., ऊर्ध्वं–ख. छ.।

उपक्षेत्रसमुद्दिष्टे[1] डाकिन्यौ योगमातरौ ।
श्यामादेवी कलिङ्गे[2] तु [3]पार्श्वतस्तु समाश्रिता ॥२९॥

[4]उदरस्था सुभद्रा वै लम्पाके परिकीर्तिता[5] ।
छन्दोहाविति[6] विख्यातौ(ते) डाकिन्यौ[7] योगमातरौ[8] ॥३०॥

हयकर्णा[9] तु [10]काञ्चीस्था विष्ठां[11] वहति सर्वदा ।
[12]सीमान्तमध्यगा[13] चापि हिमालये खगानना ॥३१॥

उपच्छन्दोहौ[14] विख्यातौ(ते) डाकिन्यौ[15] योगमातरौ[16] ।
[17]वाक्चक्रे संस्थिता नाड्यो भूचर्यो दूतयः[18] स्थिताः ॥३२॥

मातरा, मातरं प्रत्यभिलाषजननाच्च जगज्जननाच्च नाभौ । अन्त्रमालासु महासुखस्य स्वापनाच्छर्वरी, रात्रिविकल्पजननाच्च नासाग्रे । गुणवर्तिमेदोजालिकयाऽन्त्राणि परिवर्त्य तिष्ठति, तद्वाहिनी शीतदा, तस्यां शीतस्पर्शदायित्वान्मुखे । उदरे जठराग्ने[19]स्तद्वाहित्वादूष्मा[20] कण्ठे । पुरीषवाहित्वात् प्रवणा, वर्णव्यत्ययात् प्रणवा, वैरोचनप्रवाहिनी हृदये । सीमन्तो[21] वरटकमध्य[22][स्]तद्वाहित्वाद् हृष्टवन्दनात् कर[23]स्पर्शात् प्रज्ञोपाययोः सानन्दनन्दनत्वान्मेढ्रे । एतत् क्षेत्रोपक्षेत्रछन्दोहोपछन्दोहाख्येष्वष्टौ नाड्यो भूचर्यो वाक्चक्रे ।

---

१. क्षेत्रौ समाख्यातौ–ज., उपक्षेत्रे समु–ढ. । २. च–ज. । ३. पार्श्वतन्तु–क. ख. ग. घ. ङ., दं तु–ञ. ठ., दस्तु–ढ., पाशबन्धवहा स्थिता–ज., र्श्वदन्त–ट. ड. । ४. श्वासोदरवहा भद्रा–ज. । ५. च व्यवस्थिता–ज. । ६. हे च सुविख्याता–ग. घ. ङ. छ. ञ. ट. ठ. । ७. न्यो–घ. । ८. तरः–घ. । ९. कर्णेऽपि–क., कर्णापि–ख., र्णेति विख्या–ग., र्णीति–घ., कर्णे च–ज. । १०. काञ्चिस्था–ढ. । ११. विष्ठामूत्रवहा स्थिता–ज., सर्वथा–ट. ठ. ड. । १२. श्रीमान्त–ख., श्रीवन्त–घ., सीमन्त–ट. । १३. मणिवहा–ज., गा वापि–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. ञ., कापि–घ. । १४. छन्दोह–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ., न्दोहे–ठ. ड. । १५. न्यो–घ. । १६. तरः–घ. । १७. कायचक्रे–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ., वाक्चक्र–ट., वाक्चक्रे संस्थिता नाड्यो भूचर्यो डाकिनीगणाः–ज. । १८. हृदये–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. ठ. । १९. राग्नि–च. छ. । २०. त्वाच्छुष्मा–च. । २१. सीमान्तो–ख. घ. छ. । २२. पिटकमध्यः–भो., मध्ये–च. छ. । २३. त्वक्स्प–ख. घ. च., तत्स्प–छ. ।

प्रेताधिवासिनीसंस्था श्लेष्मला [1]चक्रवेगिनी ।
पूयं वहति [2]सा नित्यं [3]गृहदेवतसंस्थिता ॥३३॥

[4]खण्डरोहेति विख्याता डाकिनी परमेश्वरी ।
मेलापकौ[5] हि विख्यातौ डाकिन्यौ[6] योगमातरौ ॥३४॥

सौराष्ट्रे लोहिताख्या[7] तु शौण्डिनी डाकिनी मता ।
[8]प्रस्वेदवाहिनी नाडी [9]सुवर्णद्वीपसंस्थिता[10] ॥३५॥

धातुसाम्यस्य श्लेष्मणो वहनात् सामान्या गुह्ये । प्रायेण मांसभक्षणाद् वियोग[ा] विकल्पजननाद्वा गुदे । लोहितवहनाद्वसन्तपुष्पैः प्रेमोत्पादनात् प्रेमणी[11] ऊर्वोः । स्वेदोत्पाद समापत्तौ सर्वत्र सिद्धः, तद्वाहित्वात् सिद्धा जङ्घयोः, सिद्धनिमित्तोत्पादनं प्रति वा तदधिकारात् । गात्रपुष्टौ मेद[12] एव हेतुस्तद्वहनाद्धेतुदायिका पादाङ्गुलीषु । अश्रुणा मुखस्य शोकस्य वा ज्वलनात्[13] पावकी पादपृष्ठे । खेटेन योगिनां सौमनस्य-जननात् सुमनाः पादपृष्ठे । सिङ्घाणकस्यात्ययनाद्यावत् कात्यायनी जानुद्वये । इति मेलापकोपमेलापकश्मशानोपश्मशानाखग्रेष्वष्टौ[14] नाड्यः पातालवासिन्यः कायचक्रे ।

समयचक्रनाडीनिरुक्तिं दूरमपसृत्याह[15]—पूर्वस्मिन् वाचिके[16] द्वार (६।४०) इति । वाग्द्वारात् पूर्वं कायद्वारम्, तस्मिंश्चक्षुरादिनाड्योऽष्टौ दक्षिणेषु[17] चक्षुःश्रोत्रघ्राणेषु वामेषु च, वक्त्रगुदयोश्च तन्नाम्ना प्रसिद्धा एव समयचक्रस्था ज्ञातव्याः, विषयोपभोग-लक्षणसमयस्यानुष्ठानात् । इति नाडीनिरुक्तिः ।

पीठनिरुक्तिः प्रागुक्ता । डाकिनीनिरुक्तिरुच्यते । इह सर्वा एव डाकिन्यो वाराहीकुलसंभवा इति बहुशः प्रतिपादितम् । तदभिन्नतयैव ता[18] निरुच्यन्ते । तत्र प्रशान्तं चण्डत्वं यस्याः सा प्रचण्डा, महासुखस्थानमासाद्येति यावत् । चण्डे तीक्ष्णे दाहके वामेतरे नाड्यौ अस्या इति चण्डाक्षी, मध्यमया द्वयोः प्रकाशनात् । अग्निवर्ण-

---

१. आत्मवाहिनी–ज. । २. या क्लिन्नं-ज., या नित्यं–ञ. ट. ढ. । ३. गुह्ये देवता–ज. । ४. खण्डेश्वरी–भो. । ५. पकेषु–क. ख. ग. ङ. च. छ., के सु–ञ. ढ., कं तु–ट. ठ. ड. । ६. किनी–ङ. । ७ ख्याता–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ., हितपुष्पवहा–ज., लोहिताक्रान्ता–भो. । ८. स्वेदबाष्पवहा–ज. । ९. स्वर्ण–ज. । १०. निवासिनी-ज., संमता–ट. ठ. ड. ढ. । ११. प्रेमणा–ख.. घ छ. । १२. मेदं त एव–ख. । १३. कलनात्–क. । १४. ष्टाष्टौ–क. । १५. विस्तरेणाह–भो. । १६. वारिके–ख. घ. छ. । १७. णेषु श्रोत्र–क. । १८. तान्युच्यन्ते–क. ।

[1]समाकुला सुदीप्ताङ्गी [2]मता सा [3]चक्रवर्मिणी ।
उपमेलापके[4] प्रोक्ता(क्ते)[5] डाकिन्यौ[6] योगमातरौ[7] ॥३६॥

नगरे[8] तु सुवीराख्या[9] [10]मेदवसावहा स्थिता ।
सिन्धौ महाबला ख्याता [11]सशोका चाश्रुवाहिनी ॥३७॥

श्मशाने संस्थिते[12] चैते[13] डाकिन्यौ[14] योगमातरौ[15] ।
खेटं[16] वहति या शुष्का[17] मरौ[18] तु चक्रवर्तिनी ॥३८॥

प्रभायुक्तत्वात् प्रभावती । महत्यो[19] गुह्यहृन्मुखेषु नासिका यस्याः सा महानासा । पीठडाकिन्यो यथाऽन्वर्थाः । वीरो जनकत्वेन विद्यते यस्याः सा वीरमती, "नाभिमध्ये[20] स्थितो वीरः" इति वचनात् । खरा चासौ त्रिचक्रदाहाद् वरा चासौ पुनस्तदाप्यायना[21]-दिति खर्वरी । लङ्का शरीरपुरी तस्यामीश्वरी स्वामिनी लङ्केश्वरी । द्रुमच्छायेव शीतलाऽऽप्यायनाद् द्रुमच्छाया । इत्युपपीठडाकिनीनामन्वर्थाः । इति चित्तचक्रस्य खेचर्यः ।

ऐरावती [22]ऐरावत इव वेगवाहिनी । तृतीयौलौ[23] ग्रन्थिभेदान्महाभैरवा । वायुवदध ऊर्ध्वं दश दिक्षु च वेगो जवो यस्याः सा वायुवेगा, [24]ओलिद्वयेऽपि । सुरां सुधां भक्षयतीति सुराभक्षी, [25]ज्ञानोलौ । इति क्षेत्रोपक्षेत्रडाकिन्यः सान्वर्थाः ।

प्रेमोद्गमाच्छ्यामा चासौ सर्वचक्रेषु क्रीडनाद्देवीति श्यामादेवी । शोभनं तर्पणं भद्रं कल्याणं यस्याः सा सुभद्रा । हयवद्दक्षिणकर्णेन निर्गच्छतीति[26] हयकर्णा ।

---

१. ज्वालामाला–ज. । २. स्थिता–ज. । ३. चक्रवर्णिनी–ग., वरवर्णिनी–घ. । ४. पक–घ. ङ., पकौ–ज. ञ. । ५. प्रोक्तौ–ग. ज. ञ. ड. ढ. । ६. न्यो–घ. । ७. तरः–घ. । ८. नगरेषु–ग. घ. ङ., रे च–ज., नरवले–ढ. । ९. राख्य–क. ख. ग. ङ. च. छ., रा हि–ज. । १०. मेदस्वी स्थूलदेहिनी–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. ञ. ट. ठ. ड. ढ. भो. । ११. सका-शादश्रु–क. ख. ग. घ ङ. च. छ., शुक्राश्रू च प्रवाहिनी–ज. । १२. संस्थिता–घ. ट. ठ. ड., श्मशानौ च समाख्यातौ–ज. । १३. चैत्य–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ., वैते–ङ. । १४. न्यो–घ. । १५. तरः–घ. । १६. श्वेतं–घ. ङ., खेटवहा ज्वलं चैव–ज. । १७. शुष्कां–क. ङ. च. छ. ज. ञ. ट. । १८. मेरौ–क. च. छ., मेरौ च–ज. । १९. महागुह्य–घ. । २०. 'तस्य मध्ये' इति (६।३) पाठः । २१. दाप्यायना–ख. छ. । २२. वतीव–घ. च. छ., 'ऐरावत इव' नास्ति–सर्वत्र, गृ. पा. भो. । २३. यौ तीर्थ्रं–ख. छ., लार्ग्रं– घ. । २४. अलि–ख. घ छ, दीपद्वये– भो. । २५. ज्ञानालौ–ख. घ. छ. । २६. च्छन्ती हय–क. ख. च., च्छति–घ. ।

[1]कुलतायां महावीर्या [2]बालसिंहानवाहिनी ।
उपश्मशानसंस्थौ[3] (स्थे) च डाकिन्यौ योगमातरौ ।।३९।।
कायचक्रे [4]तु डाकिन्यो बाह्या:[5] पातालवासिका:[6] ।
[7]पूर्वस्मिन् [8]वाचिके द्वारे डाकिन्यश्च [9]चतुर्विधा[:] ।।४०।।

खगमुखाकारत्वात् खगानना । इति छन्दोहोपच्छन्दोहडाकिनीनामान्वर्थाः । वाक्चक्रे भूचर्यः ।

चक्रवच्चक्रेषु वेगोऽस्या गमनागमन इति चक्रवेगा । आदौ तथागतलोचनादीन् खण्डयति पुनरारोहयति जनयतीति खण्डरोहा । [10]सुरासवर्क्षाबत्वात् शौण्डिनी । चक्राण्येव[11] वर्मं सन्नाहोऽस्याः सा चक्रवर्मिणी । इति मेलापकोपमेलापकडाकिन्यः सान्वर्थाः ।

सुष्ठु वीरादकारात् प्रभवतीति सुवीरा । गमनागमनयोर्महद्बलं यस्याः सा महाबला । चक्रेषु वर्तितुं शीलं यस्याः सा चक्रवर्तिनी । महद्वीर्यमुत्थाने यस्याः सा महावीर्या । इति श्मशानोपश्मशानडाकिनीनामन्वर्थाः[12] ।

वीरनिरुक्तिरुच्यते । खण्डं शिरःस्थं बोधिचित्तं नखदशनरूपेण का(क)लयति प्रेरयतीति खण्डकपाली । महान्तं कं शिखास्थितं सत्तदेव केशरोम कालयतीति महाकङ्कालः । कर्णमूलं प्राप्य त्वङ्मलं प्रेरयतीति कङ्कालः । विकटा मांसमयी दंष्ट्रा पृष्ठे यस्य स तथा [विकटदंष्ट्रः] । पीठवीरनिरुक्तिः ।

सुराणां स्नायूनाम(मू) वैरी वामकर्णात् प्रवर्तकः सुरावैरी । भ्रूमध्ये स्थित्वाऽपर(रि)मितास्थिमालाप्रवर्तकत्वात्तन्मयोऽमिताभः । वज्ररत्नवत् प्रभा यस्य, तस्य चक्षुषि स्थित्वा वुक्कस्य प्रवर्तकत्वाद् वज्रप्रभः । वज्रवद् दृढो देहो यस्य बाहुमूलाद् हृदयप्रवर्तको वज्रदेहः । उपपीठनिरुक्तिः ।

---

१. कुलुता–ढ । २. मज्जार्सि–ज., सिंहाण–ढ. । ३. शानौ विख्यातौ–ज. । ४. च–ज. । ५. बाह्य–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. ज. झ. । ६. सिनी–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. । ७. पूर्वेऽ–छ. । ८. वालिके–ग. घ. ङ. छ., पूर्वादिचारिके–ज. । ९. चतुःस्थिताः–ज. । १०. सुरावत्–ख. घ., सुराभक्षीत्वात्–छ. । ११. चक्रानेव–ख. घ. छ. । १२. इतः परमधिकः पाठो भो. द्रष्टव्यः ।

[1]तत्कोणभागमाश्रित्य [2]संस्थिताश्चापरास्तथा ।
[3]मूलद्वारे तु काकास्या उलूकास्या द्वितीयके ॥४१॥
श्वानास्या [4]च तृतीयेऽपि [5]शूकरास्या चतुर्थके ।
कोणेषु[6] यमदाढी[7] च यमदूती तथैव च[8] ॥४२॥

कक्षाभ्यां [9]चक्षुरङ्कुरजननादङ्कुरिकः[10] । स्तनाभ्यां वज्रजटिलरूपस्य पित्तधातोर्जननाद् वज्रजटिलः । नाभेर्वज्राणां महतामपि भयङ्करफुप्फुसप्रवर्तकत्वान्महावीरः । [11]नासाग्रादन्त्रद्वारप्रवर्तकत्वाद् वज्रहूँकारः । इति क्षेत्रोपक्षेत्रवीर[12]निरुक्तिः ।

सुखादाप्यायिकागुणवर्तिप्रवर्तकत्वात् सुभद्रः[13] । कण्ठादुदरप्रवर्तकत्वाद् वज्रभद्रः, कण्ठोदराभ्यामादिमध्यान्तकल्याणवज्रमयधर्मचक्रप्रवर्तकत्वात्[14] । हृदयात्[15] कातरजनत्रासकपुरीषप्रवर्तकत्वाद् वज्रभैरवः । मेढ्रात् सीमान्तस्य त्रिनेत्रस्य प्रवर्तकत्वाद् विरूपाक्षः । इति छन्दोहोपछन्दोहवीरनिरुक्तिः ।

गुह्याच्छरीरधारणसमर्थस्य श्लेष्मनो(णो) वहनान्महाबलः । गुह्यात् पीतवर्णस्य पूयस्य प्रवर्तनाद् रत्नवज्रः । ऊरुभ्यां बलवतो रक्तस्य[16] प्रवर्तनाद् हयग्रीवः । जङ्घाभ्यां रोमकूपशुषिरव्यापकस्वेदप्रवर्तकत्वाद् आकाशगर्भः । इति मेलापकोपमेलापकवीरनिरुक्तिः ।

पादाङ्गुलिभ्योऽभेद्यहूँकाररूपस्य मेदसः[17] प्रवर्तकत्वात् श्रीहेरुकः । पादपृष्ठात् पद्मनर्तेश्वरस्य बोधिचित्तस्या[18]श्रवरूपस्य प्रवर्तनात् पद्मनर्तेश्वरः । अङ्गुष्ठाभ्यां श्वेतवर्णस्य खेटस्य प्रवर्तकत्वाद्वैरोचनः । जानुभ्यां चन्द्रगौरस्य सिङ्घाणस्य प्रवर्तकत्वाद्वज्रसत्त्वः । इति श्मशानोपश्मशानवीरनिरुक्तिः ।

---

१. कोणभागं समाश्रित्य–ज. । २. संस्थिताश्च परा–क. ख. ग. घ. छ., चामृतवहा–ज. । ३. पूर्वद्वारे–ञ ट. ठ ड. ढ., द्वारे च–ज. । ४. ऽपि–ज. । ५ च–ज. । ६. कोणे तु–घ., कोणेषु स्थिता–ज. । ७. यमडाती वा–क. ग. घ. ङ च. छ. । ८. हि–ज. । ९. चक्षुरिति नास्ति सर्वत्र, गृ. पा. भो., मकुलज–क., मक्षर–ख. घ. । १०. दकुलिकः–क., दक्षरिकः–घ. । ११. नासाग्र्यादन्त्रोद्धार–क., नासाग्र्यदण्डोद्वार–ख., दन्ताद्वार–घ. । १२. 'वीर' नास्ति–क. ख. घ. । १३. सुभद्रा–ख. घ. छ. । १४. प्रवर्तनात्–क. ख. च. छ. । १५. हृदयोत्कातरपुरञ्जन–क. ख., हृत्कातर–घ. । १६. रक्षस्य–ख. घ छ. । १७. मेदस्य–ख. घ. छ. । १८. स्यानाश्र–सार्वत्रिकः पाठः, गृ. पा. भो., अश्रुवत् प्रवहमानस्येत्यर्थः ।

७

[1]अनन्तरं महाभीमा विख्याता[2] यमदंष्ट्रिणी ।
[3]चतुर्थापि च विख्याता[4]भीमा यममथनी मता ॥४३॥

[5]इत्येता वज्रयोगिन्यो नाडीरूपेण संस्थिताः ।
चित्तवज्रस्य[6] योगिन्यः सप्तत्रिंशदुदाहृताः[7] ।
प्रज्ञापारमिता ह्येताः[8] शरीरे[9] संव्यवस्थिताः[10] ॥४४॥

इति [11]श्रीवसन्ततिलकायां[12] तथागतकाय[13]गतसप्तत्रिंशन्नाडी-
चक्रव्यवस्थाख्याननिर्देशः[14] षष्ठः[15] ॥ ६ ॥



एषां वामदक्षिणवाहाभ्यां[16] प्रवर्तमानानां प्राङ्निरूपितडाकिनीसहितानां यथार्था-
नामुपपीठस्थितानां योगिनीनां[17] लयभोगाधिकाराद् द्वासप्ततिर्ज्ञातव्याः । अयमर्थः—
"कायवाक्चित्तचक्रे तु चतुर्विंशत्युदाहृताः" (६।१६) इत्यारभ्य "प्रज्ञापारमितारूपाः
स्वशरीरे व्यवस्थिताः" (६।४४) इत्यन्तेन ग्रन्थेन प्रतिपादिताः (ताः)। एतत्पदार्थ-
नियोजना सुगमा ॥ १८-४४ ॥

इति वसन्ततिलकायां[18] निष्पन्नक्रमसाधनोपायिकायां रहस्यदीपिकायां
टीकायां[19] षष्ठनिर्देशे विस्तरव्याख्या ॥ ६ ॥



---

१. अन्यकोणे-ज. । २. संस्थिता -ज. । ३. चतुर्थे चापि कोणे च संस्थिता-ज । ४. सुभीमा-ग. ज. । ५. इति हि वज्रडाकिन्यो-ज । ६. चित्तचक्रस्य-क. ख. ग. घ. ङ. च. छ, वज्रस्य देहे च -ज. । ७. व्यवस्थिताः-ज. । ८. ता एव-ज. । ९. सर्वदेहे-ज., शरीरेण व्यव-ग. । १०. निवासिनीः-ज. । ११. 'श्री' नास्ति-क. ख. घ. ङ. च. छ. ज. । १२. तिलके-ज । १३. काये-घ, कायसप्त-क ख. ग. घ. ङ. च. छ. । १४. व्यवस्थिता-ज., व्यवस्थानिर्देशः-छ. । १५. षष्ठमः-क. ख. ग. ङ. च. छ. ञ. ढ., चतुर्थः पटलः-ज. । १६. वहोभ्यां-ख., वहाभ्यां-क. च. छ. । १७. योगिनीभोगा-ख. । १८. तिलके-क. च. । १९. 'टीकायां' नास्ति-क. घ. च. ।

[1]सप्तमो निर्देशः

[2]अथान्यतमस्य [3]तथागतकायस्य नाडीचक्र[4]सप्तत्रिंशद्बोधिपाक्षिक[5]धर्मविशुद्धिं कथयिष्यामि ॥१॥

कायानुस्मृत्युपस्थानं डाकिनी[6]। वेदनानुस्मृत्युपस्थानं लामा। धर्मानुस्मृत्युपस्थानं [7]खण्डरोहा। चित्तानुस्मृत्युपस्थानं रूपिणी ॥२॥

अथेत्यादिना नाडीरूपाणां योगिनीनां बोधिपाक्षिकधर्मस्वरूपतां प्रतिपादयितुं सप्तमनिर्देशमाह—अन्यतमस्येत्यादि प्राग्वत् ॥ १ ॥

या एता [8]हृदयादिशिरआदिकायद्वारेषु डाकिन्यादिस्वभावा नाड्यस्ता बोधिपाक्षिकधर्मस्वभावा अपि भवन्तीति प्रतिपाद्यते—कायानुस्मृत्युपस्थानं डाकिनीत्यादिग्रन्थेन। इह बोधिसत्त्वेन महासत्त्वेनानुत्तरां सम्यक्संबोधिमभिसंबोद्धुकामेन पञ्चमार्गसंगृहीतेषु सप्तत्रिंशद्बोधिपाक्षिकेषु धर्मेषु यथावच्छिक्षितव्यम्। [9]तत्र कतमे पञ्चमार्गाः? संभारमार्गः, प्रयोगमार्गः, दर्शनमार्गः, भावनामार्गः, अशैक्षमार्गश्चेति। तत्र संभारमार्गः कतमः? द्वादश धर्माः। कतमे द्वादश? चत्वारि स्मृत्युपस्थानानि, चत्वारि सम्यक्प्रहाणानि, चत्वारि(र) ऋद्धिपादाश्चेति। तत्र कतमः प्रयोगमार्गः? दश धर्माः। कतमे दश? पञ्चेन्द्रियाणि पञ्चबलानि चेति। तत्र कतमो दर्शनमार्गः? सप्त धर्माः। कतमे सप्त? सप्तबोध्यङ्गानि। तत्र कतमो भावनामार्गः? मार्गाङ्गानि। कति मार्गाङ्गानि? आर्याष्टाङ्गो मार्गः। कतमोऽशैक्षमार्गः? मार्गज्ञानानामन्त्यस्यान्त्यः क्षणः।

किमर्थमेतानि बोधिपक्षाणि? कुतो वा धर्माः? कतमा बोधिः? आह—बुद्धयन्त्यनया सर्वमात्म[10]स्वरूपमिति बोधिः। सा किं प्रादेशिकी, [11]उत [12]व्यापिकेति? आह—

... च-ज.।

१. ज. मातृकायामयं निर्देशो द्वादशत्वेनोक्तः, तत्र चान्यदेव ..छि.। ८. हि-ज.। परिशिष्टे द्रष्टव्यम्। अथान्यतमस्येत्यादि गद्यांशस्थाने ज. मातृकायां ..घ.। १०. दकुलिकः-क., धर्म सप्तत्रिंशद्विधम्। बोधिपाक्षिकं महाधर्मं सर्वकामफलप्र...दण्डोद्वार-ख., दन्ताद्वार-घ.। ङ. ढ.। ३. तथागतस्य-भो.। ४. चक्रे-ग.। ५ ... .. छ.। १४. प्रवर्तनात्-क. ख. च. छ.। ७. खण्डा-ग.। ८. हृदयानि-क.। ... । १६. रक्षस्य-ख. घ छ.। १७. मेदस्य-रूपत्व-छ.। ११. 'उत...' ..., गृ. पा. भो., अश्रुवत् प्रवहमानस्येत्यर्थः।

व्यापिका[1] प्रादेशिकी च। तथाहि पुद्गलनैरात्म्यलक्षणा बोधिः श्रावकबोधिः प्रादेशिकी, धर्माणां द्रव्यत्वेनाभ्युपगमात्[2]। तथा विमुच्यमानाः श्रावकबोधौ निपतेयुः, सा बोधि[:] स्वार्थमात्रप्राधान्यादविशुद्धत्वात् प्रादेशिकीत्युच्यते। उभयनैरात्म्यलक्षणा तु बोधिः सम्यक्संबोधिर्व्यापकत्वाद् व्यापिका, धर्माणां तत्त्वभावेनावस्थानात्। तस्यावबोधेरङ्गान्युपाया बोध्यङ्गानि। अङ्गान्युपायाः पक्ष्या अभिव्यक्तिकरणानीति पर्यायाः।

धर्माश्च कुत इति? ध्रियन्ते बोधिसत्त्वैर्मार्गस्थैश्चेतसि व्यवस्थाप्यन्त इति धर्माः कुशलपक्षसंगृहीताः, अनाश्रवत्वात्, मार्गसत्त्वस्यैकान्तकुशलत्वात्[3]। मार्गभेदात्तु[4] कुशलसाश्रवत्वं[5] प्रतिपत्तुरपेक्षया। एषां पञ्चानां मार्गाणां द्वाभ्यां संग्रहो वेदितव्यः। कतमाभ्यां द्वाभ्याम्[6]? लौकिकमार्गेण लोकोत्तरमार्गेण चेति। तत्र लौकिकमार्गे[7] कति धर्माः? 'द्वाविंशतिधर्माः। कतमे? स्मृत्युपस्थान-सम्यक्प्रहाण-ऋद्धिपाद-इन्द्रियबलाख्यानि। तत्र लोकोत्तरमार्गः(र्गे) कति धर्माः? पञ्चदश। कतमे? सप्तबोध्यङ्गानि, आर्याष्टाङ्गमार्गश्चेति।

तत्र कतमानि चत्वारि स्मृत्युपस्थानानि? आह—कायानुस्मृत्युपस्थानम्, वेदनानुस्मृत्युपस्थानम्, चित्तानुस्मृत्युपस्थानम्, धर्मानुस्मृत्युपस्थानम्। तत्र कायानुस्मृत्युपस्थानम्—इह सर्वेण सर्वकायोऽयं स्वपरसन्तानवर्ती यावत्त्रैधातुकीयः। स प्रविचिन्त्यमान एकस्तावन्न भवति, अवयविनो[9]ऽसिद्धत्वात्, तदसिद्धिश्च पाकापाकरागारागादिदोषदर्शनात्, एकत्वासिद्धावनेकत्वानुपपत्तेः परमाणुशो[10] भिद्यमानत्वात् परमाणोः संहतत्वानुपपत्तेः, तदभ्युपगमे [11]वा विश्वस्य परमाणुतापत्तेः[12]। तस्मादुभयधर्मरहितत्वाच्छून्योऽयं काय इति यो या)ऽनुस्मृतिस्तस्या उप समीपे चित्तस्य स्थापनं[13]कायानुस्मृत्युपस्थानम्। एवं च वेदनापि साताद्यात्मिका षड्विज्ञानकाया तदाश्रितत्वादष्टादशधा। सापि सातादीनामतीतादिभेदेनासत्त्वात् शून्येति स्मृतेरुपस्थानं स्वचेतसीति वेदनानुस्मृत्युपस्थानम्। एवं ज्ञेयात् पूर्वं पश्चात् सहभावित्वासिद्धेश्चित्तं शून्यमिति यः स्मृतेरुपस्थानं चित्तानुस्मृत्युपस्थानम्। एवं कुशलाकुशल(ा)व्याकृतादिभेदभिन्नानां धर्माणां पूर्ववच्छून्यत्वाद् यः स्मृतेरुपस्थानं तद्धर्मानुस्मृत्युपस्थानं बोधिसत्त्वमार्गः[14], यतः[15] पञ्चात्मकं त्रैधातुकम्। तत्र

च. छ,

शरीरेण व्यव-ग.

छ. ज.। १२. तिलके-ज २. नात्युप-क., नानुप. घ., नानुपशमात्-ख. छ.। ३. कुशलात्-क.।
१४. व्यवस्थिता-ज., व्यवस्थानं ५. माश्रवत्वं-घ.। ६. नास्ति-ख. छ.। ७. मार्गः-क. छ.।
चतुर्थः पटलः-ज.। १६. वहोभ्यां-ख., छ.। १०. माणुना-छ.। ११. रा-ख. घ.।
१८. तिलके-क. च.। १९. 'टीकायां' नास्ति ४. मार्गं-क. च.। १५. ततः-ग. ङ. च।

[1]छन्दर्द्ध्युत्पाद[:] प्रचण्डा । [2]वीर्यर्द्ध्युत्पादश्चण्डाक्षी ।
[3]मीमांसर्द्ध्युत्पादः प्रभावती[4] । [5]चित्तर्द्ध्युत्पादो महानासा ॥३॥

कायानुस्मृत्युपस्थानेन[6] रूपस्कन्ध[7]सम्यगनुबोधेन मध्ये द्वाभ्यां वेदनाविज्ञानयोरन्त्येन संज्ञासंस्कारयोः, धर्मशब्दसामान्याद् भाजनलोकस्येति । श्रावकदर्शने तु नित्यसुखशुचिसात्मकचतुर्विपर्यासप्रतिपक्षानित्याशुचिदुःखानात्मलक्षणानि चत्वारि स्मृत्युपस्थानानीति विशेषः। मन्त्रदर्शने तु स्वसंविद्रूपा डाकिन्यः कायादीनां धर्मतारूपा ज्ञेयाः। तदर्थमाह—कायानुस्मृत्युपस्थानं डाकिनीत्यादि ॥ २ ॥

तत्र कति ऋद्धिपादा इति किञ्चिदपसृत्याह—चत्वार ऋद्धिपादाः। छन्द-ऋद्धिपादः, वीर्य-ऋद्धिपादः, मीमांसा-ऋद्धिपादः, चित्त-ऋद्धिपादश्चेति । तत्र कतमश्छन्द-ऋद्धिपादः ? छन्दसमाधिप्रहाणेयः संस्कारसमन्वागत ऋद्धिपादः। वीर्यसमाधिप्रहाणेयः संस्कारसमन्वित ऋद्धिपादः। मीमांसासमाधिप्रहाणेयः संस्कारसमन्वित ऋद्धिपादः। चित्तसमाधिप्रहाणेयः संस्कारसमन्वित[8] ऋद्धिपादः।

एषां सूत्राणामयमर्थः—इह सर्वस्यैव समाधेः षड्दोषा भवन्ति। तद्यथा—"कौशीद्यमालम्बनसंप्रमोषः लयस्तदौद्धत्यमयत्नाद्"[9] इति। एषां लयो(यं) द्वाभ्यामेकीकृत्य पञ्च दोषा भवन्ति। तत्प्रहाणार्थमष्टौ प्रहाणसंस्काराः। कतमे अष्टौ ?

श्रद्धा छन्दो वीर्यं प्रस्रब्धिश्च [च]तुर्थिकी।
स्मृतिश्च संप्रजन्यं च चेतनोपेक्षिकाऽष्टमी ॥ इति।

तत्र कौशीद्य[10]स्याद्यः प्रतिपक्ष· श्रद्धया कुशलकर्मप्रवृत्तिः। छन्देन तेषामाशयसहगतत्वम्। वीर्येण कौशीद्य[11]प्रहाणम्। प्रस्रब्ध्या प्रहाणसाक्षात्क्रिया। स एष[12] छन्द ऋद्धिपाद उच्यते। स्मृत्याऽऽलम्बनसंप्रमोषं[13] प्रजहाति। संप्रजन्येन लयौद्धत्यम्। एतौ वीर्यमीमांसाऋद्धिपादौ। चेतनोपेक्षाभ्यां यदायत्तयत्नयोः प्रहाणं स चित्तऋद्धिपाद इत्युच्यते। अत एवैतौ चत्वारि वीर्याणि भण्यन्ते। अत एवाह समाधिराजसूत्रे—

---

१. छन्द ऋद्धिपादः–ट. ड. ढ. भो., पादं–ज.। २. वीर्य ऋद्धिपादः–ट. ड. ढ. भो., दं–ज.। ३. मीमांसा ऋद्धिपादः–ट. ड. ढ., वितर्क ऋद्धिपादः–ढ. भो.। ४. मती–क. ख। ५. चित्त ऋद्धिपादः–ट. ड. ढ. भो.। ६. स्थानं–ख,·छ.। ७. भूतानुप्रतिपादिता–क. ख. ङ. च. भूत्वा–घ. छ., गृहीतः पा. भो.। ८. समन्वागत–क. ख. घ. छ.। ९. मयत्वाद्–च.। १०-११. कौसीद्य–च. छ.। १२. एव–छ.। १३. म्बनं·संप्र– ग. घ. छ.।

[१]श्रद्धेन्द्रियं वीरमती। वीर्येन्द्रियं खर्वरी। [२]स्मृतीन्द्रियं लङ्केश्वरी। समाधीन्द्रियं द्रुमच्छाया। प्रज्ञेन्द्रियमैरावती ॥४॥

"विवेकनिश्रितो विरागनिश्रितो निरोधनिश्रितो व्यवसर्गपरिणतश्च संस्कृतवस्तु विसंयोगा[द्] द्रव्यसर्गतत्प्रहाणे समन्वागत ऋद्धिपाद इति पञ्चाङ्गः। संपिण्ड्य[३] विंशतिप्रकाराश्चत्वार ऋद्धिपादाः।" [इति]।

ऋद्धिर्नाम कतमा? अर्द्धनमृद्धिः, 'ऋधु वृद्धौ' इति धातुपारायणे पाठात्। ततश्च सर्व एव दशबलवैशारद्यादयो बुद्धगुणा यस्यां वृद्धिमुपयान्ति सर्द्धिः सम्यक्संबोधिः, तस्याः [४]पादा इव पादाः प्राप्तिहेतव इति ऋद्धिपादाः। साधारणेऽपि मार्गस्योपायत्वे एषामेवर्द्धिपादद्धित्वम्,[५] समाधिदोषप्रतिपक्षस्य प्रकर्षत्वात्। एतत्स्वभावाः प्रचण्डा-चण्डाक्षी-प्रभावती-महानासाः पीठडाकिन्यश्चित्तचक्रे ॥३॥

तत्र कतीन्द्रियाणि? पञ्च। कतमे पञ्च? श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञाश्चेति। तत्र प्रयोगमार्गे चत्वारो निर्वेधभागीया धर्माः—ऊष्मगताः मूर्धगताः, क्षान्तिगताः, लौकिकाग्रधर्माश्चेति। तत्र निराश्रवान् समाधीन् बोधिसत्त्वस्यामुखीकुर्वतो वह्निरिव [६]पूर्वलिङ्गादूष्मा प्रादुर्भवति। चेतसो ज्ञानाग्नेरुद्भूता[७] (तः) स उच्यते ऊष्मगतः। स एव प्रकर्षगतोऽध्याशयसहगतो मूर्धा। तदेव चित्तं सहते तादात्म्येनेति क्षान्तिः। तमेव क्षान्तेरनन्तरं (न?) निर्गत इति लौकिकाग्रधर्मः,[८] उपचारादयं [९]संप्रयोगः। तत्र प्रथमयोर्निर्वेधभागीययोरर्थे श्रद्धादयस्तानि पञ्चेन्द्रियाणीत्युच्यन्ते। तत्र श्रद्धा भाविनि लोकोत्तरमार्गे सत्त्व(त्य)रत्नत्रयादौ वा चेतस[ः] संप्रत्ययस्तच्छ्रद्धेन्द्रियम्[१०]। श्रद्धेन्द्रियोदानितान् धर्मान् उत्साहयति तद्वीर्येन्द्रियम्। तच्च चतुष्प्रकार[म्—] आरम्भवीर्यम्, [अ][११]परिक्रमवीर्यम्, प्रत्यवेक्षावीर्यम्, प्रतिपत्तिवीर्यं [१२]चेति। वीर्येन्द्रियोदानितान् धर्मान्[13] येन पुनः पुनरामुखीक्रियन्ते न विस्मर्यन्ते तत् स्मृतीन्द्रियम्। स्मृतीन्द्रियोदानितान् धर्मान् यन्मना(नसि) सर्वसारान्तरपरिहारेण स्थापयति तत् समाधीन्द्रियम्। समाधीन्द्रियोदानितान् धर्मान् भूतप्रत्यवेक्षया यद्विचार[१४]यति तत्प्रज्ञे-

---

१. शुद्धेन्द्रियं—क. ग. घ. ङ. च. छ.। २. स्मृते—क. ख. ग. च. छ., स्मृत्ये—घ. भो., 'स्मृतीन्द्रियं'' स्मृतिबलं' नास्ति-ज.। ३. संपिण्डा—क. ख. छ.। ४. 'पादा इव' नास्ति—ख छ.। ५ पादद्वन्दसमा—छ.। ६. पूर्ण-क. ख. घ.। ७. रुद्भूषता-क. घ। ८. कायधर्मः—ख, धर्मा—छ.। ९. स प्रयोगः—क. ख.। १०. संप्रत्ययस्वच्छेन्द्रियः—ख.। ११. परिकर्म—च.। १२. पाठे क्रमत्यासः—घ. छ.। १३. धर्माननेन—च.। १४. विमार—क., विहार—च.।

[1]श्रद्धाबलं महाभैरवी[2]। वीर्यबलं वायुवेगा। स्मृतिबलं सुराभक्षी। समाधिबलं श्यामादेवी। प्रज्ञाबलं सुभद्रा ॥५॥

समाधिसंबोध्यङ्गं हयकर्णा। वीर्यसंबोध्यङ्गं [3]खगानना। प्रीतिसंबोध्यङ्गं चक्रवेगा। [4]प्रश्रब्धिसंबोध्यङ्गं खण्डरोहा। धर्मप्रविचय[5]संबोध्यङ्गं शौण्डिनी। [6]स्मृतिसंबोध्यङ्गं चक्रवर्मिणी[7]। [8]उपेक्षासंबोध्यङ्गं सुवीरा ॥६॥

न्द्रियम्। कस्मादिन्द्रियम्? कुशलधर्मेषु प्रभवत्वादिन्द्रियम्, पञ्चस्कन्धानां[9] संक्लेशव्यवदानयो [10]रत्युत्पादकः (कम्)। प्रज्ञेन्द्रियं विहाय वीरमती-खर्वरी-लङ्केश्वरी-द्रुमच्छायाश्चतस्रो डाकिन्यः श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिविशुद्धयो ज्ञेयाः ॥४॥

तत्र कति बलानि? पञ्च। कतमे? प्रागुक्ता एव श्रद्धादयः। किमिन्द्रियबलानां नानाकरणम्? आह—विवर्तन्ते हि श्रद्धादयो यदा तदि(दे)न्द्रियव्यपदेश[11]भाजिनो भवन्ति, यदा विपक्षेना(णा)[12]श्रद्धाकौशीद्यविस्मृतिविक्षेपा[13]योनिशो मनसिकारपर्यायदौष्प्रज्ञैर्न निवर्तन्ते, पञ्चबलानि भवन्तीति नानाकरणम्। प्रागुक्तप्रज्ञेन्द्रियेण वाक्चक्रे ऐरावतीमहाभैरवा-वायुवेगा-सुराभक्षी-श्यामादेवी-सुभद्रा विशुद्धानि ज्ञेयानि ॥५॥

तत्र कति बोध्यङ्गानि? सप्त। कतमे सप्त? समाधिसंबोध्यङ्गम्, वीर्यसंबोध्यङ्गम्, प्रीतिसंबोध्यङ्गम्, [14]प्रस्रब्धिसंबोध्यङ्गम्, धर्मप्रविचयसंबोध्यङ्गम्, स्मृतिसंबोध्यङ्गम्, उपेक्षासंबोध्यङ्गं चेति। दर्शनमार्गे एतान्यङ्गानि बोधेः[15]। निरावरणं ज्ञानं बोधिः। येन सत्यदर्शनं चेतसि समाधीयते, तत् समाधिसंबोध्यङ्गम्। येन तत्रैवोत्साहः, तद्वीर्यसंबोध्यङ्गम्। येन तत्रैव चित्तं निःसंशयं करोति, तत् प्रीतिसंबोध्यङ्गम्। तयैव प्रीत्या कायवाक्चित्तकर्मण्यतः क्लेशोष्मप्रहाणादतिशीतला भवति, तत् [16]प्रस्रब्धिसंबोध्यङ्गम्। सम्यग्भावस्वरूपपरिज्ञानं तद्धर्मप्रविचयसंबोध्यङ्ग-

---

१. शुद्धाबलं–क. ख. च. ज.। २. महानासा–ञ. ट. ठ. ड. ढ.। ३. डाकिन्याननना–भो.। ४. प्राणेन्द्रियसं–घ.। ५. प्रतिचर्य–ग.। ६. संस्मृति–ञ.। ७. इतः परं पत्रमेकं नास्ति ञ.मातृकायाम्। ८. उपेख्या -क. ङ. च. छ.। ९. काष्ठानां–सार्वत्रिकः पाठः, गृ. पा भो.। १०. रत्युत्तरपा–च.। ११. व्यवदेश–क. ख. घ.। १२. राश्रब्ध–ख., राश्रद्धा–घ. छ.। १३. यानि–ख. घ. च. छ.। १४. प्रश्नब्धि–छ.। १५. बोधिः–ख. घ. छ.। १६. प्रश्रब्धि–छ.।

सम्यग्दृष्टिर्महाबला । सम्यक्संकल्पश्चक्रवर्तिनी । सम्यग्वाग् महावीर्या[1] । सम्यक्कर्मान्तः काकास्या[2] । सम्यगाजीव उलूकास्या[3] । सम्यग्व्यायामः श्वानास्या[4] । सम्यक्स्मृतिः शूकरास्या[5] । [6]सम्यक्समाधि[7]-र्भगवान् श्रीहेरुकः ।।७।।

[मू] । तत्रैव चैतस्यसंप्रमोषः स्मृतिसंबोध्यङ्गम् । समाधावासक्त्यनासक्त्योः[8] (क्त्यो) रुदासीन[9]तोपेक्षासंबोध्यङ्गम् । एषां मध्यात् समाधिवीर्यसंबोध्यङ्गस्वभावे हयकर्णखगानने विज्ञेये । इति वाक्चक्रवीराणां विशुद्धिः । शिष्टैः पञ्चभिः प्रीत्यादिभि-श्चक्रवेगा-खण्डरोहा-शौण्डिनी-चक्रवर्मिणी-सुवीरा विशुद्ध(द्धय)न्त इति ।।६।।

क्लेशावरणप्रतिपक्षे दर्शनमार्गमुक्त्वा ज्ञेयावरणप्रतिपक्षं भावनामार्गमाह— स चार्याष्टाङ्गो मार्गः । कतमेऽष्टौ ? सम्यग्दृष्टिः, सम्यक्संकल्पः, सम्यग्वाक्, सम्यक्क-र्मान्तः, सम्यगाजीवः, सम्यग्व्यायामः, सम्यक्स्मृतिः, सम्यक्समाधिश्चेति । तत्र भावनामार्गे ज्ञेयावरण(णं) निःस्वभावमिति या धीः सा सम्यग्दृष्टिः, परलोकास्तित्व-दृष्टिश्च । तद्[10] दृष्टचलब्धोऽपि नैरात्म्यालम्बनः[11] सम्यक्संकल्पः । स्वदृष्टार्थप्रकाशिका सत्त्वेभ्यो देशना सम्यग्वाक् । एकान्तशुभं कायकर्मान्तः, उद्धा(ऋद्धचा)दिभिर्विनयनार्थं परेषां त्रासनं वा सम्यक्कर्मान्तः । ध्यानाहारित्वमात्रया चीवराद्यन्वेषणं सम्यगाजीवः । सर्वेर्यापथेषु स्वचित्तकायवाक्चित्तव्यापारनियोजनं सम्यग्व्यायामः । उक्तं च—

यथा यथाध्यक्षविचित्रगोचरे प्रवर्तते चारगतो जिनात्मः ।
तथा तथा युक्तसमानतापदैर्हिताय [12]सत्त्वेऽत्रभिसंस्करोति तत् ॥ इति ।

भावनामार्गे आलम्बनासंप्रमोषः सम्यक्स्मृतिः । तदेकाग्र[13]चित्तमचलितवज्रोपम-समाधिः । समन्तप्रतिभासाया भूमेर्यदन्तरं प्रादुर्भवति, तत्राद्यैस्त्रिभिर्महाबल[ला-चक्र]-वर्तिनी–महावीर्या विशुद्धयन्ते । इति कायचक्रस्य विशुद्धिः । सम्यक्कर्मान्तः काकास्या । सम्यगाजीव उलूकास्या, सम्यग्व्यायाम. श्वानास्या । सम्यक्स्मृतिः सूकरास्या ।

---

१. वीरा–ज. । २. श्या–क. ख. ङ. च. छ. ज. । ३. श्या–क. ख. ङ. च. छ. ज । ४. श्या–क. ख. ङ. च. छ. ज. । ५. श्या–क. ख. ङ. च. छ. ज. । ६. अयमंशो नास्ति–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. ज. ढ. । ७. समाधौ–ड. । ८. सक्ष्यनासक्ष्ययो–क. ख. घ. छ. । ९. सीनयोपे–ख. । १०. दृष्टलब्धो–क. च. । ११. रात्माल–क. । १२. सन्धेष्टृभि–ख. । १३. चित्तमेव–ख. ।

अनुत्पन्नानां [1]कुशलानां धर्माणामुत्पादनं यमदाढी[2]। उत्पन्नानां कुशलानां धर्माणां संरक्षणं[3] यमदूती। [4]उत्पन्नानामकुशलानां धर्माणां [5]प्रहाणं यमदंष्ट्रिणी। [6]अनुत्पन्नानामकुशलानां धर्माणामनुत्पादनं[7] यममथनी चेति[8] ॥८॥

इति[9] सप्तत्रिंशद्बोधिपाक्षिकधर्मविशुद्धाः शरीरगताः सर्वा[10] नाड्यो देवतावर्णभुजसंस्थानमाश्रित्य संस्थिताः ॥९॥

इति [11]श्रीवसन्ततिलकायां[12] नाडीचक्रसप्तत्रिंशद्बोधिपाक्षिक-[13] [14]धर्मविशुद्धा(द्ध्या)ख्याननिर्देशः सप्तमः[15] ॥७॥

•

इति द्वारपालीविशुद्धिः। सम्यक्समाधिर्भगवान् श्रीहेरुकवज्रः। ज्ञानकमलकर्णिकाविशुद्धिः ॥ ७ ॥

अनुत्पन्नानां कुशलधर्मो(र्माणामु)त्पादिनी यमदाढी। उत्पन्नकुशलधर्मरक्षिका यमदूती। [16]उत्पन्नानाम्[अ]कुशलधर्माणामुत्पादिका(णां प्रहाणं) यमदंष्ट्री। अनुत्पन्नानाम्[अ]कुशलधर्माणामु(मनु)त्पादिका यममथनी चेति समयमण्डलस्य कोणदेवीविशुद्धिः ॥८॥

एते सप्तत्रिंशद्बोधिपाक्षिका धर्माः प्रभेदशः। द्रव्यतस्तु [17]दशाग्राणि पञ्चेन्द्रियाणि पञ्चबलेषु संग्रहं गच्छन्ति। स्मृत्युपस्थानानि स्मृतिबले प्रज्ञाबले वा। ऋद्धिपादाः प्रज्ञाबले वीर्ये वा। सम्यक्प्रहाणानि वीर्ये। समाधिबलं समाधिसंबोध्यङ्गे। वीर्यबलं वीर्याङ्गे। प्रविचयसंबोध्यङ्गे प्रज्ञाबलम्। स्मृतिबलं स्मृतिसंबोध्यङ्गे। श्रद्धाबलं

---

१. धर्माणां कुशलाना–क. ख. ङ. च.। २. यमदाती–क. ख., डाती–घ., मनुत्पादनं यमदंष्ट्रिणी–ज.। ३. संवर्धनं–घ., णामुत्पादसंरक्षणी–ज. ट., णामुत्पादनं यमदूती–ङ.। ४. अनुत्प–ठ. ड.। ५. प्रहायं–क. ख. च. ज., हानं–ङ. छ., प्रवाहन–ग.। ६. उत्पन्नानां कुशलानां–ट. ड. ढ.। ७. नामुत्पादनं–ठ. ड., णां प्रहाणाय–ड. ढ.। ८. 'चेति' नास्ति–ड. ढ.। ९. 'इति सप्त संस्थिताः' अयमंशो न वर्तते–क. ख. ङ. च. ज. झ. ञ.। १०. 'सर्वाः' नास्ति–ग. घ ङ. छ. भो.। ११. 'श्री' नास्ति–क. ख. घ. ङ. च. छ. ज.। १२. तिलके–ज.। १३. पाक्षिकान्–ग.। १४. 'धर्म' नास्ति–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. ञ., पाक्षिकधर्माख्यान–ज.। १५. द्वादशः पटलः–ज.। १६. लिपिकप्रमादादस्मिन् प्रकरणेऽतीव पाठव्यत्यासो जातः। १७. दश पञ्चेन्द्रि–क. घ. च. छ., नास्ति–भो.।

वीर्यसंबोध्यङ्गे। बोध्यङ्गानामष्टाङ्गमार्गे संग्रहः। तद्यथा—सम्यक्स्मृतिसमाध्योः(धी) स्मृतिसमाधिसंबोध्यङ्गे संग्रहमुपयातः। वीर्यसंबोध्यङ्गं सम्यग्व्यायामे। धर्मप्रविचय-संबोध्यङ्गं सम्यग्दृष्टौ। [1]सम्यग्वाक्सम्यक्कर्मान्ताजीवा[:] शुद्धशीलसमुदाचारास्त्रयः। तथा सम्यग्दृष्टिः, सम्यक्संकल्पः, सम्यग्व्यायामः, सम्यक्स्मृतिः सम्यक्समाधिश्चेति पञ्चबोध्यङ्गेभ्यः [2]प्रस्रब्धिसंबोध्यङ्गम् उपेक्षासंबोध्यङ्गं चेति संगृह्य दशवस्तूनि भवन्ति। ते च त्रितये शीलसमाधिप्रज्ञाबल(ले) संग्रहमुपयान्ति। तत्र सम्यग्-वाक्कर्मान्ताजीवा[:] शुद्धिशीलसमुदाचारास्त्रयः सम्यग्व्यायामशुद्धशीलसमुदाचार-फलं[3] शीलस्कन्धः[4], सम्यग्दृष्टिः सम्यक्संकल्पः [5]प्रस्रब्धिसंबोध्यङ्गमुपेक्षासंबोध्यङ्गं चत्वारः प्रज्ञास्कन्धः, सम्यक्स्मृति[:] सम्यक्समाधिस्कन्ध इति। शीलसमाधी च प्रज्ञायामन्तर्भवतः, प्रज्ञैव बोद्ध्री धर्माणामिति न्यायात्। एवं सप्तत्रिंशतो दशभिर्दशानां त्रिभिस्त्रयाणामेकेन संग्रहो वेदितव्यः।

एतदुक्तं भवति—इह सप्तत्रिंशत् प्रागुक्तसंविद्रूपा डाकिनीरूपा नाड्यः शिर-आदिजानुपर्यन्तं स्थिता नाभिचक्रान्ताश्चतस्रो द्वाराष्टके चाष्टौ मध्येऽवधूतीरूपा कायद्वार-सन्निश्रिता नवनाडीमध्यनाडीषु दशसु संग्रहं यान्ति। ता दशापि ललनादित्रये, तदपि मध्यनाड्यामिति। एवं वज्रवाराहीस्वभावा(व)या मध्यनाड्याऽवधूत्या एवं सर्वोऽयं नाडीसंचयः प्रादुर्भूय तत्रैव समवशरणं गच्छति। एतेन संवृतिपरमार्थद्वयीभावः प्रकाशितो भवति। स एव च युगनद्धमार्गसंचितः। यथोक्तम्—

पयोधरा यथा नैका(के) नानासंस्थानवर्णकाः।
उद्भूता गगनाभोगात् लयं गच्छन्ति तत्र वै॥
तद्वत् प्रकृतयः सर्वा आभासत्रयहेतुकाः।
निविश्य[6] विषयान् कृत्स्नं प्रविशन्ति प्रभास्वरम्॥ इति।

(अ० स० ४१-४३)

तथा "रूपमेव शून्यता, शून्यतैव रूपम्" इत्यादिवचनात्, "संवृतिव्यतिरेकेन(ण) परमार्थस्य का कथा" इति वचनात्। एतेन स(शा)न्तब्रह्मसांख्यपुरुषादिवाद(दि)-परयूथ्याः, निराकारविज्ञप्तिवाद(दि)प्रभृतयश्च स्वयूथ्या[:] प्रत्याख्याता भवन्ति, संवृतिपरमार्थयोर्भेदं प्रति साभिनिवेशत्वात्। इत्यलमतिप्रसङ्गेन।

प्रकृतमनुसरामः। एवमेता नाडीरूपा अध्यात्मनि। बाह्ये तु [7]मुखसंस्थानायुधादिधारिण्यः सत्त्वाशयविशेषमाश्रित्य मण्डलचक्रे व्यवस्थिताः, पुल्लीरादिपीठेषु च

---

१. 'सम्यग्वाक्' नास्ति सर्वत्र, गृ. पा. भो.। २. प्रश्रब्धि–छ.। ३. फलशील–ख. घ. छ.। ४. स्कन्धाः–ख. घ. छ.। ५. प्रश्रब्धि–छ.। ६. निर्विश्य–क. घ. च.। ७. मुखवर्णभुजसं–च.।

क्षेत्रजारूपेणानुग्रहं[1] कुर्वन्त्यः[2] क्रीडन्ति रमन्ते प्रविचारयन्तीति। तथाऽध्यात्मन्यपि तासां मुखादि विद्यते। सर्वा एव नाड्यो महासुखचक्रादुद्भूय वज्रवारिजपर्यन्ते मुखानि प्रकटयन्ति। तदङ्कुराणि प्रत्येकं बहूनि भुजा धातूपरञ्जनाद्वर्णवत्यः। तथाहि नखदन्तं शि(सि)तम्, केशरोम कृष्णम्। त्वङ्मलं कृष्णरक्तम्। मांसं रक्तवर्णम्। स्नायवः सिताः। अस्थिमाला सिता। [3]बुक्कं कृष्णम्। हृदयं सितरक्तम्। अक्षिणी शि(सि)ताशि(सि)ते। पित्तं पीतम्। फुफ्फुसं रक्तम्। अन्त्राणि चागुणवर्तिश्वेता[नि]। उदरं श्यामम्। पुरीषं पीतम्। सीमन्तं[4] [5]रक्तसितम्। श्लेष्मा सितः। पूयं चन्द्रगौरम्। लोहितं लोहितमेव। प्रस्वेद आग्नेयवर्णः। मेदः शि(सि)तम्। अश्रु मुक्ताफलधवलः। खेटः कृष्णशि(सि)तः। सिङ्घानकं पीतं सितमिति वर्णभेदः। संस्थानमासां[6] कुटिलरूपतया वामदक्षिणप्रचारेण स्थितमालीढादिरूपेण स्वभावसिद्धः[7](द्धम्)। आयुधमासां कर्तिकपालविशुद्ध्या विकल्प[8]मलभेदकसहज[9]स्वभावं विज्ञेयम्[10]। अत्र श्लोकाः—

विकल्पमलविच्छेदलब्धसंवेदनात्मिकाः।
ग्राह्यग्राहकनिर्मुक्तसहजानन्दनिष्ठिताः॥
स्पर्शमात्रेण लोकस्य बुद्धत्वफलदायिकाः।
डाकिन्यादि [11]दशाख्याता[12]श्चक्रगतास्तु[13] कल्पनाः॥
अभेद्यादिस्वभावेन स्थिता जगति सर्वदा।
धातुरूपमहावीरचतुर्विंशतिसंयुताः॥
स्वदेहान्तर्गता नाड्यो वीराश्च यदि तत्कथम्।
मूढा भ्रमन्ति पीठानि पुल्लीरादीनि निर्विदः[14]॥
[15]सर्वं बाह्यं परित्यज्य भावनास्तमणं(नं)[16] तथा।
अध्यात्मयोगयुक्तेन योगिना मोक्ष आप्यते॥ ९॥

इति वसन्ततिलकायां[17] निष्पन्नक्रमसाधनोपायिकायां रहस्यदीपिकायां टीकायां[18] सप्तमनिर्देशे विस्तरव्याख्या॥ ७॥



---

१. जानुग्रहं–ख. छ.। २. वंत्यः–ख.। ३. बुक्कं वा सितम्–इति सा. पाठः, गृ. पा. भो.। ४. सीमान्तं–ख. घ. छ.। ५. रक्तम्–क.। ६. मांसी–क., मांसानि–छ.। ७. सिद्धिः ख. घ. छ.। ८. ल्पमभेद–क.। ९. संज्ञिक–सा. पा., गृ. पा. भो.। १०. ज्ञेयम्–क.। ११. दशा–ख. घ. छ.। १२. चाख्या–क. ङ. छ., वाख्या. घ. च., गृ. पा. भो.। १३. गाथस्तु–सा. पा., गृ. पा. भो.। १४. निर्देशः–क., निर्विदेः–च.। १५. स्याद् बाह्यं–क.। १६. नात्समनं–क.। १७. तिलके–क. च.। १८. 'टीकायां' नास्ति–क. घ. च.।

[1]अष्टमो निर्देशः

अथान्यतमस्य तथागतकायस्य मण्डलहोमयोग[2]जपभावनादि-[3]विधिक्रियां सबाह्याध्यात्मरूपेण संप्रवक्ष्यामि ।।१।।

सप्तत्रिंशन्महाबोधिपक्षस्थधर्मलक्षणैः ।
[4]देवतैर्हेरुकाद्यैस्तु नाडीरूपैः सुसंस्थितम् ।।२।।

शरीरं मण्डलं रम्यं चतुर्द्वारं[5] यथोदितम् ।
अष्टाभिः[6] स्वाङ्गभूतैस्तु स्तम्भैस्तैर्विधृतं[7] स्थितम् ।।३।।

इदानीं बाह्यमण्डलयोगजापहोमादीनध्यात्मन्यवस्थितान् प्रकटयितुमथान्यतमस्येत्यादिनाऽऽह । एतच्च सुबोधम्, प्रागुक्तत्वात् । तत्र शरीरमेव मण्डलं प्रतिपाद्यते । देहमण्डलमिति संबन्धः ।। १ ।।

कीदृशम् ? सप्तत्रिंशदित्यादि । सप्तत्रिंशद्बोधिपाक्षिकधर्मविशुद्ध्या व्यवस्थिता या एता नाड्यस्तद्रूपेणैव ज्ञानचित्तवाक्कायसमयचक्रस्था डाकिन्यादयोऽवस्थिता[8] इत्याधेयमण्डलविशुद्धिमाह । तत् कस्य हेतोः ? इह निर्विकल्पनिरालम्बनिरावरणस्वभावा डाकिन्य इत्युच्यन्ते,

डे डै) वैहायसि गग(म)ने बुद्धो धातुः प्रकल्पितः ।
सर्वाकाशचराः(रा) सिद्धा डाकिनीति निगद्यते ॥

इति वचनात् । पञ्चज्ञानमहानभसि चरन्त्यश्च नाड्यस्तस्मात्ता एव डाकिन्य इत्युच्यन्ते, तत्स्पर्शादुभयोरविकल्पतत्त्वोदयात् ॥ २ ॥

आधेयमुक्त्वाऽऽधारमण्डलमाह—शरीरं मण्डलमित्यादिना । तत्र शरीरमेव मण्डलम्, चित्तवाक्कायमण्डलनाडीधातुरूपाणां योगिनीवीराणामाश्रयत्वात् । अत एव

---

१. ज. मातृकायामयं निर्देशः पञ्चमत्वेनोक्तः, विषयैश्येऽपि पाठे महदन्तरमिति कृत्वा पृथङ्निर्दिष्टः परिशिष्टे । २. जाग-क. ख., याग-ग. भो., नास्ति-घ. ङ. छ । ३. नाविधि-ङ., विधिक्रिया-ढ. । ४. देवता हेरुकाद्यैस्तु नाडीरूपे सुसंस्थिताः-ग., देवती-ढ. । ५. द्वार-क. ख. ग. ङ. च. छ., पञ्चमण्डलैः शोभितम्-ज. ञ. । ६. ष्टादि क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. ज. ञ. । ७. निर्वृत्तं ङ. । ८. व्यवस्थिता-ख. छ. ।

समत्वात्[1] सर्वभावेन चतुरस्रं प्रकीर्तितम् ।
कायवाक्चित्तरूपेण त्रिचक्रात्मकमुच्यते ॥४॥

गिरिमस्तककिञ्जल्के[2] वैरम्भादि यथाक्रमम् ।
गुरुपर्व[3] क्रमेणैवमुत्पन्नं[4] मण्डलं हि तत् ॥५॥

स्थितः पादतले वायुर्वैरम्भो[5] धनुराकृतिः ।
स्थितस्त्रिकटि[6] देशे तु[7] त्रिकोणे[8] ज्वलनस्तथा ॥६॥

रम्यम्, बाह्यरजोरङ्गाद्यनपेक्षणात् । बाह्यमण्डलं चतुर्द्वारं यथाऽध्यात्ममपीति दर्शयन्नाह। तत्र देहमण्डले चत्वारि द्वाराणि नेत्रश्रोत्रनासिकामुखाख्यानि, अथवा यथोदितमिति यथा प्रागुक्तानि तानि[9] द्वाराणि विभागेन चत्वारि भवन्ति। वामदक्षिण-नाड्यां चित्तद्वारं प्रथमम्। आत्मपीठादीनि चत्वारि द्वितीयं वाग्द्वारम्। नवात्मकं कायद्वारमधऊर्ध्वभेदाद् द्विधा। एवं चतुर्द्वारम्[10]। प्रतिद्विद्विस्तम्भयुक्तत्वादष्टस्तम्भम्। अध्यात्मनि चक्षुरादिनाडीस्तम्भैर्युक्तम्। बाह्यमण्डलं यथा चतुरस्रं तथा समभावेन देहमण्डलमपि चतुरस्रं ज्ञेयम्। कुतः समत्वमस्य ? यथायं कायः पादाधस्तादुष्णोषान्तं प्रमाणवांस्तथा प्रसारितबाहुरपि तत्प्रमाण एव। बाह्यमण्डलं चित्तवाक्काय-मण्डलात्मकं त्रिचक्रं चतुर्विंशत्परम्[11], तथाऽध्यात्मन्यपि चित्तवाक्कायनाड्याधारभूत-शिरआदिजानुपर्यन्तचतुर्विंशतिपीठाध्यात्मिकचक्रत्रयोपेतम् ॥ ३-४ ॥

गिरिमस्तककिञ्जल्क इत्यादिनोद्देशः। स च वाय्वादिमण्डलचतुष्टयोपरिस्थित-सुमेरुशिखरारूढविश्वपद्माख्यया प्रतिपाद्यमानः। तथैवाध्यात्मन्यपि[12] देहमण्डल-मण्डलाङ्कितं गुरूपदेशादधिगन्तव्यम् ॥ ५ ॥

निर्देशमाह—स्थितः पादतले वायुरित्यारभ्य व्यक्तमव्यक्तरूपत इत्यन्तेन मण्डलाङ्कितत्वमुच्यते। पादतले पादाधस्ताद्वायुः स्थितः। धनुराकारत्वाद्विशिष्टा-रम्भत्वात् स एव वैरम्भः। स्वार्थेऽण्। वैकृतवत् पादविहरणात्मिका च क्रिया वैरम्भ

---

१. समन्तात्—घ. । २. ञ्जल्के भै—क. ख., ल्कैर्भै—ग. घ. छ. भो., ल्कवै—ढ. । ३. पूर्व—क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. ज. । ४. त्पन्ना—ट. ठ. ड. । ५. भैरवो-ख., भैरम्भो—क. ग. घ. ङ. च. छ. ज. ञ. । ६. त्रिकट—ग. घ. ङ. । ७. 'तु' नास्ति—क. ख. ग. घ. ङ. च. ज. ञ. । ८. त्रिकोणो—ढ. । ९. श्रीणि—क. । १०. द्वारे—क. । ११. विंशत्यपरं—छ. । १२. देहे—च. ।

वर्तुलाकाररूपो हि वरुणस्तूदरे स्थितः ।
हृदये पृथिवी चैव चतुरस्रं[1] समन्ततः ॥७॥

[2]कङ्कालदण्डरूपो हि सुमेरुगि(र्गि)रिराट् तथा ।
तच्छिरोभागसंस्थं तु द्वात्रिंशद्दलपङ्कजम् ॥८॥

स्वरव्यञ्जनसंभूतं द्वात्रिंशद्बोधिमानसम् ।
पद्ममध्य[3]गतं [4]यत्तच्चन्द्रमण्डलमुच्यते ॥९॥

[5]मस्तिष्कं तु शिरोमध्ये स्थितं यत्तदुदाहृतम् ।
तस्य मध्ये तु [6]हंकारो बिन्दुरूपो ह्यनाहतः ॥१०॥

इत्युच्यते । एतेन वायुमण्डलस्य कारित्रं सन्निवेशश्चोक्तः । तदुपरि योऽयं त्रिकटि-[7] प्रदेशः [8]कटिभागस्तत्र स्त्रीपुंसयोरग्निमण्डलं त्रिकोणं स्वभावतो रक्तमणियुक्तत्वा-दुज्ज्वलं[9] व्यवस्थितम् । तदुपरि [10]वर्तुलमन्त्रावलीद्रवतायोगाद्वारुणमण्डलमुदरदेशे स्वभावतो व्यवस्थितम् । तदुपरि हृदये चक्षुषि(वक्षसि)चतुरस्र[11] फल(कन)कसदृशं पृथिवीमण्डलमास्ते । य एष तदुपरि ग्रीवाभागः कङ्कालापरपर्यायः स एव मेरुर्ज्ञातव्यः, चक्षुराद्यष्टश्रृङ्गोपेतः, तद्दलचतुष्टयरत्नमयत्वात् । तस्य मेरोर्यदेतच्छिरस्तन्मध्ये या अभेद्याद्या[12] द्वात्रिंशन्नाडयस्त(स्ता) एव विश्वपद्मं भगवत आसनं विज्ञेयम् । तदन्त-रालिकालिस्वरव्यञ्जनात्मद्वात्रिंशद्बोधिचित्तपिण्डितमस्तुलुङ्गमेव चन्द्रमण्डलं भगवतो विशेषासनम् । नह्यासनानां स्वभावसिद्धः कश्चिद्विशेषस्तन्त्रेषु प्रतिपाद्यते, विशुद्धि-तत्त्वस्य सर्वदाऽविवक्षितत्वात् । पुद्गलाधिमुक्तित्रसा(शा)त् प्रभेद आसनानाम् । अत एव त्रिचक्रस्थवीरयोगिनीनां क्वचिच्चन्द्रमण्डलासनानि, क्वचित् सूर्यासनानीति प्रतिपादयन्ति ॥ ६–९½ ॥

---

१. रस्रस–क. ख. ग. ङ. च. छ. ज., रस्रा–ट. ठ. ड. भो. । २. हंकारदण्डरूपो–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. ज., काकाररूपदण्डो–ट. ठ. ड., कङ्कालरूपदण्डो–ढ. । ३. मध्ये–क. ख. ग. घ. ङ. च. ट. ठ. । ४. यन्त्रं च–ञ. । ५. मस्तिकान्ते शिरोभागे–क. भो., मस्तिष्कं तच्छिरो भागे–ख. ग. ञ. ट., स्तिगं तु–घ., स्तिकं तु–छ. । ६. हूंकारो–क. ख. घ. ड. च. छ ट. ठ. । ७-८. कटी–क. ख. च. । ९. ज्ज्वालं–छ. । १०. वर्तल–ख. छ. । ११. रस्रफलक–क. । १२. भेद्यो द्वा–ख., भेद्या द्वा–छ. ।

तन्मूलं सर्वलोकानां [1]स्थिराणां च [2]चलात्मनाम् ।
स्थितं [3]तद्बीजरूपेण व्यक्तमव्यक्तरूपतः ॥११॥

सर्वेषां देहिनां रूपं तस्मादुत्पन्नमादितः ।
[4]श्रवत्यमृतरूपेण व्यवस्थितमहर्निशम् ॥१२॥

तेनैव भिद्यते नादो वह्निसंतोष[5]कारिणा ।
सम्पूर्णं[6] मण्डलं तेन भवत्येव न संशयः ॥१३॥

तस्य मध्य इत्यादि । तस्य मस्तिष्कस्य मध्येऽनाहताक्षरो हंकारः स्रवदमृतप्रसरत्वाद् बिन्दुर्वेदनशीलो बिन्दुरित्युच्यते । स सर्वेषां स्थिरचलात्मनां भावानां कारणभूतत्वात् [7]पूर्णप्रतिष्ठास्थानम् । अत एव बीजरूपेण व्यक्तम्, पारमार्थिकबोधिचित्तरूपेणाव्यक्तम् । तत एव सर्वेषा[8]मपदैकपदद्विपदचतुष्पद[9]बहुपदानामण्डजस्वेदजजरायुजोपपादुकानां तिर्यक्प्रेतन[ा]रकदेवासुरमनुष्याणां देहिनां देह आदित एवोत्पन्नो मातृ[10]पितृसमापत्तिवशादन्यदास्यामृतमेव[11] स्रवन्नवस्थितम् । स भगवतो हेरुकस्य स्वरूपम्, [12]धर्मतयैव सर्वधर्माणां व्याप्तेः, बुद्धोत्पादानुत्पादेऽपि तस्या[स्य] स्थितत्वात्, आद्यनुत्पन्नत्वात् सर्वधर्माणां प्रतीत्योत्पन्नत्वादुत्पादाभावाद् अत एव निरोधासिद्धेः ।

न चात्रोत्पद्यते कश्चिन्मरणं वापि कस्यचित् ।
संसार एव ज्ञातव्यश्चित्तरूपाकृति[ः] स्थितः ॥

इति वचनात् । उत्पादनिरोधविकल्पेऽपि वस्तुभावे निरालम्बः । प्रतिभासमानालम्बेऽपि तस्य मायोपमत्वात् सर्वमेव वस्तुजातमवाच्यमनिरुद्धमनुत्पादं विज्ञेयमिति ॥ १०-१२ ॥

प्रज्ञोपायसमापत्तिमाह—तेनैव महासुखचक्रस्थेन स्वदेहे[13] मण्डलारूढे वा मण्डलीस्वरूपज्ञानवह्निसन्तोषकारिणा नादो निर्माणचक्रकर्णिकास्थिता[14]कारा[द्]

१. स्थितानां—ख. ग. घ. ङ. । २. चरा—ञ. ढ । ३. तु बीज—ट. ड. । ४. श्रवदमृत—क. ख. घ. छ, श्रवेदमृ—ग. । ५. संतापका—ट. ठ. ड. । ६. संपूर्णं—ढ. विहाय सर्वत्र । ७. पूर्णं—क. । ८. 'अपद' नास्ति—क. ख. । ९. 'बहुपद' नास्ति—क. । १०. मातापि—ख. घ. त्र. छ. । ११. मृतमेवाव—घ. । १२. धर्मज्ञतयै—ख. । १३. देहमण्ड—क. च. । १४. स्थितोका—क. च. ।

तदेव [1]मण्डमित्युक्तं वस्तूनां सारमुत्तमम् ।
तद्[2] गृह्णाति लातीति शरीरं[3] मण्डलं मतम् ॥१४॥

भिद्यते। स्वस्थानाच्चाल्यस्वरूपगतसुधात[र]ङ्गपाश(न)लम्पटतया दण्डभङ्गं कारयित्वोन्मूल्यत इत्यर्थः। उक्तं च—

नादो हि सर्ववर्णानां पदवाक्यप्रभेदिनाम्[4] ।
एक कारणतां प्राप्ते नाभिदेशे व्यवस्थितः ॥
[5]वायूपवायूश्च(च)क्रस्य व्युत्थानादिक्रियां प्रति ।
रेचकादिस्वरूपेण प्रवृत्तीतरतां श्रितः ॥
दशधा मध्यरूपस्य स एवाश्रय उच्यते ।
मन्थमन्थानसंयोगात् स महासुखकारकः ॥
ऊर्ध्व[6]ज्वालनयोगेन स्कन्धादीन्द्रियदाहकृत् ।
कालाग्निरूप एवासौ सर्वसंहारकारकः ॥
बिन्दुरिन्दुस्वरूपेण जगदाह्लादकारकः ।
महासुखे महाचक्रेऽनाहताक्षररूपधृक् ॥
तुषारकरसंकाशबोधिचैतन्यविप्रुषः ।
[7]स्फुरंस्तु हरिचक्रान्ते [8]स्रवन्नेवोपतिष्ठते ॥
स एव प्राणिनां प्राणः स एव परमाक्षरः ।
सर्वव्यापी स एवासौ सर्वदेहे व्यवस्थितः ॥
अनेनाप्यायितो नादः सन्तोषपदभाग्भवेत् ।
वसन्ततिलकायोग[ः] स एष विनिगद्यते ॥

तस्मात्तेनैव मण्डलं चतुष्पीठात्मकं वा निर्माणादिमण्डलं सम्पूर्णमाख्यायितं भवति। बहिरपि मण्डलाधिपतिना स्वस्वाभेन[9] मण्डलं परिपूर्णं भवति, नान्यथा ॥१३॥

---

१. मण्डलेत्यु-ग, मण्डलमित्यु-ञ. ट. ठ. ड. ढ. । २. तं गृह्णा-क. ख. च. ज., गृह्णातीति लातीति-ट. ड. ढ. । ३. रीरम-क. ख. घ. ङ. च. छ. । ४. दिना-क. च. । ५. वायुसर्वायु च-क., वायूश्चक्र-ख., वायूपवायु-घ. । ६. कालन-ख. छ. । ७. स्फुरण-हरि-क., स्फुरणहंति-ख., स्फुरणं हृति- घ. छ. । ८. श्रवन्नेवाव-क. छ. । ९. स्वलाभेद-ख, घ., स्वस्वभेद-छ. ।

सप्तत्रिंशन्महानाडीचक्रं हि [1]मण्डलं मतम्[2] ।
बोधिचित्तं महारत्नं मण्डलं[3] तत्त्वमण्डलम् ॥१५॥

बाह्याभ्यन्तररूपेण [4]व्याप्य विश्वं व्यवस्थितम् ।
बाह्यं तु रूपशब्दादि [5]षडिन्द्रियप्रवर्तनम् ॥१६॥

अभ्यन्तरं[6] तु शुक्रादि [7]सिद्धद्रव्यं व्यवस्थितम् ।
सबाह्याभ्यन्तरेणैव बोधिचित्तेन वज्रिणाम्[8] ॥१७॥

आधारमण्डलनिरुक्तिमाह—तदेव मण्डलमित्यादिना । सारस्य नाडीधातुवसन्ततिलकास्वभावडाकिनीवीरश्रीहेरुकवज्रवाराहीमयस्याधेयमण्डलस्य संग्रहात् शरीरमेव मण्डलमुच्यते । मण्डाय[9] यदा (मण्डोपपदाद्) दानार्थल्लाते(तेः) प्रत्ययविधानात् ॥ १४ ॥

आध्यात्मिकविशुद्धिमाह—सप्तत्रिंशदित्यादिना । य एते सप्तत्रिंशद्बोधिपाक्षिका धर्माः संविद्रूपास्तद्विशुद्धया प्रागुक्तनाडीचक्रमेव मण्डलम् । वीरविशुद्धिमाह—बोधिचित्तमित्यादिना । चतुर्विंशतिर्यानि बोधिचित्तस्पन्दनानि धातुरूपाणि तदेवानर्घत्वान्मण्डस्य[10] देवीचक्रस्य मण्डलं तत्सारग्राहकं वीरमण्डलं [च] ज्ञेयम् ॥ १५ ॥

निर्मितमण्डलं द्विधा—बाह्यं चतुरस्रादि, आभ्यन्तरं गर्भमण्डलं त्रिचक्रादि । इह तु बाह्यं शिरआदि जालन्धरादि, आभ्यन्तरं नाडीधातुमयम् । अत एव न ममैकस्यैतन्मण्डलमपि तु विश्वस्यास्य पञ्चगतिकस्याप्येतन्मण्डलं ज्ञेयम् । अत आह—व्याप्य विश्वं व्यवस्थितम् । अपि च, बाह्यमण्डले रूपशब्दादिभिः पूजाभिरभ्यन्तरमण्डलं पूज्यते । अभ्यन्तरे तु कलशकपालोदरे[11] पञ्चामृतानि [12]सुखपूजार्थं विद्यन्ते । इह तु बाह्ये रूपादिभिः पञ्चकामगुणैरिन्द्रियद्वाराणि पूज्यन्ते । आन्तरे सिद्धानि [13]स्वभावसिद्धानि द्रव्यानि(णि) पञ्चव्योमभूतानि द्रव्यानि(णि) स्थितानि । तदर्थमाह—बाह्यं तु रूपशब्दादि इत्यादि । बाह्यं स्थूलसूक्ष्मसमयदानाय शिष्येभ्यो दर्श्यते । इह तु स्थूलसूक्ष्म-

---

१. विमलं-घ. । २. महत्-ञ. ट. ठ. ड. ढ. । ३. मण्डं तत्-भो. । ४. विश्वरूपे-ढ. । ५. बाह्येन्द्रिय-सर्वासु मातृकासु, गृहीतपाठस्तु भोटानुसारी । ६. रस्तु-घ. छ. । ७. सिद्धि-ट. ठ. ड. । ८ वज्रिणः-ख., वज्रिणा-ग. घ. ञ. ट. ठ. ड. ढ. । ९. मण्डाय येनार्थल्लाते-र्डप्रत्यय -छ. । १०. मण्डलस्य-क. ख. च. छ. । ११. कपालदले-ख. घ. । १२. मुखपू-ख. । १३. 'स्वभावसिद्धानि' नास्ति-घ. ।

स्थूलसूक्ष्मस्वरूपेण जगद्बन्धु[1]स्वरूपिणाम्[2] ।
बुद्धानां बोधिसत्त्वानां समयार्थोदितेन तु ॥१८॥

जन्मनीहैव बुद्धत्वं [3]प्राप्नोति मण्डलादतः ।
श्रावकाणां च[4] बुद्धानां प्रत्येकानां तथैव च ॥१९॥

ब्रह्मादीनां च देवानां निष्पत्तिर्मण्डलादतः ।
अभ्यन्तरैस्तु[5] [6]शुक्राद्यैर्बाह्यै[7] रूपादिभिस्तथा ॥२०॥

प्रभेदभिन्नेन बोधिचित्तेन वज्रधरेण सर्वजगद्[8]बुद्धत्वसाधकेन बुद्धत्वं बोधिसत्त्वत्वं[9] च समयं दातुमुदितेन हेतुना तस्मादेव मण्डलात् तत्पदं प्राप्यते ॥१६-१७॥

तदर्थमाह—स्थूलसूक्ष्म[10]प्रभेदेनेत्याह(दि)। तत्र स्थूलाश्चतुर्विंशतिधातवः। सूक्ष्मं बोधिचितम्। अथवा स्थूला नवद्वारनिर्गता मला द्र(द्रा)व्याः, सूक्ष्मं बोधिहृदयं द्रावकः(कम्)। उक्तं च—

स्थूलसूक्ष्मप्रभेदेन द्विधाभाव[11]मुपागतः ।
स्थूलं नवविधं द्रव्यं सूक्ष्मं भेद(बोधि)स्वरूपकम् ॥
सिद्धानि (सिद्ध) द्रव्याण्यमूनि स्युर्द्रावकद्रव्यभेदतः ॥ इति ।

बाह्यमण्डलमध्यनायकः श्रावकप्रत्येकबुद्धसम्यक्संबुद्धब्रह्मादिनिर्माणं करोति सत्त्वार्थम्। आन्तरे तु [12]श्रवन्तीति श्रावका नवद्वाराणि। चक्षुरादिविज्ञानानि प्रत्येकबुद्धाः, असंस्कृतत्वात्। आनन्दादयः सम्यक्संबुद्धाः। कायवाक्चित्तानि ब्रह्मादयः। एते सर्वे एतस्मादेव मण्डलान्निष्पद्यन्त इति मण्डलनिर्णयः ॥ १८-१९½ ॥

बाह्याध्यात्मिका(कं) होममाह—आभ्यन्तरैस्तु शुक्राद्यैरित्यादि। इह बाह्ये तिलाहुतिभिराचार्यैः समयाग्निमुखेन ज्ञानाग्निस्तर्प्यते, तथैव रूपादिविषयैः प्रत्याहार-ध्यानाभ्यां शुक्राद्यैश्च समापत्तिजनितैः पञ्चस्कन्धादिबुद्धतत्सुतमण्डलं तर्प्यते। प्रज्ञाग्नौ चण्डालीज्वलन[13]तीक्ष्णत्वाद् दाहोज्ज्वले होमोऽसौ विज्ञेयः ॥ २०-२०½ ॥

---

१. गद्विन्दु–ञ. ट. ड. । २. पिणा–ञ. ढ. । ३. संप्राप्य–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. । ४. तु–ञ. ट. ठ. ड. ढ. । ५. रे तु–घ., रस्तु–ट. ड. । ६. संगुह्यैः–ग., शक्राद्यैः–घ. । ७. बाह्यरू–ठ. ढ. । ८. 'बुद्धत्वसाधकेन' नास्ति–ख. घ. छ. । ९. सत्त्वं–क. । १०. स्वरूपेणेति मूले पाठः । ११. भाग–घ. छ. । १२. स्रव–छ. । १३. ज्वलनधी–ख., ज्वलनं–छ. ।

हविर्भिः [1]क्रियते होमः प्रज्ञाग्नौ तु [2]महोज्ज्वले ।
षडायतनधातूनां स्कन्धादीनां विशेषतः ॥२१॥

देवतारूपिणां तेषां डाकिनीनां तथैव च ।
[3]योग[:] पूजा समाख्याता तेन ते पूजिता [4]यतः ॥२२॥

शिरःकपालमेतत्तु [5]हविर्भाजनमुच्यते ।
स्रुवं तु रसनाख्याता हृच्चन्द्रो[6] ललनात्मकः[7] ॥२३॥

[8]पात्रीति मुखमुद्दिष्टं कुण्डं च नाभिमण्डलम् ।
कर्ममारुतनिर्धूतो ब्रह्माग्निस्त्रिकटे[9] स्थितः ॥२४॥

पूजामाह—षडायतनधातूनामित्यादि । इह प्रागुक्तेन न्यायेन पञ्चस्कन्धाः पञ्चडाकाः षडायतनानि षट्चक्रवर्तिनः खण्डकपालाद्याः । धातवश्चतस्रो ज्ञानदेव्यः । डाकिन्यः षट्त्रिंशन्नाड्यः । एवमेषां देवतादिरूपिणां प्रज्ञोपायाद्वययोगेन [10]यो योगः, सा पूजा विज्ञेया । उक्तं च—

निःस्वभावपदाभ्यासाद्देवतारूपभावना ।
सा मता महती पूजा सर्वबुद्धप्रसाधनी ॥ इति ।

अत एवाह—तेन ते पूजिता यत इति ॥ २१-२२ ॥

प्रागुक्तहोमस्याङ्गान्याह—शिरःकपालमेतत्तु इत्यादि । यदेतच्छिरःकपालं मूर्ध्नि कपालम्, तदेव चन्द्राज्यहविष आधारभूतत्वाद्धविर्भाजनं नान्यत् । तथा वामदक्षिणगे ललनारसने अधोद्रव्यवाहित्वाद्यथाक्रमं स्रुक्स्रुवौ ज्ञेयौ । निर्माणचक्रे नाभिमण्डलं वह्निकुण्डम्, तत्र हविषः पातात् । मन्थमन्थानसंयोगात् कर्मणो यत्र तदुद्भूतो ब्रह्माग्निस्तत्त्वमयो ज्वलनः । स त्रिकटे तदधो गुह्ये त्रिकोणे ज्वलन्नास्ते, स्वभावेनेति वाक्यशेषः । बहिरपि ब्रह्माग्निः शान्तिके शस्यते । स चारणिनिर्मथनादुद्भवतीति ॥ २३-२४ ॥

---

१. प्रक्षिपेत्—ङ. । २. महाज्वलो—क. ख. ङ. च., महोज्जलैः—ट. ठ. । ३. जोग—क. ख., यागः—ञ. । ४. जनाः—घ. । ५. हविर्भो—घ. छ. । ६. हृच्चक्र—क. ख. ग. घ. ङ. च. भो. । ७. त्मिकां—क. ख. ग., त्मिका—घ. । ८. पातीति—क. ख. ग. घ. ङ. च. । ९. त्रिकटि—क.ख.ग., त्रिकटके—घ. । १०. 'यो' नास्ति—क. छ. ।

नादं तु (दस्तु) मन्त्र[1] इत्युक्तो ज[ा]प मा(आ)वर्तनं भवेत् ।
भावनाप्रतिभासस्तु[2] मण्डलाद्वययोगतः ॥२५॥

[3]सहजरूपमेतत्तु जिनानां मण्डलादिकम् ।

होममभिधाय[4] जापमाह—नादस्तु मन्त्र इत्युक्त इत्यादि । योऽयं प्रागुक्तो नाभिदेशादुच्चारणात् प्राणवायुः, स एव सर्व[5]मन्त्रहेतुत्वान्मन्त्र इत्युच्यते । तस्यैव प्रवेशादिक्रमेण यदावर्तनं स जाप उच्यते । एतेन प्रकृतिजापोऽयं सर्वलोकसाधारण उक्तः । उक्तं च—

ये वै त्रिधातुके सत्त्वाः प्राणायामसमाश्रिताः ।
मन्त्रराजं जपन्त्यज्ञा ध्यानाध्ययनवर्जिताः ॥ इति ।

जापमुक्त्वा भावनामाह—भावनाप्रतिभास[6]स्त्वित्यादि । बाह्ये कायवाक्चित्तान्यालम्ब्य योगिनां प्रतिभासते । अध्यात्मनि निर्माणादिचतुर्मण्डलेषु[7]मुद्र[ा]निकायादिप्रतिभास एव भावना । निःस्वभावतालम्बनं वा मण्डलाद्वययोगः, सैव भावना । उक्तं च—

[8]अभावे भावना भावो[9] भावना नैव भावना ।
इति भावो न भावः स्याद् भावनातो न लभ्यते ॥ ॥ २५ ॥

(गु० स० २।३)

उपसंहारमाह—सहजरूपमेतत्तु जिनानां मण्डलादिकमिति । जिनानां सर्वसत्त्वानामेतन्मण्डलादिकं मण्डलहोम[10]यागजापभावनाख्यं सहजरूपं[11] स्वभावस्थितं न तु कृत्रिमम्[12] । कृत्रिमं तु सहजप्रवृत्त्यर्थमेव देशितमिति सर्वसत्त्वा वज्रधरा एवेति । एषां मण्डलानां बाह्या आचार्याधिष्ठिता, अध्यात्मनि तु क इत्याशङ्क्याह—आचार्यश्चित्तराजस्तु मण्डलाध्यक्षरूपत इति । योऽयं चित्तवज्रधरः स्वसंवेद्यस्वरूपत्वेन

१. मन्त्रमित्युक्तं–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. । २. भासं तु–ग. घ. ङ. छ., प्रतिभावस्तु–ज. ट. ठ. ड. । ३. सहजारूप–क. ख. ग., जारूढ–ञ. ट. ठ. ड. ढ., मेतं तु–ग. घ. ङ. । ४. होमं विधाय–ख. छ. । ५. मन्त्रे–क. । ६. भाव–छ. । ७. मुद्रं–क. च. । ८. अभावो–ख. घ. छ. । ९. भावा–ख. घ. छ. । १०. योग–क. । ११. रूपस्वभा–घ. । १२. 'कृत्रिमं' नास्ति–क., कृत्रिमं कृत्तिमन्त्रं–ख. घ. ।

आचार्यश्चित्तराजस्तु[1] मण्डलाध्यक्षरूपतः ।
सर्वमत्रैव[2] बोद्धव्यं मण्डलादि यथोदितम्[3] ॥२६॥

इति [4]श्रीवसन्ततिलकायां[5] मण्डलहोमयोग[6]जपभावनादि-[7]
विधिक्रियानिर्णयनिर्देशोऽष्टमः[8] ॥८॥



प्रागुक्तमण्डलान्यभेदेन बुध्यते स एवाचार्यः । तत् सविद्रे(शे)षाचरणादाचार्य इत्युच्यते । अत एवाह—मण्डलाध्यक्षरूपत इति । अत्रादिशब्दे[ो] लुप्तो द्रष्टव्यः । अतिदेशमाह—सर्वमत्रैव बोद्धव्यं मण्डलादि यथोदितमिति । यदिहानुक्तमण्डलादीनि मण्डलोप-

१. राजं तु–घ. छ., वज्रस्तु–ज. । २. मन्त्रैव–क. घ. ङ. च. छ., मन्तव्यमेवमादि–क.ख., कर्तव्यं होमादिकं यथाविधि–ज. । ३. अतः परं 'ज.' मातृकायां डाकार्णवीया इमे श्लोका वर्तन्ते—

डाकार्णवे—

मुखं कुण्डं समाख्यातं रविचन्द्रपात्री श्रुवा । आचार्यश्चाद्वयं तत्र हुनाति संविद्रूपकम् ॥
अग्निर्विश्वमिदं डाकमन्त्रं प्रकृतिलक्षणम् । सिद्धा नाली समाख्याता शालिजं तन्दुलं यथा ॥
यद्वान्नं च सदा मेध्य आर्यं हि बोधिचित्तकम् । शोणितं माक्षिकं ज्ञेयं दूर्वा प्राणादिवायवः ॥
मूत्रपुरीषाभ्यां चैव चन्दनं च कस्तूरिका । रक्तपुष्पसदाख्यातं श्लेष्म खेटं च पायसम् ॥
इन्धनं नखदन्तास्थि चर्म वस्त्रं समासतः । केशरोमं तु देवाः स्युरग्निकुण्डस्य मध्यतः ॥
अन्यं सूक्ष्मविधं धातुं नानाव्रीहिकदाहुतिम् । पूर्णाहुतिं विजानीयात् क्रमान्निष्पत्तिडाकगाम् ॥
इन्द्रियं सर्वं नृत्यन्ति गायन्ति च तद्वासना । नानावाद्यमहानादं भोजनं करुणादिना ॥
महाबलं भाविता तु सर्वप्राणान्यधिपतिम् । तेन तुष्टो भवेत्सिद्धिः सर्वकर्मकं होमया ॥
मनसा क्रीडते तत्र सर्वलोकाग्रधातुषु । यस्मिन् काले भवेत् सौख्यं तस्मिन् काले प्रवर्तते ॥
शापानुग्रहकर्ता तु होमाध्यात्मिकदर्शनात् । लोकलोकोत्तरज्ञानलाभायान्तेषु मध्यमा ॥
वहत्येव महाचित्तं परमार्थसर्वसन्धिषु । भक्षयित्वा तदोत्पन्नं वासनां बुद्धनिर्मिताम् ॥
लक्षालक्षप्रहाणेषु द्वाभ्यां तु ज्ञातुमर्हसि । लयश्च क्रियते तत्र माया होमेषु लक्षणा ॥

४. 'श्री' नास्ति–क. ख. घ. ङ. च. छ. ज. । ५. तिलके–ज. । ६. याग–क. ख. ग. घ. ङ. च. ज., योगपूजाजप–भो. । ७. वनाविधि–ग. घ. ङ. छ. । ८. पञ्चमः पटलः–ज. । ९. शब्दश्च–घ. ।

करणानि। सूत्ररा(र)जोभूपरिग्रहावाहनस्थापनविसर्जनमण्डलसाधनाभिषेकस्नान-बलिप्रभृतयस्तत्रैव देहमण्डले बोद्धव्याः, [1]ज्ञातव्या इति यावत्। तथाहि—मध्यनाडी सूत्रेण(त्रम्), रक्तशुक्रविण्मूत्रादीनि मण्डलरजांसि, चतुर्विंशतिपीठसंग्राहिदशनाड्यो भूमयः, तासां लयादिक्रमेण परिभ्रम(ग्रह)णं [2]भूपरिग्रहः, प्रवेशादिक्रमेणावाहनादीनि, ज्ञानोल्या[3] मण्डलसाधनम्, वज्रमणिकलशात्[4] पद्मासनस्थदेवीदेवताचक्रस्य धारासारेणाभिषेकमत्र, [5]इयं(यन्)निष्यन्दाना(नां) रसनास्वादो बलिरिति ॥ २६ ॥

इति वसन्ततिलकायां[6] निष्पन्नक्रमसाधनोपायिकायां रहस्यदीपिकायां[7] टीकायामष्टमपटलं[8] विस्तरव्याख्या ॥ ८ ॥



१. 'ज्ञातव्या' नास्ति–घ. छ.। २. भूमिपरि–क.। ३. ज्ञानोल्यो–च.। ४. सात्–च.। ५. इयती–घ.। ६. तिलके–क. च.। ७. पिकाटीकायां–घ., 'टीकायां' नास्ति–च.। ८. पटले–क.।

नवमो निर्देशः

अथान्यतमस्य[1] तथागतकायस्य [2]मन्त्रचक्रोद्धारं कथयिष्यामि ।।१।।

त्रिकोणं[3] मण्डलं रम्यं [4]वज्रारल्लिविनिःसृतम् ।
धर्मोदयेति विख्यातं योषितां भग इत्यपि ।।२।।

तस्य मध्यगतं पद्ममष्टपत्रं[5] सकर्णिकम् ।
तत्रालिकालिसंमिश्रा अष्टौ वर्गा व्यवस्थिताः ।।३।।

यः प्रागुक्तो मन्त्रजापः, कोऽसौ मन्त्र इति, तमु(दु)द्धारं प्रतिपादयितुमथेत्यादिना नवमं निर्देशमाह—अन्यतमस्येति । यस्य कस्यचित् सत्त्वस्य स्वभावसिद्धो यो मन्त्रस्तस्योद्धारं ततः सर्वमन्त्राणां प्रभव इति प्रतिपाद्यते ।।१।।

तत्र[6] बाह्ये त्रिकोणं[7] मण्डलं लिखित्वा तद(न?)न्तरेष्वष्टदलं कमलं [8]चित्रयित्वा तन्मध्यकर्णिकायामकारं दलेष्वष्टाष्टभेदेनालिकाली विन्यस्य "चतुर्थस्य तु पञ्चमम्" इत्यादिना क्रमेण "पञ्चमस्य तु पञ्चमम्" इत्यादिना च प्रपञ्चेन मूलमन्त्रादीनुद्धारयेत् । अध्यात्मनि तु यदेतत्त्रिकोणं मूलपीठमध्यनाड्यष्टकसहितम्, तत्र वर्गाष्टकसहितालिकालिमध्यवर्ती भगवानकारो निःशेषवर्णपदवाक्यमहावाक्यादिरूपेणावस्थितः, तत एवैते वर्णाः प्रादुर्भवन्ति । ते च पदानि जनयन्ति, तान्यपि वाक्यानि, तान्यपि महावाक्यानि यावल्लौकिकभावभेदमनन्तं[9] चतुरशीतिधर्मस्कन्धसहस्राणीति सर्वोऽयं वर्णाद्यप्रभव इति । स च नाभिगुह्ययोराधाराधेयभावस्य विवक्षितत्वान्निर्माणचक्रमेव मन्त्राधार इत्युक्तः ।। २–३ ।।

एवमकारान्वया अकारप्रभवा मन्त्रा अनुरूपेण शान्तिकादिकर्मसंघातं कुर्वन्ति प्रवर्तयन्ति, नान्यथापरिज्ञाततत्त्वा मन्त्रा इति ।

---

१. अथापरस्य–ट. ड., अथास्य–भो., अथान्यत्संप्रवक्ष्यामि मन्त्रोद्धारविधिं प्रिये–ज. । २. सर्वमन्त्रोद्धारं–ञ. ट. ठ. ड. । ३. त्रिकोण–क. ख ग. घ. ङ. च. छ. ज । ४. वस्त्रिरिति स्मृतम्–ट., वज्रावलि–ढ. । ५. पत्र–क. ख. च. ज. ञ. । ६. ततः–ख. छ. । ७. कोणमण्ड–ख. च. छ. । ८. चिन्तयि–ख. छ. । ९. नन्तश्चतु–ख. घ. छ. ।

कुर्वन्ति कर्मसंघातं [१]मन्त्ररूपेण देहिनाम् ।
[२]पञ्चाशदक्षराण्येव वेदादिसंस्थितानि[३] वै ॥४॥

उक्तं च—

स्वभावो मन्त्रवर्गस्य परमाक्षर एककः ।
तत्परिज्ञानमात्रेण मन्त्राः स्युः कर्मकारिणः ॥ इति ।

तथा—

अत एव हि नेच्छामो मन्त्रान् वर्णस्वरूपिणः ।
नहि शक्तास्तृणस्यापि कुब्जीकरणहेतवः ॥ इति ।

अत आह—कुर्वन्ति कर्मसंघातं मन्त्ररूपेण देहिनामिति । पञ्चाशदक्षराणीत्यादिना संख्यामाह । आलीनां[४] प्रज्ञोपायरूपेण द्वित्वाच्चतुःषष्टिः संपद्यन्ते[५] । तत्रालिवर्गं[६] द्विधा कृत्वा वर्णा द्वात्रिंशत् संभवन्ति । रक्षयोरूर्ध्वाधो न्यासात् कालयो द्वात्रिंशदेव । मूलतस्तु साक्षात् पञ्चाशद्वर्णाः । तैर्वर्णैर्वेदानीति चतुर्दशविद्यास्थानानि परनिकायप्रसिद्धया, स्वनिकायप्रसिद्धया तु पञ्चविद्यास्थानान्याश्रित्य वर्ततेऽकारः । उक्तं च—

[७]एकादिनवमध्ये तु दशभिर्यो[८] न बध्यते ।
तमबद्धं विजानीयात् स वेत्ति परमं पदम् ॥
स्वरव्यञ्जनवर्णाश्च नवसंख्यानुवर्तिनः ।
अबद्धान्योन्यसंयोगाद् यो वेत्ति स जगद्गुरुः ॥ इति ।

अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा न्यायविस्तरः ।
पुराणं धर्मशास्त्राणि विद्या ह्येताश्चतुर्दश ॥

इति परयूथ्यपक्षः ।

लक्षणं हेतुविद्या च तथैवाध्यात्मिका(की) पुनः ।
चिकित्साशिल्पविद्ये द्वे विद्यास्थानानि पञ्च तु ॥

एतानि सर्वान्य(ण्य)कारादेवोद्भ्रियन्त इति सर्वमन्त्रेश्वरं[९] तं विना तेषामुच्चारो न विद्यते । अत आह—वेदादिसंस्थितानि वा इति ॥ ४ ॥

---

१. सत्तरू–क. ख. घ. ङ. छ., शत–ग. । २. 'पञ्चाशद······बाह्यरूपिणां' नास्ति–ढ. । ३. संवृतानि–भो. । ४. जातीनां–छ. । ५ संपद्यते–ख. घ. छ. । ६. तत्रादिव–ख. घ. छ. । ७. एकानि–क. । ८. भिर्येन–क. । ९. स्वरस्तं–घ. छ. ।

मन्त्राणां चैव तन्त्राणां शास्त्राणां बाह्यरूपिणाम् ।
एतान्येव स्वरूपाणि नान्यदन्योऽस्ति [1]किञ्चन ॥५॥

अ क च ट त प य शवर्गैरेतानि पञ्चाशदपि[2] समानि [3]मतानि ।
[4]वज्रारल्लौ पद्मगतानि प्रतिदल[5]दिक्षुविदिक्षु[6] विनिर्गतानि ॥६॥

[7]एषां मध्ये तु किञ्जल्के विद्यते परमेश्वरः ।
अष्टाभि[8]र्वर्गकैश्चैव वेष्टितः परमाक्षरः ॥७॥

शान्तरौद्रो[9]भयस्वभावानां मन्त्राणां प्रत्यङ्गिरादीनां च रक्षाचक्राणां बाह्यशास्त्राणां च प्रागुक्तविद्यास्थानानामेतान्येव वर्णानि कारणतां प्रयान्ति । नान्यदत्रास्ति किञ्चनेति बोद्धव्यम् । अत एष मन्त्रोद्धारो निर्विकल्पः सर्वत्र योगिनीतन्त्रादौ बोद्धव्यः । तदर्थमाह—नान्यदन्योऽस्ति किञ्चनेति ॥ ५ ॥

कोऽसौ मन्त्रः, किंपरिवारः, कुत्र स्थितः, किंसंख्याक इत्याशङ्क्याह—अ क च ट त प य श मध्यगतानीत्यादिना ग्रन्थेन । प्रतिवर्गादाद्यक्षरमादायालिकाली सकलवाङ्मयहेतू अष्टौ वर्गा भवन्ति । त एव पञ्चाशद्वर्णा आलिकाल्योः समीकरणाच्चतुःषष्टिः सम्पद्यन्ते, प्रतिनाडीमेकैकवर्णानुध्यानात् । अत एव निर्माणचक्रे पञ्चाशदक्षराणि स्वभावसिद्धानि अष्टाष्टकभेदभिन्नश्रीचक्रसंवरमण्डलचतुःषष्टिदेवतामयान्यष्टसु दिग्विदिक्षु व्यवस्थितानि ज्ञातव्यानि ॥ ६ ॥

मध्यनायकमाह—तासां मध्य इत्यादिना । तासामालिकालिमयीनां नाडीनां मध्ये, परमेश्वरः परमवीरयोगिनीस्वभावा[10] वर्णास्तेषामीश्वरश्चक्रवर्ती । तथाहि नपुंसकबीजचतुष्टयपरिहारेणाकारादयो द्वादशवर्णा भगवान् द्वादशभुजः । दग्धबीजानि चत्वारि डाकिनी-लामा-खण्डरोहा-रूपिण्यः (का ?) । कादयो हान्ता मकारबिन्दुलाञ्छितास्त्रिचक्रवीरवीरिण्यः । यादयो हान्ताः काकास्याद्याः । क्षकारः क्षयडाकः । मध्येऽकारो वज्रवाराहीति । अत एतैरष्टभिर्वर्गैर्वेष्टितोऽसौ परमाक्षरोऽकार एव समस्तमन्त्रहेतुरिति । तत एतेन मन्त्रा उद्ध्रियन्त इति ॥ ७ ॥

---

१. कश्चन-ज. झ. । २. सद-क. ख. ग., दभिस-घ. । ३. श्रुतानि-ट. ठ. । ४. वज्रावलो-ग. च., वल्लौ-छ., रलौ-ट., रल्लो-ढ. । ५. दलमष्टदिक्षु-क. ख. घ. ङ. च. छ. भो., अष्टसु दिक्षु-ट. ठ. ड. । ६. क्षु गतानि-च. ट., स्थितानि-ज. भो. । ७. तासां-टी. । ८. वर्णकै-छ. । ९. रौद्रभय-क. ख. घ. । १०. भावो वर्ण-छ. ।

अकारः सर्ववर्णाग्र्यो[१] महार्थो[२] वर्गनायकः ।
अत एव समुद्भूताः[३] सर्वमन्त्रास्तु देहिनाम्[४] ॥८॥

या खड्गाञ्जनपादलेप[५]गुटिकापातालयक्षाङ्गना-[६]
स्त्रैलोक्योदरचारि(र्वति)[७]सूतकगताः कर्मानुगाः सिद्धयः ।
याः सर्वास्तु महर्द्धयः स्वभवने सत्पञ्चकामान्विता-
स्ता वर्गाष्टकमध्यगान्(त्) स्वरवरान्निर्यान्ति वर्गात्मकात्[८] ॥९॥

तस्यानुशंसामाह[९]—**अकार** इत्यादि । **महार्थं** इति, आद्यनुत्पन्नतत्त्व-[१०] सूचकत्वात्[११] । **वर्गनायक** इति, तेनैव तेषां प्राणितत्वात् । ये च[१२] देहिनां साधका[नां] वा ये मन्त्रा वाक्यानि प्रणवादीनि[१३] वा तत एव जाता उत्पन्नाः । एवं सर्व एव सत्त्वा मन्त्रपरायणा[ः] स्वभावेनेति स्थितम् ॥ ८ ॥

कर्मप्रसरसिद्धयश्चैतत्परिज्ञानादेव नान्यस्मादपीति वक्तुमाह—**या खड्गाञ्जने-** त्यादि । खड्गचक्र[१४]रत्नवज्रपद्मविद्याधरसिद्धयः पञ्च, खड्गस्योपलक्षणत्वात् । यया नष्टच्छायो भवति साऽञ्जनसिद्धिर्द्वितीया । यया क्षणमात्रेण योजनशतसहस्राण्या-क्रामति सा पादलेपसिद्धिस्तृतीया । यया भूगतनिधानानि[१५] पश्यति, बिलद्वारं प्रवि-श्यासुरकन्यका आकर्षयति वा, सा पातालसिद्धिश्चतुर्थी । यया मनोरम[१६]तरवपुषो यक्षिणीर्भुङ्क्ते सा यक्षाङ्गनासिद्धिः पञ्चमी । यया मुखक्षिप्तया सर्वबुद्धक्षेत्राण्यटित्वा[१७] बुद्धेभ्यो धर्मं शृणोति सा गुलि(टि)कासिद्धिः षष्ठी । यया शान्त्यादीन्यष्टौ कर्माणि साधयति सा त्रैलोक्योदरवर्तिनी सिद्धिः सप्तमी । यया पाषाणताम्रादीन् सुवर्ण(र्णी)-करोति सा सूतकसिद्धिरष्टमीत्यष्टौ महासिद्धयः । अन्या अपि दिव्यचक्षुरादिलक्षणा अणिमादयो वा कार्यैश्वर्यादयो वा[१८] लौकिकलोकोत्तराः सिद्धयः, ताः सर्वा **वर्गाष्टक-**

---

१. ग्रो—ग. घ ड. ञ. ट. ठ. ड. ढ. । २. वर्णना—ज. भो. । ३. सर्वा—क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. । ४. देवताः—क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. । ५. गुडिका—क. ख. ग घ. ङ. च. छ. । ६. यक्षा गणा—क., यक्षाद् गणां-ख. । ७. सूत्रक—क. ग. घ. ङ., सूत्रतन्त्रक—भो. । ८. कान्—क. ख. ग. घ. ङ. ज. । ९. शंसमाह—क. ख. घ. च. । १०. नुत्पन्नत्व—क. । ११. सुचन्द्रत्वा—घ. । १२. वा—घ. च. छ. । १३. प्रमाणवादीनि—क. च. । १४. चक्रवज्र—ख. । १५. यास्यति—क. । १६. रमेतर—च. । १७. ण्युटित्वा—ख. । १८. 'लौकिक' नास्ति—ख. छ. ।

य: कश्चित्प्रसरो वाचां जन्तूनां[1] प्रतिपद्यते ।
स सर्वो मन्त्ररूपो हि तस्मादेव प्रजायते ॥१०॥

नादो हि मन्त्र इत्युक्तः सर्वेषां तु शरीरिणाम् ।
विश्वग्रन्थिमहास्थानाद्धर्मारल्ले[2] (ल्लि:) विनिश्चरेत्[3] ॥११॥

न कश्चिन्नियतो[4] मन्त्र: [5]सिद्धार्थस्तु व्यवस्थित: ।
अनुत्पन्नस्वभावो[6] हि मन्त्रो वर्गेश्वर: पर:[7] ॥१२॥

इति [8]श्रीवसन्ततिलकायां[9] [10]मन्त्रोद्धाराख्यान-
निर्देशो नाम[11] नवम:[12] ॥९॥



भूषिता:(ताद्) प्रथमस्वरादेवोद्भवन्तीति न पृथक् प्रपञ्चेन तत्साधनाय यत्नः करणीय इत्युक्तं भवति ॥ ९ ॥

सर्वसत्त्वान्तर्गतत्वेन तस्य व्याप्तिं प्रदर्शयन्नाह—यः कश्चिदित्यादिना । देहिनामपदादीनां यो वाक्प्रसरो व्यक्ताव्यक्तोभयात्मक उत्पद्यते, स सर्वो मन्त्ररूप एव, तदुत्पत्तिभूतस्यान्तर्गतत्वात् ॥ १० ॥

नाभिदेशादुच्चरन् महासुखध्वनिरितरो वा नाद एव मन्त्रः, मनस्त्राणनाद् गुप्तभाषणात् । समापत्तौ सर्वोऽयं स्त्रीपुंसवर्गस्तमेव भाषते, तेनैव च प्रमोद्यते, दण्डभेदेन मूर्च्छति, तेनैव बिन्दुभेदोऽप्याप्यत इत्येवमादिकर्मसंघातकृतसर्वदेहिनां विश्वग्रन्थिमहास्थानान्निर्माणचक्राद्धर्मारल्लि[:] सर्ववर्णपदवाक्यमहावाक्यादेश्चतुरशोतिधर्मस्कन्धारल्लिव्यापकः । विनिश्चरेत् प्रभवति ।

---

१. जन्तुना–ख. । २. घर्मारल्ल–क, धर्मरत्ने–ग. घ. ढ., वर्गारल्लि–ज., घर्माचले–ट. ठ. । ३. श्चयेत्–ग. । ४. त्रयतो–ग. । ५. सिद्धा भस्तु–क. ख. घ. छ., सिद्धयर्थोऽस्तु–ञ. ट. ड. । ६. स्वभावा हि मन्त्रा–क. ख., वस्तु मन्त्रो–ग. घ. । ७. परम्–क. ग. घ. ङ. च., मतः–ठ. । ८. 'श्री' नास्ति–क. ख. घ. ङ. छ. ज. भो. । ९. तिलके–ज. । १०. सर्वमन्त्रोद्धारनिर्देशो–ज. । ११. 'नाम' नास्ति–ञ. ट. ठ. ड. ढ. । १२. षष्ठमपटलः–ज. ।

रतिकाले समुत्पन्ने यं भाषन्ते पुरन्ध्रयः ।
व्यक्ताव्यक्तस्वभावोऽसौ नाद[दो] मन्त्र इति स्मृतः ॥

हर्षे कोपे प्रसादे च स्वप्ने मूर्च्छाक्षणे मृतौ ।
प्रबोधे रतिकाले च स एवाश्रूयते ध्वनिः ॥ ११ ॥

उपसंहारमाह—मन्त्रसिद्धौ प्रागुक्तायां न कश्चिन्नियतो विद्यते मन्त्रस्य(मन्त्रः), येनासौ कर्मसिद्धिमभिनि[र्व]र्तयति[1], भावनायां साति[2]शयेनातिशयत्वाद् अयमेवातिशयो यो धर्मताक्षरेण व्याप्तिः, [3]तस्यां सत्यां ते विविधविचित्रकर्मकारिणो भवन्तीति । तदर्थमाह—अनुत्पन्नस्वभावो हि मन्त्रो वर्गेश्वरः पर इति । आद्यनुत्पन्नसर्वभाव[4]स्वभावसूचकोऽयमकारः । तद्दृष्टचैवै[5]तैर्म(ते म)न्त्र[ाः] स्वकर्मणि प्रयुक्ताः सफला भवन्तीति । अत एव वर्गेश्वर इति तेषामाधिपत्यकृत्, न तु ते तदधिपतय इति ॥१२॥

इति वसन्ततिलकायां[6] निष्पन्नक्रमसाधनोपायिकायां रहस्यदीपिकायां
टीकायां[7] नवमनिर्देशविस्तरव्याख्या ॥ ९ ॥

●

१. निवृत्तये–ख. छ., निवृत्तयति–घ. । २. शयना–ख. घ. छ. । ३. स्तस्यान्ते–क., व्याप्तिसुखा सत्यां–ख., तस्याः सत्यन्ते–घ. । ४. 'स्वभाव' नास्ति–ख. छ. । ५ वे तैः–ख., 'तै' नास्ति–च., चैवम–छ. । ६. तिलके–क. च. । ७. 'टीकायां' नास्ति–च. ।

दशमो निर्देशः

[1]अथान्यतमस्य तथागतकायस्य[2] धर्मसंभोगनिर्माणत्रिकायरूपेण[3] महासुखज्ञानं प्रवक्ष्यामि ॥१॥

शिरोनाभिगतं चक्रमेकाराकृतिसंस्थितम् ।
[4]हृत्कण्ठं च गतं चक्रं वंकारसदृशं मतम् ॥२॥

इदानीं धर्मादिकायत्रयस्वभावचतुश्चक्रवसन्ततिलकानिरुक्तिमन्त्राद्योनि(द्योलि)-चतुष्टयपञ्चस्वरादिस्वरूप[ा]वाच्यसहजप्रतिपादनार्थं दशमनिर्देशमथेत्यादिनाऽऽह । अथेति निर्देशापेक्षयाऽऽनन्तर्यार्थः । यस्य कस्यचिदन्यतमस्य । धर्मादिरूपेणेति कायत्रयरूपेण । महासुखज्ञानमिति सहजं प्रवक्ष्यामीत्युद्देशः । [5]एतदुक्तं भवति—सर्व एव सत्त्वास्त्रिकायसहजमयं(याः), त्रियुक्तत्वात् ॥१॥

तेषां स्थानमाह—शिरोनाभिगतं चक्रमित्यादिना । यदेतच्छिरोनाभ्यो[र]न्तरे स्थितं चक्रद्वयं तदेकाराकृतीति, अधो धर्मोदयसमत्वात्[6] पृथिवीसाधर्मा(र्म्या)च्च । ऊर्ध्वमुष्णीषकमलकर्णिकापि त्रिकोणाकृति[ः], धर्मोदयस्वभावत्वात् । तथा हृत्कण्ठ-गतमपि चक्रद्वयं वंकाराकृति । [7]व(वं)कारस्य विलोमसन्निवेशादपि त्रिकोणमेव । [8]एतदुक्तं भवति—निर्माणमहासुखचक्रयोः प्रज्ञोपायस्वभावेऽपि, उभयोः प्रज्ञारूपत्वात् । तथैवोपायप्रज्ञास्वभावयोरपि हृत्कण्ठचक्रयोरपि प्रज्ञारूपता, सर्वेषामवधूत्या व्याप्य-त्वात् ॥ २ ॥

---

१. गद्यांशस्थाने ज. मातृकायामयं पाठः—"अतः परं प्रवक्ष्यामि चतुश्चक्रं च कायिकम् । धर्मचक्रं संभोगं च महासुखं निर्माणिकम् ॥" इति, 'अथा' इत्यत्र ट. ठ. ड. मातृकापाठः समासः, अथास्य तथा–ढ. । २. तथागतस्य–ढ. । ३. स्वरूपेण–ञ. । ४. 'हृत्कण्ठं.........दलान्वितम्' अयं पाठो नास्ति–ञ. ढ. । ५. तदुक्तं–ख. छ. । ६. सत्त्वात्–घ. छ. । ७. ककार–घ. । ८. तदुक्तं–ख. छ. ।

नाभिमध्ये स्थितं[1] पद्मं चतुःषष्टिदलान्वितम् ।
द्वात्रिंशत्तु दलं पद्मं मूर्ध्नि[2] मध्ये व्यवस्थितम् ॥३॥

कण्ठमध्ये गतं चापि[3] पद्मं[4] तु षोडशच्छदम् ।
हृदयेऽपि[5] तथा चैव पद्ममष्टदलान्वितम् ॥४॥

चतु[:]षष्टिदलं[6] चैव निर्माणं परिकीर्तितम् ।
अष्टदलमहापद्मे[7] धर्मकायः प्रवर्तते ॥५॥

षोडशारे[8] तु संभोगो द्वात्रिंशच्छदके[9] तथा ।
महासुखमहाज्ञानं[10] समन्तात्[11]संव्यवस्थितम् ॥६॥

नाभिमध्य इत्यारभ्य पद्ममष्टदलं स्मृतमित्यन्तेन निर्माणादिचक्राणि चत्वारि यथाक्रमं चतुःषष्टिद्वात्रिंशत्षोडशाष्टदलानि, दण्डनाडीसंक्रान्तिप्रहर(ण?)स्वरूपत्वात् । यथा बहिः सूर्यप्रचारेण दण्डादिविभागस्तथैवाध्यात्मनि प्राणप्रचारेण । स चक्राश्रित एवेति कालचक्राण्येतानीति प्रतिपादितं भवति ॥ ३-४ ॥

चतुःषष्टिदलमित्यारभ्य समन्तात् संव्यवस्थितमित्यन्तेन न केवलं प्रज्ञोपाय-कालविशेषस्वभावानि चत्वारि, यावन्निर्माण[12]कायादिस्वभावान्यपि भवन्तीति प्रतिपाद्यते । तत्र नाभिचक्रं निर्माणकायः, बुद्धबोधिसत्त्वरूपाणां स्कन्धायतनस्वभावसर्वसत्त्वानामुत्पत्तेः । हृच्चक्रं धर्मकायः, हूंकारादिरूपस्कन्धधातूपसंहारकत्वात् । कण्ठचक्रं संभोगकायः, अप्येषां धर्मामृतपरिभोगदानात्यनु[13]रश्वादाच्च । शिरश्चक्रं महाज्ञानं स्वभावकायः, प[ा]रमार्थिकबोधिचित्तस्वरूपत्वात् । उक्तं च—

त्रिकायं देहमध्ये तु चक्ररूपेण संस्थितम् ।
त्रिकायस्य परिज्ञानं चक्रं महासुख(खं) स्मृत[म्] ॥ इति ।

---

१. स्थितः–क. ख. च. छ. । २. शिरो–ज. भो. । ३. चैव–ज. भो. । ४. पद्मपत्रं–ग. । ५. हृन्मध्ये संगतं पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम्–ज. । ६. दले–क. घ. छ., दलं पद्मं–ज. । ७. पद्मधर्म–क. ख. घ छ., पद्मं–ग. अष्टदलं महापद्मं धर्मचक्रं प्रचक्षते–ज. । ८. ···शारं··· भोगं द्वात्रिंशद्दलपङ्कजम्–ज. । ९. च्छदयो–ख., च्छदकं–घ. । १०. महाचक्रं सर्वदा सं–ज. । ११. सुव्यव-ढ. । १२. निर्वाण–क. ख. छ. । १३. त्वतु–च. ।

निर्माणचक्रमध्ये तु वर्गाष्टकनिवेष्टितम्(तः) ।
[1]वर्णानामग्ररूपोऽसा[2]वकारः[3] परमाक्षरः[4] ॥७॥
धर्मचक्रे तु विख्यातो हूँकारोऽनाहतो[5] मतः ।
पञ्चस्वरसमायुक्तो[6] यरलवैर्विभूषितः[7] ॥८॥
संभोगचक्रमध्ये[8] तु ओंकारो वर्णदीपकः ।
चतसृभिः कलाभिस्तु समन्तात् परिवारितः ॥९॥
महासुख[9]महाचक्रे [10]हंकारो बिन्दुरूपकः[11] ।
चन्द्रसूर्यौं तु विख्यातौ पार्श्वे तु वामदक्षिणे[12] ॥१०॥

तथा—

कायाः कृता येन जगद्धितार्थं
कुलानि देव्यः कुलनायकाश्च ।
सं(स्व)मूर्तिमन्त्रानुगतस्वरूपो
निषेव्यतां वज्रधरः शिवाय ॥ इति ॥ ५-६ ॥

चक्राधेयमन्त्रमूर्तित्वं सर्वसत्त्वानां प्रतिपादयितुमाह—**निर्माणचक्रमध्ये त्वित्या-रभ्य [13]हंकारो दीपक** इत्यन्तेन ग्रन्थेन। तत्र निर्माणचक्रे प्राप्ते [प्रो]क्तेन[14] न्यायेन मध्येऽकारो दलेष्वालिकाली। हूंकाराः पञ्चडाकबीजानि सनपुंसकानि धर्मे। चतुर्दीर्घप्रणवाः षोडशस्वरवृतो ब्रह्मा वा कण्ठे। द्विगुणालिवेष्टितोऽध्या[15](धो)मुखो हंकारः शिरसि। यथाक्रमं महामण्डल[16]समापन्ना ज्ञानमण्डला(ल)[17]समापन्नज्ञानमण्डलशान्तशा(सा)-न्तरचतुर्नाडीहेरुकमण्डलरूपाणि चक्राण्येतानीति प्रतिपादितं भवति ॥ ७-९½ ॥

एवं चक्राणामाश्रयभूतं नाडीद्वयमाह—**चन्द्रसूर्यौ तु विख्याता**वित्यादि। वाम-दक्षिणयोश्चक्राणां चन्द्रसूर्यौं प्राणापानादूर्ध्वमधः शुक्ररक्तधातू प्रवहन्त्यौ ललनारसने स्थिते ज्ञेये। एतेन बहिश्चन्द्रसूर्यप्रकाश आध्यात्मिक एवेति कथितं भवति ॥ १० ॥

---

१. वर्णानामग्ररूपेण वंकाराक्षरसंस्थितः—ज. । २ रूपेण अकारः—ञ. ढ. । ३. कारं—घ. । ४. क्षरं—घ. । ५. नाहतं—क. ख. ग. घ. छ. । ६. समायुक्ताः—ग. । ७. लवविभूषिताः—ग. । ८. मध्यस्थो हूंकारो—ञ. ढ. । ९. नामचक्रे—ज. । १०. हूँकारो—ग. घ. ङ. छ., हकारो—ढ. । ११. रूपतः—ख. । १२. दक्षिणौ—ग. ञ. ढ. । १३. हूंकारो—ख. घ. च. । १४. केन—च. । १५. तोऽधो—च. । १६. ण्डला—घ. । १७. 'समा ....शान्त' नास्ति—घ. ।

कण्ठादारभ्य वामेन नाडी संभोगकायिकी[1] ।
नाभिमध्ये तु विश्रान्ता[2] अधोमुखी[3] मदावहा ॥११॥

नाभेरूर्ध्वं तु या नाडी वहत्यूर्ध्वंमुखी[4] तथा ।
कण्ठमध्ये तु विश्रान्ता[5] रक्तावहा प्रकीर्तिता ॥१२॥

मदश्चन्द्र इति ख्यातो रक्त[ः] सूर्यं इति स्मृतः ।
द्वारद्वयसमारूढौ अधऊर्ध्वंसमाश्रितौ[6] ॥१३॥

एतौ हि चन्द्रसूर्याख्यौ[7] नाडीद्वयं[8] प्रकीर्तितौ ।
वीराणां डाकिनीनां तु[9] गत्यागतिनिबन्धनौ[10] ॥१४॥

तयोर्द्रव्यवाहित्वं द्वारं सन्निवेशं च प्रकाशयितुमाह—**कण्ठादारभ्येत्यादिना**। [11]येयं वामपार्श्वे ललनाख्या नाडी, साऽधोमुखी कण्ठादारभ्य नाभिमध्यं [12]यावन्मदं वहति। तथा येयं दक्षिणपार्श्वे रसनाख्या नाडी, [सा] ऊर्ध्वंमुखी नाभेरारभ्य कण्ठं यावद्रक्तं वहति ॥ ११–१२ ॥

मदरक्तयोः पर्यायमाह—**मदश्चन्द्र इति ख्यात इत्यादिना**। [13]यो मदश्चन्द्रः शुक्रमपानवायुश्च, तदुक्तम्—"स सूर्यः प्राणवायुश्च" [इति]। वर्णतः कृत्यतश्चेति वाक्यशेषः। एतौ चन्द्रार्कौ चित्तद्वारं द्विप्रभेददक्षिणोत्तरायणरूपमाश्रित्योर्ध्वाधःप्रवाहवृत्त्या प्रवहन्तौ लोकेशाकाशगर्भस्वभावा अमिताभरत्नसंभवरूपिणौ ज्ञेयौ, "वज्रसूर्यामिताभौ द्वौ मूलं संसारसाधने" इति वचनात्। बहिरपि यदस्ताचलात् सूर्योऽधो गच्छति, तदोदयाच्चन्द्र ऊर्ध्वं गच्छति। विपर्ययेना(णा)पि। यावेतौ चित्तद्वारमाश्रितौ चन्द्रार्कौ तावेव वीरडाकिनीनां [14]गत्यागतिप्रवृत्तिनिबन्धनौ विज्ञेयौ। तथा वीराश्चतुर्विंशतिधातवस्ते [15]चन्द्रचरणाः। एवं निखिले याः[16] सर्वसत्त्वानामिति[17] ज्ञेयाः ॥ १३–१४ ॥

---

१. कायके–ज.। २. विश्रान्तो–क. ख. घ. छ.। ३. सदावहा–क. ख. ग घ. छ, मद–ज.। ४. मुखा सदा–ज.। ५. रक्षा–क., रक्तो–ग. घ. ङ. छ., रक्त-ञ. ढ. भो.। ६. समासृतौ–क. ख. छ., संव्यवस्थितः–ज.। ७. सूर्यादौ–क. ख. ग. घ. ङ., यौ द्वौ–ञ. ढ.। ८. द्वयप्रवर्तितौ–ञ. भो., द्वये सुसंस्थितौ–ज., प्रवर्तिनौ-ढ.। ९. गत्यग'ति–ग.। १०. न्धनैः-घ.। ११. योऽयं–ख. घ. छ.। १२. यावन्मुदं–क. घ च. छ। १३. 'यो मद'''' वाक्यशेषः' नास्ति–च.। १४. गत्यगति–छ.। १५. चन्द्रश्चर–ख. घ. छ.। १६. निखिल या–ख. छ., याः–घ.। १७. सर्वसत्त्वा इति ज्ञेयाः–क., नामिति विज्ञेयौ–ख. छ., ज्ञेयौ–घ.।

[1]अस्तमनोदयार्थौ[2] तु [3]स्वप्नप्रबोधयोः स्थितौ[4] ।
वामदक्षिणपार्श्वे[5] तु स्वरा द्वादश संस्थिताः ॥१५॥

ऊर्ध्वंमुखा[:] समाख्याताः ककारादिभिरावृताः[6] ।
अधोमुखैस्तु [7]पार्श्वस्थै[8]र्यंकारादिभिर्योजिताः[9] ॥१६॥

[10]क्षकाराक्षरसंयुक्तो[11] अधोभागे तु वेष्टितः[12] ।
यदा कण्ठे[13] महारागरूपेण चन्द्रमाः[14] स्थितः ॥१७॥

तथा बहिरुदया[15]स्तममावध्यान्दन (मनौ माध्यन्दिन) एव प्रवृत्ता[16] इति दर्शयितुमाह—अस्तमनोदयार्थावित्यादिना। तत्र यदा प्राणवायुर्दक्षिणनासापुटेनोदेति तदाऽपानवायुर्वामनासापुटेनास्तमेति। एवमहोरात्रेण चन्द्रसूर्यप्रचारः सर्वसत्त्वानां स्थित एव। स्वप्नप्रबोधावपि तथैव विज्ञेयौ। स्वापश्चन्द्रांशः, [प्रबोधः] सूर्यांशः। एवं स्वापप्रबोधावस्थ[17]चन्द्रार्कस्वरूपामिताभरत्नसंभवरूपता ज्ञातव्या ॥ १४½ ॥

अभ्यन्तरस्तूपं कालमृत्युवञ्चनं च प्रतिपादयितुमाह – वामदक्षिणपार्श्वे [त्वि]त्यारभ्याधोभागे व्यवस्थित इत्यन्तेन ग्रन्थेन। वामदक्षिणनाड्योर्नपुंसकबीजवर्जिता द्वादशस्वरा यथाक्रममधऊर्ध्वमुखाः सबिन्दु[क]कारादिचतुर्विंशतिव्यञ्जनैरधऊर्ध्वमुखैः परिवृताः स्वभावेनैव नाडीनादरूपेण व्यवस्थिताः। अत एवाह—मध्यीकृत्य नियोजिता इति। अधोऽपानमार्गेऽपानरक्षकः क्षकारः शङ्खमुद्रायां स्थित ऊर्ध्वं तु रेफ[18] इति। धर्मचक्रमध्यगतहूँकाररश्मिभिर्वामदक्षिणस्वरव्यञ्जनान्याकृष्य मध्ये प्रवेशान्ते तदा कुलिकापूजावशात् कालमृत्यू वञ्चयित्वा वज्रधरमहाश्वासप्राप्तो भवति योगीति ॥ १५–१६½ ॥

अधुना बोधिचित्तस्य स्थानसंचारवशात् कायत्रयरूपतां प्रतिपादयितुमाह—यदा कण्ठ इत्यादिना। कण्ठे यदा षोडशकलास्वरूपो[19] वा परवश(रस)रूप[20]श्चन्द्रमा-

---

१. अष्ट–क. ग. घ. ज. । २. दयाधातु–छ. दयाब्वौ–ज., दयार्था–ढ. । ३. स्वप्ने तु बोधयोः–क., प्रबोधे–घ. । ४. स्थिताः–ख. ग. । ५. दक्षिणयोः पार्श्वे द्वादशस्वर–ज. । ६. स्वरा हृताः–ग. । ७. पार्श्वे–क. ख. । ८. पंकारा–ग. छ. ज., रधिकृत्य नियोजिताः–ञ. ढ., र्मध्यीकृत्य नियो–टी. । ९. योजितः–क. ख. घ. ङ. छ. । १०. हूंकारा–घ., क्षकारो रक्षकः प्रोक्तो ह्यधो–ञ. ढ. । ११. युक्ता–ग. ज. । १२. वेष्टिता–ग., व्यवस्थिताः–टी. ज. । १३. कण्ठ–छ. । १४. चन्द्रमा–ग. घ. ङ. । १५. रुदयो–क. । १६. प्रवृत्या–ख. घ. छ. । १७. वस्थश्चन्द्रा–क. ख. च. छ. । १८. रेफान्तेति–ख. घ. छ. । १९. कलारूपो–ख., स्वरूपा–घ । २०. रूपं–ख. घ., रूपचन्द्र–च. छ. ।

संभोगस्तु तदाख्यातो[1] बुद्धानां काय उत्तमः ।
नासाग्रे तु तदा[2] चासौ वज्राग्रे[3] तु यदा[4] स्थितः ॥१८॥

[5]अस्तंगतस्तु संभोगः[6] कायोऽपि च यदा भवेत् ।
भगमध्य[7]गतश्चासौ सर्षप इति विश्रुतः[8] ॥१९॥

सूर्यरूपसमाख्यातो निर्माणकाय[9] उच्यते ।
बुद्धानां बोधिसत्त्वानां स्फरणं तेन जायते ॥२०॥

पद्म[10]नर्तेश्वरो राजा पद्मप्रकाशयोगवान् ।
तस्मिन्नस्तंगते भानौ[11] निर्माणकायरूपके ॥२१॥

स्तिष्ठति, तथा नासाग्रे हृन्नाभ्यग्रवज्राग्रे च, तदा परिपूर्णसुख[12]त्वाच्चन्द्रोऽसौ संभोगकाय इत्युच्यते । तस्यैव(स एव) विशेषेग बुद्धानां स्कन्धानामुत्तमस्वसंवेद्यः कायो विज्ञेयः । स एव यावद्वज्राग्राच्चन्द्रोऽस्तङ्गतो भगमध्ये पतितः सर्षपप्रमाणास्तङ्गत-[13] सूर्यमध्यप्रविष्टस्तदासौ निर्माणकाय इति संख्यां(ज्ञां) गच्छति । हेतुमाह— बुद्धानामित्यादिना । ततश्चन्द्रसूर्यसंयोगात् स्कन्धादिरूपाणां बुद्धबोधिसत्त्वानां स्फरणं जायते, ततोऽसौ निर्माणकायः, पृथग्जनानामदृश्यत्वात् संभोगकायोऽस्तङ्गतः, निर्माणकायः सत्त्वार्थं करोतीति व्यवस्था ॥ १७-२० ॥

अत एव तस्य सूर्यमध्यस्थस्यापि स्वरूपं पद्मनर्तेश्वराख्यमविवृत्तमिति प्रतिपादयितुमाह—(स एव ?) पद्मनर्तेश्वरो राजेति । पद्मनर्तनं[14] पद्मनर्तस्तत्रेश्वर[15]इव प्रभवतीति पद्मनर्तेश्वरः । राजते सूर्यसंयोगाच्चीन[16]पिष्टवद्विरोचत इति राजा । तदर्थमाह—[पद्मप्रकाशयोगवानिति] पद्म(द्मे) प्रकाशते शोभते इति पद्मप्रकाशः स्वयम्भूः, तद्योगादेकीभावादपि पद्मका(प्र)काशयोगवाँश्चन्द्र इत्युच्यते ॥ २०½ ॥

---

१. समाख्यातो–ज. । २ यदा–ञ. ढ. । ३. वक्त्राग्रे-ग. घ. ङ. छ । ४. तदा–ग., सदा–ञ. ढ. । ५. अष्टं गत–क, अष्टगतेस्तु–ख. । ६. संभोगे कायेऽपि च सदा–ज., संभोगका–ढ. । ७. मध्ये–ग , गता चासौ–क. ग. घ छ. । ८. विस्मृता–क., विस्मृतः–ग. घ. ङ. छ. भो., सर्षपः स्थूलसंश्रितः-ज. । ९. महाकायिकमु–ज. । १०. नृत्ते–क. ग. घ. ङ. छ. भो. । ११. नाभौ–क. ग. घ. ङ. छ. । १२. मुख–छ. । १३. प्रमाणस्तद्गत–ख. । १४. नर्तेन-ख. । १५. तत्रेष्वेव–क., तत्रेषु–ख., तत्रेष्टे प्रभ–च. छ. । १६. चिन–घ. ।

[1]व्यक्तसंबोधिचित्ताख्यं पिण्डीभूतमनाविलम् ।
संसारमार्गविच्छिन्नं[2] [3]प्रपञ्चोपशमं शिवम् ॥२२॥
[4]निर्द्वन्द्वं परमं [5]शुद्धं श्रीवज्रसत्त्व[6]रूपकम् ।
श्रीहेरुक[7] इति ख्यातं [8]तन्त्रस्तु [9]घुणरूपकः ॥२३॥
[10]हासदर्शनपाण्यास्ति [11]तन्त्रत्रयव्यवस्थितः ।
रागं चैव विरागं च वर्जयित्वा घुणः[12] स्थितः ॥२४॥

उक्तौ संभोगनिर्माणकायौ, धर्मकायमाह—तस्मिन्नस्तंगते भानावित्यादिना । तस्मिन्निर्माणकायसंज्ञके सूर्ये[13] चन्द्रास्तङ्गते तत्र [14]प्रविष्टे द्वयोर्व्यक्तौ सामरस्यं प्राप्तयोः रुत्योः, तस्य बोधिचित्तस्येति चन्द्रस्य [15]सूर्यस्य च पिण्डीभूतमनाविल-उभयविकल्प-कलङ्कापगतः स धर्मकाय इति परेण संबन्धः । कीदृशः ? व्यक्तिद्वयसामरस्यसंसार-मार्गस्य तद्विकल्पस्य विच्छेदो यस्मिंस्तथा प्रपञ्चयोः संभोगनिर्माणकाययोरुपशमो यत्र, ततः समानाधिकरणसमासः । सहजत्वाच्छिवः । परस्परविरुद्धपक्षद्वयोज्झित-त्वान्निर्द्वन्द्वः । [16]स्वसंवेद्यत्वात् परमः । निःक्लेशत्वाच्छुद्धः । वज्रं शून्यता, सत्त्वं करुणा, तन्निश्रितत्वाद्वज्रसत्त्वस्वरूपस्त्रिविमोक्ष[17]मुखोपायं प्रकृतिप्रभास्वरविमोक्ष-मुखोपेयरूपत्वात् श्रीहेरुकः । स एव धर्मकाय इत्युच्यते । मनस्त्राणनात् स एव मन्त्रः । रागादिक्लेशजालस्य[18] पलालस्यै(स्ये)व भक्षणात् स एव घुणः ॥ २१–२३ ॥

ननु योगिनीतन्त्रे घुण एव (एव घुणो) निर्दिष्टो न क्रियादितन्त्रेष्विति कथ-मव्यापको धर्मकाय इति चेत्; उच्यते—हसितेत्यादि । क्रियाचर्यातन्त्रेषु प्रज्ञोपायानां परस्परं हासः, योगतन्त्रे तु दर्शनम्, योगचर्योभयतन्त्रेषु पाणिग्रहणम् । उपलक्षणं चैतत् । महायोगतन्त्रे आश्लेषः, योगिनीतन्त्रेषु द्वन्द्वम् । उक्तं च—

---

१. यत्तत्–क. ग., यत्र–घ. छ., यद्यत्–ज., चित्त–ञ. ढ. । २. च्छिन्नः–घ. । ३. निष्प्रपञ्चं निराकुलम्–ज. । ४. अद्वयं परमानन्दं वज्रसत्त्वस्वरूपकम्-भो. । ५. शान्तं–ज. । ६. स्वरूप-ग. घ. ङ. छ । ७. हेरुकं तु समाख्यातं सर्वदेवं तमेव हि–ज. । ८. गन्तुस्तु–ख., तन्तुस्तु–घ., मन्त्रस्तु–टी. । ९. गुण–क. ख. घ. ङ. च. भो., घन–ञ. । १०. महासंबरं वीरं तु पञ्चडाकं वीरेश्वरम्–ज. । ११. यन्त्रव्यय–ञ. ढ. । १२. पुर–घ., कुण–छ , गुण–भो., वर्ज-यित्वा व्यवस्थितं–ज. । १३. चन्द्रोऽस्तंगत-च., गते–छ. । १४. प्रवृष्टे–क. ख. घ., प्रविष्टेन–च. । १५. चन्द्रसूर्य-ख. घ. छ. । १६. स्वयंवे-घ. छ. । १७. विमोक्षो–ख. घ., क्षौ–छ. । १८. जालस्यैव भक्ष–क. ।

[1]सर्वनाडीसमायोगडाकिनीजालसंवरम् ।
[2]रहस्यं पृथिवीधातौ परमेऽपि [3]जले तथा ॥२५॥

[4]रहस्ये त्वनलाख्ये तु वायौ सर्वात्म[5]संस्थितम् ।
सदा स्थितमिदं प्रोक्तं [6]सर्वबुद्धात्मसंवरम् ॥२६॥

अथवा [7]ऽऽदर्शरूपेण समतायां तथैव च ।
प्रत्यवेक्षणाबोधे च कृत्यानुष्ठानके तथा ॥२७॥

हसितप्रेक्षिताभ्यां वा आलिङ्ग[8]द्वन्द्वकैस्तथा ।
तन्त्राणामपि चतुर्णां सन्धाभाषेण देशितम् ॥ इति ।

एवं रागविरागया[9](योस्) त्रयं वर्जयित्वा सर्वत्रैव तन्त्रेषु घुणो व्यवस्थित इति व्यापकत्वं धर्मकायस्येति न दोषः ॥ २४ ॥

धर्मकायस्य मण्डलचक्ररूपतां दर्शयितुमाह—सर्वनाडीत्यादिना । सर्वाभिर्नाडीभिः समायोगो येषां धातूनां ते सर्वनाडीसमायोगाश्चतुर्विंशतिवीरास्तैरुपलक्षिता या एता डाकिन्यस्तासां जालं समूहस्तत्र [10]संवरस्तत्त्वम्[11], बोधिचित्तरूप इत्यर्थः । धर्मकायस्य सर्वाकारतां दर्शय[न्] रहस्य इत्याद्याह । यदेतत्तन्त्रराजे रहस्य इत्यादिके(कं) वाक्यं तत् सन्धाभाषया पृथिव्यप्तेजोवायुधातुषु बाह्येष्वाभ्यन्तरेषु चतुश्चक्रेषु सर्वबुद्धात्मशं(सं)वरं(रो) महासुखस्वरूपो व्यवस्थितः, धर्मतारूपत्वात् ॥ २५-२६ ॥

अथवेत्यादिना सुविशुद्धधर्मधातुकमित्यन्तेन तस्यैवादर्शादिपञ्चबुद्धस्वभावतामाह । तथाहि विचित्रज्ञेयचक्रप्रतिबिम्बितत्वात् स एवादर्शज्ञानम् । अपदादीनामेकतम-

---

१. नाडीचक्रसमायोगात्–ज. । २. रहस्ये–ञ. ढ, 'रहस्यं ¨त्मसंस्थितम्' इत्यस्य स्थाने ज. मातृकायामयं पाठः—"रहस्ये परमे रम्ये सर्वात्मनि सदा स्थितम् । सर्वबुद्धमयं सत्त्वं वज्रसत्त्वं परं सुखम् ॥ सर्वस्मिन् मण्डले चैव परमेऽपि जलेऽपि च । सुरम्ये चानलाख्ये च वायौ सर्वात्मसंस्थितम् ॥" इति । ३. जलं-घ. । ४. रहस्यं–ख., रहस्यत्वं नलाख्ये घ. । ५. त्मनि स्थि–ज. ञ. ढ. । ६. 'सर्वबुद्धात्म····मिदं प्रोक्तं' इयान् पाठो नास्ति-घ. । ७. चा–ङ. भो., एतच्छ्लोकस्थाने ज. मातृकायाम्-"यथाऽऽदर्शबिम्बे तु दर्पणं प्राप्यते ननु । तथैव बुद्धबिम्बे हि सर्वं तल्लभ्यते खलु ॥" इति । ८. लिङ्गणद्व–छ. भो. । ९. 'विराग' नास्ति–छ. । १०. शंवरो–ख. घ. छ. । ११. रो विवृतत्वात्–क. ख. ग. घ ङ. ।

[1]सदा स्थितमिदं प्रोक्तं सुविशुद्धस्वभावकम् ।
वैरोचनेऽथवा चैव अथवा रत्नसंभवे ॥२८॥

अथवा चामिताभावौ(भे वा) यद्वाऽमोघे[2] सदा स्थितम्[3] ।
पञ्चामृतमयं पिण्डं बिन्दुरूपं[4] मनोमयम् ॥२९॥

सुविशुद्धमहाज्ञानं सर्वदेवीस्वरूपकम् ।
[5]वज्रसत्त्व इति ख्यातं परं सुखमुदाहृतम् ॥३०॥

स्वयम्भूरूपमेतत्तु[6] धर्मकायं[7] प्रकीर्तितम्[8] ।
[9]अस्यैव सहजा प्रज्ञा स्थिता तद्रूपधारिणी ॥३१॥

त्वात् स एव समताज्ञानम् । स एव विवृतिप्रति वि)चयात् प्रत्यवेक्षणाज्ञानम् । जगदर्थस्य तत एव प्रवृत्तेः स एव [10]कृत्यानुष्ठानज्ञानम् । धर्मतारूपत्वाद्धर्मधातुज्ञानमसाविति ॥ २७·२७½ ॥

वैरोचन इत्यादिनाऽस्यैव पञ्चबुद्धस्वभावतामाह । तथा हि [11]स्वसंवेद्यरूपेण रोचनात् स एव वैरोचनः । रागादिभिरक्षोभ्यः स एव । रत्नयोः संभोगनिर्माणयोः संभवोऽत इति रत्नसंभवः । ज्ञानमय्योऽपरिमिता भा[सो] यस्य सोऽयममिताभः । सत्त्वार्थक्रियायां सफ(क)ला सिद्धिर्यतः सोऽमोघसिद्धिः । विवृतिरूपमुक्त्वा सांवृतं रूपमाह—पञ्चामृतमयमित्यादि । रहस्यादिपञ्चभिः पञ्चामृतमयमपि पिण्डं बिन्दुरूपं पञ्चव्योममध्ये साम[12]रस्यमापन्नं संवृतमपि सुविशुद्धधर्मधातुज्ञानं स्वदेहे स्थितं वदन्ति बुद्धा इति वाक्यशेषः । तस्यैव विशेषणमाह – वज्रसत्त्व इति । [13]प्राङ्निर्णीतः परमसुखस्वभावो[14] हेतुप्रत्ययनिरपेक्षो यः स धर्मकाय इत्युच्यते । एतेन पुनरपि विवृतिरूपत्वमस्य प्रतिपादितं भवति ॥ २७–३०½ ॥

---

१. 'सदा स्थित … सदा स्थितम्' इत्यस्य स्थाने ज. मातृकायाम्—"बुद्धे वैरोचने चैव रत्नेऽमिताभनाथके । अमोघाख्ये महाबुद्धे सर्वदेवे व्यवस्थितम् ॥" इति पाठः । २. मोघैः–क. ख. ग. घ. ङ. च. छ. । ३. स्थितः–ञ. ढ. । ४. रूपो–ग. घ. ङ., रूपा–छ., रूपमनाविलम्–ज. । ५. वज्रसत्त्वमिति प्रोक्तं सर्वसौख्यप्रदायकम्–ज. । ६. मेतं तु–घ. । ७. कायः–ञ. ढ. । ८. तितः–ञ. ढ. । ९. 'अस्यैव …तिलका स्मृता' इयानंशो नास्ति–ज. । १०. नुष्ठानम्–घ. छ. । ११. स्वयं–घ. छ. । १२. रहस्यमा–घ. । १३. वर्णितः–ख. घ. छ. । १४. भावहेतु–घ. छ. ।

कर्ममारुतनिर्धूता [1]ज्वलन्ती नाभिमण्डले ।
वाराहीति सुविख्याता वसन्ततिलका स्मृता ॥३२॥
[2]वालाग्रशतसहस्राङ्गो विद्युच्छता[3](त) समप्रभा ।
देवतायोगकालेषु[4] रोमकूपाग्रसन्धिषु ॥३३॥

उक्तः कायत्रयस्वभावो भगवान् श्रीहेरुकः, तदभिन्नां भगवतीं वाराहीं दर्शयितुमाह—अस्यैव कायात्मनः सहजस्वभावस्य श्रीहेरुकस्य नाभिमण्डले [5]ज्वलन्त-(न्ती) मन्थमन्थानसंयोगजा कर्ममारुतसंधुक्षिता[6] वह्निरूपिणी या संवित्, सैवास्य सहजप्रज्ञा स्वभावसिद्धा चन्द्रचन्द्रिकेव। सैव वाराही वायुरेफाभ्यां मातरिश्वहुत-भुग्भ्यामीरयति स्रावयतीति वाराही, न तु सूकरानना। वसन्तं हूंकारादिस्तिलकेव[7] तिलका, तं प्राप्य सन्तुष्टेति प्राक् प्रतिपादितत्वात् ॥ ३१-३२ ॥

अस्याः प्रमाणमाह—बालाग्रेत्यादिना। बालाग्रस्य यः शतसहस्रो लक्षप्रमाणो भागस्तद्वदङ्गं स्वरूपं यस्याः सा तथा। एतेनातिसक्ष्मत्वमस्याः प्रतिपादितं भवति, योगिज्ञानगम्यत्वात्। उक्तं च –

अत्यन्तसूक्ष्मविसतन्तुसमानरूपा
कल्पाग्निपूर्वकमहासुखधाम यावत्।
या व्याप्य तिष्ठति महापुरुषोपलभ्या
प्रज्ञा च सा निगदिता वरहेरुकस्य ॥ इति ।

विद्युच्छटासमप्रभेति सौदामनीसन्निभा प्रभाभासुरा। तस्याः कारित्रमाह—देवतायोगकाल इत्यादिना। देवतायोगः प्रज्ञोपायाद्वययोगस्तत्काले तदवसरे सैव ज्ञानाग्निज्वाला योगिनः सर्वरोमकूपसन्धिभ्यो निर्गत्य सुरासुराः(रान्) स्कन्धेन्द्रिय-विकल्पांस्तर्जयित्वा धर्मसंभोगचक्रयोर्ग्रन्थिरूपाणि स्कन्धधातुविकल्पेन्धनानि[9] दग्धा-(ग्ध्वा) दक्षिणेन नासारन्ध्रेण निर्गत्योर्णाकोषगतेन रन्ध्रेण दशदिग्गतानां प्रविश्य तच्छिखारन्ध्रं तेषां चक्रचतुष्टयं दग्ध्वा पुनर्वामनासारन्ध्रेण निर्गत्य शिखारन्ध्रेण प्रविश्य[10]

---

१. 'ज्वलन्ती''''सहस्राङ्गी' इयान् पाठो नास्ति–ग.। २. बालार्क–घ. ङ. छ., बालार्कशतसहस्राभ विद्युच्छतासमप्रभ–ज.। ३. च्छटा–ख. ग. घ. भो.। ४. काले च–ज.। ५. ज्वलज्ज्वलन्त–च.। ६. संवेक्षि–छ.। ७. 'तिलकेव' नास्ति–घ.। ८. भर्जयि–ख. छ, भजयि–घ.। ९. न्धनादि–घ.। १०. प्रवेश्य–ख. घ.।

निश्चरन्ती[1] दिशः सर्वास्तर्जयन्ती[2] सुरासुरान्[3] ।
हृदये[4] धर्मचक्रे तु दग्ध्वा[5] संभोगचक्रतः ॥३४॥

नासारन्ध्रेण निष्क्रम्य[6] दक्षिणेन समन्ततः ।
ऊर्णाकोश[7]गतेनापि रन्ध्रेन(ण) दश दिक्षु वै॥३५॥

बुद्धानां बोधिसत्त्वानां नासारन्ध्रेण वामतः ।
प्रविश्य[8] शिखायां[9] चक्रं समादह्य विनिष्क्रमेत्[10] ॥३६॥

पूर्वोक्तेन[11] च रन्ध्रेण शिखायां प्रविशेत् पुनः ।
दग्धानां चैव बुद्धानामानन्दं [12]जनयेत् पुनः ।
नाभिमण्डलमागम्य स्थिता भवति पूर्ववत् ॥३७॥

इति [13]श्रीवसन्ततिलकायां[14] धर्मसंभोगनिर्माणकायत्रयोलिङ्गन-[15] पूर्वकश्रीहेरुकवसन्त-वज्रवाराही तिलका स्मृता । [16]गत्यागतितन्त्रमन्त्रज्ञान-[17]गुह्यौलिनिर्माणसंभोगधर्ममहासुखचक्रगतपद्मचतुष्टय[18]स्वरद्वादशमात्रा-[19]चतुस्त्रिंशदक्षरस्वरूप[20]प्रत्यर्थवर्तितथागताख्यानं[21] दशमः[22] ॥

[23]पूर्ववद्दग्धानां तथागतानामाप्यायनं करोति, नाभिमण्डले[24]च स्थिरा भवति विलीयते। उक्तं च — [25]"मन्थमन्थानसंयोगाद् ज्ञानवह्निरिह कर्ममारुतेन प्रेरितो नाभिमण्डले प्रलीयते, ज्वलति दीप्तिभिः। समयचक्रगतान् सुगतान् दग्ध्वा[26] संभोगचक्रगतमुपायं त्रिः

---

१. श्चरन्ति-क. ख. ग. च. छ, न्ति दश दिक्षु-ज. । २. यति-ग., यन्ति-भो. । ३. सुरम्-ञ. ढ. । ४. हृदयं धर्मचक्रं च-ज. । ५. दग्धा-सर्वासु मातृकासु, गृहीतपाठस्तु भोटानुसारी । ६. निःसृत्य-क. च. भो., विक्षेप्य-ख. । ७. कोशं-ञ. ढ. । ८. शेत्-क. ग. घ. ङ., श-छ., शन्-ख. । ९. शिख्यया-ग. छ., शिखया-ञ. ढ. । १०. ष्क्रमान्-ख., ष्क्रमम्-ग. । ११. पूर्वान्ते नव-घ., क्तेनैव-ञ. । १२. जायते-ञ., आनन्देन पुनः पुनः-ज. । १३. 'श्री' नास्ति-क. ख. घ. ङ. च. छ. । १४. तिलके-ज. । १५. लिङ्गानु-क. ख., लिङ्गनपूर्वकर्म-ढ. । १६. गतागति-क. ख. ग. घ. ङ. । १७. गुह्यालिङ्गिता-ञ. ढ. । १८. सुर-ग. घ. ङ. छ., सुरद्वार-ग. । १९. मासा-क. ख. च. । २०. रूपे पत्यर्थे-क. ख. च. छ, नाड्यध्ववर्ति-ञ. ढ. । २१. ख्यानद-क. ख. ग. च. छ., ख्याननिर्देशो-ञ. ढ. । २२. अष्टमः पटलः-ज. । २३. पुनर्द-क. । २४, ण्डलं-क. । २५, मन्थ्य-क. ख. । २६. दग्धा-क. ख. घ. छ. ।

या: [1]खङ्गाञ्जनपादलेप[2]गुटिकापातालयक्षाङ्गना-[3]
स्त्रैलोक्योदरवर्ति[4]सूतकगता[:] कर्मानुगाः सिद्धयः ।

प्रदक्षिणीकृत्योर्णाकोषगतेन मर्मोद्घाटनद्वारेणोड्डियानसंज्ञकेन[5] दशदिक्स्थिततथागतानां जालन्धरसंज्ञकेन कनकद्वारेण प्रविश्य तेषां पूर्वचक्रचतुष्टयं दग्ध्वा[6] पूर्वोक्तद्वारेण निर्गत्य क्षीरधारामवगम्य[7] दग्धानां तथागतानामानन्दं जनयति" इति तन्त्रोलिज्ञानोली उक्ते । "वामदक्षिणपार्श्वे स्वरा द्वादश संस्थिताः" (१०।१५) इत्यनेन मन्त्रोलिः, धर्मकायविचारे तु गुह्योलिः ॥ ३३ ३७ ॥

उपसंहारमाह—तत्र कायत्रयो(या)लिङ्गने[8] चक्रचतुष्टयकथनेन व्यक्तिद्वयकथनेन तत्सामरस्यप्रतिपादनेन चोक्तः । नादबिन्दुसंघट्टकथनेन हेरुकवज्रवाराह्योर्वसन्ततिलकार्थ उक्तः । [9]गत्यागतिशब्देन तयोः संयोग उक्तः । मन्त्रतन्त्रज्ञानगुह्योलि[10]कथनम् । वामदक्षिणपार्श्वेषु स्वरा द्वादश संस्थिताः" (१०।१५) इत्यनेन बाह्येन (वाक्येन) तथा "अस्यैव सहजा प्रज्ञा" (१०।३१) इत्यारभ्य "चक्रं निर्दह्य निष्क्रमेत्" (१०।३६) इत्यन्तेन च वाक्येन तथा "दग्धानां चैव बुद्धानामानन्दं जनयेत् पुनः" (१०।३७) इत्यनेन च "नाभिमण्डल[11]मागम्य स्थिता भवति पूर्ववत्" (१०।३८) इत्यनेन च चतस्र ओलयो मन्त्रतन्त्रज्ञानगुह्याख्याः कथिताः[12] । तथा निर्माणादिचक्रचतुष्टये यः पञ्चस्वरादिविन्यास इति संक्षेपेण द्विगुणीभूतालिकालिद्वयहूँकारादिबीजपञ्चकनपुंसकबीजविन्यास(सा ?)—दीर्घब्रह्मविन्यास-द्वात्रिंशदालिपरिवेष्टितानाहताक्षरविन्यासश्च[13] "निर्माणचक्रमध्ये तु वर्गाष्टपरिवेष्टिता(तः) । वर्णानामग्ररूपेण[14] अकारः परमाक्षरः ॥" (१०।७) इत्यादिना ग्रन्थेनोक्तम्(क्तः) । उद्देशापेक्षया निर्देशः । उद्देशो हि संक्षेपेण प्रतिपादनम् । निर्देशो विस्तरेणेति शेषः । एष निर्देश इति परिच्छेद इत्यर्थः । याः खङ्गाञ्जनेत्यादयोऽष्टौ महासिद्धयः प्रागुक्ताः स्पष्टार्थाः । तान्तु(तास्)ताः प्रागुक्तवसन्ततिलकसाधनोपायिकावबोधाद् भवन्तीति प्रतिपादितं भवति ।

मृद्विन्द्रियसत्त्वपरिहारेण तीक्ष्णेन्द्रियपुद्गलविषयोऽयमिति दर्शयन्नाह—उद्देशादित्यादिना । उद्देशाद् गुरुपादप्रसादतत्पादपङ्कजो(ज)रजोरत्नैर्निर्दिष्ट[15](ष्ट)गुरुसमधि-

---

१. शैलाञ्जन—क. ख. ग. च., शाला—घ. । २. गुडिका—क. ख. ग. च. । ३. गण—क. ख, गणा—घ. छ. । ४. सूत्रक—क. ख. ग. घ. ङ. च., सूत्रतन्त्र—भो. । ५. संज्ञाके—क. च. । ६. दग्धा—क. ख. घ. छ. । ७. मत्य—क. ख. ग. । ८. लिङ्गणे—ख. छ. । ९. गत्यागत—क. ख घ छ. । १०. ह्योलिकालि—च. । ११. समागम्य—क. । १२. अवस्थिता—ख. छ. । १३. स्वनिर्माण—ख. घ. छ. । १४. मग्रतो येन—छ. । १५. निर्दिष्ट्य—क. ख., निर्धन—घ. ।

याः सर्वास्तु महर्द्धयः स्वभवने सत्पञ्च[1]कामान्विता-
स्ताः सर्वा[ः] कलिता वसन्ततिलकायोगप्रभावोदिताः ।।

इति चर्याव्रतिश्रीकृष्णाचार्येण गुरूपदेशमागम्य श्रीहेरुकभट्टा-रकस्या[2]देशाच्च स्वप्नगतम[व]धार्य श्रीचक्रसंवरा[3]म्नायेन बाह्याभ्यन्तरं-(र)रूपतः स्वरूपध्यानतो[4] वाचा स्फुटीकृत्य मन्दमत्य[5]वबोधाय सूचितेयं वसन्ततिलकेति वज्रवाराही देवी[6] च वसन्तश्रीहेरुकादेशाद् वसन्ततिलकेति तदभिधानं ग्रन्थस्यापीति[7] ।

इति वसन्ततिलका[8] समाप्ता ।।

गततत्त्वरत्नविभागीकरण[9]पट्ट(टु)भिर्ये समलङ्कृता मण्डिताः, तथा ये चान्ये निर्देशात् प्रज्ञाभिधानादाचार्यान्तं प्रसादादनुभूतेन सहजेन प्रतिपदप्रतिवाक्यवाग्भिस्तत्त्वाक्षरै-र्द्योतिकाभिर्जिनपुङ्गवैर्भगवद्भिस्तथागतैः समुल्लासिताः(तैः) सोत्साह(त्व?)मुपनीताः-(तैः) यदेवानुभूतं तदेव सर्वंसूत्रतन्त्रान्तरेषु दृश्यते । उक्तं च—

"आगमात् प्रत्ययश्चैव गुरुतः प्रत्ययस्तथा ।
आत्मतः प्रत्ययश्चैव परतः प्रत्ययस्तथा ।।
चतुर्भिः प्रत्ययैर्ग्राह्यम्"

इत्यादि गुह्यतत्त्वप्रकाशे वचनात् । अत एव हि ये बाह्याध्यात्मपरिग्रहादिति यथा

---

१. चलकान्वि–क. ख. ग., चलंका–घ. । २. सार्धकाद्य–ख. । ३. वरनाम्ना येन–क. ख. । ४. ध्यानं चास्फु–क., ध्यानवाचा–ख. । ५. मत्या योगावबोधाय–सा., गु. पा. भो. । ६. 'देवी' नास्ति–भो. । ७. 'स्यापी''' तिलका' नास्ति–भो. । ८. तिलकसमाप्तः–ग. ङ., कं समाप्तम्–घ. छ. । इतः परम्—श्रेयोऽस्तु संवत् ७९० वैशा[ख]वदि एकादश्यां लिखितम् । सम्पूर्णं शुभम्–क., नत्वा प्रेतासनस्थं त्रिनयनमहिता वक्त्रमारक्तगात्री वाराही मूलदाभ्यां (दोर्भ्यां) सपदि विदलितं नागनाथं पराभ्याम् । सर्पैः खट्वाङ्गपाणी नरकमजशिरो वामदोर्भिश्चतुर्भिः सव्ये कर्ती त्रिशूलः परशुडमरुकं बिभ्रतं हेरुकाख्यम् ।।–ग., शुभसंवत् ९४०–ङ, इति श्रीवज्र-वाराह्या एवं श्रीहेरुकस्य चोद्देशाद्वसन्ततिलकेति तदभिधाना(नं) ग्रन्थस्येति । समाप्तेयं योगराजवसन्ततिलकेति ।। ये धर्मा० ।। –ढ. । ९. वद्भि–च. ।

बाह्ये तथाऽध्यात्मन्यपि सदृशत्वेनोपदेशं गृह्णन्ति, "यथाध्यात्मं तथा बाह्यं संवरं संप्रकाशितम्[1]" इति वचनात्। तथा ये[2] च स्वहृदय एव[3] वज्रडाकान्विता न बहिः, तेषां कृते इयं वसन्ततिलका मया कृता। यतस्ते श्रद्धया दृढं गृह्णन्ति प्रमेयमिति श्रद्धादृढग्राहिणे ग्रन्थकार आत्मनः स्वरूपदर्शनमुखेन ग्रन्थसमाप्तिं दर्शयन्नाह—इति श्रीगुरुबुद्धेत्यादिना। आत्मीयवज्रगुरुबुद्धबोधिसत्त्वाज्ञाप्राप्तेन तथागतकायस्थितेन चर्याव्रतिना मया कृष्णेनेदं वसन्ततिलकाख्यं दशनिर्देशात्मकं कृतं यत् परिसमाप्तमिति सर्वतन्त्रार्थसंग्रहादन्यापेक्षाभावादित्यर्थः।

इति वसन्ततिलकायां निष्पन्नक्रमसाधनोपायिकायां रहस्यदीपिकायां
टीकायां दशमनिर्देशे विस्तरव्याख्या ॥ १० ॥

इति वसन्ततिलकटीका समाप्ता ॥[4]

---

१. संप्रकाशेति—क.। २. येवं—च.। ३. एव च.—ख. घ. च. छ.। ४. इतः परम्—
ये धर्मा हेतुप्रभवा हेतुस्तेषां तथागतो ह्यवदत्।
तेषां च यो निरोध एवंवादी महाश्रमणः ॥—क. ख. घ. छ.,
यल्लेखेनार्जितं पुण्यं जनास्तेन जिनसुताः।
भवन्तु सततं घोरसंसारोद्विग्नचेतसः ॥
संवत् ८०४ मार्गशीर्षशुक्लपक्षे सप्तम्यां तिथौ गुरुवासरे धर्मराजलिखितः संपूर्णं यातः। शुभमस्तु सर्वजगताम्-क., वाताग्निबिन्दुचन्द्राब्दे चतुर्थ्यां राघसिते च। सोमवारे जीवरत्नेनेयं वसन्ततिलकटीका लिखापिता। शुभमस्तु-छ.।

[1]परिशिष्टम्—१

अथान्यतमस्य तथागतस्य नादि(डी)चक्रं यथाक्रमम्।
द्वासप्ततिसहस्राणि नाडि(ड्यो) देहानुगा भवेत् ॥ १ ॥

नाडिका उपनाडीनां तेषां च न समाश्रिता।
विंशोत्तरशतं नाम नाडिप्राधान्यमुच्यते ॥ २ ॥

नादि(डि)स्थानं च पीठं च चतुर्विंशत्प्रमान(ण)तः।
तेषां मध्ये त्रयो [2]नाडि(ड्य) आश्रयन्ति च सर्वगाः ॥ ३ ॥

पुल्लील(र)मर(ल)ये शिरसि नाड्यो दन्तवहाः स्थिताः।
जालन्धरी शिखास्थाने क्ले(के)शरोमसमावहा ॥ ४ ॥

ओडियाने दक्षिणे कर्णे नादि(डी) त्वङ्मलवाहिनी।
अर्बुदे पृष्ठवंस(शे)ति नादि(डी) पृसित(पिशित)वाहिनी ॥ ५ ॥

गोडावली वामकर्णे नाडि(डी) स्नायुवाहिनी।
रामेश्वर भ्रुवोर्मध्ये अस्थि वहति सर्वदा ॥ ६ ॥

देवीकोटे स्थिता चक्षू नाडिरूक्कंवाहिनी।
मार(ल)वे स्कन्धद्वयस्थाने नाडि(डी) हृदयवाहिनी ॥ ७ ॥

कामरू कक्षद्वयस्थाने चक्षू वहति सर्वदा।
ओड्रे स्तनयुगले नाडि(डी) पी(पि)त्तवहा सदा ॥ ८ ॥

नाभौ स्त्रि(त्रि)शकुनिस्थाने नाडि(डी) फुफ्फुल(स)वाहिनी।
कोशले नासिकाग्रे च अन्त(न्त्र)मालावहा स्थिता ॥ ९ ॥

मुष(ख)स्थाने कलिङ्गेषु गुणवर्ति सदावहा।
लम्पाके[3] कण्ठदेशे तु नाडि[4](डी) उदरवहा सदा ॥१०॥

काञ्चि हृदये स्थाने तु नाडी विप्रवाहिनी।
हिमालये मेढ्रे स्थाने नाडि डी) सीमान्तमध्यगा ॥११॥

प्रेताधिवासिनी लिङ्गे नाडो श्लेष्मवाहिनी।
गुरुदेवतो गुड(द)स्थाने सामान्ये पु(पू यवाहिनी ॥१२॥

---

१. न ढ. मातृकयोश्चतुर्थः पटलोऽयं नान्यासु मातृकासु दृश्यते। २. नाडिः—अ.। ३. जम्पाते—ढ.। ४. नादि—ढ.।

सौराष्ट्रे उरुयुगले शोनि(णि)तं च सदावहा।
सुवर्णद्वीपे जङ्घायां नाडी प्रस्वेदवाहिनी ॥१३॥

नखरे पादाङ्गुली ज्ञेया नाडी मदवहा सदा।
सिन्धौ पादपृष्ठे स्थाने अश्रुर्वहति रूपिनी(णी) ॥१४॥

मरु अङ्गुष्ठयोः स्थाने खेदं(टं) वहति सर्वदा।
कुलता जानुद्वयोः स्थित्वा बालसिंहानवाहिनी ॥१५॥

तेषां मध्ये स्थिता नाडी ललना मूत्रवाहिनी।
दक्षिणे रसना ख्याता नाडी रक्तवाहिनी ॥१६॥

संवृता मध्यभागेन हृत्सरोरुहमध्यगा।
कदरी(ली)पुष्पसंकाशा लम्बमाना अधोमुखी ॥१७॥

तैलवह्निरिवादीप्ता बोधिचित्तसमावहा।
सावधूतीति विज्ञेया सहजानन्ददायिका ॥१८॥

प्रधान्यस्ताः सर्वनाडीनां ललनाद्यास्तु नाडिकाः।
अत एवाश्रयामन्या गङ्गासिन्धुपरापगाः ॥१९॥

एता च योनिनाड्यः स्युरेकीभूता खगानने।
सम्भोगकायरूपाद्यास्ता जानीया देहमाशि(श्रि)ता ॥२०॥

त्रि(ति)स्रस्त्रियां प्रधाना या ललनाद्याश्च नाडिकाः।
ललना प्रज्ञास्वभावेन रसनोपायेन[1] संस्थिताः ॥२१॥

अवधूती [2]मध्यदेशे तु ग्राह्यग्राहकवर्जिता।
ललना संभोगिकायो रसना निर्माणिकी तनूः ॥२२॥

अवधूती धर्मकायः स्यादिति कायत्रयं मतम्।
एता नाडिकाः सर्वाः शरीरशुभकारिणी ॥२३॥

तस्य समूहसंजाता पिण्डं ते देवतात्मकम्।
रूपातीतं भवेत्पिण्डं पिण्डातीतं च देवता ॥२४॥

तस्मादचिन्त्ययोगेन तथतामयसर्वगा।
येन येन प्रकारेण पिण्डातीतपदे स्थिता।
तेन तन्मयतां प्राप्य योगी बुद्धत्वमाप्नुयात् ॥२५॥

इति वसन्ततत्त्वे नाडीचक्रक्रमोपायपटलः चतुर्थः ॥

१. रसनापायेन-ढ. । २. मध्यं-ढ. ।

[1]परिशिष्टम्–२

अथान्य[त्] सम्प्रवक्ष्यामि देहमण्डलमुत्तमम् ।
येन विज्ञानमात्रेण निर्वाणं प्रतिपद्यते ॥

शरीरमण्डलं रम्यं पञ्चमण्डलै[ः] शोभितम् ।
पृथ्वीआपतेजोवायुआकाशमण्डलैर्वरैः ॥

सप्तत्रिंशन्महाबोधिपाक्षिकधर्ममण्डलैः ।
वज्रसत्त्वा(त्व)पञ्चडाकनाडीरूपेण संस्थितैः ॥

चतुर्द्वारेण कोणेन विश्वदलपद्मेन च ।
महासंवरेण चित्रेण हेरुका(को)दयेन च ॥

गुरुमुखेन ज्ञातव्यं पारदं देहमण्डलम् ।
पादतलस्थितं वायुं भैरम्भं धनुराकृतिम् ॥

त्रिकटिदेशस्थं ज्ञेयं त्रिकोणं वह्निमण्डलम् ।
मण्डलं वर्तुरा(ला)कारमापाख्यं जठरे स्थितम् ॥

पृथिवीमण्डलं चैव हृदयं च चतुरस्रम् ।
कङ्कारं कवचमाख्यातं सुमेरुं गिरिराजकम् ॥

तच्छिरोदेशमध्यस्थं द्वात्रिंशद्दलपङ्कजम् ।
स्वरव्यञ्जनसंजातं द्वात्रिंशद्बोधिमानसम् ॥

पद्ममध्यगतं चन्द्रमण्डलममृतमयम् ।
मस्तिकं(ष्कं) यच्छिरोमध्ये स्थितं तत्समुदाहृतम् ॥

तस्य मध्ये तु हंकारं बिन्दुरूपमनाहतम् ।
तद्बीजं सर्वलोकानां चरानां(णां) स्थिरामा(णा)मपि ॥

स्थितं तद्बीजभावेन व्यक्ताव्यक्तस्वरूपतः ।
सर्वेषां देहिनां देहं तस्मादुत्पन्नं जायते ॥

श्रवदमृतरूपेण व्यवस्थितमहर्निशम् ।
तेनैव जायते काम[ः] जगच्छ(त्सृ)ष्टिप्रहेतुना ॥

---

१. ज. मातृकायां दृष्टोऽयमष्टमपटलपाठो नान्यत्र विद्यते ।

सम्पूर्णं पञ्चमण्डलं भवत्येवं न संशयः ।
देहमण्डलमित्युक्तं संसारसागरान्तकम् ॥

मण्डलोत्तम[म]ण्डलं देहमण्डलं मतम् ।
सप्तत्रिंशन्महानाडीचक्रं हि मण्डलं स्मृतम् ॥

बोधिचित्तमहारत्नमण्डलं महामण्डलम् ।
बाह्या[भ्य]न्तररूपेण विश्वं व्याप्य व्यवस्थितम् ॥

बाह्ये तु रूपशब्दादि षडिन्द्रियं प्रकीर्तितम् ।
अभ्यन्तरे तु शुक्रादि सिद्धिद्रव्यं सुसंस्थितम् ॥

बाह्याभ्यन्तरयोश्चैव बोधिचित्तेन वज्रिना(णा) ।
स्थूलसूक्ष्मत्वरूपेण जगद्बन्धुस्वरूपिना(णा) ॥

बुद्धानां बोधिसत्त्वानां समयानां तथैव च ।
श्रावकानां(णां) च बुद्धानां प्रत्येकानां तथैव च ॥

ब्रह्मादीनां च देवानां सर्वेषां मण्डलादतः ।
अभ्यन्तरशुक्रादिभिर्बाह्यरूपादिभिस्तथा ॥

हविभिः क्रियते होमं प्रज्ञाग्नौ हि महोज्ज्वले ।
षडायतनधातूनां स्कन्धादीनां विशेषतः ॥

देवतारूपिनां(णां) तेषां डाकिनीनां तथैव च ।
यागपूजा समाख्याता सर्वेण पूजिता स्वयम् ।
शिरं शिरोधरं चैव हविर्भाजनमुच्यते ॥

श्रुवा च रसनाख्यातं हृदयं ललनात्म(त्मि)का ।
पात्री तु समुद्दिष्टं कुण्डं नाभिमण्डलम् ॥

कर्ममारुतनिर्धूतो ब्रह्माग्निस्त्रिकटे स्थितः ।
नादं तु मन्त्रमित्युक्तं जपमावपनं(वर्तनं) भवेत् ॥

भावनां प्रति भावस्तु मण्डलोऽद्वययोगतः ।
सहजरूपमेतच्च जिनानां मण्डलादिकम् ॥

आचार्यचित्तवज्रस्तु मण्डलस्य स्वरूपतः ।
सर्वमत्रैव कर्तव्यं होमादिकं यथाविधि ॥

[1]परिशिष्टम्–३

अतः परं प्रवक्ष्यामि भावं महामन्त्रस्य हि।
तन्मन्त्रज्ञानमात्रेण स्वयं पारं गतो मम॥

परमार्थप्रदं मन्त्रं मन्त्रदेवाधिदेवकम्।
मन्त्रदेवबलेनैव परमत्वं भवाम्यहम्॥

सर्वत्र मन्त्रराजेषु सर्ववेदेषु वा पुनः।
प्रणवाख्यं वर्णराजं ज्ञेयं विनायकं बुधः(धैः)॥

तथागते वज्रडाके नानाडाकेश्वरेऽपि च।
सर्वत्र नामधेयेषु डाकिनीजालसंवरः॥

लक्ष्मी लज्जा पुनर्माया मात्रा विंशाक्षरा परा।
वज्रहेहेरुरुकश्च महासंवरमात्रिका॥

ह्रौ हूँ ह्रौ फट् स्वाहया च बुद्धाह महामन्त्रकम्।
न विज्ञानं पृथग्जनैर्मया प्रकाश्य मात्रकम्॥

देवीलक्ष्मीबीजत्वेन श्रीः सर्वत्र प्रजायते।
तथा लज्जाबीजत्वेन वशं यान्ति भूर्भुवः स्वः॥

मायाबीजस्य भावेन सर्वपातकनाशनम्।
द्वात्रिंशाक्षरमन्त्रं परमार्थप्रदायकम्॥

शकारं शुक्रमाख्यातं रकारं च रजोभवम्।
ईकारंमीलनं प्रोक्तमीश्वरादित्रिलौकिकम्॥

हकारं हर्षमाख्यातं रकारं रजसम्भवम्।
ईकारं मीलनं प्रोक्तमीश्वरादित्रिलोकिकम्॥

ककारः कः क्व आख्यातं लकारं सुरेन्द्रादिकम्।
ईकारं मीलनं प्रोक्तमीश्वरादित्रिलौकिकम्॥

शुश्याकारं शुश्याख्यातं अर्द्धचन्द्ररत्नेशकम्।
लेखामिताभनाथं च हकारं तु वैरोचनम्॥

१, अयं पटलः सप्तमत्वेन ज. मातृकायामेव वर्तते, नान्यत्र।

उकारामोघमाख्यातं बुद्धडाकादिकं तथा ।
द्वौ फट्कारौ स्वाहान्तं च सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥

वाराही डाकिनीभ्यां च सार्धं चतुर्बीजेन हि ।
तदन्ते पूर्ववत् प्रोक्तं देवि तन्मूलमन्त्रकम् ॥

अन्यमन्त्रं न(च) मे नास्ति महामन्त्रमिदं तव ।
परमार्थप्रदं ज्ञेयं संसारसागरान्तकम् ॥

समं हि तेन मन्त्रेण त्रैलोके नहि विद्यते ।
निर्वाणपददं मन्त्रं प्रतियुगे त्रिधातुके ॥

महासुखप्रदं मन्त्रं मन्त्रराजेश्वरं विभुम् ।
योग्यं द(दे)श पुष्पिताय पृथक्जनाय वै नहि ॥

विन्यस्य सप्तत्रिंशार्णे सप्तत्रिंशवीरेश्वरः ।
चित्तकर्मफलप्रदस्तथैव वीरेश्वरी ॥

अष्टचत्वारिंश[द्] मूलं तथैव हि फलप्रदम् ।
न देयं पृथग्जनेभ्यो गोपनीयं प्रयत्नतः ॥

महामन्त्रप्रभावेन(ण) त्रिरत्नत्वं भवेद् ध्रुवम् ।
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्या[:] सर्वदैव भवेद् ध्रुवम् ॥

पश्चिमस्यान्तिन(म) ग्राह्य उत्तरस्यान्तिम तथा ।
अग्नौ द्वितीयाक्षर ग्राह्य तत्रैव च पुनः पुनः ॥

नैर्ऋत्येऽग्निबीजश्च ईशाने वरुणस्तथा ।
तृतीयाक्षरपूर्वस्य पश्चिमस्य तृतीयकम् ॥

अक्षरादौ प्रथमस्य उत्तरस्यान्तिमं पुनः ।
द्वितीयाक्षर ईशानस्य तस्यैव प्रथमाक्षरः ॥

नैर्ऋत्येऽग्निबीजश्च ईशाने प्रथमं तथा ।
राक्षसे रेफमादाय आग्नेय्यां द्वितीयाक्षरम् ॥

दैत्येऽग्निबीजकं ग्राह्य अग्नौ पवनं तथा ।
मन्त्रस्य प(प्र)थमं पदमस्यैव स्वरमुच्यते ॥

विसर्गेण समायुक्तं शोभनं द्वितीयाक्षरम् ।
चतुर्थकोष्ठकाक्रान्तं तृतीयं वह्निभूषितम् ॥

पञ्चमाक्षरं रेफेन भूषितमधोभागके ।
द्वितीयकोष्ठकाक्रान्तं षष्ठमं चाक्षरं विदुः ॥
नवमं तेनैवाक्रान्तं दशमं चतुर्थेन तु ।
द्वादशं तेनैवाक्रान्तं त्रयोदशं तेनैव तु ॥
चतुर्दशे च वरुणश्चाधोभागे विकल्पयेत् ।
द्वितीयकोष्ठकाक्रान्तं पञ्चदशाक्षरं परम् ॥
एवं ज्ञात्वा महामन्त्री सर्वंपदेषु कारणम् ।
मन्त्रोद्धारेण प्रयोगं च ज्ञातव्यं सर्वदा त्वया ॥ १ ॥

पश्चिम प्रथम ग्राह्य उत्तरस्य चतुर्थकम् ।
ईशाने वरुणं ग्राह्य दक्षिणस्यान्तिण(मं) पुनः ॥
मध्यमा प्रथमं बीजं उत्तरस्यान्तिम तथा ।
मध्यमा प्रथमं ग्राह्य उत्तरस्यान्तिमबीजकम् ॥
ईशाने वरुणं ग्राह्य दक्षिणस्यान्तिण(म)बीजकम् ।
पवनाक्षर आग्नेय्यां द्वितीयपदमुच्यते ॥
तृतीय कोष्ठकाक्रान्तं प्रथमाद्याधो दीपितम् ।
पञ्चमकोष्ठे द्वितीयमक्षरमधो भूषितम् ॥
उत्तरस्य प्रथमं तु षष्ठमधो दीपितम् ।
अष्टमाक्षरं तत्तुल्यं द्वितीयकोष्ठभेदितम् ॥
दशमं तेनैवाक्रान्तं सर्वानर्थविनास(श)नम् ।
धर्मचक्रप्रवर्तनं सर्वसिद्धिमनाविलम् ॥ २ ॥

पश्चिम तृतीयं ग्राह्य दैत्यद्वितीयबीजकम् ।
पश्चिम प्र[थ]मबीजं दक्षिण प्रथमं पुनः ॥
उत्तरस्य चतुर्थं तु दैत्य द्वितीयमक्षरम् ।
दक्षिणस्यान्तिण(म) ग्राह्य उत्तरस्य चतुर्थकम् ॥
दैत्य[ा]ग्निरक्षरं ग्राह्य ईशान वरुणस्तथा ।
अग्निपवनबीजश्च मन्त्रस्य तृतीयं पदम् ॥
एकादशकोष्ठाक्रान्तं प्रमथं(थमं) चाक्षरं विदुः ।
नवमकोष्ठकेनापि द्वितीयाक्षरमौलिनम् ॥

दक्षिणप्रथमेनैव वह्निनाधोभूषितम् ।
तृतीय मध्यमा दद्यादधो भागेषु कल्पयेत् ॥

चतुर्थकोष्ठकाक्रान्तं पञ्चमाक्षरं विदुः ।
अष्टमकोष्ठकं दद्यादक्षरदशमस्य तु ॥

दशमं द्वितीयाक्रान्तं दुष्टानां निग्रहं परम् ।
देवासुरमनुष्यानां(णां) स्थाने स्थानेषु निग्रहम् ॥ ३ ॥

अग्निद्वितीयबीजं च पश्चिमप्रथमाक्षरम् ।
वायव्य द्वितीय बीज ईशान अपरस्तथा ॥

वायव्य द्वितीयाक्षरपश्चिमायान्तिन(मं) पुनः ।
पश्चिमस्य प्रथमं तु अग्निपवनबीजकम् ॥

चतुर्थं पदमित्याहुः सर्ववस्तुप्रकाशकम् ।
रेफेणाधो भागेषु प्रकल्पयेत् पञ्चमाक्षरम् ॥

षष्ठमं षष्ठकोष्ठाच्च सप्तमं द्वितीयं पुनः ।
भूषितं वह्निनाधो हि सर्वज्ञपदमव्ययम् ॥ ४ ॥

ईशान वरुण ग्राह्य द्युकारं स्वयम्भूं पुनः ।
पश्चिम प्रथमं बीजं पूर्वास्य तृतीयकम् ॥

ईशानमपरं गृ'ग्रा'ह्य आग्नेय्यां पवनं पुनः ।
पञ्चमं तु पदं रौद्रं योगिनीनां प्रबोधकम् ॥

तृतीयकोष्ठकाक्रान्तं प्रथमाक्षरं सर्वगम् ।
तेनैव चतुर्थबीजमाक्रान्तं सो(शो)भनं परम् ॥

पञ्चमं द्विकोष्ठाक्रान्तमासनं वरुणेन च ।
पदं च पञ्चमं तत्र सर्वकार्येषु योजयेत् ॥ ५ ॥

मध्यमा प्रथमं बीजं पुनः सैव तु अक्षरः ।
वायव्य माहेन्द्रं ग्राह्य उत्तरस्यान्तिम पुनः ॥

वायव्य पार्थिवं बीजमुत्तरस्य चतुर्थकम् ।
राक्षस अग्निबीजं च दक्षिणस्यान्तिम पुनः ॥

मध्यमा तृतीयं ग्राह्य अग्निपवनबीजकम् ।
पञ्चमादि स्वरं दद्यात् सृष्टिसंहारकारकम् ॥

तृतीय कोष्ठकाक्रान्तं प्रथमाक्षर सर्वगम् ।
तेनैव चतुर्थबीजमाक्रान्तं सो(शो) भनं परम् ॥

पञ्चमं द्विकोष्ठक्रान्तं आसनवरुणेषिकम् ।
पदं च पञ्चमं तत्र सर्वकार्येषु योजयेत् ॥

एकादशैः समाक्रान्तं सो(शो)भनं प्रथमाक्षरम् ।
द्वितीयकोष्ठकाक्रान्तं द्वितीयाक्षरमुच्यते ॥

तेनैव समाक्रान्तं चतुर्थपञ्चमाक्षरम् ।
अष्टमाक्षरनवमकोष्ठकेन विभूषितम् ॥

दशम द्विकोष्ठकाक्रान्तं वह्निना अधो भेदितम् ।
षष्ठपदं विजानीयात् सर्वकामप्रसाधकम् ॥ ६ ॥

मध्यमाप्र[थ]मं ग्राह्य दक्षिणप्रथमं तथा ।
वायव्यधरबीजश्च कषाख्यमन्त्रमुद्धरेत् ॥

उत्तर चतुर्थं ग्राह्य पूर्वतृतीयकं तथा ।
अग्निपवनमुद्धृत्य सप्तमं पदमव्ययम् ॥

नवमकोष्ठकाक्रान्तं प्रथमाक्षरकं विभुम् ।
तृतीयकोष्ठकं चैव भूषितं द्वितीयाक्षरम् ॥

पञ्चमकोष्ठकमात्रात् पञ्चमस्यासनं विदुः ।
द्वितीयकोष्ठकाक्रान्तं षष्ठमं चाक्षरं ततः ॥ ७ ॥

पूर्वतृतीयकं ग्राह्य वायव्यधरबीजकम् ।
ईशानवरुणं गृह्य पवनाग्नेयकोणके ॥

अष्टमं पदं विज्ञेयं सर्वपापविनास(श)नम् ।
द्वितीयकोष्ठकाक्रान्तं वरुणासनाग्राक्षरम् ॥

द्वितीयकोष्ठकाक्रान्तं द्वितीयाक्षरकं विदुः ।
चतुर्थकोष्ठकाक्रान्तं चतुर्थाक्षरसंज्ञकम् ॥

द्वितीयकोष्ठकाक्रान्तं सप्तमाक्षरकं सह ।
पश्चिमं तेन जानीयात् सर्वशत्रुक्षयङ्करम् ॥ ८ ॥

उत्तरप्रथमं गृह्य नैरृत्याग्निबीजकम् ।
तत्रैव द्वितीयबीजमुत्तरप्रथमाक्षरम् ॥

नैऋत्यद्वितीयं ग्राह्य द्यका वज्रसत्त्वकम् ।
पश्चिमप्रथमबीजं अग्नेश्च द्वितीयाक्षरम् ॥

वायव्यं पार्थिवं ग्राह्य अग्नि पवनबीजकम् ।
नवमपदमन्त्रस्य डाकिनी हृदयमर्दनम् ॥

आसनं पञ्चमकोष्ठाद् द्वितीयाक्षरभूषितम् ।
सैव तृतीयाक्षरेषु चतुर्थाक्रान्तं द्विकोष्ठकात् ॥

पञ्चमं नवकोष्ठात्तु अष्टमं षष्ठकोष्ठकात् ।
आसनं च विजानीयान्नवाक्रान्तं द्विकोष्ठकात् ॥ ९ ॥

मध्यमा प्रथमबीजं वायौ माहेन्द्रकं तथा ।
पश्चिमप्रथमबीजं तस्यैव तु चतुर्थकम् ॥

उत्तरस्यान्तिमं गृह्य मध्यमस्य तृतीयकम् ।
ईशान वरुण गृह्य उत्तर प्रथमाक्षरम् ॥

नैऋत्य द्वितीय बीजमग्नौ च पवनं पुनः ।
दशमं पदमित्येवं मन्त्रस्य दुष्टदूषणम् ॥

द्वितीयकोष्ठकाक्रान्तमुत्तराद्यासनं पुनः ।
द्वितीयाक्षरं विज्ञेयं एकादशेन मूर्ध्निना ॥

षष्ठकोष्ठकाधारं च चतुर्थाक्षरकं विदुः ।
चतुर्थकोष्ठकाक्रान्ताधोवह्नियुक्तं पञ्चाक्षरम् ॥

षष्ठरेफासनं दद्यादष्टमे पञ्चमासनम् ।
नवमं द्विकोष्ठाक्रान्तं महाभयभयङ्करम् ॥१०॥

ईशानवरुणं गृह्य मध्यमा प्रथमाक्षरम् ।
दक्षिणप्रथमं गृह्य उत्तरस्यान्तिमं पुनः ॥

मध्यमा द्वितीयं बीजमीशाने द्वितीयाक्षरम् ।
पुनः सैव तु गृह्णीयान्नैऋत्याग्निबीजकम् ॥

ईशानवरुणाक्षरं च अग्नौ पवनसंग्रहम् ।
एकादशं मन्त्रपदं मारसैन्यविनास(श)कम् ॥

तृतीयकोष्ठकाक्रान्तं प्रथमाक्षरसो(शो)भनम् ।
पञ्चमकोष्ठकासनं चतुर्थस्याक्षरेषु च ॥
षष्ठमं द्वितीयाक्रान्तं सप्तमं नवमं पुनः ॥११॥

उत्तरस्यान्तिमं गृह्य पश्चिम प्रथमं पुनः ।
मध्यमा तृतीयं ग्राह्य दक्षिणस्यान्तिमाक्षरम् ॥
उत्तर प्रथमं ग्राह्य नैऋत्याग्निरक्षरम् ।
उत्तर प्रथमं बीजं दैत्यस्याग्निकं तथा ॥
पश्चिमप्रथमं गृह्य उत्तरस्यान्तिमं पुनः ।
पश्चिमप्रथमं गृह्य अग्नौ च पवनं पुनः ॥
द्वादशं च मन्त्रपदं वश्यं हि सर्वयोगिनाम् ।
द्वितीयकोष्ठकाक्रान्तं प्रथमाक्षरकं विदुः ॥
पूर्वद्वारकेनाक्रान्तं द्वितीयस्यासनं ततः ।
तृतीयकोष्ठकाक्रान्तं षष्ठमं चाक्षरं पुनः ॥
षष्ठमकोष्ठकासनं सप्तमाक्षरपूरितम् ।
तृतीयकोष्ठकं चैव भूषितमष्टमाक्षरम् ॥
दशमेकादशे कोष्ठे क्रान्तैकादशाद्यो रवौ ।
द्वितीयकोष्ठकाक्रान्तैव अचलं वश्यकर्मणि ॥१२॥

वायव्य द्वितीयं ग्राह्य ईशान द्वितीयं पुनः ।
पूर्वतृतीयबीजं च वायव्य द्वितीयाक्षरम् ॥
पश्चिमतृतीयं बीजं नैऋत्यस्याग्निरक्षरम् ।
ईशान वरुणं गृह्य वायु पार्थिव बीजकम् ॥
अधोभागे सैव दद्यादुत्तरस्य चतुर्थकम् ।
मध्यमा प्रथमं गृह्य नैऋत्याग्नेयमक्षरम् ॥
अग्नौ च पवनं गृह्य मन्त्रं त्रयोदशं पदम् ।
सर्वानन्दकारी च बोधिमार्गानुतायिनाम् ॥
द्वितीयकोष्ठकाक्रान्तमेकादशाक्षरं विदुः ।
षष्ठमं चतुर्थक्रान्तं चतुर्थस्यासनपञ्चमः ॥
एकादशमकूटेषु विडमाः सर्वजन्तवः ॥१३॥

ज्ञानबीजं समुद्धृत्य पुनः सैव तु उद्धरेत् ।
मध्यमा प्रथमं ग्राह्य नैऋत्याग्नेयमक्षरम् ॥
पूर्वस्य प्रथमं ग्राह्य आसनं सैव कारयेत् ।
राक्षसरेफमादाय दक्षिणान्तिण(म) बीजकम् ॥

उत्तरान्तिममुद्धृत्य मध्यमा द्वितीयाक्षरम् ।
अग्नौ च पवनं गृह्य चतुर्दशाव्ययं पदम् ॥
द्वितीयकोष्ठकाक्रान्तं तृतीयाक्षरकं पुनः ।
चतुर्थं नवमाक्रान्तं पञ्चमं द्वितीयाक्षरम् ॥
पञ्चकोष्ठासनयुक्तं अष्टमं नवमं तथा ।
द्वितीयकोष्ठकाक्रान्तं विलोमेन चतुर्दशम् ॥१४॥

उत्तरस्यान्तिम ग्राह्य ईशानापरं तथा ।
अग्नौ द्वितीयबीजं च पुनः सैव तु उद्धरेत् ॥
दक्षिणस्यान्तिणं(मं) ग्राह्य उत्तरस्यान्तिमं पुनः ।
अग्नौ च पवनं गृह्य पुनः सैव तु बीजकम् ॥
पदं पञ्चदशं मन्त्रमुच्चाटनं विकल्पकम् ।
द्वितीयकोष्ठसंयुक्तं द्वितीयाक्षरमन्त्रकम् ॥
उत्तरस्यान्तिमं दद्यादासनं तृतीयस्य तु ।
द्वितीयकोष्ठसंयुक्तं चतुर्थाक्षरकं विभुम् ॥
षष्ठतृतीयाक्रान्तं च वह्निनाधो दीपितम् ।
सप्तमं द्वितीयाक्रान्तं योगिनीनां मुखे स्थितम् ॥१५॥

वायव्यद्वितीयबीजं ईशानवरुणं पुनः ।
उत्तरस्य चतुर्थं तु पश्चिमप्रथमं तथा ॥
वायव्य द्वितीयबीजं पश्चिम प्रथमं पुनः ।
वायुर्द्वितीयकं ग्राह्य दक्षिणस्यान्तमेव च ॥
मध्यमा प्रथमं बीजं नैर्ऋत्याग्निपुत्रकम् ।
अग्नौ पवनबीजं च मन्त्रस्य षोडशं पदम् ॥
द्वितीयं रेफेणाक्रान्तं तृतीयासनं षष्ठकम् ।
मकुटैकादशं पञ्चे षष्ठे द्वितीयकोष्ठकात् ॥
आसनं वह्निपुत्रं च दशमं च द्विकोष्ठकात् ॥१६॥

उत्तरस्यान्तिमं गृह्य ईशानमपरं तथा ।
मध्यमाप्रथमं बीजं वायुपार्थिकं(वं) पुनः ॥
उत्तरप्रथमासनं पश्चिमप्रथमं तथा ।
मध्यमातृतीयं ग्राह्य पश्चिम प्रथमाक्षरम् ॥

पूर्वंतृतीयकं गृह्य अग्नौ च पवनं पुनः।
पदं सप्तदशमं च मन्त्रं कालान्तरासनम् ॥
द्वितीयकोष्ठसंयुक्तं द्वितीयाक्षरमन्त्रकम् ।
चतुर्थं तेनैवाक्रान्तं पञ्चमं तेनैव तु ॥
चतुर्थैकादशाक्रान्तं तृतीयाक्रान्तषष्ठकम् ।
नकारासनमाक्रान्तं सप्तमे सप्तकोष्ठके ॥
अष्टमं द्वितीयकोष्ठान्मन्त्रं सर्वसुखोद्भवम् ॥१७॥

पूर्वंतृतीयकं ग्राह्य दक्षिणप्रथमं तथा ॥
मध्यम प्रथमं बीजं पार्थिवं वायुकोणतः।
उत्तरस्य प्रथमं तु तस्यैवान्तेषु चाक्षरम् ॥
मध्यम प्रथमं बीजं दक्षिण प्रथमं तथा।
अग्नौ च पवनं गृह्य मन्त्रस्याष्टादशं पदम् ॥
द्वितीयकोष्ठसंयुक्तमक्षरं द्वितीयस्य तु।
तेनैव चतुर्थं च पञ्चमे षष्ठमाक्षरम्।
सप्तमाक्षरं तेनैव द्वितीयकोष्ठाष्टमं तथा ॥
जन्तूनां धर्मचक्रं च वर्तने मन्त्रिणः पदात् ॥ १८ ॥

मध्यमा द्वितीयं बीजं दक्षिणस्य प्रथमकम्।
मध्यमा तृतीयं ग्राह्य प्रथमं मध्यमस्य च ॥
उत्तरस्य प्रथमं तु वायुपार्थिवं ततः।
अग्नौ द्वितीयबीजं च पार्थिवं वायुकोणके ॥
उत्तरस्य चतुर्थं च पश्चिमस्यान्तिमं तथा।
तस्यैव चतुर्थं च अग्निपुत्रो दैत्ये पुनः ॥
दक्षिणस्यान्तिणं(मं) ग्राह्य ऊनविंशतिमं पदम्।
वारुणासनं द्विकोष्ठं च संयुक्तं द्वितीयाक्षरम् ॥
मकुटैकादश कोष्ठो द्विकोष्ठ युक्त पञ्चमम्।
सप्तमं षष्ठकोष्ठात्तु अधोभागेन दीपितम् ॥
नवमं त्रिकोष्ठकेन मस्तकैकादशं पदम्।
एकादशं द्वितीयेन तृतीय द्वादशाक्षरम् ॥
सप्तमे त्रयोदशं च मन्त्रं सहजधर्मकम् ॥ १९ ॥

उत्तरस्यान्तिमं ग्राह्य अपरमीण(श)कोष्ठकात् ।
वायौ द्वितीयबीजं च उत्तरस्यान्तिमं पुनः ॥

पश्चिम तृतीयं बीजं उत्तरस्यान्तिमाक्षरम् ।
मध्यमाया द्वितीयश्च वायौ पार्थिवमक्ष[रम्] ॥

अग्नौ च पवनं गृह्य मन्त्रं विंशतिमं पदम् ।
द्वितीयकोष्ठसंयुक्तं द्वितीयाक्षरकं बुधः ॥

चतुर्थं पञ्चमासनं रेफेन पञ्चमाक्षरम् ।
सप्तमेन षष्ठमं च अष्टमं च द्विकोष्ठकात् ॥
महासन्त्रासनं मन्त्रं नागानां तु भयङ्करम् ॥ २० ॥

ईशान वरुणं गृह्य मध्यमा चतुर्थाक्षरम् ।
पूर्वे च प्रथमं गृह्य नैऋत्याग्निबीजकम् ॥

आसनमुत्तरस्यान्तं तस्यैव तृतीयाक्षरम् ।
नैऋत्याग्निबीजं चैव पश्चिमायाश्चतुर्थकम् ॥

नैऋत्यां चाग्निबीजं तु दक्षिणस्यान्तिणं(मं) तथा ।
एकविंशतिमं पदं सर्वसन्त्रासवर्जितम् ॥

द्वितीयकोष्ठसंयोगमासनं पवनं तथा ।
प्रथमाक्षरमित्येवं रेफोधः संस्थितं द्विकम् ॥

चतुर्थस्य मूर्द्धस्थं तु द्वितीयकोष्ठलग्नकम् ।
मकुटैकादशाक्रान्तं द्वितीययुक्तं सप्तमम् ॥

अष्टमं तु तृतीयेन . नवमं सप्तमेन तु ।
सर्वसिद्धयालयं मन्त्रं मुद्रासिद्धिस्तु दायकम् ॥ २१ ॥

ईशान वारुणं ग्राह्य पश्चिमं प्रथमं तथा ।
वायौ माहेन्द्रकं चैव तत्रैव द्वितीयाक्षरम् ॥

मध्यमा चतुर्थं बीजं उत्तरस्यान्तिमं पुनः ।
पश्चिमस्य चतुर्थं तु रेफयुक्तं तु कारयेत् ॥

दक्षिणस्यान्तिणं(मं) गृह्य मध्यमा प्रथमं तथा ।
राक्षसे अग्निबीजं च अग्नौ पवनबीजकम् ॥

द्वाविंशतिपदं मन्त्रं मुक्तकर्म च कारयेत् ।
सप्तमकोष्ठात् संयुक्तं प्रथममन्त्रस्याक्षरम् ॥

द्वितीयं द्वितीयाक्षरैरेकादशैश्चतुर्थाक्षरम् ।
दशम द्वितीयकोष्ठाच्चित्तचैत्याभयङ्करम् ॥ २२ ॥

उत्तरस्यान्तिमं ग्राह्य तदपरमीशानकम् ।
तत्रैव वारुणं ग्राह्य मध्यमा चतुर्थं पुनः ॥

नकारं चासनं दद्यात् पश्चिमायान्तेन तथा ।
ईशानवरुणं ग्राह्य दैत्याग्निबीजकं पुनः ॥

दक्षिणस्यान्तिणं(मं) ग्राह्य पदं त्रयोविंशतिकम् ।
द्वितीयकोष्ठयुक्तं च द्वितीयाक्षरं सो(शो)भनम् ॥

तृतीयं तृतीयकं च पञ्चमं च तेनैव तु ।
षष्ठं द्वितीयकोष्ठाद्धि तृतीयं सप्तमं तथा ॥
अष्टमं सप्तमकोष्ठात् संसारघोरवारिणम् ॥२३॥

अग्नौ द्वितीयबीजं च पूर्वस्य प्रथमं तथा ।
रेफासनं तु दद्याच्च पश्चिमायान्तिमं पुनः ॥

वायौ द्वितीयकं ग्राह्य उत्तरस्य चतुर्थकम् ।
दक्षिणस्यान्तिणं(मं) बीजं मध्यमा प्रथमाक्षरम् ॥

नैऋत्याग्निबीजं च अग्नौ पवनं पुनः ।
चतुर्विंशं पदं मन्त्रं मस्तकस्य विदारणम् ॥२४॥

पञ्चममुत्तरकस्य चतुर्थाक्षर आसनम् ।
तृतीयेन तृतीयं च पञ्चमेन चतुर्थकम् ॥
स शुल्या(ष्या)क्रान्तमष्टौ च द्विकोष्ठकाष्टमं पुनः ॥२४॥

पश्चिमायाः प्रथमं तु सूर्या एवासनं पुनः ।
वायौ द्वितीयबीजं च सपरमीशकोष्ठकः ॥

द्वितीयाक्षरं वायौ च रेफेनासनमण्डितम् ।
उत्तरस्यान्तिमं ग्राह्य ईशा च सपरं तथा ॥

वायौ द्विरक्षरं चैव सपरमीशानकापराः ।
पुनर्वायौ द्वितीयं च रेफयुक्तं च कारयेत् ॥

मध्यमाप्रथमं बीजं नैऋत्याग्निबीजकम् ।
उत्तरस्यान्तिमं ग्राह्य ईशा च वरुणं तथा ॥

वायौ माहेन्द्रकं ग्राह्य पवनासनयोजितम् ।
पश्चिमस्यादिकाक्षरं ग्राह्यमात्रं पुनस्तथा ॥

ईशा च वरुणं गृह्य रेफाक्रान्तं तु योजयेत् ।
नैऋत्यां रेफकं ग्राह्य पश्चिमाच्चासनं तथा ॥

दक्षिणस्यान्तिणं(मं) ग्राह्य मन्त्रं पञ्चविंशपदम् ।
तृतीयकोष्ठकाद्युक्तं प्रथमाक्षरकं विदुः ॥

द्वितीयं द्विकोष्ठकाच्चैव षष्ठं तेनैव योजितम् ।
नवमं सप्तमं कोष्ठान्नवमेकादशं तथा ॥

द्वादशं द्विकोष्ठकाच्च चतुर्दशं तेनैव तु ।
एकादशाक्रान्तमस्तो सप्तदशं त्रिकोष्ठकात् ॥

अष्टादशं सप्तमेन अनन्तसत्त्वार्थंकरं परम् ।
निर्माणकायिकं चैव सर्वासा(शा,परिपूरि(र)कम् ॥२५॥

अग्नौ द्वितीयकं ग्राह्य पश्चिमा प्रथमं तथा ।
वायौ द्वितीयकं ग्राह्य ईशा च सपरं पुनः ॥

द्वितीयं वायव्यं ग्राह्य उत्तरस्यान्त(न्ति)माक्षरम् ।
मध्यमा द्वितीयं बीजं अग्नौ च पवनाक्षरम् ॥

षड्विंशतिपदं मन्त्रं सर्वाभिज्ञाप्रवर्तकम् ।
रेफासनं संयुक्तं पञ्चमाक्षरकं परम् ॥

आसनं पञ्चकोष्ठात्तु षष्ठमस्याक्षरस्य च ।
सप्तमं द्वितीयकोष्ठाद्वर्षणं सर्वकामदम् ॥२६॥

ज्ञानस्वयम्भूमुद्धृत्य पश्चिमायान्तिमाक्षरम् ।
वायव्यद्वितीयोद्धृत्य मध्यमा तृतीयं तथा ॥

राक्षसे रविमाकृष्य उत्तराप्रथमं ततः ।
रेफासनसमासीनमुत्तरस्य चतुर्थकम् ॥

अग्नौ पवनमाकृष्य सप्तविंशतिमं पदम् ।
कोष्ठकाद् द्वितीयेनैव तृतीयाक्षरशोभितम् ॥
तेनैव शोभितं कुर्यात् सहजसम्बोधिकं परम् ॥२७॥

उत्तरस्यान्तिमं ग्राह्य सपरमीशकोष्ठकाः ।
उत्तरा प्रथमाकृष्य अग्नौ च द्वितीयाक्षरम् ॥

पश्चिमा प्रथमं गृह्य रविनैऋत्यकोणकः ।
पश्चिमा चतुर्थंबीजं नैऋत्यां रविबीजकम् ॥

ईशा च वारुणं गृह्य वायौ च द्वितीयाक्षरम् ।
सपरमीशकोणे च नैऋत्यां चाग्निबीजकम् ॥

दक्षिणायान्तिमं ग्राह्य मन्त्रस्याष्टाविंशं पदम् ।
द्वितीयकोष्ठसंलग्नं मन्त्रस्य द्वितीयाक्षरम् ॥

तृतीयेन तृतीयं च तेनैव चतुर्थं पुनः ।
पञ्चमेन षष्ठमं च अधोभागेषु योजयेत् ॥

तृतीयसप्तमं योज्य दशमं तु द्विकोष्ठकात् ।
एकादशं तु तेनैव तृतीयद्वादशं पुनः ॥
त्रयोदशं सप्तमकोष्ठाद् महाकरुणा च स्वयम् ॥२८॥

वायौ द्वितीयबीजं च रेफयुक्तं च वारुणम् ।
उत्तरस्यान्तिमं ग्राह्य दैत्यां हुतास(श नं ततः ॥

उत्तरस्य तृतीयं तु वायौ पार्थिवकं पुनः ।
पश्चिमस्य चतुर्थं च वारुणासनयोजितः ॥

वायौ द्वितीयबीजं च पश्चिमस्यान्तिमं पुनः ।
ऊनविंशतिमं चैव मन्त्रस्य पदं सर्वकृत् ॥

द्विकोष्ठकात्तु संयुक्तं मन्त्रस्य तृतीयाक्षरम् ।
एकादशे समाक्रान्तं सप्तमाक्षरकं विभुम् ॥

तृतीये अष्टमं लग्नं सप्तमे नवमं तथा ।
नानासिद्धिकरणे तु मन्त्रमेतदुदाहृतम् ॥२९॥

अग्नौ च द्वितीयं ग्राह्य रवियुक्तं महाप्रभुम् ।
नैऋत्यकोणे द्वितीयं दक्षिणप्रथमासनम् ॥

वायौ द्वितीयबीजं च सपरेशानकोणके ।
रवि नैऋत्यकं गृह्य मध्यमा प्रथमं परम् ॥

राक्षसे चाग्निकं ग्राह्य मध्यमा प्रथमाक्षरम् ।
अग्नौ च पवनं गृह्य मन्त्रस्य त्रिंशमं पदम् ॥

तृतीयकोष्ठलग्नं च प्रथमाक्षरकं विभुम् ।
तेनैव द्वितीयकं च समील्यैकादशाक्रान्तकम् ॥

पुनर्द्वितीयचतुर्थं तु तेनैव च षष्ठमम् ।
अष्टमं च तथा तेन सर्वभ्रान्तिविवर्जितम् ॥३०॥

वायुद्वितीयबीजं च रवियुक्तेन वारुणम् ।
पश्चिमायान्तिनं(मं) बीजं मध्यमाया तृतीयकम् ॥

पश्चिमायान्तिनं(मं) भूय नैऋत्यां द्वितीयाक्षरम् ।
पुनः सैव तु उद्धृत्य दक्षिणस्यान्तिमं तथा ॥

वायौ द्वितीयकं ग्राह्य पश्चिमाद्यासनं पुनः ।
उत्तरस्य चतुर्थं तु पश्चिमस्यान्तिनं(मं) तथा ॥

ईशा च वारुणं ग्राह्य पश्चिमस्य चतुर्थकम् ।
रेफयुक्तं स कुर्यात्तु ईशा वारुणबीजकम् ॥

दक्षिणस्यानिणं(न्तिमं) ग्राह्य अग्नौ पवनबीजकम् ।
पठितसिद्धिकरं मन्त्रं न भूतो न भविष्यति ॥

द्वितीयकोष्ठकाक्रान्तं मन्त्रस्य तृतीयाक्षरम् ।
चतुर्थं तेनैव लग्नमेकादशेन भूषितम् ॥

पञ्चमं द्वितीयकोष्ठात् षष्ठं तु नवमं तथा ।
नवमं बिन्दुनाक्रान्तं द्वादशं तृतीये पुनः ॥

त्रयोदशं द्वितीयेन पञ्चदशं तेनैव तु ।
एकत्रिंशतिमं मन्त्रं पदं सर्वसुखोद्भवम् ॥३१॥

प्रथमकोष्ठकोद्धृत्य पश्चिमा प्रथमं तथा ।
वज्रसत्त्वासनं दद्यादुत्तमं पुनः ॥

वायौ च पार्थिवं ग्राह्य पश्चिमं चतुर्थाक्षरम् ।
नैऋत्ये अग्निबीजं च पश्चिमस्यान्तिमं तथा ॥

प्रथमैकादशाक्रान्तं तृतीयं च द्विकोष्ठकात् ।
चतुर्थं पञ्चमेनैव तृतीयषष्ठमाक्षरम् ॥

सप्तमं सप्तमेनैव मन्त्रं द्वात्रिंशमं पदम् ।
भीषणं भैरवीनां च वज्रसत्त्वप्रपूरकम् ॥३२॥

वायौ द्वितीयबीजं च उत्तरस्यान्तिमं परम् ।
वज्रसत्त्वं तु नैऋत्यां मध्यमा प्रथमाक्षरम् ॥

उत्तरस्य प्रथमं तु पश्चिमा प्रथमं तथा।
तस्यैवान्तिनं(मं) ग्राह्य पुनस्तस्य तृतीयकम् ॥

अग्नौ च पवनं गृह्य त्रयस्त्रिशतिमं पदम्।
पञ्चमासनमाद्यस्य सप्तमं द्वितीयस्य च ॥

तृतीयस्यासनं कोष्ठात् पञ्चमाद्यश्च संभव।
चतुर्थैकादशाक्रान्तं पञ्चमं च त्रिकोष्ठकात् ॥

सप्तमाष्टमं कोष्ठाच्च द्वितीयादीपितं सदा।
ग्राह्यग्राहककारं च वर्जनामन्त्रनायकाः ॥३३॥

मध्यमा प्रथमं गृह्य आसनं वह्निपुत्रकम्।
पश्चिमस्य चतुर्थं तु ईशा वारुणबीजकम् ॥

मध्यमाया चतुर्थं तु रवि आसनसंस्थितम्।
सपरमीशकोणे च पश्चिमा चतुर्थं पुनः ॥

दैत्ये चाग्निबीजं च दक्षिणस्यान्तिणं(मं) तथा।
अग्नौ पवनं संग्राह्य चतुस्त्रिशतिमं पदम् ॥

नवमकोष्ठाक्रान्तं प्रथमाक्षरकं विदुः।
तृतीयेन तृतीयं तु द्वितीयौ षष्ठाष्टाक्षरौ ॥
दुर्गत्युत्तरणं मन्त्रं स्वयम्भूनादनादितम् ॥३४॥

उत्तरस्यान्तिमं ग्राह्य सपरमीशकोणके।
मध्यमाप्रथमं गृह्य अग्नौ द्वितीयबीजकम् ॥

पश्चिमा प्रथमं बीजं वायौ माहेन्द्रकं तथा।
मध्यमा प्रथमं ग्राह्य पश्चिमस्यादि अक्षरम् ॥

उत्तरान्तासनं योज्य पश्चिमस्यान्तिनं(मं) पुनः।
शून(न)यता सर्वधर्मानां(णां) पञ्चत्रिशतिमं पदम् ॥

द्वितीयकोष्ठकालग्नं द्वितृतीयाक्षरकं भुवि।
पञ्चमस्य त्रिकोष्ठेन सप्तमं नवमे द्विसप्तका ॥३५॥

उत्तरस्य तृतीयं तु पश्चिमा तृतीयं तथा।
तच्चतुर्थासनं दद्यान्मध्यमा प्रथमं तथा ॥

दक्षिणस्य प्रथमं तु वायौ द्वितीयबीजकम्।
सपरेशानकोणे च वायौ पुनर्द्वितीयकम् ॥

रेफयुक्तं स कुर्यात्तु कषाख्यमन्त्रमुद्धरेत् ।
दक्षिणस्यान्तिमं ग्राह्य पश्चिमायान्तिमं पुनः ॥

नैऋत्यां द्वितीयं बीजं प्रथमोत्तरमासनम् ।
पश्चिमस्य च तृतीयं तस्यैव चान्तस्याक्षरम् ॥

अग्नौ पवनं संग्राह्य मन्त्रस्य षट्त्रिंशमं पदम् ।
प्रथमे पञ्चमासनं नवमाक्रान्तं तृतीयकम् ॥

चतुर्थं च तृतीयेन नवमं च द्विकोष्ठकात् ।
त्रयोदशं तु तेनैव तिलकं ज्ञानवाहिनाम् ॥३६॥

ज्ञानाकाराक्षरमुद्धृत्य पश्चिमस्यान्तिमाक्षरम् ।
उत्तरस्यान्तिमं गृह्य पूर्वंद्वारासनं मतम् ॥

पश्चिमस्य प्रथमं तु ईशा च वारुणं पुनः ।
नैऋत्यद्वितीयाक्षरं रेफाक्रान्तं तु कारयेत् ॥

उत्तरप्रथमं बीजं दक्षिणस्यान्तिमं तथा ।
अग्नौ च पवनं गृह्य सप्तत्रिंशतिमं पदम् ॥

द्वितीयकोष्ठकाक्रान्तं प्रथमं द्वितीयाक्षरम् ।
तेनैव कोष्ठकाक्रान्तं षष्ठमं चाष्टमाक्षरम् ॥
ज्वालामृतयोगेषु मन्त्रं सर्वंजनोत्सवम् ॥३७॥

वायौ द्वितीयकं ग्राह्य रयुक्तवारुणेशकः ।
मध्यमाया प्रथमं तु रेफयुक्तोत्तरान्तिमम् ॥

तेनैव युक्तोत्तराद्यमीशानवारुणाक्षरम् ।
रयुक्तं पश्चिमाद्यं च तस्यैव चान्तिनं(मं) तथा ॥

अग्नौ च पवनं ग्राह्य.................................।
अष्टत्रिंशपदं मन्त्रं सर्वक्लेशप्रशाम्यकम् ।
द्वितीयकोष्ठलग्नं च अष्टमाक्षरकं विदुः ॥३८॥

उत्तरस्य तृतीयं तु पश्चिमस्य तृतीयकम् ।
तस्यैव चान्तिन(मं) गृह्य मध्यमाप्रथमं तथा ॥

राक्षसाग्निबीजं च अग्नौ पवनबीजकम् ।
एकादशेनाक्रान्तं च मन्त्रस्य प्रथमाक्षरम् ॥

द्वितीयकोष्ठके लग्नं पञ्चमाक्षरकं विदुः।
वासना सर्वचित्तात्मा वर्जना मन्त्रमाह्वयम् ॥
एकोनचत्वारिंशमं मन्त्रस्य च पदं विदुः ॥३९॥

वायुद्वितीयबीजं च रयुक्तं वारुणेशकम्।
सैव तु पुनरुद्धृत्य मध्यमा प्रथमाक्षरम् ॥

पार्थिवं वायुकोणस्य उत्तराद्यासनं पुनः।
उत्तरस्य चतुर्थं तु दक्षिणस्यान्तिमं तथा ॥

पूर्वंतृतीयकोष्ठाच्च तस्यैवासनं ददेत्।
दक्षिस्यान्तिणं(मं) ग्राह्य मध्यमा प्रथमं तथा ॥

राक्षसाग्निबीजकं हि अग्नौ च पवनाक्षरम्।
चत्वारिंशपदं मन्त्रं याहग्वाछा(ञ्छा)प्रपूरकम् ॥४०॥

तृतीयकोष्ठकलग्नं मन्त्रस्य तृतीयाक्षरम्।
एकादशेनाक्रान्तं च षष्ठमाक्षरकं विदुः ॥
दशमे द्वितीयकोष्ठाद्बिम्बार्थकरणं प्रभुम् ॥४१॥

उत्तरस्यान्तिमं ग्राह्य दक्षिणस्य तृतीयकम्।
ईशा च वरुणं ग्राह्य पार्थिवं वायुकोणतः।
पुनः सैव तु उद्धृत्य मध्यमायास्तृतीयकम् ॥

पश्चिमान्तिमासनं च अग्नौ च द्वितीयाक्षरम्।
नैऋत्ये अग्निबीजं च पुनः सैव तु उद्धरेत् ॥
अग्नौ च पवनं ग्राह्य एकचत्वारिंशपदम्।
पञ्चमकोष्ठासनं च प्रथमस्य पदं विदुः ॥

द्वितीयं द्विकोष्ठकाच्च चतुर्थं चतुर्थेन तु।
अष्टमं तु तेनैव नवमं द्वितीयकोष्ठकात् ॥४१॥

उत्तरस्य प्रथमं तु राक्षसरविनाथकम्।
मध्यमा प्रथमं गृह्य इन्दुद्वारासनं ततः ॥

पश्चिमाया प्रथमं तु अग्नौ पवनबीजकम्।
पश्चिमस्यादिमं ग्राह्य वज्रसत्त्वस्वारूढकम् ॥

उत्तरस्यान्तिमं ग्राह्य पश्चिमस्यादिमं पुनः।
रेफासनं तु तत्रैव पश्चिमस्यान्तितं(मं) तथा ॥

अग्नौ द्वितीयबीजं च पश्चिमस्यान्तिमं पुनः ।
अग्नौ च पवनं गृह्य द्वाचत्वारिंशमं पदम् ॥

पञ्चमैकादशाक्रान्तं सप्तमं तेनैव तु ।
नवकासनं द्विकोष्ठात्तु उक्तं मन्त्रं भगं महत् ॥४२॥

उत्तरस्यान्तिमं ग्राहृच सपरमीशकोणके ।
रविदैत्ये च कोणे च कषाख्यं स्वयमुद्धरेत् ॥

मध्यमा प्रथमं बीजं राक्षसवह्निपुत्रकम् ।
अग्नौ च पवनं ग्राहृच त्रयचत्वारिंशपदम् ॥

द्वितीयकोष्ठलग्नं च द्विचतुर्थषष्ठमम् ।
अक्षरेषु विजानीयाद्योगरक्षात्मनश्च वै ॥४३॥

पश्चिमस्य तृतीयं तु नैऋत्यद्वितीयं पुनः ।
दक्षिणाद्यासनं दद्यात् पश्चिमस्यान्तिनं तथा ॥

ईशा च वरुणं ग्राहृच पश्चिमा तृतीयं पुनः ।
पार्थिवं वायुकोणे च पश्चिमस्य चतुर्थकम् ॥

अग्नौ च पवनं गृहृच मध्यमा प्रथमाक्षरम् ।
वह्निपुत्रं च नैऋत्यामग्नौ च पवनं पुनः ॥

नवमकोष्ठकाक्रान्तं मन्त्रस्य द्वितीयाक्षरम् ।
द्वितीयकोष्ठकाल्लग्नं षष्ठमाक्षरकं पुनः ॥
सर्वधर्मालयं मन्त्रं पञ्चचत्वारिंशपदम् ॥४४॥

मध्यमा प्रथमं गृहृच रविनासनदीपितम् ।
पश्चिमस्य चतुर्थं तु वायौ च द्वितीयाक्षरम् ॥

उत्तरद्वितीयासनं ग्राह्य ततोऽग्निबीजकम् ।
पूर्वैव पुनः संगृह्य दक्षिणस्यान्तिमं तथा ॥
वायुबीजं तदन्ते च षट्चत्वारिंशमं पदम् ॥४५॥

नवमकोष्ठकाक्रान्तं प्रथमाक्षरशोभितम् ।
तृतीयं पञ्चमं सप्तं लग्नं द्वितीयकोष्ठकैः ॥४६॥

तृतीयकोष्ठकमुद्धृत्य पश्चिमायास्तृतीयकम् ।
रवि आसनयुक्तं च पूर्विकायास्तृतीयकम् ॥

पार्थिवं वायुकोणे च ततश्च द्वितीयाक्षरम्।
रेफयुक्तं च वारुणं वायौ च द्वितीयाक्षरम्॥

पश्चिमस्य त्रिकोष्ठं च ईशा च वरुणासनम्।
पश्चिमस्य प्रथमं च आसनं चोत्तरान्तिमम्॥

पश्चिमस्यान्तिनं ग्राह्य सप्तचत्वारिंशपदम्।
एकादशेनाक्रान्तं च प्रथमं शोभनं परम्॥

द्वितीयेन तृतीयं च अष्टमं तु तेनैव।
दशमं सप्तं तेनैव मन्त्रं सर्वसमं भुवि॥४७॥

मध्यमस्य तृतीयं तु रेफयुक्तं तु कारयेत्।
वायौ च द्वितीयं बीजं पश्चिमाद्याक्षनं ततः॥

ईशानवारुणं गृह्य पश्चिमस्य तृतीयकम्।
उत्तरप्रथमं गृह्य रविनासनं दापयेत्॥

ईशा च वारुणं ग्राह्य पश्चिमस्य तृतीयकम्।
उत्तरस्यान्तिमं गृह्य सपरमीशकोणके॥

उत्तरस्यान्तिमं ग्राह्य पश्चिमा प्रथमाक्षरम्।
द्वितीयकोष्ठलग्नं च द्वितीयाक्षरमन्त्रकम्॥

तेनैव षष्ठमं लग्नं नवमं तेनैव तु।
एकादशं सप्तमलग्नं प्रज्ञापारमिता स्वयम्॥

अष्टचत्वारिंशपदं मन्त्रं वीरेण भाषितम्।
वित्रस्ता देवनागाद्याः सर्वभूता वनौकसः॥

इदं मन्त्रस्य सामर्थ्यं न भूतो न भविष्यति।
बुद्धबोधिसत्त्वाद्यानुभाषणा मन्त्रनागरा॥

सन्तुष्टाः सिद्धिं दास्यन्ति लक्षजापमहात्मना।
ॐकाराद्याः सर्वे मन्त्रा हूँ हूँ फट्फट्कारां तथा॥

योजिताश्च पदानां तु ह्रस्वदीर्घोच्चारणात्।
देवता लोकपालाश्च यक्षेन्द्राश्चक्रवर्तिनः॥

चतुर्योनिजसत्त्वाश्च मञ्जुवज्रादिनायकाः।
सिद्धयन्ति जापमात्रेण पठितसिद्धाश्च मन्त्रिणः॥
सञ्चारकालतो ज्ञेया योगिनीनां कुलक्रमात्॥

पदमेकं च एकं च अक्षरस्याद्यन्तं क्रमात्।
सर्वविघ्नविनाशार्थमयुतमेकं च जापयेत् ।!

ॐ अ क आ ख इ ग ई घ उ ङ ऊ च ऋ छ ॠ ज लृ झ लॄ ञ ए ट ऐ ठ ओ ड औ ढ अं ण अः त अः थ अं द औ ध ओ न ऐ प ए फ लॄ ब लृ भ ॠ म ऋ य ऊ र उ ल ई व इ श आ ष अं स ॐ ह् अं क्ष हः ॥

क का ख खा ग गा घ घा ङ ङा च चा छ छा ज जा झ झा ञ ञा ट टा ठ ठा ड डा ढ ढा ण णा त ता थ था द दा ध धा न ना प पा फ फा ब बा भ भा म मा य या र रा ल ला व वा श शा ष षा स सा ह् हा क्ष क्षा ॥ ० ॥

क्ष क्षां ह् हां स सां ष षां श शां व वां ल लां र रां य यां म मां भ भां ब बां फ फां प पां न नां ध धां द दां थ थां त तां ण णां ढ ढां ड डां ठ ठां ट टां ञ ञां झ झां ज जां छ छां च चां ङ ङां घ घां ग गां ख खां क कां ॥

क च ख छ ग ज घ झ ङ ञ क ट ख ठ ग ड घ ढ ङ ण क त ख थ ग द घ ध ङ न क प ख फ ग ब घ भ ङ म य व ल श ष स ह् क्ष अः अः क ह् २ क स २ क ष २ क श २ क व २ क ल २ क र २ क य २ क म २ क भ २ क ब २ क फ २ क प २ क न २ क ध २ क द २ क थ २ क त २ क ण २ क ढ २ क ड २ क ठ २ क ट २ क ञ २ क झ २ क ज २ क छ २ क च २ क ङ २ क घ २ क ग २ क ख २ कु हु २ कु सु २ कु षु २ कु शु २ कु वु २ कु लु २ कु रु २ कु यु २ कु मु २ कु भु २ कु बु २ कु फु २ कु पु २ कु नु २ कु धु २ कु दु २ कु थु २ कु तु २ कु णु २ कु ढु २ कु डु २ कु ठु २ कु टु २ कु ञु २ कु झु २ कु जु २ कु छु २ कु चु २ कु ङु २ कु घु २ कु गु २ कु खु २ बन्धय २ बन्धापय २ गर्ज्ज २ गर्ज्जय २ सोशय २ तर्ज्जय २ स्फोटय २ विद्वेषय २ मोहय २ त्रासय २ मारय २ कम्पावय २ दुरु २ खुर २ भर २ जर २ विष २ हूँ २ दह २ पच २ भञ्ज २ मर्द्दय २ ह्लीं २ ह्लैं २ चल २ मचल २ क्रूरचेताय फट्। शत्रून्निवारय हूँ मेघ निवारय ह्लीं मोचय २ स्तम्भय २ भक्ष २ दर्पय २ गूढान्तमालावलम्बिने खेचराय हूँ भूचराय आः पातालचराय ॐ जलचराय वं स्थल-चराय लँ पर्वनिवासिने हूँ नागानां सप्तपातालगत गृह्ण २ज्ञँ २ ज्ञाँ २ ज्यँ २ ज्याँ २ कर २ कुरु २ खर २ ख(खु)रु २ गर २ गुरु २ घर २ घुरु २ ङर २ ङुरु २ चर २ चुरु २ छर २ छुरु २ जर २ जुरु २ झर २ झुरु २ ञर २ ञुरु २ टर २ टुरु २ ठर २ ठुरु २ डर २ डुरु २ ढर २ ढुरु २ णर २ णुरु २ तर २ तुरु २ थर २ थुरु २ दर २ दुरु २ धर २ धुरु २ नर २ नुरु २

पर २ पुरु २ फल २ फुलु २ बर २ बुरु २ भर २ मुरु २ मर २ मुरु २ यर २ युरु २ रर २ रुरु २ लर २ लुरु २ वर २ वुरु २ शर २ शुरु २ षर २ षुरु २ सर २ सुरु २ हर २ हुरु २ क्षर २ क्षुरु २ हँ हाँ हिँ हीँ हुँ हूँ हेँ हैँ होँ हौँ हँ हँः गर्ज्जं २ जाति २ सहजातिदेवानां दोमय २ सर्वशरीराय हूँ जय २ हूँ विजय २ हूँ सर २ हूँ विसर २ हूँ अग्नये हूँ वरुणे(णाय) हूँ अनलाय हूँ धराय (यै) हूँ आकाशाय हूँ सर्वरोगहरणाय हूँ विषभक्षणाय हूँ यन्त्रवाहनाय हूँ कालाग्नये हूँ देवाय हूँ यमाय हूँ कुबेराय हूँ दैत्याय हूँ इन्द्राय हूँ भूताय हूँ सर्वसत्त्वाय हूँ धर्मचक्राय हूँ धर्मधातवे हूँ मुखाय हूँ नेत्राय हूँ कपालमालिने हूँ भुजाय हूँ अस्त्राय हूँ चरणाय हूँ जटामकुटाय हूँ मस २ गस २ रस २ भर २ मट २ डट २ खट २ मुञ्च २ घोरान्धकारप्रियाय हिँ २ घुट २ रम २ परमार्थरूपिणे शान्तिकराय पुष्टिवर्द्धनाय लोकपालरूपिणे सर्वशरीररूपाय वृक्षगुल्मलताय सहस्ररूपिणे सर्ववस्तवे मारणाय मारणरूपाय भक्षाय भक्षणरूपाय निरुपमाय निरुपमसुखाय हस २ विहस २ नृत्य २ नृत्यापय २ द्वेन्द्रिययोगाय निस्वभावमहात्मने सहस्रधारानिवारणाय नानाभिचारछेदने चुम्ब २ फुलु २ चुलु हूँ ह हूँ हा हूँ हि हूँ ही हूँ हु हूँ हू हूँ हे हूँ है हूँ हो हूँ हौ हूँ हं हूँ हः हूँ २ ह्रोँ २ च्चं २ क्रोँः हिँ हीँ हुँ हूँ हेँ हैँ होँ हौँ हँ हाँ हँ हाँ कुच २ दक २ मट २ रठ २ दठ २ जट २ मद २ हूँ १६ फट् ७ स्वाहा ॥ महामूलमन्त्रेति[1] ॥

गोपनीयं गोपनीयं गोपनीयं प्रयत्नतः ॥

शुभम् ।

उकारामोघमाख्यातं बुद्धडाकादिकं तथा ।
द्वौ फट्कारौ स्वाहान्तं च सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥

वाराही डाकिनीभ्यां च सार्द्धं चतुर्बीजेन हि ।
तदन्ते पूर्ववत् प्रोक्तं देवि तन्मूलमन्त्रकम् ॥

अन्यमन्त्रं न मे नास्ति महामन्त्रमिदं तव ।
परमार्थप्रदं ज्ञेयं संसारसागरान्तकम् ॥

समं हि तेन मन्त्रेण त्रैलोक्ये नहि विद्यते ।
निर्वाणपददं मन्त्रं प्रतियुगे त्रिधातुके ॥

---

१. इतः परम्—"इति वसन्ततिलके महामूलमन्त्रभावाख्याननिर्देशः सप्तमपटलः" इति पुष्पिकावाक्यं दृश्यते। स चानावश्यक इति कृत्वा मूले न स्थापितः ।

महासुखप्रदं मन्त्रं मन्त्रराजेश्वरं विभुम् ।
योग्यं दश पुष्पिताय पृथग्जनाय वै नहि ॥

विन्यस्य सप्तत्रिंशाङ्गे सप्तत्रिंशवीरेश्वरः ।
चित्रकर्म फलप्रदस्तथैव वीरेश्वरी ॥

अष्टचत्वारिंशमूलं तथैव हि फलप्रदम् ।
न देयं पृथग्जनेभ्यो गोपनीयं प्रयत्नतः ॥

महामन्त्रप्रभावेन(ण) त्रिरत्नत्वं भवेद् ध्रुवम् ।
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यं सर्वदैव भवेद् ध्रुवम् ॥

ॐ श्री ह्री क्ली वज्र हे हे रु रु क क महासंवर डाकिनीजालसंवर हूँ हूँ फट् फट् स्वाहा । एवं सर्वत्र मन्त्रे भावयेत् ॥

इति वसन्ततिलके महामूलमन्त्रभावाख्याननिर्देशः सप्तमपटलः ॥ ७ ॥

[1]एकादशः पटलः

अतः परं प्रवक्ष्यामि देशं साधनाय वै ।
रहस्ये परमे रम्ये सर्वत्र... यालये ॥

विविक्ते भुवने चापि स्वोद्यानेषु वा साधयेत् ।
सर्वत्र विश्वसुभगः सर्वतो विश्वसंवरैः ॥

सर्वतो विश्वकार्याणि साधयेद्यथासुखम् ।
विहारारण्यायतने गिरिमूर्धसु सर्वतः ॥

साधयेद् बुद्धकार्याणि विचित्रविविधानि च ।
श्मशाने देवतायतने मातृस्थानादिसंस्थितः ॥

श्रीवज्रधरकार्याणि सिद्धयन्ति विविधानि च ।
पद्मोद्यानेषु रम्येषु सरित्सङ्गमनेषु च ॥

श्रीपद्मधरकार्याणि सिद्धयन्ति परमार्थतः ।
राजधानीषु रम्येषु राजोद्यानेषु चैव हि ॥

---

१. अयं पटलो ज. मातृकायामेव वर्तते, नान्यत्र ।

साधयेद् राजकार्याणि विचित्रविविधानि च।
सि(शि)रेषु विचित्रेषु नदीनीलेषु चैव हि॥

परराष्ट्रेषु सिद्धेषु साधयेद् वज्रवाजिनः।
बुद्धानां पद्मरक्तं तु विचित्रं वज्रपाणिनम्॥

शुक्लवर्णं तु लोकेशे पीतं श्रीवज्रभास्करे।
सर्ववर्णं यथा बाह्यावितानध्वजभूषणम्॥

प्रसाधनं हि सर्वं श्रीपरमाश्वस्य वज्रिणः।

इति वसन्ततिलके सर्वसाधनालयाख्यान एकादशपटलः॥



[1]परिशिष्टम्-४

वसन्ततिलकम्

दशबलाचार्यकृतम्

ॐ आः हूँ सद्गुरुचरणारविन्देभ्यो नमः।

वन्दे श्री वज्रसत्त्वं भुवनवरगुरुं सर्वबुद्धेड्ग्रिवन्तं
नानारूपेण येन तिमिरभयहरं निर्मितं मेरुसंस्थम्।
धर्माधानं मुनीनां जिनगुणं समग्रमण्डलं वज्रधातु
सर्वानन्दैकरूपं परमशिवमयं देहिना(नां) मोक्षहेतोः॥

स किं श्रीहेरुक नैरात्मालिङ्गितः समो भवति निश्चितः विषम किन्तु जव भवति भुजं किं चतुर्भुजं किं कुर्यात् भुजाभ्यां वज्रवज्रघण्टालिङ्गितं श्रीहेरुकीभुजद्वयः हस्तिचर्माम्बरधरां श्रीनोनात्रोत्पादिता नैरात्माहशि(सि)तवदनां लिङ्गानुरागिडमरुखट्वाङ्गधारिणीं महासुखसप्तत्रिंशन्महाबोधिपक्षधर्मस्वभावस्थितं किं स्थितः स्वाङ्गनाडि चक्र कथं चतुपत्रमुख्यं स पञ्चस्वरद्वाप(द)शमात्रा चतुस्त्रिंशदाभूषितव्यञ्जनं कायवाक्चित्तचक्रे भेदस्थितानां किं भेदस्थिताः? कथं भूतं चतुरानन्दस्वरूपे नाडिचक्रे भेदस्थिताः। पीठादिकानां दशानां भूमीश्वरम्। किं भूमीश्वरम्? महाशान्तरूपम्। किं रूपम्? व्योमरूपम्। किं कुर्य्यात् सर्वाङ्गं सर्वजन्तुं स्वदेहात्मयोगं कुर्वन्ति श्रीहेरुकं परमनिर्वृतिपदं प्रोद्यद्वसन्ततिलकां किं वसन्त, नाडिरूपं शुष्मारजोपमशूलोपमा श्रीत्वरितं लघुनाडिसहमागतो हृदयस्थानो स्फरनोज्वराभः किं स्वदेहाभै संभोगचक्रे परमानन्दस्वरूपेनोज्वलाभः परमानन्दस्य भुजा किं षोडश भुजा भवति। महाकाद्यालिङ्गानूराङ्गिनीं कायत्रयं प्रसरसंचितः। नाडिचक्र नाडचं प्रणववेगेन जगतः किं संभोगचक्रेण कुर्यात्? स्वपरार्थसौख्यम्। तस्मै चक्रे प्रभेदं ऊर्ध्वं अर्द्धगामि सबाह्याध्यात्मरूपेन योगपीठविनिर्गताः। किं कथं भूतम्? अध्यात्मरूपेण श्रीचक्रसम्वरक्रमात्। श्री वज्रडाकिनी सिद्धा स्वदेहे संस्थिता चक्रसम्वरस्य भूत कथं द्वादशभुजा तथा। द्वादशाधारपरिपूरिता भवतः। तस्मात् निर्माणचक्रे सहजानन्दस्वरूपं विरमाख्यातं भव किं विरमानन्दभूतं सुखचक्रे भुजा कथं अष्टादशभुजा ख्यातं श्रीडाकिनी सिद्धा भव रागभयानकस्वरूपां भवति सुखचक्रेण पवणवेगेण ऊर्ध्वं

१. श्रीकृष्णपादाचार्यकृताद् ग्रन्थाद्भिन्नमेतत्। प्रतिनिर्देशं विषयैक्येऽप्यस्मिन् ततो मध्ये मध्ये विच्छिद्य श्लोकांशा गृहीताः, क्वचित्स्वीयाः सन्निवेशिताः, क्वचिच्च पदानां व्याख्यानं कृतम्। प्रतीयते यत् शिष्यावबोधाय तस्यैव ग्रन्थस्य संक्षेपोऽत्र कृतो दशबलाचार्येणेति।

अर्द्धंगता भवति निर्माणचक्रे। अतिस्वल्परुचिणां तु स्पष्टा वक्ष्येमहेतुना। किं हेतुना? अनिल अनल हेतुनां भवति कृति कथं भूतं वज्र कृत्ति मण्डलोक्तोल(प)माख्यातम्। कृतिमं होम कर्मं च कृतिमां भ(ा)वनां चापि कृत्तिमं जपमेव च। शब्दं कुर्य्यात् किं शब्दं यथापारार्थिभिः कश्चित्कोलो वा सुप्रयुज्यते। ऊर्द्धंगामि अधगामि सप्तत्रिंशदूर्द्धं ज्वलाः। एवं श्रीहेरुके क्रिया कारकं भवति तस्तोशब्दे ज्ञानायते शास्त्रमृषिभिः क्रियते यथा। निर्विकल्पान्नु बुद्धं विकल्पा च नो तथा संवलकथं भूतं सुविसुद्धज्ञानं भवेत्। सुविसुद्धस्वभावेन किं कुर्य्यात्। व्यवहारः सदालोकेच्छति सविनय स्वरूपेन 'ऊर्द्धाश्चतुर्लौकिके। किं लौकिके स्वभावमागमाश्रित्य सर्वं कुर्वन् विमुच्यते। कुत्र मुच्यते।

वसन्ततिलके विधिक्रियाग्राह्यग्राहकभावमार्गे लिङ्गेन पूर्वचतुरानन्द-

स्वरूपाख्याननिर्देशः प्रथमः ॥ १ ॥

अथातः सम्वक्ष देहस्य यथा स्वदेवता रूपं भवति।
रूपं वैरोचनं बुद्धो वज्रसूर्यं तु वेदना ॥

पद्मनर्तेश्वरः संज्ञा संस्कारो वज्रराटकः।
विज्ञानं वज्रसत्त्वस्तु सर्वरूपं तु हेरुकः ॥

नेत्रं लोचनाख्यातं मामकी श्रुति तथा।
पाण्डला घ्राणं चैव तारा मुख स्मृतम् ॥

वज्रधातेश्वरी कायं पञ्चैते स्थूलदेवताः।
सर्वयन्त्रेण धातुस्तु हेरुकः परमेश्वरः ॥

पातणि पृथिवी धातु आपस्तु मारिणी स्मृता।
आकर्षणाग्निधातुस्तु वायुनर्तेश्वरी मता ॥

आकाशधातुरुक्ता च पद्मज्वालिन्यनाकुला।

अष्टपत्रान्धिता तथा अष्टपत्रे किं गौरी चौरि वेतालि धस्मरि पुष्कसि तथा सवरी चण्डारी ढ्वंबीनी तथा। अष्टतौ तथाख्याता किं श्रीनैरात्माख्यातम्। उत्पत्तिभङ्गमाश्रित्य भवनिर्वाण स्वते।

इति वसन्ततिलके कायस्थितावैरोचनादिदेवतायोगिनो-

रूपाख्याननिर्देशो द्वितीयः ॥ २ ॥

---

१. ऊर्ध्वं-ख.।

अथातः संप्रवक्ष्यामि कायवाक्चित्तता वज्रपञ्जलादि अवधूतस्वरूपाख्यानम् ।

एकः श्रीहेरुको वीर स्फरं पञ्चाभिदेवताः ।
आत्म(ग्ने)ये चैव वायव्ये माहेन्द्रे वारुणे तथा ॥

चक्रे चक्रस्य संचारो दूर्ध्वपार्श्वज्वंलद्धंस्थितम् ।
प्रधान श्रीहेरुकं चैव अर्द्धं अर्द्धंप्रकीर्तितम् ॥

अस्या द्वारेण श्रीहेरुकमूर्ध्वंद्वारेण धातवः ।
वैरोचनादयो बुद्धा अधस्तु विसर्जनम् ॥

आवाहनादिरूपेण गत्यागतिप्रवर्तने ।
त्रैयध्विकास्तु वै बुद्धा डाकिन्यो योगमातरः ॥

किं योगमातरा श्रीहेरुकेन सिद्धा सहजरूपतः ।

इति वसन्ततिलके यन्त्रात्मकस्वरूपद्वारभेदाख्याननिर्देशस्तृतीयः ॥

अथातः सप्रवक्ष्यामि दशपीठादिभूमी भवति भगवान् दशभूमीश्वरः । ओड्यान-पीठगता विश्रान्त किं विश्रान्तः लला[ट]स्थानमारम्य हूँकारचक्रनिर्णयः । किं चक्र महासुखचक्रे बोधिचित्तानि द्वात्रिंशद्द्रव्यग्रहारिन ।

स्मृताः पीठादिरूपेण सबाह्याभ्यन्तरस्थिताः ।
खेचर्योऽष्टौ तु योगिन्यो भूचर्योऽपि तथापराः ॥
याश्च पातालवासिन्यः सर्वास्तास्तासु संस्थिताः ।

किमूर्द्धेण स्थिता कायवाक्चित्तचक्रेषु स्थानान्तरप्रभेदतः । किं प्रभेदतः चतुर्विंशतिप्रभेदतः । पीठादि दश नाड्यः । किं दश नाड्यः । स्थान यथा स्वरूपेन भिद्यते । किं भिद्यते सहजस्थिताः । किं स्थिता वज्रकमल स्थिताः । किं स्थिता भिद्यते सहजस्थिताः ।

एता एव समाख्याता मुदिताद्यास्तु भूमयः ।

मुदिताभूमिस्तु आलयो बोधिसत्त्वानाम् । किं बोधिसत्त्वानाम् आलय इन्द्रियादि-स्वरूपिनाम् आलयः । सर्वबुद्धानां स्कन्धादीनां विशेषतः ।

किं बुद्धानां बोधिसत्त्वानां बुद्धत्वं वाहिका पराः । परार्थं किं कथंभूतं परार्थं द्वात्रिंशद्बोधिचित्तानां किं यदा नान्ति पूर्णितां किं पूर्णितां बुद्धानां सह आगत बुद्धत्वं निकटं भवेत् । किं निकटम् ? अन्यत्र कुत्रचित् कुत्र कथं स्वदेहे चैव बुद्धत्वं स्थितम् । किं स्थितं बुद्धज्ञानामृतं मतः । किं मतः ?

पीठं चैवोपपीठं च क्षेत्रमे तथा।
छदोहस्तथा चान्यदुपछन्दोह इत्यपि॥
मेलापकस्तु चैवमुपमेलापकस्तथा।
श्मशानं चोपश्मशानं पीठादि दशभूमयः॥

इति वसन्ततिलकां नवश्रोतोभगमध्यगतः। किं गतः? सर्वनाडिसमागतः। कुत्रमागतः?

भूमिस्वरूपाख्याननिर्देशश्चतुर्थः॥ ४॥

अथातः संवक्ष्ये भगमध्यगत नाडिस्वरूपम्। किंस्वरूपः रजःसत्त्वतमोस्वरूपः। किं कोऽर्थं किं त्रिकायाभ्यन्तरेन भेदयित्वा किं भेदयुत्वा सह।

शिरो मलय देशश्च शिखा जालन्धरस्तथा।

चक्रनाडिकायानुस्मृतिः तत्स्थानं पञ्चनाडिवेदनानुस्मृतिस्थानं नाडिपञ्चमि धर्मानुस्मृतिस्थानं चित्तानुस्मृतिस्थानं दशनाडि तथा। मूलेन सह द्वादशाधार तथा एवं भवति किं भवत चतुर्विंशतिपीठप्रभेदतः। एताः स्वदेहजाः स्वदेह किं त्रिकोनं सर्वा भिद्यते स्थानेषु भेदतः। किं स्थाने भेदतः? वज्रेन स्थाने भेदतः। किं सर्वा स्थाने भिद्यते किं कुर्यात्।

सबाह्याभ्यन्तरस्था तु बुद्धानां दशभूमयः।

भूमयः किम्?

स्थानानि सर्वनाडीनां समाख्यातानि सर्वतः।
एषु स्थानेषु डाकिन्यो नाडिरूपेन स्थिताः॥

इति वसन्ततिलके पीठादिदशभूमिभेदाभेदेननिर्देशः पञ्चमः॥ ५॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि नाडिचक्रं सूचयामि। हृन्मध्यगतं पद्मम् अष्टपत्रं सकर्णिकम् किं कुर्यात्। तस्य मध्यगता नाडि ज्वलवह्निस्वरूपका। किं स्वरूपका। कडरीपुष्पसंकाशा लम्बमाना त्वधोमुखी। तस्य मध्यस्थितो वीरः सर्षपस्थूलमात्रकः। किं कुर्यात्। श्री हेरुकेन हुँकारोऽनाहतम्। किं अनाहतम् तुषारसंनिभम्। कुत्र आख्यातं वसन्तेति। देहिनां हृदिनन्दनः किं वाराहिस्तिलका। कर्ममारुतनिर्धूता ज्वलन्ती नाभिमण्डले। किं वसन्तं प्राप्य सन्तुष्टा समापत्या व्यवस्थिता। एक श्रीहेरुको वीरो वसन्ततिलका स्मृता। कथं भूतम्? त्रिलोक्यं सचराचरम्। किं त्रिलोक्य सचराचलं वाराहि कथं प्रभानवाराहीम्। एकास्या रक्तवर्णा मुक्तकेशा त्रिनेत्रा नग्ना सवानुसुष्सर्वरसान्वितम्। प्रेतारूढा समाख्याताः कर्तिपात्रधरा तथा तस्मै वाराहिं वसन्ततिलका स्मृता। कायवाक्चित्तभेदेन त्रिविधा द्वारनिर्गमैः। गत्यागती

करोत्येषु सर्वदेहिस्थिताः । किं देहिस्थिता । श्रीहेरुकेहिति देहिस्थिता । किं स्थिता । झटितीत्रिमात्रप्लुतः एक श्री हेरूकेति । चतुर्योगिपरायनः । योगि कथं भूतं हुंजातं वेदवक्तं कञ्चनघननिभं श्यामरक्तं सुपीतं जटामकुटवज्र-विश्वान्धिता सुष्कमुद्राविभूषिता । मूलकलद्वयां वज्रघण्टाधरं ऊर्ध्वे वै हस्तिचर्मडमरु-वरकृतं कर्तिपाशत्रिशूलं खट्वाङ्गे पात्रे पाशं भ्रूहिनरशिरधरं मुण्डमालाविभूषं आलिढाक्रान्तमानं शिरसि कुचजुक्षुगें भैरवं कालिरात्रिः । षन्मुद्रागोपसोभं नवरस-रसिकं द्वीपिचर्माविरान्वितं प्रज्ञोपायेकरूपं दशरविकिरणं तस्मै हेरुकं सम्वर श्रीः ॥ तस्मै श्रीहेरुको वीरो नाडबिन्दु अनाहत । किं अनाहतम् । पृथिव्यादि महाभूतं तथा । चतुरानन्दरूपं तु चतुयोगपरायनः । किं योगपरायणः । डाकिनीस्तु तथा लामा खण्डरोहा तु रूपिणी । ये क्रियाकारकपरमानन्दरूपेण भवति । श्रीवज्रसत्त्वरूपेण क्रीडतीह यथासुखम् । किं क्रीडन्ति । दलाणां चतुष्टये चापि च दिक्षु व्यवस्थिताः । किं कुर्यात् पञ्चामृतवहास्तास्तु तत्पूजारूपतां गताः । तत्र श्रीहेरुकेति कायवाक्चित्त-चक्रे तु चतुर्विशति उदाहृताः । पीठादिभेदानाश्रित्य स्थाने व्यवस्थिता । शिरसस्तु समुद्गता नाड्यः शिरजाः स्मृताः । रजसत्त्वतमोरूपास्तासां मध्ये तु नायिका । पूः पुल्लीरे तु प्रचण्डा प्रचण्डा किनकाश्या स्वेतवक्त्रा भैरव नगण मुख षड्भुजा कर्तिकपारडमरुखट्वाङ्ग तथा पाशाङ्कुशमेव च । शृङ्गारद्य् द्वि)पिचर्मवरधरा महारसधरा कामालिगणां तथात्परा ॥ १ ॥

जारन्धरे तु चण्डाक्षिः । एकानना दिगम्बरा त्रिनेत्रा मेघवदना मुण्डमालावृता तथा । षड्भुजा सौम्यरूपा खट्वाङ्गडमरुस्तथा । वज्रघण्टाकर्तिकपालमेव च ॥ हाराद्धंहारनूपुरान्वितभिषणजटाजुटसुसंयुक्ता लल्लजिह्वा भयानका ॥ २ ॥

ओडियाने प्रभामती एकवक्त्रा त्रिनेत्रका सव्यकर्तिकपाल च खट्वाङ्ग डमरुस्तथा । अङ्कुशे पाशहस्तं तः रुद्रमालाविभूषणा । जटाजूटसमायुक्तं हारनोपुर-विभूषिता ॥ ३ ॥

अर्बुदस्तु पसितासिन्यारक्तवक्त्रा दिगम्बरा वज्रघण्टाधरं वीरं खट्वाङ्ग-डमरुस्तथा । कर्तिकपालश्रृंगाला क्रीडतीह यथासुखम् ॥ ४ ॥

अनहास्तु वीरमती ख्याता एकवक्त्रा षड्भुजा पीतवर्णा जटा तथा । घण्टा वज्राङ्कुशपाशा खट्वाङ्ग डमरु तथा । षण्मुद्राधरा देव्यालिङ्गितस्तथा ॥ ५ ॥

रामेश्वरे तु या खर्वरी देव्यालिङ्गणचुम्बका एकवक्त्रा श्यामवदना नेत्र-त्रयविभूषिता । षड्भुजालिङ्गणकरा खट्वाङ्गपर्शूडमरुपात्र तथा षण्मुद्रा भवनिल-समप्रभाः ॥ ६ ॥

देवीकोते तु या देव्या लङ्केश्वरीस्तथा एकवक्त्रा स्वेतवक्त्रा स्वेतवदना भुजाषट्-विभूषिता वज्रघण्टा त्रिशूरादि डमरुखट्वाङ्गखत्परास्तथा नानासुखधरालिङ्गा अनुरागानिरागिनी ॥ ७ ॥

मालवे द्रुमछाया रक्तवर्णा त्रिनेत्रा षड्भुजा समालिङ्ग खट्वाङ्गं डमरुस्तथा। वज्रघण्टाङ्कुशा चक्रं षण्मुद्राविभूषिता शब्दक्रिया रसानोये महारौद्रा तु ह्रासिता ॥ ८ ॥

कामरूपे तनकक्षौ ऐरावती तथा। एकवक्त्रा श्यामवदना भुजा षण्मेव च तथा। वज्रखट्वाङ्गडमरुघण्टाकर्तिमुण्डरान्धिता। जटाजूटसमाक्रान्तलघूरस-समन्विता ॥ ९ ॥

ओड्रे तनयुगले श्रीभैरवी स्मृता। एकवर्णा नीलाङ्गी भुजाद्वादशस्तथा। वज्र-घण्टा हस्तिचर्मा कर्तिकपालमुण्डजाः। त्रिशूलखट्वाङ्गडमरु-अङ्कशपाशचक्रअसि तथा। नाना सुख्येति वीलस्यां रक्ताङ्गी शुभकारिता ॥१०॥

त्रिशकुनौ वायुवेगा श्यामाभालिङ्गीतिस्तथा भुजारविकराख्याता वज्रपाश-मुण्डधारिखट्वाङ्गं डमरुद्वीपिचर्माङ्कशास्तथा। त्रिशूलकबधमेव च त्रिवक्त्रौ रक्त-स्यामाकृ[ष्णा]ङ्गिसुखशुडिस्तथा ॥११॥

कोसरे ना[सि]काग्रे च भुजाद्वादशा[न्वि]ता वज्रघण्टा नरचर्मा खट्वाङ्ग डमरु-कस्तथा। [1]वज्रत्रिशूराकुशमेव च पाशब्रह्ममुण्डधराकरा विविधाभूषणां चैव कृष्ण-वर्णास्तु ह्रासिताः ॥१२॥

वदने श्यामादेव्या लिङ्गिता भुजाद्वादशाख्याता वज्रवज्रलिङ्गणा खट्वाङ्गोत्पर त्रिशूरं च कर्तिकपालमेव च। हस्तिचर्म खट्वाङ्गडमरुकस्तथा घण्टा श्याम कृष्णा-र्द्धे चैव पञ्चमुद्राधरदेहा चुम्बिताक्रान्तमेव च ॥१३॥

लम्पाके सुभद्राङ्गा वेतवक्त्रा धरास्तथा भुजाप्रभाकरालिङ्गि वज्रघण्टा. च मुण्ड खट्वाङ्गाङ्कुशा दन्तिचर्मद्विहस्ताभ्यां योनिमुद्रा तथा परा त्रिशूलं कर्तिपात्र-मेव च क्रीडति श्रृङ्गारा धवलदेहस्तथा ॥१४॥

हृदये हयकर्णा एकवक्त्रा दिवाकरा वर्णकुङ्कुमारुणं भुजाष्टादशास्तथा। दक्षिणवज्रपर्शुदन्त त्रिशूरकर्ति चक्रासि श्रृङ्खलांकुशास्तुथा वामे घण्टपाश-खट्वाङ्गपात्र ब्रह्ममुण्डोत्परध्वज छत्रपर्वतं स्थिता। महाप्रज्ञालिङ्गता काद्या-लिङ्गानुरागिनी ॥१५॥

---

१. ध्वज-ख.।

हिमालये खगानना वेदवक्त्राष्टादशभुजास्तथा मुरमुखकृष्णं श्यामपीतरक्तमेव च दक्षिणहस्तां वज्रविश्व वज्रखड्गचक्राङ्कुशदन्तशरकुर्कतिहस्तिचर्मा द्विहस्ता वामे-घण्टपात्र अभय कमण्डरु ब्रह्ममुण्डपाशपर्शुखट्वाङ्गा षण्मुद्राधरान्वितरवान्वित-भीषणा ॥१६॥

प्रेताधिस्थिताये च चक्रवेगिनी । कृष्णवर्णा चतुवक्तक्त्रा स्वेतश्याम-रक्तमेव च । द्विहस्तां हस्तिचर्मां द्विहस्ताभ्यां तु सर्वराजेन्द्रमुद्रास्तथा दक्षिणवज्रा-ङ्कुशकर्तिडमरुत्रिशूलोत्परशिषराः । वामे घण्टपाशपात्रकबन्धध्वजछत्रकुलिशाः । नानोत्साहकलक्रान्ती क्रीडति शिखरारुणा ॥१७॥

गृहेदेवती गुडस्थाने अष्टादशभुजस्तथा पञ्चवक्त्रा रौद्ररूपा नीलपीतरक्तकुंकुम-श्यामस्तथा षण्मुद्राभरणोज्वला । हस्तिचर्मद्विहस्तांधेनुमुद्रा तथा परा [1]वज्राशिकुण्ड-त्रिशुरं कर्तिडमरुवरधरास्तथा दक्षिणे वामेखट्वांगघण्टपाशपात्रकंचु पर्शुमेव च पर्वतौ तथा । घनपितिकरा देवी श्रृंगाराभरणोज्वला ॥ १८॥

सौराष्ट्रे सौडिनी ख्यातानग्नकूपरोमगास्तथा । खट्वाङ्गं षड्वक्त्रा मुण्डा-लिङ्गितिस्तथा । स्यामकृष्णरक्तस्वेतपीतमांस्थामेव च । पुष्पमालाधरादेहा मुण्डमाला [2]प्रलम्बिता । नरचर्मद्विहस्ताभ्यां योनिमुद्रास्तथात्परा । दक्षिणवज्रपर्शुडमरू कर्ति अंकुशा चक्र दण्डस्तथा वामे घण्टपाशखट्वाङ्गपात्रमुण्डध्वजछत्रमेव च व्याघ्रचर्मं निवासनं श्रृङ्गारा हसितानन: ॥१९॥

सुवर्णद्वीपे चक्रवर्तिनीं रक्तवर्णा जटाजुतौ । मुण्डमालासुसोभिता हाडाभरणै नौपुरोत्तमाः । अष्टादशभुजादेवं श्रृङ्गारभरणोज्वला । दक्षिणवज्रपर्शुसरत्रिशूरतो-मसूयंद्विपिचर्मधरास्तथा । अक्षमाला वरधरा वामे घण्टखट्वाङ्ग चाप पात्र ध्वजा-ङ्कुशदण्डात्परा । वेदाचरणसंयुक्तं क्रीडानन्दसुशोभिता ॥२०॥

नगले सुवीरा ख्याता षाण्मुखी कृष्णमेव च । स्वेतरक्तधूम्रपीतहरिस्था महारौद्रात्सहासमेव च । भुजाष्टादश चैव सुविरालिङ्गणस्तथा । वामे जन्त्रमुद्राघण्टा ज्वालादीपकविश्ववज्रध्वजा ब्रह्ममुण्डकुठारपाशमेव च । दक्षिण वज्रत्रिशूरडमरु च्छुरिकाकर्तिपरशुरत्नवेनुपर्वताः । नाना क्रीडन्ति समालिङ्गं प्रज्ञोपायमहासुखम् ॥२१॥

महाबला चाश्रुवाहिन्यां चतुर्वक्त्रा श्याममेव च । कृष्णरक्तपीतवदनां भुजाष्टा-दशमेव च । लल्लजिह्वा महाघोरा दंष्ट्रोत्कटभीषणा । वामे घण्टफेतदन्तं खट्वाङ्गं

---

१. वज्रालि-ख.। २. वल-ख. ।

शूरमुंगलंकाद्यवरस्तथा। दक्षिणे वज्रखड्गाङ्कुशडमरुं अभयं कर्त्ति त्रिशूर चक्रस्तथा। हस्तिचर्मा द्विहस्ता प्रज्ञालिङ्गानुरागिनी मुद्राषण्मुद्रितां सर्वा मुण्डमाला सुशोभिता॥ २२॥

मरौ तु चक्रवर्तिनी चैव महाक्षेत्राधिनाथावस्तथा। अष्टवक्त्रा महापीता भैरवान्वितभीषणा। स्वेतरक्तधूम्रपिङ्गलं कृष्णश्यामरागस्तथा। भुजाष्टादशा रौद्रं षण्मूलमुद्राविभूषिता। वामे घण्टापात्रपाशज्वाला वै खट्वाङ्गं वेनुकमण्डरु सुत्रा हस्तिचर्माद्विहस्ताभ्यां पञ्चमुद्राविभूषिता। दक्षिणे वज्रकर्तिपरशू विशूरडमरु चक्र दन्दमूगलस्तथा। महाज्ञानो रसैयुक्ता क्रीडानन्दसुशोभिता॥ २३॥

महाविर्या बालशिधानवाहिनी त्रिवक्त्रा धूम्रवदणा तथा। स्यामरक्तत्रिनेत्रा च महाभीमा भयानका। हस्ताष्टादश चैव मुण्डमाला सुशोभिता। दक्षिणे वज्रखड्गमुशलाङ्कुशमेखला कर्तिपरशूरत्नसिराघण्ट डमरुपाशशूरस्तथा पात्रतर्जनोतोमलाकुण्डत्रिशूरा वामेस्तथा महाहासास्तु भीषणाः गन्ध[1]पुष्पा महालिङ्गनस्तथा॥ २४॥

द्विभुजामेकवदना स्वेतवर्णा सुशोभिता बज्रघण्टालिङ्गिता चैव व्याघ्रचर्मवृता कटिः डाकिन्यालिङ्गितभुजा किं चतुर्भुजाः प्रातर्कतिखट्वाङ्ग डमरुस्तथा कृष्णवर्णा भयानका आनन्दरूपधरा। महामुद्राविभूषिता भैरवान्विता भीषणा॥ २५॥

श्यामालामालिङ्गणा चतुभुजा कर्तिकपालखट्वाङ्गडमरुस्तथा। श्रीपरमानन्दरूपेन त्रिवक्त्र षड्भुजास्तथा। वज्रघण्टडमरुखट्वाङ्गहस्तिचर्मस्तथा हारनोपुरविभूषिता लामालिङ्गशब्दान्विता महापीतवर्णा तु आलीढासनसंस्थिता। भैरवकालिरात्रि च पादक्रान्तसुशोभिता॥ २६॥

विरमानन्दरूपाद्या रक्तवर्णसुरूपिणी। चतुर्वक्त्रा महाभीमा प्रलयाग्निसमप्रभा। रागस्यामकृष्णपीतस्तथा भुजाष्टाकरा रौद्रं महाकुसा तु हासिता। हस्तिचर्मद्विहस्ताभ्यां वज्रघण्टडमरुं तथा खट्वाङ्गपरशूपाशस्तथा। महारागानुरागिनी परा। खण्डलोतुलिङ्गि च भैरवान्वितभीषणा। रक्तवर्णा महारम्या चतुर्भुजाकरान्वितम्। पात्रकर्तिडमरुं खट्वाङ्गमेव च स्तथा। भैरवं कालरात्रि च पादाक्रान्ति तु सोभिता॥ २७॥

सहजास्वभावरूपं तु आनन्दं जयते पुनः पीतवर्णा महाघोरं भुजाद्वादशस्तथा। चतुवक्त्रा महाशान्तं पीतरक्तश्यामकृष्णास्तथा। दक्षिणभुजवज्रडमरु अकुङ्शपरशूत्रिशूराः। वामे घण्टखट्वाङ्गपात्रपाशब्रह्ममुण्डस्तथा। हस्तिचर्मा द्विहस्ताभ्यां

---

१. प्रज्ञा–ख.।

रूपिन्यालिङ्गितं सुखः। चतुर्भुजा महादेव्या खट्वाङ्गडमरुपाश कर्तिस्तथा। गौरवर्णा महादेवी शृङ्गारसा रूपसान्विता व्याघ्रचर्मं निवरसनं हारनौपुरविभूषिता। महाभैरवकालिरात्रि च देव्यलिङ्गनुरागिनी ॥ २८ ॥

कोणेषु महाविरौ काकाश्यादिदेवता नीलवर्णाभा चतुभुजास्तथा सव्यकर्तिपात्रेखटवाङ्गं डमरु तथा। डाकिन्यादिदेवीश्च मालिगनरागिनो। हारार्द्धहारादिसमायुक्तं लल्लजिह्वा भयङ्करा। महाप्रेता समारूढं मुण्डमालावलम्बिता। डाकिन्यामहारागा सुष्कमुण्डविभूषिता ॥ २९ ॥

उलूकास्या श्यामवदना चतुर्भुजा भयङ्करा। सव्यकर्तिपात्रखट्वाङ्गडमरुस्तथा । डाकिन्यादिदेव्यालिङ्गितशोभिताः। डाकिनी देवी कृष्णलिंगी शुभकालिनी। महाप्रेतासनारूढा नानातेजसमप्रभा ॥ ३० ॥

श्वानास्या रागवर्णा चतुर्भुजा तु हासिता। सव्यकर्तिकपाला खट्वाङ्गडमरुस्तथा। डाकिन्यालिङ्गितश्चैव महारौद्रं तु हासिता। डाकिनीदेव्यारक्तवर्णा स्वरूपिणाम्। षण्मुद्राद्विभूषिता महाप्रेतासनास्थिता ॥ ३१ ॥

शुक्ला श्यामा महाघोरा पीतवर्णा चतुर्भुजा। डाकिनीमालिङ्गिता महाघोरा तु घोललाः। सव्ये कर्तिकपालं खट्वाङ्गडमरुस्तथा। डाकिनी पीतवर्णा महातादनधर्मता। हारनौपुलशृङ्गारा रससुन्दरम् । महाप्रेतसमारूढा महाद्रष्टास्तु हासिता ॥ ३२ ॥

कोणेषु यमदाढीस्तु कृष्णपीता चतुर्भुजा। सव्यकर्तिकपालखट्वाङ्गडमरुस्तथा। साकिन्यालिङ्गिता कृष्णवक्त्रास्तु साकिनी। नग्नहाहाकालजिह्वा रससान्वितं तथा। हाडाभरणं च प्रेतसंस्था तु भीषणा ॥ ३३ ॥

यमद्युति पीतरक्ता चतुर्भुजा। सव्ये कर्तिकपालं च खट्वांगडमरुमेव च। हाकिन्यालिङ्गितं चैव महोत्साहा तु हासिता। हाकिनीदेव्यो रक्तवर्णा तु रौद्रता। महाहारनोपुरो झुझुरायणलोत्ता। महाप्रेताधिवासिस्वराक्षसादिमर्दिता ॥ ३४ ॥

यमद्रष्टि श्यामरक्ता चतुर्भुजाकरान्विता। सव्यकर्तिकपालखट्वाङ्गडमरुमेव च। योगिन्यालिङ्गितं चैव कोलाहलचुम्बिकास्तथा। योगिनीस्वेतस्वेतवक्त्रा कात्यालिङ्गानुरागिनी। हाहाट्टहासरौद्रं हुहु कारभयानका। महास्वेतासमारूढं दंष्टोत्कटभीषणम् ॥ ३५ ॥

यममथनी श्यामकृष्णाङ्गी चतुर्भुजा करान्विता। वज्रदेव्यालिङ्गितास्तास्तु महासुखकरान्विता। सव्ये कर्तिकपालखट्वाङ्गडमरुस्तथा। वज्रदेव्या रक्तवर्णा-

क्रीडानन्द महोज्वला। महाप्रेतासनारूढा ह्रीह्रीकारभयानका। महामांसस्तु भोजिता वशामांसांस्तु भोजिता ॥ ३६ ॥

द्वासप्तत्रिंशहस्रसा नाडिसम्भोगस्तु नायके किं नायके। एकः श्रीहेरुको वीरो नैरात्मा शुभकालिनी। महाकृष्णवर्णं भैरवान्वितभीषणम् अष्टास्या षोडशभुजा सर्वे करव्रातभूषिता। मूलमुखे महाकृष्णं स्वेतरक्तपीतश्यामहरितकृष्णा। ऊर्ध्वमुखं महाध्रूम्रं महाद्रष्टोत्कटभीषणम्। प्रलयाग्निसमप्रभा भृकुटिकोटिमहाभीषणम्। ऊर्ध्वपिङ्गलमूर्द्धजं त्रिनेत्रं षण्मुद्राविभूषितं दक्षिणभुजे हस्ति-अश्वखरगावोष्ट्रामानुष्य-सादुरमार्ज्जारस्तथा। वामभुजे पृथिवीवरुणपवनमेघइन्द्रसूर्ययमकुबेरस्तथा। मुण्डमालाधरादेहसुष्कमुण्डाविभूषिता। हाडाभरणनौपुरप्रलयाग्निसमप्रभा। चतुमाल-समाक्रान्ता ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रमाधवास्तथा। चतुचरणमाक्रान्ता प्रज्ञालिङ्गानुरागिनी नैरात्मालिङ्गनसुखं भगवतो नैरात्मा एकवक्त्रा द्विभुजा सव्ये कर्तिकपालं च सुष्कमुद्रा-विभूषिता। नग्ना ऊर्ध्वकेशास्तु दिगम्बरास्तथा। नानामहाहेरुक वै क्रीडानन्दस्तु महाबला। एवंभूतं महाहेवज्रं विभावयेत्। सर्वसौख्यसंयुक्तं हेरुकं परमेश्वरम्। प्रभु किं प्रभुम्। इत्येता वज्रयोगिन्योच्छत्रिसंवीरवीरेश्वरं प्रभुम्। प्रेतारू[ढा] त्रिनेत्रा आलिकालिस्तु सस्थिताः।

इति वज्रयोगिन्यो नाडिरूपेन संस्थिता।
चित्तवज्रस्य योगिन्यो सप्तत्रिंशदुदाहृताः।
प्रज्ञापारमिता ह्येताः शरीरे तु चराचले ॥

वसन्ततिलके सप्तत्रिंशन्नाडिचक्रे व्यवस्थाख्याननिर्देशः षष्ठः ॥ ६ ॥

अथातसम्वक्षः कायानां नाडिचक्रः सप्तत्रिंशद्बोधपाक्षिकां धर्मविशुद्धिम्। कायानुस्मृत्युपस्थानं डाकिनी। वेदनानुस्मृत्युपस्थानं लामा। धर्मानुस्मृतिस्थानं खण्ड-रोहा। चित्तानुस्मृत्युपस्थानं रूपिनी। सप्तत्रिंशन्नाडिभेदस्थितानां कथं भूतम्। प्रचण्डां षण्नाडिभेदस्थितानाम्। षण्नाडिभेदस्थितानां चण्डाक्षी। षट् नाड्यो-भेऽस्थिता प्रभामती। षट् नाडिचरे स्थिता महानासा। एते चतुपाद भवति षट्नारि-घना चलवीरमतिः। षट् नाडि सहसिन्धु खर्वरी। नाडि षट् बिन्दु समारु लम्पाकेश्वरी। षट् नाड्यो घनद्रुमछाया। षट् नाडिसागरः ऐरावतिः। यत्किंचित् स्थितिः पञ्चेन्द्रिया भवति ॥९॥

द्वादशान्विता नाडी महाभैरवी नाड्यो घनद्वादशां वायुवेगा। द्वादशाङ्गनाडी सुराभक्षि। द्वादशाकारनाडि श्यामादेवी। द्वादशाङ्गनाडिः सुभद्रा ॥१४॥

इति पञ्चबलानि नाड्यौ भविष्यतः। अष्टादश नाडिवहा हयकर्णा। नाडिवहाष्टां-गदशोखगानना। अष्टादशेनाडिः चक्रवेगा। नाड्याष्टौदशः खण्डरोहा। नाडि अष्टादशां कुलः सौण्डिनी। इति समाधिसंबोध्यङ्गस्तथा ॥१९॥

अष्टादशां कुले नाडि चक्रवर्मिनी। नाडि अष्टादशवहा सुवीरा। अष्टादशांकः महाबला। अष्टादशां कुलवहा चक्रवर्तिणो। अष्टाभिदशवहा महावीर्या। सम्यक्-समाधिसंबोध्यङ्ग इति ॥२५॥

चतुनाडिसमावहकायानुस्मृतिस्थाने काकास्या। चतुनाडिवहा कायानु-स्मृतिस्थाने उलूकास्या। चतुनाडिसहवहा वेदनानुस्मृतिस्थाने श्वानास्या। चतुनाडिवहा वेदनानुस्मृतिस्थाने शूकलास्या। धर्मानुस्मृतिस्थाने चतुनाडिवहा यमदाति। चतुनाडिवहा धर्मानुस्मृतिस्थानं यमद्युतिः। चतुनाडिवहा चित्ता-नुस्मृतिस्थानं यमदंष्ट्री। चतुनाडिसहमागतः चित्तानुस्मृतिस्थानं यममथनो ॥३३॥

इति स्थाने उत्पन्नानां धर्मोत्पादनं भवति। द्वात्रिंशद्वहास्थानं कायानुस्मृति-स्थानं डाकिनो श्रीहेरुकम्। षोडशानां वहास्थानं वेदनानुस्मृतिस्थानं लामा। श्रीहेरुकं प्रभुं द्वादशानां वहास्थानां धर्मानुस्मृतिस्थानं खण्डलोहा श्रीहेरुकम्। सप्तत्रिंशत् वहा चित्तानुस्मृतिस्थानं रूपिनी। श्रीसम्यक्समाधौ भगवान् श्रीहेरुकं भूमी-श्वरम् ॥३६॥

इति सप्तत्रिंशद्बोधिपाक्षिकधर्मविशुद्धाः सर्वशरीरगता नाड्यो देवतावर्ण-भुजासंस्थानमाश्रित्य संस्थिताः ॥

वसन्ततिलके नाडिचक्रं सप्तत्रिंशद्बोधिपाक्षिकधर्मविशुद्धाख्यान-निर्देशः सप्तमः ॥ ७ ॥

अथातः संवक्ष्ये सर्वशारीरमण्डलमहायोगहोमजपभावनादिविधिक्रियाः। सबाह्याध्यात्मरूपेग सप्तत्रिंशन्महायोग संमिल्य। किं संमिल्य योगसंमिल्य। किं योग देवतै हेरुकाद्यैस्तु नाडिरूपैः सुसंस्थिताः। किं स्थिताः? चतुर्द्वारं यथास्थितम्।

सर्ववीर समायोगं चतुरस्रं प्रकीर्तितम्।
गुरुबुद्धं गुरुधर्मं गुरुसंघं तथैव च॥
तस्माद्गुरुपर्वक्रमेणैवमुत्पन्नं मण्डलं हि तत्।

किं मण्डलं चक्रनाथं श्रीहेरुकं वीरम्। किं कथंभूतम्—

कङ्कालदण्डरूपो हि सुमेरु गिरिराट् तथा।
महासंख्यादि भाण्डादि होमयग्यादिकारणम्।
एकः श्रीहेरुको वीरो वसन्ततिलका स्मृता।

किं मृतादि वशंते डमरु तिलका ख्याताः।

खट्वाङ्गवसन्तेति मुच्यते। तस्माद् बिन्दुरूपो ह्यणाहतः स्थितानां च चलाचलम्। किं शचलाचलं श्वत्यमृतरूपेण। तेनैव भिद्यते नाडी वह्निसंतोषकारिणा। वाराहिसंतोष कारम्। कथंभूतम्। तदेव मण्डलम् इत्युक्तं वस्तुनां सारमुत्तमम्। किं छत्रिशं वीरवीरेश्वरं नाथं मण्डलं हितकारणम्। श्रीहेरुकयोगिनीमिल्य वशन्ते तिलका स्मृताः। षड्विषया रूपादिः बाह्येन्द्रियप्रवर्तनम्। अभ्यन्तरे तु शुक्रादि सिद्धिद्रव्यव्यवस्थिताः। एकः श्रीहेरुको वीरो बोधिचित्तेन वज्रिणाम्। हविभिः क्रियते होमः प्रज्ञाग्नौ तु महोज्वलौ। ब्रह्माद्यादि देवानां सुरासुरं तथैव च। मुदिताभूमिस्थिता ये च सधुमति तथैव च। दशभूमिस्थिता ये च सम्यक्संबुद्धादिदेवताः। शान्तस्थिता महाप्रेते इन्द्रियादि तथा क्रमे। दशभूमीश्वरो नाथो आर्याष्टाङ्गमहापुरे। ये च भूमीस्थिता ये च वीरवीरेश्वरास्तथा। महामहाबोधिं श्रावकादि तथैव च। स्वस्ति भवति सदा शान्ति इत्येवं चक्रनायकम्।

इति वसन्ततिलके होमक्रियाद्वात्रिंशवीरेश्वरादिहस्ततुष्टानिर्देशोऽष्टमः ॥ ८ ॥

अथ संप्रवक्षामि समयादि तु भेदिनाम्। भगवानाह–

त्रिकोणमण्डलं रम्यं वज्रावलिरिति स्मृतम्।
धर्मोदयेति विख्यातं महाबोधिनयं दृढम् ॥

देवी पृच्छति—

तत्रालिकालिसन्मिस्रमष्टौ वर्गौ(र्गाः) व्यवस्थिताः।
कुर्वंती कर्मसंघातं मन्त्ररूपेण देहिनाम् ॥
अक्षराण्येव वेदादिरूपादीनां किमुच्यते।
मन्त्राणां चैव तन्त्राणां शास्त्राणां किं प्रभो ॥

श्रीभगवानाह—

एतान्येव स्वरूपाणि नान्यदन्योऽस्ति किंजल्के।
अ क च ट त प य श् वर्गरतानि पञ्चाशदपि समानि स्मृतानि।
वज्रारल्लौ पद्मगतानि प्रतिदलमष्टषु दिक्षु तानि ॥

एषां मध्ये तु किंजल्के विद्यते परमेश्वरः।
अकारः सर्ववर्णाग्रो महार्थो वर्गनायकः ॥

श्रीदेव्युवाच—

याः खड्गाञ्जनपादलेपगुडिकापातालयक्षाङ्गना-
स्त्रैलोक्योदरकारिसूतकगताः कर्मानुगास्सिद्धयः।

याः सर्वास्तु महर्ध्यः स्वभवने सत्पञ्चकामान्विता-
स्ता वर्गाष्टकमध्यगा स्वरवरान्निर्यान्ति वर्गात्मकात् ॥

श्रीभगवानाह—

यः कश्चित् प्रसरो वा[चां] जन्तूनां प्रतिपद्यते ।
स सर्वो मन्त्ररूपो हि तस्मादेव प्रजायते ॥

देव्युवाच—

नात्रो दो) हि मन्त्र इत्युक्तः सर्वेषां तु शरीरिणाम् ।
विश्वग्रन्थिमहास्थानां धर्मारत्ने विनिश्चरेत् ॥

श्रीभगवानाह—

साधु साधु महादेव्यो रहस्योत्पत्ति कथ्यते ।
येन विज्ञानमात्रेण सम्यक्संबुद्धमाप्नुयात् ॥

न कश्चिन्नियतो मन्त्र. सिद्धि ऋद्धि तु व्यवस्थिताः ।
अनुत्पन्नस्वभावो हि मन्त्रो वर्गेश्वरः परः ॥

इति वसन्ततिलके समयाचारप्रभेदनिर्णयनिर्देशो नवमः ॥ ९ ॥

अथातः संप्रवक्षामि धर्मसंभोगनिर्म्माणत्रिचक्रात्मरूपेन महासुखाशानं भवति ।
श्री महादेव्युवाच—

रहस्यं सर्वबुद्धानां योगादिविधिक्रियाः ।
रहस्यं त्रिकोनं रम्यं वर्णमिति स्मृतः ॥

श्रीभगवानाह—

शिरोनाभिगतं श्रीचक्रमेकाराकृतिसंस्थितम् ।
हृत्कण्ठगतं चक्रं वंकारसदृशं मतम् ॥

नाभिमध्यस्थितं पद्मं चतुःषस्थि(ष्टि)दलान्वितम् ।
निर्माणचक्रमध्ये तु वर्गाष्टकनिवेष्टितम् ॥

सम्भोगचक्रमध्यस्थो हुँकारो वर्णदीपकः ।
चतसृभिः कराभिस्तु समन्तात् परिवर्तितः ॥

महासुखमहाचक्रे हकारो बिन्दुरूपकः ।
नाभेरूर्ध्वे तु या नाडी वहत्यूर्ध्वमुखी तथा ॥

कण्ठमध्ये तु विश्रान्ता रक्तवहा प्रकीर्तिता।
वीरानां डाकिनीनां तु गत्यागतिनिबन्धनैः॥

अस्तमनोदयार्थौ तु स्वप्नप्रबोधयोः स्थितौ।

श्रीदेव्युवाच—

वामदक्षिणपार्श्वे तु स्वरा द्वादश स्थिताः।
ऊर्ध्वमुखाः समाख्याताः ककारादिविनावृताः॥

अधोमुखे तु पार्श्वेस्थे नातिक्रुत्या नियोजिताः।
क्षकारो रक्षकः प्रोक्तो ह्यधोभागे च वै स्थितः॥

श्रीभगवानाह—

यदा कण्ठमहारागरूपेन चन्द्रमा स्थितः।
नाभौऽग्ने तु यदा चासौ वज्राऽग्र तु सदा स्थितः।
भगमध्यगतश्चासौ सर्षप इति विस्फुटः॥

सूर्यरूपमया खा(ख्या)ता निर्माणकाय उच्यते।

श्रीदेव्यानन्दहेरुकोवाच—

तस्मिन्नस्तङ्गते भानौ निर्माणकायरूपके।
चित्तसंबोधिचित्ताख्यं पिण्डीभूतमनाविलम्॥

किं मनाविलम्?
संसारमार्गविच्छिन्नं प्रपञ्चोपशमं शिवम्।
निर्द्वन्द्वं परमं शुद्धं श्रीवज्रसत्त्वरूपकम्॥

देव्युवाच—

रागश्चैव विरागं च वर्जयित्वा घनः स्थितम्।
सर्वनादि(डि)समायोगडाकिनीजालसम्बरम्॥

श्रीभगवानाह—

रहस्ये पृथिवीधातौ परमेऽपि जले तथा।
रम्यत्वानले खे तु वायौ सर्वात्मनि स्थितम्॥

श्रीदेव्युवाच—

अहो महासुखं त्वं मे शास्ता महाप्रभोः।
स्वयंभूरूपमेकं तु धर्मकायः प्रकीर्तितम्॥
अस्यैव सहजा प्रज्ञा स्थिता तद्रूपधारणी।

श्रीभगवानाह—

साधु साधु महाशान्त रहस्योत्पत्तिमहाप्रिय।
येन प्रज्ञातरुच्छाया सम्यक्संबुद्धपदं भवेत्॥

कर्ममारुतनिर्धूता ज्वलन्ती नाभिमण्डले।
वाराहीति सुविख्याता वसन्ततिलका स्मृताः॥

वालाग्रशतसहस्रांगी विद्युछता समप्रभा।
देवती योगकालेषु रोमकूपाग्रसन्धिषु॥

दग्धानां चैव बुद्धानामानन्दं जयतत्पुनः।
नाभिमण्डलमागम्य स्थिता भवति पूर्ववत्॥

इति वसन्ततिलके महासुखनिर्माणसंभोगलिङ्गनपूर्वकश्रीहेरुकवसन्त-वज्रवाराहितिलकास्मृताख्याननिर्देशो दशमः॥ १०॥

इति वसन्ततिलकगीतग्रन्थितश्रीमच्छ्रीदशबलाचार्येन इति॥[1]

---

१. इतः परम्—ये धर्मा इत्यादि। शुभं मङ्गलं भवन्तु सर्वडाकारे शुभम्–क., ये धर्मा इत्यादिकः सम्पूर्णः श्लोकः–ख.। शुभमित्यादिकं तत्र नास्ति।

[1]परिशिष्टम्—५

प्रथमो निर्देशः

ॐ नमः श्रीसद्‌गुरुचरणारविन्देभ्यः

न जातमनन्तमन्तः श्रीमदद्वयसद्‌गुरुचरणकमलबिन्दुरूपं भवति। स पद्म[2] बिन्दुः भवतः। तस्मै विषयमहासुखचक्रसप्तत्रिशन्महाबोधिपक्षः[3]। यकारं पद्ममित्युक्तं रकारं बिन्दुरूपम् ईशान्तः[4]। जकारं नादरूपं भवति, श्रीकारमद्वयम्, हेकारं हेतुशून्यम्, रूकारमपगतव्यूहम्, ककारेण क्वचित् स्थितम्। पकारे[5] पद्मं नवबिन्दुर्भवति। शकारं पद्ममित्युक्तम्, वकारं बिन्दु भवति। अध्यात्मरूपेण श्रीम[द]द्वयं चतुरानन्द-संवरक्रमात्। श्रीकारमद्वयं वकारं बिन्दु भवति, जकारं नादरूपं डाकिनी सिद्धा स्वदेहे[6] संव्यवस्थिता। अकारं बिन्दुरूपं भवति, तकारं[7] तन्त्ररूपं भवति, इ स्वल्प-रुचीनां तु स्पष्टो वर्गे हेतुना। जकारं नादरूपं पकारं पद्ममेव च। एकारं त्रिकोणं भवति, वोकारं बिन्दुर्भवति। कथंभूतं[8] तं बिन्दुं चतुरानन्दस्वभावं च। योकारं स्वभावरूपं मकारं गगणरूपतः[9]। प्रकारं प्रज्ञास्वरूपं क्रिकारं[10] चुम्बनं तथा। योकारं ग्राह्यग्राहकं[11] षोडशकलासमन्वितं[12] नैव कारणं यथा यकारं जन्त्ररूपं मकारं बिन्दु-रूपं डकारनादरूपाद्या [13]लाकारं लुलुते यदा। [14]कर्मादि कुर्वन्ति कृत्रिमाशयाः। शकारं पद्ममित्युक्तं वकारं बिन्दुरूपं भवति। दकारं सम्बन्धिनी भवति। [15]ज्ञायते शास्त्रं ऋषिभिः क्रियते यथा[16]। अकारं बिन्दुरूपं नकारं न जातं वकारं पवणवेगेन रकार-मपगतरूपमग्ररूपेण रत्ना[ना]मिव सागरः। वकारं बिन्दुरूपं भवति। सकारं [17]कार-मित्युक्तं [भव]तीति। तकारं तन्त्ररूपमुत्तमं[18] महासुखचक्रं भवति। [19]त्रिकारं लकारं कोलाहलं चुम्बनं भवति। ककारं क्वचित् स्थितं तस्मात्।

वसन्ततिलकलिङ्गनपूर्व[20]प्रक्रिया प्रथमः॥

---

१. श्रीकृष्णाचार्यदशबलाचार्ययोर्वसन्ततिलकाङ्कितमेवेदं वसन्ततिलकतन्त्रम्। पुष्पिकासु विषयैक्ये प्रतीयमानेऽपि प्रतिपादनक्रमो भिन्न एव। प्रतीयते यत् श्रीकृष्णाचार्यस्य दशबलाचार्येण, तस्य च श्रीघनेन संक्षेपः कृतः। २. पद्मः–क.। ३. वज्रः–ग., वक्षः–घ.। ४. इशा–क. ख.। ५. पकारपद्मरम–क.। ६. देह–क. घ.। ७. तकार–क.। ८. कथं तु तं–क.। ९. गगनं–ख. ग. घ.। १०. क्रिः–ख.। ११. ग्राहकषोडश–क. ख. ग.। १२. समन्वितः–क. ख.। १३. लोकारं–क. ख.। १४. कार्मादि–क.। १५ जानायते–क.। १६. तथा–क.। १७. कोर-मित्प्रति–क.।। १८. उत्तममहा–क.। १९. तिकारं–क. ग.। २०. पूर्वक्रिया–ख. ग. घ.।

द्वितीयो निर्देशः

अकारं नैरात्ममित्युक्तं थकारं हेरुकं यदा। तदुद्देशानिरुपपादितस्वदेहस्वरूपं देवतारूपं कथयिष्यामि। बुकारं वायु भवति। द्धकारं वह्नि भवति। वकारं[1] वरुणं भवति। वकारं पृथिवी तथा। जकाराकाशमेव च। तस्मात् पञ्चस्कन्धादयो बुद्धाः श्रीहेरुकस्य देहजाः। सुकारं [2]करुणाजातं खकारं शून्यमेव च। दुकारं दुन्दुभिशब्दं भवति खकारं शून्यमित्युक्तम्। ककारं [3]क्वचित् स्थितं मकारं बिन्दुरूपं भवति। क्लेकारं कुरुते कायं शकारं कमलं यथा। उत्पत्तिभङ्गमाश्रित्य भवनिर्वाणमश्नुते॥

वसन्ततिलकं[4] ध्यात्वा देवतारूपनिर्देशो द्वितीयः॥२॥

तृतीयो निर्देशः

अकारं [5]वंकारं ख्यातं थकारं हूँकारं भवति। देकारं ललनाख्यातं वकारं रसना तथा। तकारं शुष्मना[6] (सुषुम्णा) रूपम् अवधु[धूती] भवति निश्चितम्[7]। अकारं बिन्दुरूपं पकारं पद्ममेव च। रकारं वज्रपवनं चतुर्विधं[8] द्वारं वाक्चित्तमध्य[9]-संस्मृतम्। प्रकारपवन[10] वेगेन धाकारवीर्यमेव च। नकारजातं ख्यातमुत्तमं द्वारमध ऊर्ध्वं च[11] प्रकीर्तितम्। विकारं विविधाकारं ज्ञाकारं ज्ञानधर्मसमन्वितम्। नकारं न जातम्। ऊर्ध्वद्वारेण धातवे। आकारं त्रिकोणं[12] चैव वाकारं नादबिन्दुस्तथा। हकारं हरते वर्णं नकारं न जातं गत्यागतिप्रवर्तनैः। सकारं [क]क्कोल[13]माख्यातं हकारं वघ्रमेव च। रतिस्थितिप्रीति च हकारं भवति निश्चितम्। जकारं चात्र[14] बिन्दुं तस्मात् सहजरूपतः॥

वसन्ततिलकं ध्यात्वा कायद्वारभेदाख्याननिर्देशस्तृतीयः॥ ३॥

चतुर्थो निर्देशः

अकारं नैरात्मा चैव थकारं भगवान्[15] भवन्ति(ति)। तस्मै विषयजातं[16] तकारं तं[17] रूपं तथाकारं नादबिन्दु तथा। गकारं गगणं चैव तकारं तत्त्वमेव च। काकारं

---

१. ओकारं–क. ख. ग.। २. वरुणाख्यातं–क.। ३. कोचित्–क. ख. ग.। ४. तिलके–क., तिलक–घ.। ५. वकारं–ग. घ.। ६. शुष्मता–ग.। ७. श्चितः–ख. ग. घ.। ८. विधं–क. ग. घ.। ९. मध्ये–क. ख.। १०. पवण–क. ख.। ११. 'च' नास्ति–ख. ग. घ.। १२ त्रिकोणे–क. ख। १३. क्कोर–ग. घ.। १४. पत्र–ग. घ.। १५. वानुभसंमतिः–घ.। १६. वकारं–ख.। १७. तं तं–ख. ग.।

नादबिन्दुं यकारं जन्त्ररूपं तथा। तस्मै विषये दशपीठादिभूमिं दर्शयिष्यामि। पीठं कथंभूतं किं भवति। पीठं पीकारं चतुष्पत्रं त्रिकोणं भवन्ति(वति)। ठकारं हेवज्र-बिन्दुस्वभावं किं हेवज्रं हेकारं हेतुशून्यं वकारं बिन्दु भवति। पतितपतितत्रिकोणमध्ये जकारं नादबिन्दु भवति। तस्मात् पीठादिदशभूमयः। नच(व) श्रो(स्रो)तोगता नाड्यो नच(व)द्वारे संस्थिताः।

पकारं पद्म भवति रकारं न्बिदुर्भवति। याश्च पातालवासिन्यः सर्वास्ता-स्तासु संस्थिताः। मुदिताः किं भवन्ति त्रिकोणं प्रमुदिताः ख्याताः। भूप्राकारं[1] त्रिदल[2]कमलं भवति। मकारं बिन्दुं भवति यकारं यन्त्रं को(क्व)चित् स्थितम्। भूमयः आलयो[3] बोधिसत्त्वानाम्। किं बोधि बिन्दुं भवतः(ति)। सत्त्वः किं कथंभूतं[4] शुष्मना-ख्यातम्। किमाख्यातमिन्द्रियादिस्वरूपिणाम्। आलयः सर्वबुद्धानां स्कन्धादीनां विशेषतः।

पकारं पद्ममित्युक्तं रकारं लुलुते बिन्दुं भवति। तस्मै द्वात्रिंशद्बोधिचित्तानां यदा यान्ति पूर्णि(र्ण)ताम्, तदा ससुतबुद्धानां बुद्धत्वं निकटं भवेत्। शकारं पद्ममित्युक्तं मकारं बिन्दु भवति। नकारं न जातं तस्मात् श्मशानं च कथंभूतं[5] चतुरानन्दस्वभावम्। पीठादिदशभूमयः[6]।

यदा जानाति पूर्णि(र्ण)ताम्। किं पूर्णि(र्ण)तां बुद्धानां सह आगतं बुद्धत्वं निकटं भवेत्। कुत्र कथं स्वदेहे चैव बुद्धत्वं ष्ठि(स्थि)तं भवेत्। किं स्थितं बुद्धज्ञानामृतं मतः। किं मतः पीठं चैवोपपीठं च क्षेत्र[मुपक्षेत्रं] तथा। छन्दोहस्तथोपछन्दोहो मेलापकमुपमेलापकस्तथा। श्मशानं चोपश्मशानं च पीठादिदशभूमयः।

इति वसन्ततिलकानच(व)स्रोतोभगमध्ये गतः। किं गतः? सर्वे नाडिस्वरूपं समागतः। कुत्र समागतः? भूमिस्वरूपाख्याननिर्देशश्चतुर्थः॥ ४॥

[7]पञ्चमो निर्देशः

अथातः संवक्ष्ये भगवता नाडिस्वरूपम्। किं स्वरूपं रजःसत्त्वतमो(मः)स्वरूपं किं कोऽर्थः। किं त्रिकायाभेत्तरेण भेदयित्वा। किं भेदयित्वा सह शिरो मलयदेशश्च शिखा जालन्धरस्तथा। चतुर्नाडिकायां तु स्मृतिः स्थानं पञ्चनाडित्रिवेदनाऽनुस्मृति-

---

१. भूकारं-क. घ.। २ त्रिदश-ख. ग. घ.। ३. आलया-घ.। ४. किं भूतं-ख. घ., भूता-क.। ५. भूतः क.। ६. ख. मातृकायामेतावदेव चतुर्थो निर्देशः। अत्रैव पुष्पिका दत्ता। ७. पञ्चमे षष्ठे च निर्देशे पाठविपर्यासो दृश्यते ग. मातृकायाम्।

स्थानम् । नाडी पञ्चमी धर्मानुस्मृतिस्थानम् । चित्तानुस्मृतिस्थानं दशनाडी तथा मूलेन सह द्वादशाधारस्तथा एवं भवति । किं भवत(ति) चतुर्विंशतिपीठप्रभेदतः । एताः स्वदेहजाः. स्वदेह किं त्रिकोण सर्वा भिद्यते स्थानेषु भेदतः । वज्रेण स्थाने भेदतः किं सर्वस्थाने भिद्यते । किं कुर्यात् शवात्स्मा(?) त्यक्तस्यास्तु बुद्धानां दशभूमयः । किं स्थानमिति सर्वनाडीनां समाख्यातानि सर्वतः । एषु स्थानेषु डाकिन्यो नाडीरूपेण संस्थिताः ।

इति वसन्ततिलके पीठादिदशभूमिदेशभेदेननिर्देशः पञ्चमः ॥ ५ ॥

षष्ठो निर्देशः

अथातः संप्रवक्ष्यामि नाडीचक्रं सूचयामि । मध्यस्तं(स्थं) पद्ममस्त(ष्ट)-पत्रसकर्णिकं कुर्यात् । तस्य मध्यगता नाडी ज्वल[द्]वह्निस्वरूपका । किं स्वरूपका कदरी(ली) संकाशा लम्बमाना त्वधोमुखी । तस्य मध्यस्थितो वीरः सर्षपस्थूलमात्रकः । किं कुर्यात् ? श्रीहेरुकेण हूँकारोऽनाहतम् । किमनाहतं तुषारसन्निभम् । कुत्र आतिष्ठन्ति तुषारसन्निभम्[1] इत्याख्यातं देहिनां[2] हृदिनन्दनः । किम् आनन्दं वडवानलरूपं वाराही तिलका स्मृता । कथंभूतं त्रिकोणम् ऊर्ध्वंज्वलन्तवीरं कुरुते कर्मनाभिमण्डले मारुते-निद्ध(?) ज्वलन्ति । शान्तं वसन्ततिलके । किं प्रियरतिः ? एकः श्रीहेरुको वीरो वसन्ततिलका स्मृता । योगिनी कथंभूतं नन्दनं[3] वनम् । किं कुर्यात् त्रि(त्रै)लोक्यं सचराचरम् । कायवाक्चित्तभेदेन त्रिचक्रे विवरे द्वारनिर्गमे । वजसत्त्वाद्[4] भवेद्बिन्दुः अर्द्धेन्दु[5] वैरोचनः । मन्त्रलेखा[6] रत्नसंभवः । हकारो अमिताभः । [7]हूँकारोऽमोघ-सिद्धिः । तस्मै रूपा नाड्यो बिन्दुः । अनाहतं किम् ? अनाहतं पृथिव्यादिमहाभूतः । किं महाभूतः[8] बोधिचित्तं चतुश्चक्र[9]प्रभदेतः । चतुः सन्ध्या भवति ।[10] किं सन्ध्या चकारं चतुरानन्दं स्वभावं भवति । तुकारं[11] ततरुतं सकारं[12] कमलं ध्याकारं प्रक्रिया-योगपरायणम् । क्रिया कथं सम्बन्धिनी कारकः[13] कथंभूतं परमानन्दस्वभावम् । श्रीवज्रकमलचुम्बनं क्रीडन्ति । हय श्रीसुखं[14] कुत्र कुर्यात् सुखं चतु.पत्रं चतुर्योगिनी क्रीडन्ति । सुखं चतुश्चक्रं किंभूतं पञ्चामृतं वज्रस्नानं कुर्यात् । योगिनीयोगिसंमिल्य पूजितं सततं भवेत् । किमाख्यातं पूजिते बोधि एकारं[15] त्रिकोणं वंकारं बिन्दुरूपकम् ।

---

१. चतुर्थपरिच्छेदस्य "यदा जानाति" इत्यारभ्य षष्ठस्य "तुषारसन्निभम्" इत्यन्तः पाठो 'ख' मातृकायां नास्ति । २ देहिना-क. ग. घ. । ३. नन्दनवनम्-ख. । ४ वज्रसत्त्वो-क. ग. घ. । ५ न्दु-ख । ६. मतले-ख. । ७. हू-ख. । ८. भूतं-ख. । ९. चक्रप्रभेदतः-ख. । १०. भवन्ति-ख. । ११. उकारं त तं-ख. । १२. एकारं-क. ग. घ. । १३. कारकथं-ख. । १४. धीसुखं-ख. । १५. ऐकारं-क. ग. घ. ।

तस्मै पतिते(ता) नाड्यो व्यवस्थिताः। रज(जो) ललनाख्यातं तम रसना तथा। सत्त्व शुक्ष्मणा (सुषुम्णा) ख्यातम्। किं भवतः[1]? रागविरागौ भवति(तः)। क्रियाकारकायुवयो(कारकयो)र्मध्ये बिन्दुः भवतः(ति)। तस्मात्सप्तत्रिशन्नाड्यो बोधिमाप्नुयात्। वसन्तेति[2] तिलकेति किं वसन्तः प्रज्ञापारमिता पकारं पद्ममित्युक्तं ज्ञकारं संज्ञा भवतः(ति)। पाकारं कुरुते कायं रकारं बिन्दुः भवतः(ति)। मिकारं इन्द्रियादिस्वभावतः ताकारं तन्तरुतं भवति।

वसन्ततिलके सप्तत्रिंशन्नाडिचक्रे व्यवस्थाख्याननिर्देशः षष्ठः॥ ६॥

सप्तमो निर्देशः

[3]अकार[ः] त्रिकोणं भवति। थकारं बिन्दुरूपकं भवति। नाडिचक्रं सप्तत्रिंशद्बोधिपाक्षिकां(कं) धकारं त्रिकोणं चैव मकारं बिन्दुर्भवति। विशुद्धि किं यन्त्रेण सह तिष्ठति। नाडीनां भवति। कथयिष्यामि। काकारं नाडी भवति। याकारं जन्त्ररूपं भवति। मुकारं[4] नाड[5](द)विन्दु भवति। स्मृति कथंभूतं सम्यक् सह विन्दुं आगतस्तत् स्थानं भवति निश्चितम्। वेकारं [6]मलमित्युक्तं दकारं बिन्दु भवति। नाकारं नाड(द)-बिन्दु तथाऽनुस्मृतिस्थानं यत्र कुत्रचिद् नाडि सह आगतः। तत्स्थानं भवति। धकारं त्रिकोणं चैव मकारं बिन्दु भवति। अनुस्मृतिस्थानं यत्र कुत्र स्थानं सह आगतः। तत्स्थानं भवति। चित्ता कथंभूतं बोधि भवति। [अ]नुस्मृतिस्थानं कथंभूतं यत्र कुत्र सर्वं नादबिन्दु सह आगतस्तत्स्थानं भवति। स्थानं कथंभूतं त्रिकोणम्। त्रिकोणं किं भवति त्रियानमेको भवति। त्रिकोणं किं भवति वज्रवाराही लामा कथं गुह्येश्वरी खण्डरोहा कथं भवतः। नैरात्मारूपिणी कथं वाराही भवतः(ति)। यत्र कुत्रस्थानं श्रीहेरुकः[7] क्रीडति तत्स्थानं छकारं त्रिकोणं भवति। दकारं नादबिन्दु तथा ऋद्धिः। सर्वे कथं नाडिबिन्दुमागतः। ऋद्धि भवतः पादः कथंभूतं वज्रकमलचुम्बनं पाद भवतः। वीकारं वीर्यमेव च। [8]र्य्यंकारं यन्त्रस्वरूपं ऋद्धिः कथं बोधिसहमागतः। ऋद्धिपाद किं वज्रपाद भवतः।

मी कथं इन्द्रियादि भवतः। मां कथं मामकीं[9] भवतः। सा कथं कमलं भवतः। ऋद्धिकथं कमलचुम्बनम्। ऋद्धिः पादचतुष्पत्रं भवतः। चित्ता कथं बोधि भवतः।

---

१. भवति–ख.। २. वसन्ते तिलके–क. ग. घ.। ३. अकारे–ख.। ४. मकारं–ख., नकारं–ग. घ.। ५. नात्र–घ.। ६. कमल–क.। ७. कं क्रीडन्ति–क.। ८. र्घ्यकारं–घ.। ९. मार्मकि–क. ख.।

ऋद्धि कथं विविधोद्भवबिन्दुं[1] भवति। पादः कथं वज्रपादः। चित्त कथं भवतः बोधिबीजं। ऋद्धिः कथं बिन्दुः भवतः। पाद कथं त्रिकोणम्। शकारं[2] शवमित्युक्तं द्वेकारं चुम्बणं तथा। इन्द्रि कथं वज्रं यं कथं जन्त्रस्वभावम्। वीर्यं कथं कमलम्। इन्द्रिय कथं वज्रम्। यं कोऽर्थः किं शलिलं(रीरं)। स्मृति कथं बोधिं कामान्धितं इन्द्रिय कथं नाडिस्वभावम्। यं किं भवतः कमलवनम्। स कथं पद्म मा कथं बिन्दु धी कथं संबन्धिनी, इन्द्रिय कथं नादबिन्दुम्। प्रकारं पद्ममित्युक्तं ज्ञाकारं [वज्र]संज्ञकम्। इन्द्रियं किं कमलानन्दस्वरूपम्। श्रकारं शरीरं द्वाकारं कथं बिन्दुरूपम्। बल कथं बकारम् बिन्दुं लकारं नादः। वी कथं त्रिकोणं [3]र्य्यं कथं क्रियाबलम्। कथं वज्रः। स्मृति कथं [4]नादसहमागतः। वर कथं वज्रबलम्। समाधिः कथं क्रियाबलम्। कथं कुलिशबलः। प्रज्ञा कथं योनिः। वज्र कथं बलः। समाधिः कथं प्रज्ञा चुम्बनं सम्बोध्यङ्गः। किं कमलवज्रं चं चरासुरासुराः। वीर्यं कथं सम्यक्कामान्धिता। बोध्यङ्ग कथं प्रविश्यान्तम्। प्रीति कथं लिङ्गचुम्बनम्। बोध्यङ्ग कथं ताडनं प्रस्त्रब्धिः।[5] सं कथं शब्दं[6] कुरु बोध्यङ्ग किं कमलचुम्बणम्। धर्मप्रविचये कथं वज्रबिन्दुः[7] प्रविशेः। संबोध्यङ्ग किं शरीरं संचये सचराचल(र)म्। स्मृतिः किं कमलं ताडनं संबोध्यङ्गं किं वज्रबोधयेः।

सम्यक् कथं नादबिन्दुं दृष्टिः कथं पतनं बोधिं सम्यक् सं वज्र पद्म प्रतिष्ठाप्य कल्प कथं बोधिचित्तवहा। सम्यक् कथं बिन्दुसहमागतः चाद्मसंबोधिम्। सम्यक्कर्मान्तः किं प्रक्रियाधर्ममागताः। सम्यगाजीवः किं कमलकेसरप्रक्षार(ल)नम्। सम्यग्व्यायामो विविधहोतव्याः। सम्यक्स्मृति कथम्। शृङ्गारः, वीरः, बीभत्सः, हास्यः, रौद्रः, भयानकम् करुणा, भूतशान्तिः[8] भवति।[9] सम्यक्समाधौ कथं वह्निसन्तोषकरं बोधिपुरैः।[10] अकार त्रिकोणं नुकार उत्पन्नं[11] बोधिः उत्पादिता।[12] उत्पादः किं बिन्दु कुशल कथं सहजानन्दं धर्माणां कथं बिन्दो(न्दू)त्पादिता। अनुत्पन्नानां किं सहजानन्द-स्वभाव उत्पन्नानां किं नादबिन्दुस्वभावम्।

वसन्ततिलके सप्तत्रिंशद्बोधि-उत्पादितदेशेषु सप्तमः॥

---

१. बिन्दुं–घ.। २. एकारं–ख. ग. घ. । ३. य्य–क. । ४. नाड–ख. ग. घ.। ५. प्रस्त्रवि–ख. ग. घ.। ६. 'सं' नास्ति–ख. ग. घ.। ७. बिन्दुं–क.। ८. भूतशान्ति–क.। ९. भवन्ति–ग.। १०. बोधिपुरेः–क. ख. ग.। ११. त्पन्ने–ख., त्पन्न–घ.। १२. उत्पादितः–क., ताः–ख. ग.।

अष्टमो निर्देशः

अजग्धः [1]स्वरूपा थकारं घृतमेव च, ह्रोकारं त्रिकोणं मकारं बिन्दुमेव च, स बाह्याध्यात्मरूपेण सं[प्र]वक्ष्यामि। काकारं किं को(क्व)चित् स्थानं [2]घकारं त्रिकोणमेव च। श्रीहेरुकेन दग्धारिता भवति। गिरो[3] कथं कमलं [4]समस्तकः। कथं बोधिचित्तमृतभाण्डाः। किजल्के कथं कमलकेशरं नैरम्भाः कथं कुण्ड[5]वरं यथाक्रमम्। गुरुपर्वक्रमेणैव उत्पन्नं मण्डलं हि तत्। पादकथं चतुष्पत्रं कङ्कालकबन्धः किं त्रिकोणम्। दण्ड किं वज्रं सुमेरु किं हेरुकी। गिरी कथं कमलं द्वात्रिंशद्बोधिमानसं पद्ममध्यगत-चन्द्रमण्डलमुच्यते। श्रीहेवज्रं कमलं कोलाहलं कुरुते। किं कुरुते वह्निसंतोषकारणम्। तदेव मण्डलम्। किं [6]मण्डलं त्रिकोणं वस्तूनां सारमुत्तमम्। किं सारमुत्तमं सप्तत्रिंश[7]-न्महानाडिचक्रं मण्डलं हि तत्। विश्वव्यापित किं सर्वनाडीसमायोगडाकिनीजालसं-वरम्। शब्द किं बाह्याभ्यन्तरे स्थिताः सिद्धिदेव्यः किं बोधिवहा सिद्धिः किं भवतः सहजानन्दः भवतः[8]। बुद्धानां बोधिसत्त्वानां समयार्थोदितेन तु। जन्मनिहेव[9](नीहैव) बुद्धत्वं प्राप्नोति मण्डलादतः। श्रावकादौ ब्रह्माद्यादौ भवतः। किं समया हविर्भिः क्रियते होमः प्रज्ञाग्नौ तु महोज्ज्वलौ(ले)। जोग[10] पूजा किं बोर(ल)कक्कोल-योगेन सिद्धं भवतु। सिद्धः कथं सहजानन्दं भवतु।

वसन्ततिलके होमक्रियानिर्णयेऽष्टमः ॥ ८ ॥

नवमो निर्देशः

अकार नैरात्ममित्युक्तं थकालं(रं) वज्रं तथा। त्रिकोण[11] किं योषितो भग इति। धर्मोदया किं धर्म बोधिं भवतः। दया किं भगः। तस्मिन्[12] वज्रेण क्रियां कुर्वन्ति। आलि किं रसना कालि किं ललना तस्मै मिश्रये पञ्चाशदक्षरसंसिद्धाः[13]। अक्षर किं बोधिवहा मन्त्र[14] किं नाडि तन्त्र किं नादबिन्दु शास्त्र किं बिन्दु भवतः। अग्ररूप किं बोधिसिन्धु भवतः। नायकः किं परमानन्दस्वभावः।

इति वसन्ततिलके मन्त्रोघा(द्धा)रणा[15]निर्देशो नवमः॥ ९ ॥

---

१. अजग्य–क., जज्ञः–घ. । २. द्य–क. । ३. गिरि–क. । ४. 'स' नास्ति–क. । ५ कुण्डं-ख. घ. । ६. नास्ति–क. । ७. त्रिशन्नाडि-क. । ८. वतः–क. । ९. न्मनि हेवज्र–ख. ग. घ. । १०. जाग–ग. घ. । ११. त्रिकोणकं-क., त्रिकोणे किं–ख. । १२. तस्मै–ख. ग. घ. । १३. संसिद्धो–क. । १४. मन्त्र–क. । १५. घारन–ग. घ. ।

दशमो निर्देशः

अकारं वाराहि(ही) थकारं भगवान्। तथा भगवान् कथंभूतं भकारं [१]भगमेव च। गकारं गगणमेव च। वा[न्]कारं क्रियाकारं तस्माद् भगवान् तथा। नरूपं न जातं न मृतं न रूपं भवतः। कथं न रूपं वज्रं पद्म प्रतिष्ठाप्य इति भवति। भंग (भगं) किं भकारं पृथिवी गकारं गगणमेव च। तस्माद् भगो भवति। शिरोनाभिगतं [२]चक्रं एकाराकृति संस्थि[३]तम्। निर्माणचक्रं किं कथंभूतं निकारं इन्द्रियादिमहारसं भवति। र्मकारं त्रिकोणमेव च। णकारं न रूपं भवति। चकारं चतुरानन्दस्वभावं[४] क्रकारं कुरुते कार्यं तस्मान्निर्माणचक्रमेव च। अष्टदलमहापद्मे[५] धर्मकायः प्रवर्तते[६]। धर्मचक्रे किं भवतः। धकारं कमलमित्युक्तं म(र्मं)कारं बिन्दुमेव च। चकारं चतुश्चक्रस्वभावं क्रकारं समाधिमे(रे)व च। तस्माद् धर्मचक्रं[७] भवति। धर्मचक्रं कथं विहारं भवतः। महासुखचक्रे कथं मकारं बिन्दुं भवति। हाकारं त्रिकोणमेव च। सुख किं सहजानन्दसुखम्। चक्रे कथं योनिमुद्रा तथा तथा तस्मात् सुखचक्रं भवति।

परमाक्षरं किं बोधि भवतः। तस्मै [८]हकारो बिन्दु अनाहतम्। किमनाहतं ऊर्ध्वगामि अध्व(धो)गामि चन्द्रसूर्यगामि भवतः। विश्रान्तः किं नादबिन्दू[९] विश्रान्तौ भवतः। कुत्र विश्रान्तः मदनपुरे विश्रान्तो भवति। अष्ट(स्त)मनोदयार्था[१०] तु स्वप्नप्रबोधयोः स्थितौ। किं बोधयः[११] स्वरद्वादशस्थिताः[१२]। किं स्थितः चित्ता-स्वरूपं अक्षरबोधिविसर्जनं कुरु[१३]। कुत्र विसर्जनः[१४]। भगमध्ये[१५] गतश्चासौ सर्षप इति विस्फुतम्[१६]। किं विस्फुतं[१७] बालार्कताम्रस्वरूपं[१८] निर्माणचक्रे भवति। किं भवति त्रितनये दग्धारिता भवति। बुद्धानां बोधिसत्त्वानां स्फरणं[१९] तेन जायते। किं जायते। भानुमण्डल[२०]चित्तसंबोधि चित्ताख्यं पिण्डीभूतमनाविलम्। संसार कथंभूतं[२१]देहमित्यु-क्तम्। मार्गं किं भवतः। यत्र कुत्र क्रिया कुर्वन्ति तन्मार्गं भवति। विच्छिन्नं किं बोधि-बिन्दुं[२२] विच्छिन्नं भवः[२३]प्रञ्चमिपशमं शिवम्। निर्द्वन्द्वं परमं शुद्धं श्रीवज्रसत्त्वरूपकम्।

---

१. भंग–क.। २. 'चक्रं' नास्ति–ख. ग. घ.। ३. छितं–क.। ४. भावः–ग. घ.। ५. पद्मधर्म–ख.। ६. प्रवर्तनैः–क.। ७. चक्रक्रमं–ग. घ.। ८. हेकारो–घ.। ९. बिन्दुं–क. ख., दु–घ.। १०. दयार्थातु–क.। ११. बोधयेः–क. ग. घ.। १२. स्थिताः–ग. घ.। १३. ज्जंणं–क.। १४. ज्जंणं–क.। १५. मध्य–ख. ग. घ.। १६. १७. स्फूतं–ख. ग.। १८. ताम्ररूपं–क.। १९. स्फुरणं–ख. घ.। २०. ण्डलः–ख. ग. घ.। २१. देहि–क.। २२. 'बिन्दुं' नास्ति–ख.। २३. 'प्रपञ्चोपशमं शिवम्' इति तु सम्यक् पाठः।

वज्रसत्त्वं किं वज्रो[1] भवति बिन्दुरूपम् । तद् वज्रसत्त्वं भवेत् श्रीहेरुक इति ख्यातम् । तन्त्रस्तु घनरूपकं घन किं वीरा[2] कर्मा[3]नुकुर्वन्ति प्रीतिकमलं घनं भवति । रागं चैव विरागं[4] च चर्चयित्वा घनं स्थितम् । घनेन किमाख्यातं सर्वनाडिसमायोगा डाकिनी जालसत्[5] सुखम् । रहस्यं पृथिवीधातौ । किं धातु[6] जलः । जलं किं बोधिबीजम् । रम्यत्वेन लोके तु वायौ[7] सर्वात्मनि[8] स्थितम् । सदा स्थितः किं सदा स्थितः सदा भवः किं भवः बिन्दुभवः किं भवः पञ्चामृतं भवः किं पिण्डं पिण्डं बिन्दुमनामयम् । सुविशुद्धज्ञानं किं बोधिबिन्दुज्ञानं किं महासुखं तत्त्व[9]ज्ञानम् । सर्वदेवता[10]त्मस्वरूपवज्रसत्त्व इति ख्यातं परं सुखमुदाहृतम् ।

[11]स्वयम्भूरूप किं बिन्दुरूपधर्मकायः प्रकीर्तितम् । देवति किं वज्रवाराहि भवः किं भवः योगकारे रोमकूपाग्रसन्धितं निश्चरन्ति दिशः सर्वान्त जयन्ति[12] । सुरासुरं प्रविशेः[13] । किं प्रविशेः वज्रं प्रविशेः । भवति किं कुत्र विश्रान्तो वसन्ततिलकालिङ्गन[14]पूर्वः । श्रीहेरुकवसन्ते वज्रं वाराही तिलका स्मृता किं मृता (स्मृता) गत्यागतिः ।

तन्त्र[15]मन्त्रज्ञानबोधि[16]प्रवर्तनाख्याननिर्देशो दशमः ॥ १० ॥

या खड्गाञ्जनपादलेपगुडिकाः पातालयक्षाङ्गना-
स्त्रैलोक्योदरवर्ति[सूतकगताः] कर्मानुगाः सिद्धयः ।
याः सर्वास्तु महर्धयः स्वभुवने सत्पञ्चकामान्विता-
स्ताः सर्वाः कलिता वसन्ततिलकायोगप्रभावोदिताः ॥

इति चर्याव्रतिदशबलाचार्येण गुरूपदेशमागम्य श्रीहेरुकभट्टारकस्य देशनात् स्वप्नगतमवधार्य श्रीवज्रसम्बराम्नायेन[17] अ स)बाह्याभ्यन्तररूपतः स्वरूपविधानतो

---

१. वज्रोद्भवरूपं–क. । २. वोरा–क., वौरौ–ग. । ३. कर्मान्–ग. । ४. गश्च–क. । ५. 'सत्' नास्ति–क. । ६. धातोः–क. । ७. वीर्ये–ख. । ८. सर्वामणि–क., मनि–ख. । ९. तत्–क. । १०. सदेवात्म–क. सर्वदेशात्म–ग. घ., स्वरूपकम्–ग. घ. । ११. स्वयंरूप–क. । १२. जयन्ती–क. ख. ग. । १३. प्रविश–ख. ग. घ. । १४. पूर्वकर्मनः–ख. ग. घ. । १५. तत्र–क. । १६. 'प्रवर्तनाख्यान' नास्ति–क. । १७. श्रीनाम्नायेन–क., म्नायनं–ख ग. घ. ।

भावान् स्फुटीकृत्य मन्दमत्यवबोधार्थं सुचिन्तयेत्[1]। वसन्ततिलकेति वज्रवाराह्या एवं श्रीहेरुकस्य चोपदेशा[दा]चार्यश्रीघनस्य गुरो(रु)पदेशमागम्य वसन्ततिलकेति तदविधानाय (भिधानं) ग्रन्थस्येति ।

समाप्तेयं वसन्ततिलकेति ॥[2]



---

१. भव-क. । २. शुभमस्तु सर्वदा काले मङ्गलं भवतु ।
नाभौ सुचर(सूत्रार)विन्दस्तदुपरि विमलं मण्डलं चन्द्रलक्ष्मीः ।
तस्मै निर्माणचक्रं स्फुरदुदयति सुखं वसन्तविलकायोगप्रभाता(वा)दिकम् ॥

दृष्टमपि न पश्यन्वि श्रुतं चापि न बुद्धचते ।
पठन्नपि न जानन्ति देवमायाविमोहिताः ॥

कारे(ले) वर्षतु पर्जन्यः पृथिवी सस्यशालिनी ।
देशश्चायं प्रमुदितः सर्वलोकं निरायत्(मयम्) ॥

शुभम् । इति संवत् १९५४ सालमिति माघव पिरोज शुभ-क. ख, ग. घ. मातृकयोस्तु 'शुभमस्तु सर्वजगतां शुभं भूयात्' इत्येव पाठः ।

श्लोकार्धानुक्रमणी

●

टीकाधृतग्रन्थग्रन्थकार-मतमतान्तरसूची

●

सङ्केतसूची

अ० स०	अनुत्तरसन्धौ
आ० च०	आलिचतुष्टये
आ० मा०	आलोकमालायाम्
गु० त० प्र०	गुह्यतत्त्वप्रकाशे
गु० ति०	गुह्येन्दुतिलके
गु० स०	गुह्यसमाजे
ज्ञान०	ज्ञानपादाः
डा० व० प०	डाकिनीवज्रपञ्जरे
त० गु० सू०	तथागतगुह्यसूत्रे
त० सं० प०	तत्त्वसंग्रहपञ्जिकायाम्
प० क्र०	पञ्चक्रमे
बो० च०	बोधिचर्यावतारे
म० सू० सं०	महायानसूत्रसंग्रहे
मू० त०	मूलतन्त्रे
व० डा०	वज्रडाके
व० पा०	वज्रपाणिः
व० ति०	वसन्ततिलकायाम्
व० प०	वज्रपञ्जरे
स० रा० सू०	समाधिराजसूत्रे
सं० ति०	संपुटतिलके
संपु०	संपुटे
सं० व्या०	सन्ध्याव्याकरणे
हे० त०	हेवज्रतन्त्रे

●

टीकाधृतवचनानुक्रमणी

●

विशिष्टशब्दानुक्रमणी

༄། །དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེ་དང་དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེའི་

རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པ་གསང་བ་སྒྲོན་མ་

བཞུགས་སོ། །

[भोट खण्ड]

དཀར་ཆག



དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེ།

རྒྱས་པར་བསྟན་པ་དང་པོ།

༄༅། །རྒྱ་གར་སྐད་དུ། བསན྄དྷིཏིལཀནཱམ། བོད་སྐད་དུ། དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེ་ཞེས་བྱ་བ། བཅོམ་ལྡན་འདས་བདེ་མཆོག་འཁོར་ལོ་ལ་ཕྱག་འཚལ་ལོ། ། མཉམ་དང་མི་མཉམ་བདེ་ཆེན་སུམ་ཙུ་རྩ་བདུན་བྱང་ཆུབ་ཆེན་པོའི་ཕྱོགས་བཞུགས་ཕྱུང་པོ་ཆོས་ཀྱི་རང་བཞིན་གནས་པ་རང་ལུས་རྩ་ཡི་འཁོར་ལོ་གཙོ་བོ་བཞི། ། དབྱངས་ཡིག་ལྔར་བཅས་བཅུ་གཉིས་དབྱངས་ཡིག་དོན་གྱི་ཕྱི་མོ་གསལ་བྱེད་སུམ་ཙུ་རྣ་བཞིས་བརྒྱན་ཅིང་སྐུ་གསུང་ཐུགས་ཀྱི་དབྱེ་བས་གནས་པའི་གནས་ལ་སོགས།།

དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པ་

གསང་བ་སྒྲོན་མ།[1]

༄༅། །རྒྱ་གར་སྐད་དུ། བསན྄དྷིཏིལཀ ཊཱིཀཱནཱམ། བོད་སྐད་དུ། དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པ་ཞེས་བྱ་བ། དཔལ་དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེ་ལ་ཕྱག་འཚལ་ལོ[2]། །

སུམ་ཙུ་རྩ་དྲུག་སོ་སོ་ཡི། །
རང་བཞིན་ཀུན་རིག་ཧེ་རུ་ཀ། །
ཁྱབ་བདག་ཕྱག་བྱས་དཔྱིད་ཐིག་ནི། །
རིམ་གྱིས་རྣམ་པར་དབྱེ་བར་བྱ། །

1 འགྲེལ་པའི་མཚན་ "གསང་བ་སྒྲོན་མ་" ཞེས་པ་བོད་འགྱུར་བསྒྱུར་བྱང་དང་། རྒྱ་དཔེར་གསལ་ལོ།།

2 རྒྱ་དཔེར་དཔལ་ནོ་རྦེ་མཁའ་འགྲོ་ལ་ཕྱག་འཚལ་ལོ་འདུག

ས་བཙུའི་དབང་ཕྱུག་ཀུན་འགྲོ་འགྲོ་ཀུན་རང་སྐྱིང་དབུས་གནས་ནམ་མཁའི་ངོ་བོ་མཆོག་ཞི་[1]ཧེ་ཝ་ཀ་དཔལ་དམ་པའི་དེ་ཉིད་སྤྱི་ངན་འདས་རང་བཞིན། །
རབ་གསལ་དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེ་འོད་འཕྲོས་འབར་བ་སྐུ་གསུམ་རྒྱས་པ་ལེགས་རྟོགས་[2]འགྲོ་བའི་རང་བཞིན་དོན་བདེ་སྟོལ་བ་རྩ་ཡི་འཁོར་ལོའི་མགོན་ལ་རབ་བཏུད་ནས[3]། ༡–༢ །

སློབ་དཔོན་ཆེན་པོ་དཔལ་ནག་པོ་ཞབས་ཞེས་བྱ་བ། བཞི་པ་ཕྱག་རྒྱ་ཆེན་པོའི་དངོས་གྲུབ་བརྙེས་པ། རང་དང་གཞན་གྱི་དོན་སྒྲུབ་པ་ལ་རྟུལ་ཞུགས་པ། དཔལ་ཧེ་ཝ་ཀ་མངོན་སུམ་དུ་གཟིགས་ཤིང་གཉིས་པ་ལྟ་བུ། གདུལ་བྱས་འཇིག་རྟེན་དང་འཇིག་རྟེན་ལས་འདས་པ་རྟོགས་པར་བྱེད་པ། རྣམ་པར་བཀྲིས་མཛད་དུ་བྱུང་བའི་རྣལ་འབྱོར་མའི་རྒྱུད་སྟོན་ཞིང་། ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་པའི་སྤྱོད་པ་མཐོང་བ་ལ་བསྐུལ་བ༑། རང་གི་ཤེས་རབ་ལ་སྣང་བཞིན་པའི་རྣམ་པ་སྣ་ཚོགས་པའི་ཉེ་བར་བསྟན་པ་དང་། སྣང་བཞིན་པའི་མན་ངག་གི་ཁྱད་པར་དེའི་དོན་གྱི་སྐད་དུ་རབ་ཏུ་གསལ་བའི་དགོངས་པས་བརྩོན་པར་མཛད་དོ། །རང་ཉིད་ཀྱིས་དྲན་པའི་ཆེད་དུ་ནང་གི་བདག་ཉིད་ཀྱི་རིམ་པས་བཅོམ་ལྡན་འདས······དཔལ་ཧེ་ཝ་ཀའི་སྒྲུབ་པའི་ཐབས་ཀྱི་ཚོ་ག་དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེ་འདི་མངོན་པར······བརྗོད་པར་"བཞེད་པས། དེ་ཉིད་རང་གི་གཟུགས་དང་འཚམ་པའི་རང་འདྲ་དང་བཅས་པ་ལ་ཕྱག་བྱས་ཏེ། མཉམ་དང་མི་མཉམ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་སྒྲུབ་པའི་ཐབས་ཀྱི་ཚོ་གའི་གནས་ལ་བརྩོན་པར་མཛད་དོ། །

དེ་ལ་དང་པོར་རེ་ཞིག་བརྗོད་པར་བྱེད་པ་ལ་སོགས་པ་བཤད་པར་བྱ་སྟེ། བརྗོད་པར་བྱེད་པ་ནི་དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེའོ། །བརྗོད་པར་བྱ་བ་ནི་རྫོགས་

---

༡ སྟེ་ཿ གཞི། ༢ རྒྱ་དཔེར་ (ཤྲཱིཅེཏ) བསྣན། ༣ རྒྱ་དཔེར་ཿ ཀུ་བོ་ཀ་འདི་ཚིགས་བཅད་གཉིས་ནང་བཀོད་འདུག་པས་རྒྱ་དཔེའི་ཚིགས་བཅད་ཨང་རིམ་དང་བསྟུན་ཆེད་འདིར་ཨང་ ༡ དང་ ༢ སྦྲགས། ༡-༢ ཅེ་ཿ མ།

པའི་རིམ་པའོ། །བརྗོད་པར་བྱ་བ་དང་། རྗོད་[1]པར་བྱེད་པའི་མཚན་ཉིད་ནི་འབྲེལ་བ་སྟེ། སྒྲ་དང་དོན་དག་གི་ཐུན་མོང་གི་མཚན་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ། །བདེ་བླག་ཏུ་རྟོགས་པ་ནི་དགོས་པའོ། །ཡང་དག་པའི་ཡེ་ཤེས་སྟོན་མ་ཅན་ཕྱུག་རྒྱ་ཆེན་པོ་འི་དངོས་གྲུབ་སྟོན་དུ་འགྲོ་བ། འགྲོ་བ་མ་ལུས་པའི་དོན་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་ནི་དེའི་དགོས་པའི་དགོས་པའོ་[2]ཞེས་པ་ནི་བསྡུས་པའི་དོན་ཏོ། །

དཔལ་ཧེ་རུ་ཀར་མངོན་པར་བརྗོད་པ་དེ་ལ་ཕྱག་བྱས་ནས་དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེ་བཤད་པར་བྱའོ་ཞེས་འབྲེལ་ཏོ། །ཛཱི་ཝཱ་ཐྲ་ཞེ་ན། མཉམ་དང་མི་མཉམ་ཞེས་པ་ལ་སོགས་པ་སྟེ། མཉམ་པ་ནི་ཐབས་ཀྱི་རང་བཞིན་རྣམས་དང་། མི་མཉམ་པ་ནི་ཤེས་རབ་ཀྱི་རང་བཞིན་རྣམས་ཏེ། བདེ་བ་ཆེན་པོ་དེ་དང་གཉིས་སུ་མེད་པའི་རང་བཞིན་ཅན་གྱི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཕྱོགས་སུམ་ཅུ་རྩ་བདུན་པོ་ལམ་...... ལྷས་བསྡུས་པ་གང་ཡིན་པ་འདི་རྣམས་ཏེ། ལུས་དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པ་ནས་བརྩམས་ཏེ་ཡང་དག་པའི་ཏིང་ངེ་འཛིན་གྱི་མཐར་ཐུག་པ་གང་གི་རང་བཞིན་...... ཡིན་པ་དེ་ཉིད་ཀྱི་རང་བཞིན་གྱིས་གནས་པ་གང་ཡིན་པ་དེའོ། །དེ་ལ་ཆོས་ཉི་ཤུ་རྩ་གཉིས་པོ་རྣམས་ནི་མཉམ་པ་སྟེ། འཇིག་རྟེན་པའི་ལམ་གྱིས་བསྡུས་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ། །ཆོས་བཅོ་ལྔ་པོ་རྣམས་ནི་མི་མཉམ་པ་སྟེ། འཇིག་རྟེན་ལས་འདས་པའི་ལམ་གྱིས་བསྡུས་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ། །ཡང་ན་མཉམ་པ་ནི་གཡས་ཀྱི་རྩ་ལས་རབ་ཏུ་བྱུང་བར་ཡང་དག་པར་རིག་པ་རྣམས་དང་། མི་མཉམ་པ་ནི་གཡོན་གྱི་རྩ་ལས་རབ་ཏུ་བྱུང་བ་རྣམས་ཏེ། མིག་ལ་སོགས་པའི་རྣམ་པར་ཤེས་པ་དྲུག་རྣམས་སོ་སོར་དགའ་བ་ལ་སོགས་པ་བཞིར་ཕྱེ་བས་དགའ་བ་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞི་རྣམས་དང་། འཁོར་ལོ་བཞི་པོ་ལ་འཇུག་པ་ལ་སོགས་པ་འཇུག་གནས་ལྷུང་གསུམ་གྱི་རིམ་པས་དགའ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུམ་དུ་ཕྱེ་བ་ལས...... དགའ་བ་བཅུ་གཉིས་རྣམས་དང་། ཡན་ལག་ཐམས་ཅད་ཚིམ་པ་ལས་ནི......

---

༡ ཅོ་° བརྗོད། ༢ སྡེ་° དགོས་པའོ་ མི་འདུག

གཅིག་གོ ། །དེ་ལྟར་ན་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཕྱོགས་ཀྱི་ཆོས་སུམ་ཅུ་རྩ་བདུན་གྱི་རང་
བཞིན་གྱིས་གནས་པའི་བཅོམ་ལྡན་འདས་ནི་ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པ་གཅིག་བུའི་སྐུའོ།།
ཕྱི་རོལ་དུ་ཡང་དེ་སྙིད་ཀྱི་མཁའ་འགྲོ་མ་རྣམས་དང་ལྡན་པའོ། །

དེ་ཉིད་འཁོར་ལོའི་དབང་ཕྱུག་ཉིད་དུ་རྟོགས་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར། རང་
ལུས་རྩ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། རང་ལུས་རྣམས་སུ་སྟེ་རང་གི་
ལུས་ཀྱི་སྒོ་བརྒྱད་པོ་རྣམས་སུ་རྩ་གང་ཡིན་པ་འདི་རྣམས་མཐོང་བ་དང་ཐོས་
པ་དང་སྣོམ་[1]པ་དང་མྱོང་བ་དང་རེག་པའི་ཐ་སྙད་དོ། ཕྱི་རོལ་དུ་ཁྲ་གདོང་
མ་ལ་སོགས་པའི་གཟུགས་རྣམས་སོ། །དེ་བཞིན་དུ་འཁོར་ལོ་བཞི་ནི་སྤྲུལ་པ་
ལ་སོགས་པ་རྣམས་ཏེ། ལྟེ་བ་དང་། སྙིང་ག་དང་། མགྲིན་པ་དང་། སྤྱི་
བོའི་གནས་རྣམས་གོ་རིམས་བཞིན་དུ། སྤྲུལ་པ་དང་། ཆོས་དང་། ལོངས་
སྤྱོད་རྫོགས་པ་དང་། ངོ་བོ་ཉིད་ཀྱི་སྐུའི་རང་བཞིན་རྣམས་ཏེ། ཡེ་ཤེས་དང་།
སེམས་དང་། ངག་དང་། ལུས་ཀྱི་འཁོར་ལོའི་བདག་ཉིད་ཅན་དེ་རྣམས་སུ་
གཙོ་བོ་སྟེ། ཀུན་རྫོབ་དང་དོན་དམ་པ་དབྱེར་མེད་པའི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་རང་བཞིན་
སྙིང་པོའི་གཟུགས་ཉིད་ཀྱིས་རྗེ་བོར་གྱུར་པའོ། །

སྔགས་ཀྱི་སྐུ་ཉིད་ཀྱིས་ཀྱང་དེའི་རང་བཞིན་གསུངས་པ། དབྱངས་
ཨཱ་དང་བཅས་[2]ཕྱི་མོ་བཅུ་གཉིས་གསལ་བྱེད་སུམ་ཅུ་རྩ་བཞིས་བརྒྱན། །དབྱངས་
ཨཱའི་ཚིག་གིས་གཅིག་ལྷག་པའི་བཅུ་པོ་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱས་ཏེ། དེ་ལ་ཆོས་
ཀྱི་འཁོར་ལོའི་དབུས་དང་ཕྱོགས་ཀྱི་འདབ་མ་བཞི་ལ་གོ་རིམས་བཞིན་དུ་ཧཱུྃ་ཨོཾ་[3]
ཨཱཿཧྲཱིཾཁཾ་ཞེས་པའི་དབྱངས་ཨཱས་ཉེ་བར་མཚོན་པ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་
རྣམས་ཀྱི་ས་བོན་བཀོད་པ་ལས་ཕྱུང་བ་རྣམ་པར་དག་པའོ། །ལོངས་སྤྱོད་
རྫོགས་པའི་འཁོར་ལོར་ཡང་ཨོཾཨཱཿཨཱིཨཱུཨཱེ་[4]སྟེ་ས་བོན་ཨཱ་རྣམས་བཀོད་པ་

[1] རྒྱ་དཔེར་ (མོད་ན་) བསྣོན་པ། [2] ཅོ་. པ། [3] སྟེ་. ཨོཾ། [4] སྟེ་. ཨེ།

ལས་ཁམས་ལྔ་རྣམ་པར་དག་པའོ། །དེ་བཞིན་དུ་མ་ནིང་བཞི་པོ་སྤྱངས་པའི་ཕྱི་མོ་བཅུ་གཉིས་པོ་གཡོན་དང་འོག་ཏུ་གདོང་དང་། དེ་ཉིད་གཡས་སུ་སྟེང་དུ་གདོང་སྟེ་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞི་རྣམས་ཀྱིས་ནི་ཀ་ཡིག་ལ་སོགས་སྟེང་དང་འོག་གི་······གདོང་རྣམས་མ་ཡིག་གི་རང་བཞིན་གྱི་ཛེ་ས་སྲུ་ང་རོ་དང་བཅས་པ་རྣམས་ཀྱིས···ཡོངས་སུ་བསྐོར་བའོ། །དེ་བཞིན་དུ་དེ་རྣམས་ཉིད་མ་ནིང་དང་བཅས་པའི་བཅུ་དྲུག་པོ་ཉིས[1]''འགྱུར་དུ་གྱུར་པ་ནི་བདེ་བ་ཆེན་པོའི་འཁོར་ལོ་ལ་སྟེ། སྟེང····དང་འོག་གི་ཡི་གེ་གཉིས་སྤྱངས་པ། ཀ་ལ་སོགས་པ་སུམ་ཅུ་རྩ་གཉིས་པོ་ཉིས་འགྱུར་དུ་གྱུར་པ་ནི་སྤྲུལ་པའི་འཁོར་ལོ་ལའོ། །ཙ་ཏི་ཤུ་རྩ་བཞི་དགོད་པའི་ཕྱོགས་ལ་ནི་ཆོས་ཀྱི་འཁོར་ལོའི་མཚམས་སུ་ཡ་ར་ལ་ཝ་རྣམས་སོ། །དྲི་བ་རྣམས་ནི་དེའི་ཕྱི་རོལ་ཏུ་སྟོད་དུ་གྱུར་པས་གནས་སོ། །འཁོར་ལོ་བཞི་པོ་ཡང་དབུས་སུ་དབྱངས་ཀྱི་དང་པོ་དང་སྲིན་གྱི་སྒྲ་དང་ཚངས་པ་དང་མི་འཛིགས''པའི་ཡི་གེ་རྣམས་སོ། །[2]ཛལནྡྷར་ལ་ར་ཡིག་དང་། འོག་སྐོའི་རྩེ་མོར་ཀཱ︎ཡིག་གོ །འདི་རྣམས་ཀྱིས་བརྒྱན་པ་ནི་ཨཱ་ལིའི་རང་བཞིན་གྱི་སྟགས་སོ། །

འདིར་ས་བཅུའི་དབང་ཕྱུག་ཉིད་དུ་རྟོགས་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར་གསུངས་པ། སྐུ་གསུང་ཐུགས་ཀྱི་དབྱེ་བས་གནས་པའི་གནས་ལ་སོགས་པ་བཅུ་རྣམས་ཀྱི་དབང་ཕྱུག་ཅེས་པའོ། །གཞན་ཡང་ཛཱ་ལ་ནྡྷར་ཕྱུག་བྱས་ནས་དཔྱིད་ཀྱི·····ཐིག་ལེ་འཆད་ཅེ་ན། རབ་ཏུ་དགའ་བ་ལ་སོགས་པའི་རང་བཞིན་གྱི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ས་བཅུ་པོ་གང་ཡིན་པ་འདི་རྣམས་གནས་ལ་སོགས་པ་རྣམས་ཏེ། སྐུ་ལ་སོགས་པའི་འཁོར་ལོ་རྣམས་སུ་ལུགས་ལས་བཟློག་པའི་དབྱེ་བས་སྤྱི་བོ་ལ་སོགས་པའི་གནས་རྣམས་སུ་མི་ཕྱེད་མ་ལ་སོགས་པའི་རང་བཞིན་གྱི་རྩའི་གནས་ལ་དེ་རྣམས་དབང་ཕྱུག་སྟེ་ཁྱབ་བདག་གོ །འདི་ནི་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ས་བཅུ་སྟེ། གང་རྣམས་སུ་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཉོན་མོངས་པ་དང་ཤེས་བྱའི''

---

[1] སྡེ་ ༠ གཉིས། [2] སྡེ་ ༠ ཛ།

སྒྲིབ་པ་རབ་ཏུ་བསྒྲིག་པ་ཉིད་ལས་བདེན་པ་མཐོང་བ་སྟེ། རྣམ་པར་མི་རྟོག་པའི་དབྱིངས་མངོན་སུམ་དུ་མཛད་པ་ལས་བསྐལ་པ་གྲངས་མེད་པ་གསུམ་གྱིས་འཐོབ་པར་བྱ་བའི་བྱང་ཆུབ་ཏུ་འགྱུར་བ་ཡིན་དེ།

སེམས་བསྐྱེད་པ་ནི་ས་རྣམས་ལ། །
མོས་དང་ལྷག་བསམ་དག་པ་དང་། །
རྣམ་པར་སྨིན་པ་གཞན་དུ་འདོད། །
དེ་བཞིན་སྒྲིབ་པ་སྤངས་པའོ། ། (མདོ་སྡེ་རྒྱན་༤/༢)

[1]འདིར་ནི་ཕྱུལལྡིར་ལ་སོགས་པའི་བརྟར་བྱས་པའི་ས་བཅུའི་ཀུན་ཏུ་སྤྱོད་པས་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ཐིམ་པ་ལ་སོགས་པའི་རང་བཞིན་གྱི་སྐུ་གསུམ་ཤྲཱ་གཙོ་བོར་[2]རྟོགས་པ་རང་རིག་པ་དཔལ་བདེ་བ་ཆེན་པོ་རྣམ་གྲངས་གཞན་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་རང་བཞིན་དཔལ་ཧེ་རུ་ཀ་ཉིད་ཤིན་ཏུ་སྣུར་བར་མངོན་སུམ་དུ་བྱེད་ཅིང་སྐྱེ་བ་འདི་ཉིད་ལ་རྫོགས་པར་བྱེད་པ་ནི་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཏུ་ཕྱིན་པར་བསྟན་པ་ལས་ཁྱད་པར་རོ། །འདི་ལས་ན་ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པ་ཁོ་ན་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ལ་སགས་པའི་རང་བཞིན་གྱིས་གནས་ལ་སོགས་པའི་ས་རྣམས་ཀྱི་བདག་པོ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར། བཅོམ་ལྡན་འདས་ས་བཅུའི་དབང་ཕྱུག་ཉིད་དུ་རྟོགས་པར་མཛད་པ་ཡིན་ནོ། །གནས་ལ་སོགས་པ་རྣམས་དང་ས་རྣམས་ཀྱི་ངེས་པའི་ཚིག་ནི་གཞི་མཐུན་པ་ཉིད་ལས་ཕྱི་ནས་བཤད་པར་བྱའོ། །

གཞན་ཡང་ཛཱི་ལྷ་བྲ་ཞེ་ན། ཀུན་འགྲོ་སྟེ། ཀུན་ནི་ཕུང་པོ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་ཡིན་ལ། དེ་ལ་ཆོས་ཉིད་ཀྱིས་གནས་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་ཀུན་འགྲོ་སྟེ། ཆོས་ཀྱི་དབྱིངས་སོ། །སེམས་ཅན་ཀུན་གྱི་རང་སྙིང་དབུས་སོན་ཞེས་པ་ལ། སེམས་ཅན་ཀུན་ནི་ཕྱུགས་དང་བྱ་དང་སྦྲུལ་དང་མི་ལ་སོགས་པ་

---

༡ སྒྲ་དཔེར་ (ཨཱདྲིཥྚཙནྡ) ཚིག་འདྲེས། ༢ ཙོ་ ༠ གོ།

རྣམས་སོ། །དེ་རྣམས་ཀྱི་རང་གི་སྙིང་གི་དབུས་སོན་ཏེ། སྙིང་གའི་པདྨ་ཁ་སྦྱོར་དུ་ཞུགས་པ་ཟེའུ་འབྲུའི་ནང་དུ་གནས་པའི་ས་ལ་སོགས་པའི་ཁམས་བཞིའི་རང་བཞིན་སྟེང་དང་འོག་ཏུ་ཉི་མ་དང་ཟླ་བའི་དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་དབུས་སུ་སོན་པ། སྐྲ་རྩེ་བརྒྱ་སྟོང་གི་ཚད་ཕྲ་ཞིང་ཤིན་ཏུ་ཕྲ་བའི་ཆོས་ཀྱི་དབྱིངས་ཀྱི་རང་བཞིན་......འཁོར་ལོར་ཐམས་ཅད་ཀྱི་མཁའ་འགྲོ་མ་དང་དཔའ་བོ་དབྱེར་མེད་པའི་གཟུགས་ཀྱིས་ཐིག་ལེའི་རང་བཞིན་དུ་གནས་པ་སྟེ།

རྟག་ཏུ་སྙིང་ལ་གནས་པ་ཡི། |
ཐིག་ལེ་གཅིག་པུ་ཡི་གེ་མེད། |
དེ་སྒོམ་བྱེད་པའི་སྐྱེ་བོ་ལ། |
མཆོག་གི་ཡེ་ཤེས་སྐྱེ་བར་འགྱུར། |

ཞེས་གསུངས་པ་དང་།

ཁ་སྦྱོར་ཁ་སྦྱར་སྒོམ་པ་ན། |
ཐིག་ལེ་གཅིག་པུ་སྣང་བ་སྟེ། |
ཁ་སྦྱོར་མ་ཡིན་སྦྱར་གྱུར་ན། |
ཐིག་ལེ་ཐིག་ལེ་མིན་ཉིད་འགྲོ། |

ཞེས་གསུངས་པའི་ཕྱིར་རོ། །གཞན་ཡང་ཊཱི་ཀཱ་བྲུ་ཞེ་ན། ནམ་མཁའི་རྣམ་པ་སྟེ། ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རམ་ནམ་མཁའ་ལྟའི་རྣམ་པའི་གསུམ་སྐོར་བ་ལ་སོགས་པའི་རྩ་རྣམས་སུ་རེག་ཅིང་རྟོགས་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ། །

ཡང་གསུངས་པ།

སྤྲ་གའི་དབུས་སུ་ནམ་མཁའ་གང་། |
ནམ་མཁའ་ལྟ་རྣམས་ཀྱིས་བརྒྱན་པ། |
ལྟེ་བ་དང་ནི་གེ་སར་བཅས། |
འདབ་མ་བརྒྱད་ཀྱིས་རྣམ་པར་བརྒྱན། |

ཞེས་པ་ལ་སོགས་པའོ། །མཆོག་ཏུ་ཞི་ཞེས་བྱ་བ་ནི། དོན་དམ་པའི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་རང་བཞིན་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་མཆོག་གོ །སྤྲོས་པ་མེད་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་ཞི་བའོ། །

དེ་བཞིན་དུ་དཔལ་ཧེ་རུ་ཀ་ཞེས་པ་ལ་སོགས་པས་དོན་དམ་པ་དང་ཀུན་རྫོབ་ཀྱི་རང་བཞིན་གྱི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་ཀྱི་ངོ་བོ་ཉིད་དུ་ཡང་དག་པར་རྟོགས་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར་གསུངས་པ་ཡིན་ཏེ། དཔལ་ཧེ་རུ་ཀ་ནི། རྒྱུད་དུ་གསུངས་པའི་རྣམ་པར་ཐར་པ་བཞིའི་བདག་ཉིད་ཅན་ནོ།། ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པ་གཅིག་པུ་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་དེའི་རང་བཞིན་དང་དེའི་ངོ་བོ་ཉིད་དེ་ནི་མཆོག་ཏུ་མྱ་ངན་ལས་འདས་པའི་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་དོ། །དེ་བཞིན་དུ་བཞེངས་པ་ནི། སྤྲུལ་པས་བཞེངས་པའོ། །གང་འདི་ཕག་མོའི་རྣམ་པས་འབྱུང་བར་འགྱུར་བའི་དབྱིད་ཀྱིས་མངོན་པར་ཤེས་པ་ལ་སོགས་པའི་མེ་ཏོག་འབྱུང་བའི་སྨྲོར་བས་ཧེ་རུ་ཀ་དང་ཡང་དག་པར་སྦྱོར་བཞིན་པ་ནི་ཐིག་ལེ་ལྔ་བྱ་སྟེ་ཐིག་ལེར་སྣང་བའི་རང་བཞིན་ཅན་གྱི་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་མེ་འབར་བ། ཕྱུང་པོ་དང་ཁམས་དང་སྐྱེ་མཆེད་ཀྱི་བུད་ཤིང་སྲེག་པར་བྱེད་པ་དེའི་གང་ཡིན་པ་འདི་རྣམས་ནི་སྤྲོ་བ་སྟེ། དབུ་མའི་ལམ་གྱི་སྟེང་དུ་འཁོར་ལོ་གསུམ་ལ་འཇུག་སྟེ། དེས་ན་འབར་བ་སྟེ་དེའི་འོད་དང་འོད་གང་གིས་ཡིན་པ་དེ་ཡིན་ནོ། །དེ་བཞིན་དུ་ལུས་དང་ངག་དང་ཡིད་དེ་རིགས་གསུམ་གྱི་རང་བཞིན་གྱི་རསྣ་ལ་སོགས་པའི་རྩ་གསུམ་པོ་གང་ཡིན་པ་འདི་ནི་རྒྱས་པ་སྟེ། པུལླི་ར་ལ་སོགས་པའི་གནས་རྣམས་དང་། སྤྲུལ་པ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་སུ་རྒྱས་པ་དེའོ། །བསགས་པ་གང་ཡིན་པ་འདི་ནི་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞི་དང་ཉི་ཤུ་ལྷག་པའི་བརྒྱ་དང་། སྟོང་ཕྲག་ཉི་ཤུ་རྩ་གཅིག་དང་། སྟོང་ཕྲག་བདུན་ཅུ་རྩ་གཉིས་ཀྱི་གྲངས་ཅན་གྱི་རྩའི་འཁོར་ལོ་གང་ཡིན་པ་འདི་རྣམས་ནི་མཐའ་ཡས་པའི་དཔའ་མོའི་རང་བཞིན་ཏེ། ཀུན་རྫོབ་བྱང་ཆུབ་སེམས་ཀྱི་རྣམ་པས་དེར་མགོན་པོ་སྟེ་ཁྲབ་བདག་གོ །

ཡང་སྨྲས་པ།

ཀྲང་པ་གསང་བ་བཤད་ལམ་ལྟེ་སྙིང་མགོ་བོ་ལ། |
ཁམས་ཀྱི་དཀྱིལ་འཁོར་དུ་སོན་རི་རབ་རྒྱབ་ཏུ་འགྲོ། |
རྩ་རྣམས་དམ་ཚིག་རྡོ་རྗེའི་པདྨར་སོན་པ་ཡི། |
གཉི་གའི་སེམས་ནི་ཧེ་རུ་ཀ་སྟེ་ཁྲོད་ལ་འདུད། |

གསང་བའི་ཀོ་ཀའི་རྩ་ཡི་ཟླེཙུ་བྲུའི་ནང་དུ་ནི། |
མཁའ་སྟེ་ནམ་མཁའ་ཆེན་པོ་ལྷ་པོ་གནས་པ་ཡིན། |
ཆོས་ཀྱི་དབྱིངས་ཀྱི་ཐིག་ལེ་གཉིས་མེད་གཉིས་སུ་མེད། |
ལྷན་སྐྱེས་བདག་ཉིད་ཧེ་རུ་ཀ་སྟེ་ཁྲོད་ལ་འདུད། |

སྤྲིན་ནག་བརྩེགས་པའི་ནང་དུ་འབྱུ་བའི་གློག་ལས་ནི། |
ལྷག་པའི་འོད་དེ་མཆོག་ཏུ་བརྩེགས་པས་སེམས་ཅན་དང་། |
སྣོད་དུ་བཅས་པ་རབ་ཏུ་སྲེག་པར་བྱེད་པ་ཡི། |
འགྲོ་བའི་མ་སྟེ་ཧེ་རུ་ཀ་མ་ཁྲོད་ལ་འདུད། |

ལྟེ་བའི་འཁོར་ལོའི་སྦུག་པའི་རྩ་ཡི་ཕྱུང་པོ་དང་། |
རྡོ་རྗེ་དང་ནི་རྩ་སྐྱེས་འདུས་པ་ལས་བྱུང་བ། |
བདུད་རྩི་རོ་ཡི་བཏུང་བ་ལ་ནི་ཆེར་སྤྲོད་པའི། |
ཧུ་གདོང་གི་ནི་མེ་འོད་ཁྲོད་ལ་ཕྱག་བགྱིའོ། |

ཞེས་པ་ལ་སོགས་པའོ། །ཆོས་ཀྱི་སྐུའི་རང་བཞིན་གྱིས་ཕྱག་བྱས་ནས། དེ་ལས་གཞན་གྱིས་ཀྱང་ཕྱག་བྱས་པ། འགྲོ་བའི་རང་གཞན་དོན་གྱི་བདེ་བ་ཞེས་བྱ་བས་གསུངས་པ་ཡིན་ཏེ། འགྲོ་བའི་ནི་ཁམས་གསུམ་གྱིའོ།། རང་རིག་པའི་བདེ་བ་ནི་རང་བདེ་བ་སྟེ། རྡོ་རྗེའི་ཁ་ལས་མ་འཕོས་པའི་…… གནས་སྐབས་སུ་ལོངས་སྤྱོད་རྫོགས་པའི་སྐུའི་རང་བཞིན་དང་། དེ་ལས་གཞན་

སྦྱོར་བའི་གདན་ལས་རྣམ་བྱུང་བ[1]། །
ཕྱི་ནང་[2]བཅས་པའི་ཚུལ་གྱིས་ནི། །

ད་གཞན་དོན་གྱི་བདེ་བ་ནི་སྤྲུལ་པའི་སྐུའི་རང་བཞིན་ནོ། །གང་འདིར་འགྲོ་བ་སྐྱིད་པ་དེ་ཁོ་ན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་སྐྱེད་པ་སྟེ། དེའི་རང་བཞིན་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་འགྲོ་བའོ། །དེ་ཁ་སྦྱོར་ཐིག་ལེར་ཡང་གསུངས་པ།

ཁྲག་ནི་མཁའ་འགྲོ་ཀུན་རང་བཞིན། །
པདྨར་སྣང་བ་སྦྱོར་བ་ལས། །
པདྨ་གར་དབང་དུ་ནི་བརྗོད། །
སྙིང་དུ་སྒྲོ་ཞིང་འོད་གསལ་བ། །
རྡོ་རྗེ་ཉི་མ་མཆོག་ཏུ་བཤད།[3] །

དཔལ་ལྡན་རྡོ་རྗེ་མཁའ་འགྲོར་ཡང་།

སྣང་ཞིང་འབར་བ་གང་ཡིན་ཏེ། །
ཐུབ་ཆེན་རྣམ་པར་སྣང་མཛད་དོ། །
དགའ་བྲལ་མཐའ་དེ་རྟ་མཆོག་འདི། །
ལྷུང་རྣམས་སྣ་ཚོགས་འབྱུང་ཕྱིར་རོ། ། ཞེས་སོ། །

འདི་ཉིད་ལས་སྟོན་དུ་གསུངས་པའི་ཚུལ་ཁོ་ནས་ཕག་མོས་ཡང······
དག་པར་འཕྲུད་པའི་སྐུའོ། ༡–༣ །

དཔལ་ཧེ་རུ་ཀ་མངོན་པར་བརྗོད་པ་ལ་མིང་མེད་ཀྱང་ཀུན་རྫོབ་ཀྱིས··
ཤྲཱི་ཧེ་རུ་ཀ་ཞེས་པའི་མངོན་པར་བརྗོད་པ་ལས་བཅོམ་ལྡན་འདས་སུ་རྟོགས······

༡ སེ་° དང་། སྣ་° ཕྱུང་བ། ༢ པེ་° སྣ་° དང་།
༣ རྒྱ་དཔེར་° (སནྣབཛ྄ སམྦུཏྲླཱུཡམ྄) སྐྱེ་རྡོ་རྗེ་ཐམས་ཅད་རྣམ་པར་བྱུང་། ཞེས་མཆིས་སོ།།

འཁོར་ལོ་བདེ་མཆོག་དཔལ་རིམ་ལས། །
དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེ་བཤད་བྱ་སྟེ། ༢ །

པར་བྱའོ། །རྩ་ཡིག་བྲག་ཙ་ལྷ་བྱུའི་སྐབས་དཀའ་ཞིང་ཡིད་འཕྲོག་པ་གང······ལས་དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེ་གང་ཡིན་པ་དེ་ཉིད་ནད྄་སྟེ། དེས་སྒྲ་བྱེད་ཅིང་སྒྲོགས་པ་ནི་ཐིག་ལེ་སྟེ་བཅོམ་ལྡན་འདས་སོ། །འདི་རྣམས་ཉིད་ལས། ནད྄་དང་ཐིག་ལེ་སྒྲོགས་པ་ཁོ་ན་དེ་དག་གིས་སྒོམས་པར་སྒོམས་པ་སྟེ། བསྐྱེད་པའི་རིམ་པ་ལས་འདས་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རྫོགས་པའི་རིམ་པའི་རང་བཞིན་ནོ། །ཕྱག་བྱས་ནས་ཞེས་པ་ནི་སྔ་མ་དང་འབྲེལ་ལོ། །ཇི་ལྟར་ཞེ་ན།

རྣལ་འབྱོར་གནས་ལས་བྱུང་བ་ཡི། །
དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེ་བརྗོད་པར་བྱ། །

རྣལ་འབྱོར་གྱི་གནས་བཞི་པོ་བདག་རང་གཞན་དང་སྤྲུགས་དང་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་དུ་བརྗོད་པ་གོ་རིམས་བཞིན་དུ་ལྟེ་བ་དང་སྙིང་ག་དང་མགྲིན་པ་དང་སྤྱི་བོ······རྣམས་ལས་བྱུང་བ་སྟེ། འགྲོ་བ་དང་འོང་བའི་སྦྱོར་བས་རབ་ཏུ་འཇུག་པ་རྣམས་སོ། །དེ་རྗོད་པར་བྱེད་པའི་སྒྲུབ་པའི་ཐབས་ཀྱི་ཚིག་ལ་ཡང་དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེ་ལ་ཞེས་བརྗོད་པར་བྱ་སྟེ། རོལ་རྟེད་མ་འཕྲོགས་པའི་སྙན་དངགས་བཞིན་ནོ། །འདི་གང་ལས་འབྱུང་བ་ཡིན་ཞེ་ན། བཤད་པ། དཔལ་འཁོར་ལོ་སྡོམ་པ་ཞེས་བྱ་བའི་རྒྱུད་ལས་ཏེ། དེར་གང་ཞིག་ཕྱི་རོལ་དང་ནང་གི་མཚན་ཉིད་དང་། དེ་བཞིན་དུ་སྐྱེས་པ་དང་མ་སྐྱེས་པར་བརྗོད་པའི་རིམ་པའི་ལམ་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་ཀྱི······རང་བཞིན་གྱིས་བཤད་པར་བྱའོ་ཞེས་སྔ་མ་དང་འབྲེལ་ལོ། །དེ་ལྟར་ན་བསྐྱེད་པའི་རིམ་པ་ལ་སུམ་ཅུ་རྩ་བདུན་གྱི་བདག་ཉིད་ཀྱི་དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་འཁོར་ལོ······དང་། རྫོགས་པའི་རིམ་པ་ལ་ནི་དེའི་གྲངས་ཀྱི་བདེ་བ་ཆེན་པོའོ། །གཞན་དུ་རྩའི་འཁོར་ལོ་ཉིད་དུ་ཡང་རྟོགས་པར་བྱེད་དོ། ༢ །

རྡོ་རྗེ་མཁའ་འགྲོ་མ་དཔལ་སྒྲུབ། །
རང་གི་ལུས་ལ་རྣམ་གནས་པ། །
ཤིན་ཏུ་ཉུང་བར་འདོད་རྣམས་ལ། །
གསལ་བར་གོ་བར་[1]བྱ་[2]ཕྱིར་རོ། ༨ །

དཔལ་ལྡན་རྡོ་རྗེ་མཁའ་འགྲོ་མ། ཞེས་པ་ལ་སོགས་པས་དགོངས་[3]པ་གསུངས་ཏེ། བཅོམ་ལྡན་འདས་མ་གང་ཡིན་པ་འདི་ནི་རྡོ་རྗེ་མཁའ་འགྲོ་མའོ། །རྡོ་རྗེ་ནི་གཞོམ་དུ་མེད་ཅིང་འགྱུར་བ་མེད་པ་སྟེ། སྒྲོའི་གནས་སྐུ་གཞོམ་དུ་མེད་པའོ། །མཁའ་འགྲོ་གདོང་ལ་རོ་གཅིག་ཏུ་ཡང་དག་པར་འཛག་པའི་བདུད་རྩི་འོ་མའི་རྒྱ་མཚོ་དཔའ་རླབས་སུ་ཕྱེ་བ་ལ་གྲོལ་བར་འགྲོ་ཞིང་……འགྲོའོ་ཞེས་པ། རྡོ་རྗེ་མཁའ་འགྲོ་མ་སྟེ། ཐིག་ལེའི་ཟེར་མ་སྟོང་ཕྲག་ལྔ་བྱུར་འཕར་བའི་སྐུ་ཅན་གྱི་བཅོམ་ལྡན་འདས་མ་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་མེའི་འོད་དེ་ཕག……མོ་འོ། །དེའི་འོད་དངོས་གྲུབ་ནི་ཆོས་ཉིད་ཀྱི་རང་བཞིན་ཉིད་ལས། རང་བཞིན་ཁོ་ན་རྫོགས་པ་སྟེ། ཐམས་ཅད་ཁོ་ན་རིག་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ། །ཅི་ཕྱི་རོལ་དུ་གནས་པ་ཡིན་ནམ་ཞེ་ན། མ་ཡིན་ནོ་ཞེས་གསུངས་པ། རང་ལུས་ཏེ། ཕུང་པོ་ལ་སོགས་པའི་རང་བཞིན་གྱི་ལུས་ལ་རྣམ་པར་གནས་ཤིང་འདུག་པའོ། ། སྔར་གསུངས་པའི་རིམ་པ་ཁོ་ནས་འདི་ཉིད་ལས་དམིགས་པའི་ཕྱིར་རོ། །དེས་ན་རྒྱུད་རྒྱས་པ་རྟོགས་པར་བྱ་མི་ནུས་པའི་གང་ཟག་འདོད་པ་ཤིན་ཏུ་ཆུང་བ……རྣམས་ཀྱིས་གསལ་བར་ཁོང་དུ་ཆུད་ཅིང་། དེ་རྗེ་ལྟ་བ་བཞིན་དུ་རྟོགས་པར་འགྱུར་བ་ཡིན་ནོ། །རྒྱུ་འདི་ལས་གཞུང་ཤིན་ཏུ་ཉུང་ངུར་རྫོགས་པའི་རིམ་པ་ཡོངས་སུ་རྫོགས་པར་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར་བརྗོད་པར་བྱའོ་ཞེས་བྱ་བའི་དོན་ཏོ། ༨ །

---

༡ སེ་° གོ་བར་ མི་འདུག ༢ སྣ་° གོ་བྱས་རྒྱུ་ཕྱིར་རོ། སེ་° བྱ་ཡི་ཕྱིར་རོ། ༣ སྡེ་° དགོས།

བཅོས་མའི་དཀྱིལ་འཁོར་སྣང་བྱས་[1]ནས། །
བཅོས་མའི་སྦྱིན་སྲེག་ལས་དག་དང་། །
བཅོས་མའི་བསྒོམ་པའི་ལས་དག་དང་། །
བཅོས་མའི་བཟླས་པ་ཉིད་དུ་ནི། ༤ །
དེ་ལ་སོགས་པའི་བཅོས་མ་ཀུན། །
རང་བཞིན་རྣལ་འབྱོར་ཚུལ་[2]གྱིས་སྤང་། །
ཕྱི་རོལ་བཅོས་མ་རབ་བྱ་བ། །
རང་བཞིན་རྟོགས་པར་བྱ་ཕྱིར་དེ། ༥ །

འདིར། རྫོགས་པའི་རིམ་པ་ལ་འཇོགས་པའི་རྣལ་འབྱོར་པའི་⋯⋯ དབང་པོས་དཀྱིལ་འཁོར་དང་སྦྱིན་སྲེག་དང་བསྒོམ་པ་དང་བཟླས་པ་རྣམས་ཇི⋯ ལྟར་བྱ་ཞེ་ན། མ་ཡིན་ནོ་ཞེས་གསུངས་པ། བསྐྱེད་པའི་རིམ་པའམ། སྐུ་གཟུགས་ལ་སོགས་པ་གང་ཡིན་པ་འདི་རྣམས་ཉིད་ནི་ཐམས་ཅད་དུ་དེ་བདགས་པ་ཉིད་ཡིན་པའི་ཕྱིར་དང་། ཕྱི་རོལ་གྱི་ཡོ་བྱད་ཀྱིས་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ཉིད་ཡིན་པའི་ཕྱིར་བཅོས་མ་སྟེ་བྱས་པའོ། །འདུས་པ་ནི། རྣམ་པར་ཉམས་པའི་ཆོས་ཅན་དེ། བུམ་པ་ལ་སོགས་པ་བཞིན་ནོ། །དེས་ན་བརྟན་ཞིང་གཡོ་བ་བྱེད་པ་བྱས་པ་དེ་རྣམས་ཀྱིས་སམ། སྒོམ་པ་རྣམས་ཀྱིས་ཅི་བྱ་ཞེས་དགོངས་སོ། །གལ་ཏེ་དེ་ལྟར་ན་དེ་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་ཅི་ལྟར་བསྟན་ཞེས་དོགས་ན། བཅོས་མའི་བྱ་བ་ཞེས་པ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། སྔར་བཤད་པའི་དཀྱིལ་འཁོར་ལ་སོགས་པ་བཅོས་མའི་བྱ་བ་གང་ཡིན་པ་འདི་རྣམས་ཀྱང་ཡོད་པ་ན་དེའི་རང་བཞིན་ཏེ། དཀྱིལ་འཁོར་ལ་སོགས་པ་རྣམས་ཀྱི་དངོས་གྲུབ་ཀྱི་ངོ་བོ་ཉིད་རྟོགས་ཤིང་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར་བསྟན་པ་ཡིན་གྱི། དེ་ཉིད་འབྲས་བུའི་རང་བཞིན་ནི་མ་ཡིན་ནོ། །འདི་རྣམས་ཉིད་ཀྱི་རང་བཞིན་ནམ་ངོ་བོ་ཉིད་ནི་ལྷན་ཅིག་

༡ སྣ་° སེ་° བྱ་ནས། ༢ སྡེ་° གསུམ།

རང་བཞིན་རྟོགས་པར་གྱུར་བ་ན། །
རབ་ཏུ་བྱ་བ་བྱེད་མིན་ཉིད། །
ཛཱི་ལྷར་ཕ་རོལ་དོན་གཉེར་འགས[1]། །
གཟིངས་ལ་ལེགས་པར་སྦྱོར་འགྱུར་བ། །
ཕ་རོལ་སོན་ནས་འདོར་བར་འགྱུར། །
རབ་ཏུ་བྱ་བའང་དེ་བཞིན་ནོ། ༧ །

སྐྱེས་པའི་དངོས་གྲུབ་སྟེ། འཆད་བཞིན་པའི་དཀྱིལ་འཁོར་ལ་སོགས་པ་ནི་དེའི་རྣལ་འབྱོར་ལ་བརྟེན་ནས་ཐམས་ཅད་དུ་ཕྱི་རོལ་གྱི་བཅོས་མ་ཁོ་ནའོ། །དེས་ན། དཀྱིལ་འཁོར་ལུས་ལ་བསྒོམ་པར་བྱ། །ཞེས་ཀྱང་དགོངས་སོ། །དཀྱིལ་འཁོར་ལ་སོགས་པ་ལ་མོས་པ་རྣམས་རབ་ཏུ་གཞུག་པས་རེ་ཞིག་དེ་སྒོམ་པར་བྱེད་ལ། ཕྱི་ནས་དེ་ཉིད་ཀྱི་སྒོ་ནས་རང་བཞིན་གྱི་དངོས་གྲུབ་སྒྲུབ་པ་དེ་ཡོད་དེ། དེ་རྣམས་ཀྱི་ཕྱི་རོལ་དུ་མངོན་པར་ཞེན་པ་དོར་ནས་ནང་གི་བདག་ཉིད་རྣམས་ལ་འཇུག······པར་བྱེད་དོ་ཞེས་པ་དེ་བསྟན་པ་ཡང་དགོས་པ་དང་བཅས་པ་ཡིན་ནོ།༤_༧།

ཛཱི་ལྷར་ཕ་རོལ་དོན་གཉེར་རྣམས། ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་དཔེ་གསུངས་ཏེ། ཛཱི་ལྷར་རྒྱ་མཚོ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་ཀྱི་ཕ་རོལ་ཐོབ་པ་དོན་དུ་གཉེར་བ་རྣམས་གཟིངས་ཀྱི་བཞོན་པ་དང་སྐྱ་བ་ལ་སོགས་པའི་འབད་པ་ལ······རྟེན་པར་བྱེད་ལ། ཕ་རོལ་ཐོབ་པ་ན་རྫུ་ལྷ་བྱུར་འདོར་བར་བྱེད་དོ། །དེ་ཁོ་ན་བཞིན་དུ་ཕྱི་རོལ་གྱི་དཀྱིལ་འཁོར་ཐོབ་ནས་ནང་གི་བདག་ཉིད་ཅན་རང་བཞིན་གྱི་དངོས་གྲུབ་ཐོབ་པ་དང་ལྡན་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ཐོབ་པ་ན་ཕྱི་རོལ་འདོར་བར་བྱེད······དོ་ཞེས་པའི་དོན་ཏེ། ཛཱི་སྐད་དུ།

ཐབས་བྱུང་ཐོབ་པས་སྤང་བྱ་གང་། །
དེ་ནི་ཐབས་ཞེས་བསྟན་པ་ཡིན། །

---

[1] ཚོ་༠ དགས།

དཀྱིལ་འཁོར་ལ་སོགས་པས་གང་ཞིག །
བཅོས་མའི་བསམ་པས་བྱེད་པ་དག །
ཐམས་ཅད་ལེགས་ཏེ་མི་ལེགས་མིན། །
དེ་རབ་སྤྱར་བ་གསལ་བ་ཡིན། ༨ །

ཞེས་པའི་གསུང་ལས། རིན་པོ་ཆེའི་གང་ཟག་སྔོན་དུ་གོམས་པ་དེ་ནི་བཅོས་པའི་དཀྱིལ་འཁོར་ལ་སོགས་པ་དེ་རྣམས་ཡུད་ཙམ་ཁོ་ནས་མ་བཅོས་པའི་དཀྱིལ་འཁོར་དུ་ལྷག་པར་མོས་པར་བྱེད་ཅིང་བཅོས་མ་མ་ཡིན་པར་བྱེད་པ་ཁོ་ནའོ། །ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཁྱད་པར་རོ། །དེ་ལྟ་བུའི་རིགས་ཅན་ནི་རྟེན་པར་དཀའ་སྟེ། རྫོགས་པའི་རིམ་པ་ལ་ཡིད་ཆེས་པར་དཀའ་བ་ཙནྡན་ལ་སོགས་པ་རྣམས་ཀྱིས་སོ། །མཚན་མའི་ཁྱད་པར་རྣམས་ཀྱིས་དེའི་རིགས་ཅན་དུ་ཤེས་པར་བྱ་སྟེ།

དུ་བ་ལས་ནི་མེར་ཤེས་དང་། །
ཆུ་སྐྱར་ལས་ནི་ཆུ་ཡིན་ཏེ། །
བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཡི་ནི་རིགས། །
བློ་དང་ལྡན་པས་མཚན་མར་ཤེས། །

ཞེས་གསུངས་པའི་ཕྱིར་རོ། ༩ །

འདིར་རེ་ཞིག་རང་བཞིན་ཡོངས་སུ་ཤེས་པ་ཁོ་ན་བྱང་ཆུབ་བོ། །བསྒོམ་པར་བྱ་བཞིན་པ་ཡོད་པ་མ་ཡིན་ན་ཡང་གསལ་བར་འགྱུར་རོ་ཞེས་པ། གསལ་བ་དང་མི་གསལ་བས་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་རྒྱུ་དག་ཏུ་འགྱུར་ཞེས་དོགས་པ་ལ་གསུངས་པ། དཀྱིལ་འཁོར་ལ་སོགས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་སྟེ། བཅོས་མའི་བསམ་པ་ཅན་བརྟགས་པའི་རྣལ་འབྱོར་པ་ལ་དཀྱིལ་འཁོར་ལ་སོགས་པ་ཅན་དང་བཅས་པ་གསུངས་ཏེ། བློ་བཏམ་ཡོད་ལ་བྱའོ། །དེ་ཐམས་ཅད་ལེགས་སམ་

དེ་ཙ་¹ལས་ནི་རབ་འབད་དེ། །
དངོས་མཆོག་²རིག་པའི་རྒྱལ་བ་ཡིས། །
སྒྲ་ཤེས་བྱ་ཕྱིར་བསྟན་བཅོས་གང་། །
དྲང་སྲོང་གིས་བྱེད་ཛཻ་ལྟ་བའོ། ༧ །

མི་ལེགས་ཀྱང་ཙང་སྟེ་དེ་སྒོམ་པར་བྱེད་བཞིན་པ་ལ་རེ་ཞིག་གསལ་བར་འགྱུར་བ་ཡིན་གྱི། དེ་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་ནི་མ་ཡིན་པར་བརྗོད་པར་བྱའོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ལྷག་མ་སྟེ།

རལ་པས་བརྒྱན་ཞིང་འོད་དང་ལྡན། །
ཕྲག་པར་སེ་རལ་དཀར་པོ་དང་། །
སྤྱི་བླུགས་ཐོགས་ཤིང་ཐལ་བ་ཡིས། །
ར་རི་ཅན་དུ་སྤགས་³པ་ཡང་། ། (དབུ་མ་སྣང་བ ༡༡༨)
འདིར་ནི་གང་གང་ཡང་དང་ཡང་། །
སྒོངས་ཆེན་རྣམས་ཀྱིས་སྒོམ་བྱེད་པ། །
དེ་དེའི་མདུན་དུ་སྣང་བར་འགྱུར། ། (དབུ་མ་སྣང་བ་ ༤༥)
ཞེས་གསུངས་པའི་ཕྱིར་རོ། ༨ །

ལས་རབ་འབྱམས་ཡང་དཀྱིལ་འཁོར་ལ་སོགས་པ་ལྟར་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་མ་ཡིན་པར་འགྱུར་རམ་ཞེས་དོགས་པ་ལ་གསུངས་པ་ལས་རབ་འབྱམས་དང་བཅས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་སྟེ། གང་ཡང་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱིས་སྣ་ཚོགས་པས་དུབ་པའི་བསྒྲུབ་བྱ་ལ། ལས་རབ་འབྱམས་དང་ལྡན་པའི་རྒྱུད་བསྟན་པ་ཡིན་གྱི། དེ་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་ནི་མ་ཡིན་ནོ། །དགོངས་པས་ཀྱང་དངོས་པོ་དམ་པ་ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པ་ཡང་དག་པར་རིག་ཅིང་སྤྱང་བར་བྱ་བའི་ཕྱིར་ཏེ། གང་ལས་

---

¹ རྒྱ་དཔེ་ ༠(ཏཏྟ) རྒྱུ། ² རྒྱ་དཔེ་ ༠(ཏཏ) དེ། ³ རྒྱ་དཔེར་ ༠(མཧཏྨ་) སྦྱལ་བ།

དེ་ལྟར་ལས་ཀྱི་རྗེས་འབྲངས་པས། །
མི་རྣམས་རབ་ཏུ་བྱེད་པ་ནི། །
འབད་པས་ཉོན་མོངས་བསླང་བ་ཡིས། །
རང་གི་སེམས་ནི་རྣམ་པར་འཇམས། ༡༠ །

ཞེ་ན། ལས་རབ་འབྱམས་སྒྲུབ་པའི་དོན་དུ་དེ་སྒོམ་པ་ལ་འཇུག་བཞིན་པ་ན། དེའི་སྒོ་ཁོ་ན་ནས་དེ་མངོན་པར་འདུ་བྱེད་པ་འཛིག་པར་བྱེད་པའི་ཕྱིར། རང་བཞིན་གྱི་དངོས་གྲུབ་ཆོས་ཀྱི་བདག་ཉིད་ཅན། མཆོག་གི་ནམ་མཁའི་རྣམ་པ་ཅན་ལྡན་ཅིག་སྐྱེས་པ་ལ་འཇུག་པར་བྱེད་དོ་ཞེས་པའི་དགོངས་པ་ཅན་ཏེ་དེ་ལྟ་བུའི་'' རྒྱུད་བསྟན་པ་དེ་ནི་དོན་མེད་པ་ཉིད་ནི་མ་ཡིན་ནོ། །སྒྲ་ཤེས་ཕྱིར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་དཔེ་གསུངས་ཏེ། ཇི་ལྟར་ཕྱི་རོལ་པའི་དྲང་སྲོང་རྣམས་ཀྱིས། སྒྲ་ཙམ་ཤེས་པའི་སྐད་དུ་དེའི་བསྟན་བཅོས་ཏེ་སྒྲའི་བསྟན་བཅོས་བྱེད་དེ། དེ་བྱེད་པ་ན་འགའ་ཞིག་གིས་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་རྟོགས་པར་འགྱུར་བ་མ་ཡིན་ནོ། །དེ་ཁོ་ན་བཞིན་དུ་ལས་ཀྱི་རྗེས་སུ་འབྲངས་ནས་ཏེ། དེ་དང་མཐུན་པའི་ཁ་དོག་དང་དབྱིབས་འདྲ་''བ་ན། རོལ་མོ་དང་སྒྲ་མཁན་ལ་སོགས་པ་བཞིན་དུ་བྱེད་པ་ཡིན་ཏེ། རིགས་དང་དགེ་བའི་བཤེས་གཉེན་དང་སྔོན་གྱི་བསོད་ནམས་ངསགས་པ་དང་ཡང་དག་པའི་སློབ་ལམ་ཆེད་པས། མི་དེ་རྣམས་ཀྱི་སྦྲོས་པ་མེད་པ་ཉིད་པར་མི་འགྱུར་རོ། །གང་ཞིག་རིགས་ལ་སོགས་པ་དང་ལྡན་པ་དེ་རྣམས་ཀྱིས་དེ་མངོན་སུམ་དུ་བྱེད་པར་འགྱུར་བ་ཁོ་ནའོ། །དེ་ཡང་གསུངས་པ།

རྒྱ་ཆེའི་ཆོས་ནི་ཐོས་པ་དང་། །
བཤེས་གཉེན་བཟང་པོ་བསྟེན་པ་དང་། །
རིགས་ལས་ཀྱང་ནི་འཇུག་པ་སྟེ། །
འདི་ལས་འགྲོད་མེད་བྱེད་པར་འགྱུར། ། (དབུ་མ་སྣང་བ ༢༠༨)

ཞེས་སོ། །

---

༡ སྡེ་དགེ་ ༠ བསྒྲུང་།

དེ་ནས་དཀྱིལ་འཁོར་ལ་སོགས་པའི། །
ཆོ་གའི་བྱ་བའི་ཡན་ལག་ལ། །
འབད་ཀུན་རྣམ་པར་འདྲེན་མིན་ཉིད། །
ངལ་བར་བྱེད་པ་འབའ་ཞིག་ཡིན[1]། ༡༡ །

དེ་ཁོ་ན་ཉིད་རྙེད་པར་མི་འགྱུར་བ་འབའ་ཞིག་མ་ཡིན་གྱི། ཇི་སྲིད་དུ་ལུས་ཉོན་མོངས་པའི་སྦྱོར་བ་ལས་རང་གི་སེམས་རྣམ་པར་བསྒྱོད་པའི་སྒོམ་པ་བྱེད་བཞིན་པ་ནི་བཙོས་མ་སྟེ་དེ་ཡང་ཐོབ་པར་མི་འགྱུར་རོ་ཞེས་པས་གཉི་ག་ཉམས་པའི་ཕྱིར་སྒྲུབ་པ་ནི་རྨོངས་ཤིང་ཆེར་རྨོངས་པ་ཉིད་ཐོབ་པར་འགྱུར་ཏེ། བདེ་བ་དང་ལྡན་པའི་སེམས་ནི་ཏིང་ངེ་འཛིན་དུ་འགྱུར་ལ། མཉམ་པར་བཞག་པའི་སེམས་ནི་ཇི་ལྟ་བ་ཁོང་དུ་ཆུད་པའི་ཤེས་རབ་ཏུ་འགྱུར་རོ་ཞེས་གསུངས་པའི་ཕྱིར་རོ། །དཔལ་གསང་བ་འདུས་པར་ཡང་།

ཐུགས་ཀྱི་སྐུ་ཡི་རབ་སྦྱོར་གྱིས། །
བྱང་ཆུབ་མེད་ཅིང་སྒོམ་པ་མེད། །
དེ་ལྟར་རྣམ་དཔྱད་མདོར་བསྡུས་ནས། །
སྐུ་གསུང་ཐུགས་ཀྱི་རྣམ་པར་ནི། །
བསྒོམ་བྱ་བྱང་ཆུབ་སྦྱོར་བ་ན། །
ཏིང་ངེ་འཛིན་ནི་ཐུགས་སུ་བརྟགས། ། (༦/༤–༦)

ཞེས་པ་ལ་སོགས་པའོ། །དོན་འདི་ཉིད་བཤད་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར། འབད་པས་ཉོན་མོངས་ལྡང་བ་སྟེ། ཞེས་པ་ལ་སོགས་པ་སྟེ་གོ་སླའོ། །༧–༡༡།

---

[1] རྒྱ་དཔེ་༎ དཀྱིལ་འཁོར་ལ་སོགས་ཆོ་གའི་ལས། །
རྣམ་གྲོལ་འདྲེན་པ་མ་ཡིན་པས། །
དེས་ན་ཡན་ལག་ཐམས་ཅད་ནི། །
ངལ་བར་བྱེད་པའི་རྒྱུ་ཡིན་ནོ། །

རྣམ་མིན་[1]རྟོག་ལ་སངས་རྒྱས་མིན། །
རྣམ་རྟོག་བཅས་པས་མིན་དེ་བཞིན། །
ཤིན་ཏུ་རྣམ་དག་ཡོངས་ཤེས་པས། །
མཁས་པ་རྣམས་ནི་འགྱུར་བ་ཉིད། ༡༣ །

ཁ་གཅིག་གིས་སྨྲས་པ། རྣམ་པར་མི་རྟོག་པའི་ཏིང་ངེ་འཛིན་······ རྟོགས་པ་ན་སངས་རྒྱས་ཉིད་རྟོགས་པར་འགྱུར་ཏེ། སྟོང་པ་ཉིད་སྒོམ་པ་ལྟ······ བུའོ། །དེ་གང་གི་ཕྱིར་ན་དེ་ལ་ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པ་དང་རྣམ་པར་བྱེད······ པའི་རྟོག་པ་མེད་པའི་ཕྱིར་སངས་རྒྱས་ཉིད་ཀྱང་དེའི་རང་བཞིན་ཁོ་ནའོ་ཞེ་ན། བརྗོད་པར་བྱ་སྟེ། རྣམ་པར་མི་རྟོག་པ་ལས་སངས་རྒྱས་ཉིད་དོ་ཞེས་པ་དང་། སྟོང་པ་ཉིད་ནི་དེ་ལྟ་བུའོ། །ཞེས་པ་ནི་སྣང་བརྟན་གྱི་རང་བཞིན། གཟུགས······ དང་ཆད་པའི་ཕྱོགས་ཏེ། ཕྱོགས་གཉི་ག་སྤངས་པ་ནི་སངས་རྒྱས་ཉིད་དོ་ཞེས་ པ་དང་འགལ་བའོ། །ཡང་བླ་བ་དང་ཧོ་ཧྲེ་ལ་སོགས་པའི་རིམ་པ་ལས་སྐྱེས······ པའི་ལྷའི་སྐུ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་རྒྱལ་བའི་ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་པའི་རྣམ······ པར་རྟོག་པ་དང་བཅས་པ་ནི་སངས་རྒྱས་ཉིད་འཐོབ་པའི་རྒྱུར་འགྱུར་རོ་ཞེ་ན། དེ་སེལ་བའི་སླད་དུ། རྟོག་བཅས་ཀྱིས་ཀྱང་འགྱུར་མ་ཡིན། ཞེས་གསུངས་ཏེ། འདི་ལྟར་རྣམ་པ་སྣ་ཚོགས་པའི་ཁྱད་པར་ལས་ཀྱང་སངས་རྒྱས་ཉིད་འབྱུང་བ······ མ་ཡིན་ཏེ། ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་པ་དང་ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་པ་མ་ཡིན་པའི་ རྣམ་པར་རྟོག་པ་དག་ནི་བྱེ་བྲག་མེད་པར་འཁོར་བའི་རྒྱུ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ། །ཡང་ གསུངས་པ།

དགེའམ་མི་དགེ་ན་ཡང་རུང་། །
རྟོག་པར་བྱེ་བྲག་ཅི་ཞིག་ཡོད། །
རྟེན་གྱི་དབྱེ་བའི་རྒྱུ་མཚན་གྱིས། །
མེས་སྲེག་ཉིད་དུ་བྱེ་བྲག་མེད། །(དབུ་མ་སྣང་བ ༦-༨)

---

༡ སྡེ་ ༠ སྣིན།

བྱ་བ་རང་བཞིན་ཉིད་དུ་མེད་[1]། །
བྱེད་པ་པོ་ཡང་རང་བཞིན་ཉིད། །
བྱ་དང་བྱེད་པའི་དངོས་པོ་ཡིས། །
རང་བཞིན་ཉིད་ཀྱི་དངོས་པོ་སྤངས། ༡༣ །

ཅེས་སོ། །འོ་ན་གང་ལས་དེར་འགྱུར་ཞེ་ན། ཤིན་ཏུ་རྣམ་དག་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། ཕུང་པོ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་ཀྱི་རང་······ བཞིན་ཡོངས་སུ་ཤེས་པ་ལས་འགྱུར་རོ། །གང་གི་ཕྱིར་ན། ཕུང་པོ་ལ······ སོགས་པ་འདི་རྣམས་རང་བཞིན་ཁོ་ན་ལས་བདེ་བ་ཆེན་པོའི་རྣམ་གྲངས་ལྷན···· ཅིག་སྐྱེས་པ་རྣམ་པར་དག་པ་རྣམས་སོ། །དེའི་ཕྱིར་བྲལ་བའམ་སྦྱོར་བའི····· ཆས་འགའ་ཞིག་གིས་ནི་འདི་རྣམས་བྱེད་པར་ནུས་པ་མ་ཡིན་ནོ། །ཅིག་པ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་ནམ་མཁའ་ལྟ་བུར་རང་བཞིན་ཡོངས་སུ་ཤེས་པ་ཁོ་ན་ཀྱུའི···· གཙོ་བོ་དང་། དེ་བྱེད་པ་ཡིན་གྱི་གཞན་ནི་མ་ཡིན་ནོ་ཞེས་བྱ་བ་འདི་བཤད་པ་ཡིན་ནོ། །དེ་ཡང་སྟོན་པ་པོ་བླ་མ་ལ་རྩེ་གཅིག་པ་དང་དམ་ཚིག་ལ་ཚད་·· མར་བྱེད་པས་ཡིན་གྱི་གཞན་དུ་ནི་མ་ཡིན་ནོ། ༡༣ །

འོ་ན་ཡོངས་སུ་ཤེས་པ་ཡང་ཡོངས་སུ་ཤེས་པར་བྱེད་པ་པོ་ངོར··· ནས་འགྱུར་བ་མ་ཡིན་གྱི། གཉིས་ཡིན་ན་ཇི་ལྟར་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་གཉིས་སུ་མེད་པར་འགྱུར་ཞེ་ན། བྱ་བ་དང་བྱེད་པའི་དངོས་པོ་སེལ་བར་བྱེད་པ། བྱ་བ་རང་བཞིན་ལས་ཡོད་མིན། །ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། དངོས་པོ་རྣམས་ཀྱི་འོང་བ་དང་འགྲོ་བ་ལ་སོགས་པའི་བྱ་བ་དང་བྱེད་པ་པོ་རྣམས་སུ་རྟོགས་པར་དབྱེར་མེད་པའོ་ཞེས་པ་ལ་ཕྱོགས་གཉིས་སོ། །དང་པོ་བྱེད་པ་པོ་ཁོ་ན་ཡིན་ན་བྱ་བ་མི་འཐོབ་ལ། གཉིས་པ་ལ་བྱེད་པ་པོ་ཅི་ཞིག་ཡིན་ཏེ། བྱ་བ་དང་ཐ་

---

༡ སྡེ་° ཡོད།

མི་དད་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ། །དེ་ལ་དེ་དག་གི་འབྲེལ་བ་ཡོད་པ་ན་ཡིན་ནོ་ཞེ་ན། དེའི་བདག་ཉིད་ཡིན་ན་ནི་དབྱེར་མེད་པའི་ཕྱིར་སྔར་བཤད་པའི་སྐྱོན་ནོ། །དེ་ལས་བྱུང་བ་ཡིན་ན་ནི། བྱ་བ་སྐྱེས་པ་ན་བྱེད་པ་ཞིག་པའི་ཕྱིར་གང་གི་བྱ་བ་ཡིན། བྱེད་པ་པོ་དང་བཅས་པར་ཡང་ཇི་ལྟར་བརྗོད་དེ། དངོས་པོ་རྣམས་ནི་སྐད་ཅིག་མ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ན་སུ་ཞིག་གང་ལ་འབྲེལ་བ་ཡིན། རྒྱུན་ལ་གཞག་པའི་འབྲེལ་བ་ཡང་བརྟགས་པ་སྟེ། དངོས་པོ་བ་ནི་མ་ཡིན་ནོ། །དེའི་འདས་པ་ལ་སོགས་པ་ལ་ཡོད་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ།

ཤེས་བྱ་ལས་སྔར་གལ་ཏེ་ཤེས། །
དེ་ནི་ཅི་ལ་དམིགས་ནས་བྱུང་། །
ཤེས་ལས་གལ་ཏེ་ཤེས་བྱ་སྔ། །
དེ་ནི་ཅི་ལ་དམིགས་ནས་བྱུང་། །
ཤེས་དང་ཤེས་བྱས་ལྷན་ཅིག་ན། །
དེ་ནི་ཅི་ལ་དམིགས་ནས་བྱུང་། །

ཞེས་གསུངས་པའི་ཕྱིར་རོ། །བྱ་བ་དང་བྱེད་པའི་དངོས་པོར་གཞག་པ་ཡང་འབྲེལ་བར་བརྗོད་པར་མི་བྱ་སྟེ། རྒྱུ་དང་འབྲས་བུ་དག་ནི་ཕན་ཚུན་ལྡོགས་པ་ཉིད་ལས་མ་གྲུབ་པའི་ཕྱིར་རོ། །དེ་བས་ན་བྱེད་པ་པོ་དང་བྱ་བའི་དངོས་ལས་འདས་པ་འདི་དག་ཐམས་ཅད་ཡིན་ནོ། ཤེས་པ་པོ་དང་ཤེས་པ་ཐ་དད་པ་མེད་པས་གཉིས་སུ་མེད་པའི་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་འགྲུབ་པ་ཁོ་ནའོ། །

དེ་ཡང་ཀུན་རྫོབ་ཏུ་བརྗོད་པ་ཡིན་ནོ། རང་བཞིན་གསལ་བའི་ཡེ་ཤེས་ཀྱང་དེ་ཉིད་དུ་ནུབ་པའི་ཕྱིར་རོ། །དཔེར་ན་མར་ཁྲ་དང་ཐལ་བས་དྲི་མ་མེད་པར་བྱས་པའི་མེ་ལོང་ལ། དབྱུགས་ཐིམ་པ་དང་བསྒྲིག་པར་བྱ་བ་མེད་པས། མེ་ལ་འབར་བའི་ཚོགས་ཐིམ་པ་ལྟ་བུའོ། །བྱེད་པ་པོ་དང་བྱ་བ་ཐ་མི་དད་པའི་སྦྱོར་བ་ནི་གང་ཞིག་གང་ལས་ཐ་མི་དད་པ་དེ་ནི་དེའི་བདག་ཉིད་དེ་བུ་རམ་དང་

དབྱེ་བ་ཀུན་གྱི་རང་བཞིན་ནི། |
ཨ་ཡིག་ཡང་དག་རྣམ་པར་གནས། |
ཐོག་མཐའ་མེད་པའི་ངོ་བོ་ཡིས། |
རིན་ཆེན་རྣམས་ཀྱི་རྒྱ་མཚོ་བཞིན། ༡༨ |

རྟག་ཏུ་འཇིག་རྟེན་ཐ་སྙད་ཉིད། |
དེ་འགལ་འཇིག་རྟེན་པ་མིན་པ། |

མངར་བ་ལྷ་བུའོ། །བྱ་བའང་བྱེད་པ་པོ་ལས་ཐ་མི་དད་པས་[1]འོགས་སུ་བྱ་བ་མེད་པ་སྟེ། རང་བཞིན་གྱི་གཏན་ཚིགས་སོ། །གང་ཞིག་གང་ལས་ཐ་དད་པ་དེ་ནི་དེའི་བདག་ཉིད་མ་ཡིན་ཏེ། བུམ་པ་ལས་སྣམ་བུ་ལྷ་བུའོ། །བྱ་བའང་བྱེད་པ་པོ་ལས་ཐ་དད་ན། དེ་ནི་བྱ་བ་མ་ཡིན་ཏེ། འགལ་བ་དམིགས་པའམ་རྒྱུ་འགལ་བ་དམིགས་པའོ། ༡༣ |

འོ་ན་གལ་ཏེ་དེ་ལྟར་ཡིན་ན་ཆོས་ཐམས་ཅད་ཀྱི་རང་བཞིན་གང་ཡིན་ཞེ་ན། ཀུན་གྱི་རང་བཞིན་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། ཕུང་པོ་ལ་སོགས་པ་ཆོས་ཐམས་ཅད་ཀྱི་རང་བཞིན་ནི། ཐོག་མ་ལས་མ་སྐྱེས་པའི་ངོ་བོ་ཡི་གེ་ཨ་སྤྲུལ་པའི་འཁོར་ལོ་ལ་གནས་པ་རང་བཞིན་གྱིས་གྲུབ་པ་སྟེ། ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ནི་ཐོག་མ་དང་ཐ་མ་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ། །དེའི་དཔེ་ནི་རིན་པོ་ཆེ་རྣམས་ཀྱི་འབྱུང་གནས་རྒྱ་མཚོ་ལྷ་བུའོ། ༡༨ |

གྲུབ་མཐའ་བཤད་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར། རྟག་ཏུ་འཇིག་རྟེན་ཐ་སྙད་ནི། ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། རེ་ཞིག་འཇིག་རྟེན་ནི་གཞན་གྱི་དཔེས་བདག་ལ་སོགས་པ་ཡོད་པའི་ཐ་སྙད་དང་། འཇིག་རྟེན་ལས་འདས་པ་ནི་རང་གི་སྤྱི་པ་སྟེ། དེ་ནི་འགལ་བ་ནི། བདག་ལ་སོགས་པ་མེད་པའི་ཐ་སྙད་དེ།

---

[1] འདི་ནས་རྒྱས་པར་བསྟན་པ་དང་པོ ཉི་མཇུག་བར་གྱི་འགྲེལ་པ་རྒྱ་དཔེར་མ་ཐོབ།

ཡོད་པའམ་ནི་མེད་ཉིད་ཀྱི། །
ཟང་བཞིན་ལས་ནི་ཏྟོགས་མིན་ཉིད། ༡༤ །
འདི་ཉིད་ཀྱིས་ནི་སངས་རྒྱས་ཉིད། །
འདི་ཉིད་ཀྱིས་ནི་གྲོལ་བར་འགྱུར། །
རང་བཞིན་ལམ་ལ་བརྟེན་ནས་ནི། །
ཐམས་ཅད་བྱེད་ཅིང་རྣམ་པར་གྲོལ། ༡༥ །

ཕྱོགས་འཛིན་པ་འདི་དག་གི་འཁོར་བའི་རྒྱུ་ཁོ་ན་ཡིན་ནོ། །འོ་ན་གྲུབ་པའི་མཐའ་ཇི་ལྟ་བུ་ཡིན་ཞེ་ན། ཡོད་པའམ་མེད་པ་ཉིད་ཀྱི་ཡང་། །ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ལ། བསྟན་པ་ཐམས་ཅད་ལ་གྲགས་པའི་ཡོད་པ་དང་། མེད་པ་ལྟ་བ་དག་ཚད་མའི་སྟོབས་ཀྱི་འགྲུབ་པ་སྟེ། དེ་དག་གི་རང་བཞིན་ཇི་ལྟར་མི་དམིགས་པ་དེ་ལྟར་གྲུབ་པའི་མཐའ་ཡིན་ནོ། །དེ་ཅིའི་ཕྱིར་ཚད་མ་ཁོ་ན་མ་གྲུབ་པས་དེའི་གྲུབ་པའི་ལྟ་བ་གང་ལས་འབྱུང་། །གཞལ་བྱ་མེད་པས་དེ་མ་གྲུབ་པ་དང་ཚད་མ་གཞལ་བྱ་དག་ཕན་ཚུན་ལྟོས་པའི་ཕྱིར་རོ། །དེ་བས་ན་ཕྱོགས་གང་ལ་ཡང་མི་གནས་པ་གྲུབ་པའི་མཐའོ། ༡༤ །

དེ་ཉིད་བཤད་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར། །
རང་བཞིན་ཉིད་ཀྱི་སྦྱོར་བ་ནི། །

ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། ཕྱོགས་གཉིས་ལ་མ་ཞེན་པ་ཡོངས་སུ་ཤེས་པ་འདིས་སངས་རྒྱས་ཐོབ་པར་འགྱུར་རོ། །དེ་བས་ན་རང་བཞིན་ཡོངས་སུ་ཤེས་པས་ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པ་རྟོགས་པ་ཡིན་ཏེ། དེ་ཉིད་ལམ་ཡིན་པས་མཐོང་བ་དང་སྒོམ་པ་ལ་སོགས་པ་ནི་མ་ཡིན་ནོ། །དེ་བས་ན་རང་བཞིན་གྱི་ལམ་ལ་བརྟེན་ནས་ཐམས་ཅད་བྱེད་པ་ནི། འདོད་པའི་ཡོན་ཏན་ལྔ་ལ་ལོངས་སྤྱོད་པའམ། འཇིག་རྟེན་ལ་འགྲེལ་བའི་བཟའ་བ་ལ་སོགས་པའམ།

དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེར་བཅོས་མའི་དཀྱིལ་འཁོར་དང་སྦྱིན་སྲེག་དང་མཆོད་སྦྱིན་དང་བཟླས་པ་དང་བསྒོམ་པ་ལ་སོགས་པའི་ཚོ་གའི་བྱ་བ་གཙང་བ་དང་…… འཛིན་པའི་དངོས་པོ་རྣམ་པར་གཅོད་པ་མཚོན་པ་སྔོན་དུ་འགྲོ་བའི་རང་བཞིན་… བཤད་པ་རྒྱས་པར་བསྟན་པ་སྟེ་དང་པོའོ།། །།

སྦྱོད་ལམ་བཞིའམ། འགྲོ་བའི་དོན་དུ་བྱེད་ན་གྲོལ་བ་ནི་ལྟ་བ་ཐམས་ཅད་ཀྱི… བཅིངས་པ་ལས་གྲོལ་བར་འགྱུར་རོ། ༡༦།

དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པ། གསང་བ་ཆེན་པོའི་སྒྲོན་མ་ལས། རྒྱས་པ་བསྟན་པ་དང་པོའི་རྒྱས་པར་བཤད་པའོ།། །།



རྒྱས་པར་བསྟན་པ་གཉིས་པ།

དེ་ནས་མདོར་བསྟན་པ་དང་རྒྱས་པར་བསྟན་པའི་ངོ་བོ་ལ་སོགས་པ་རྒྱུད་ཀྱི་བདག་ཉིད་ཀྱི་ཕུང་པོ་དང་ཁམས་དང་[1]སྐྱེ་མཆེད་ཀྱི་རང་བཞིན་ལུས་ཅན་གང་ཡང་རུང་བ་རྣམས་ཀྱིས་ལུས་ཀྱི་རང་གི་ལྷའི་ངོ་བོ་རྡོ་ལྟ་དང་ངར་འཛིན་པར་བྱའོ། ༡ །

[2]གཟུགས་ནི་སངས་རྒྱས་རྣམ་སྣང་མཛད། །
རྡོ་རྗེ་ཉི་མ་ཚོར་བ་སྟེ། །
འདུ་ཤེས་པདྨ་གར་དབང་ཕྱུག །
དེ་བཞིན་འདུ་བྱེད་རྡོ་རྗེ་རྒྱལ། ༢ །

དེ་ནས་གང་ཡང་རུང་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ལ། དེ་ནས་ཞེས་བྱ་བ་ནི་བསྟན་པ་དང་པོ་ལས་འདས་མ་ཐག་པ་ལའོ། །གཟུགས་ཅན་རྣམས་ནི་རྣམ་པ་བཞིའི་སེམས་ཅན་གྱི་རིགས་གནས་དགུའི་བདག་ཉིད་ཀྱི་འཁོར་བ་ལ་གནས་པ་གང་ཡིན་པ་དེའི་ལུས་ཁོ་ན་ཕུང་པོ་ལ་སོགས་པའི་མཚན་ཉིད་དུ་རྒྱུད་ཀྱི་ནང་ནས་སྟོན་པ་སྟེ། དེ་ཉིད་ལྷའི་མཚན་ཉིད་ནི་དཔའ་བོ་དང་རྣལ་འབྱོར་མའི་རང་བཞིན་དུ་བཤད་པར་བྱའོ། ༡ །

དེ་གང་གི་ཕྱིར་བསྐྱེད་པའི་རིམ་པ་ལ་གདོགས་པའི་ལྷ་ནི་དོན་དམ་པའི་ལྷ་མ་ཡིན་ཏེ་བཅོས་མའི་ཕྱིར་རོ། །གང་ཞིག་རང་བཞིན་དུ་བདེ་བ་ཆེན་

---

༡ སེ་༠ སྣ་༠ ཁམས་དང་། མི་འདུག ༢ རྒྱ་དཔེ་འགའ་ཞིག་ནང་།

གཟུགས་ནི་སངས་རྒྱས་རྣམ་སྣང་མཛད། །
ཚོར་བ་རིན་ཆེན་འབྱུང་གནས་ཉིད། །
སོགས་ཚོགས་བཅད་བརྒྱད་ཙམ་མང་འདུག །

ཕྱོའི་ངོ་བོ་དེ་ཁོ་ན་ལྷ་ཡིན་ཏེ། རིན་ཆེན་འབྱུང་ལྡན་དང་། ངག་གི་དབང་ཕྱུག་གི་རང་བཞིན་ལས་འབྱུང་ཞིང་རོལ་པའི་ཕྱིར་རོ། །འདིར་ནི་རེ་ཞིག་རྡོ་རྗེ་དང་པདྨ་ཡང་དག་པར་སྦྱོར་བ་དང་།[1] བདག་འདི་ཡིན་ནོ་ཞེས་བྱ་བའི་ང་རྒྱལ་[2]རིགས་མི་མཐུན་པའི་ཡིད་བྱེད་པ་སྤོངས་པ་དང་། འགྲོ་བ་དང་འོང་བར་བྱ་བའི་རང་བཞིན་གྱི་སྣང་ང་མཐའ་ཡས་དང་།[3] རིན་ཆེན་འབྱུང་ལྡན་དང་། རྣམ་པར་སྣང་མཛད་དང་། དོན་ཡོད་གྲུབ་པའི་རང་བཞིན་ལ་རྗེས་སུ་ཞུགས་པས་ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པའི་བདེ་བ་དང་ལྡན་ཞིང་རྡོ་རྗེ་འཆང་ཆེན་པོ་དང་ཆོས་ཀྱི་དབང་ཕྱུག་མའི་རང་བཞིན་གྱི་ཕ་དང་མ་དག་གི་སྤྲུལ་པ་བདག་ཡིན་ཏེ། གང་ཞིག་བདག་གི་གཟུགས་ལ་སོགས་པའི་ཕུང་པོ་ལྔ་དེ་ཉིད་རྒྱལ་བ་རྣམས་དང་། གང་ཞིག་བདག་གི་མིག་ལ་སོགས་པ་དང་། ས་ལ་སོགས་པའི་ཁམས་ཏེ། དེ་དག་གཏི་མུག་ལ་སོགས་པའི་འཁོར་ལོས་སྒྱུར་བ་དྲུག་དང་། ལྟུང་བྱེད་མ་ལ་སོགས་པའི་རིགས་ཀྱི་ལྷ་མོ་རྣམས་སོ། །མེར་མེར་པོ་ལ་སོགས་པའི་གནས་སྐབས་ལ་ས་བཅུའི་རང་བཞིན་གྱི་ཟླ་བ་བཅུ་པའི་བར་དུ། དེ་དག་གི་པདྨ་དང་རྡོ་རྗེ་[4]ཐུམ་པར་ཡེ་ཤེས་རྒྱུ་ཡིས་བདག་གི་སྤྱི་བོར་དབང་བསྐུར་བ་དང་། ཕའི་ཐིག་ལེ་ལྟའི་ཅོད་པན་དང་། དེ་དག་གི་རྒྱལ་མཚན་དང་། མཆོག་གི་ཡན་ལག་ཡང་དག་པར་སྦྱོར་བས་རྡོ་རྗེ་དང་དྲིལ་བུའི་དབང་བསྐུར་[5]ཐོབ་པ་དང་། དེ་བཞིན་ཉིད་ཀྱི་སྙིང་པོ་ལ་འགྲོ་བའི་ཕྱིར། དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་མིང་ཐོབ་པ་དང་། དེའི་རྗེས་ལ་མངལ་གྱི་ཆོས་གོས་གོན་པའི་ཕྱིར། བརྟུལ་ཞུགས་ཐོབ་པ་དང་། དབུགས་དབྱུང་དྲུག་དང་ལྡན་པས་ལུང་བསྟན་པ་དང་། དབུགས་དབྱུང་བ་ཐོབ་པ་དང་། ཕའི་སྙོམས་པར་ཞུགས་པ་བཞིན་དུ། དེ་ལ་བཞུགས་པ་ལས་མི་ལྡོག་པའི་ཕྱིར། ཕྱིར་མི་ལྡོག་པའི་དབང་ཐོབ་པ་དང་། བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་བཟའ་བ་དང་། མཚོ་སྐྱེས་ཀྱི་ནང་ན་གནས་པའི་ཕྱིར། གསང་བ་དང་

1 ཅོ་ནེ་° རྣམ་པར་སྦྲལ་བ་དང་། 2 ཅོ་ནེ་° དང་། 3 ཅ་ནེ་° མི་བསྐྱོད་པ་དང་།
4 ཅོ་ནེ་° རྡོ་རྗེའི། 5 བསྐུར་བ།

ཤེས་རབ་ཀྱི་དབང་ཐོབ་པ་དག་ཡིན་ནོ། ཆོས་ཀྱི་དབྱིངས་ཀྱི་རང་བཞིན་ཡིན་ནོ།།
དེ་བས་ན་ཇི་ལྟར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཐམས་ཅད་དེ་བཞིན་དུ་བདག་དང་ཇི་ལྟར་
ཁམས་གསུམ་པ་ཡང་དེའི་རང་བཞིན་ནོ། ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་འདྲ་བའི་ཕྱིར།
གང་ཞིག་ཕུན་སུམ་ཚོགས་པ་ལ་བརྟེན་པ་དེ་ནི་རང་བཞིན་མེད་པའི་ངོ་བོ་ཉིད་....
དུ་དག་པ་ཡིན་ནོ། །དེ་བས་ན་ཆོས་ཐམས་ཅད་རང་བཞིན་གྱིས་དག་པ་དང་།
བདག་དང་རང་བཞིན་གྱིས་དག་པ་སྟེ། ཨོཾ་ཤཱུནྱཏཱཛྙཱནབཛྲསྭབྷཱཝཱཏྨཀོ྅ཧཾ།
དེ་ལྟར་རང་བཞིན་གྱིས་གྲུབ་པའི་རིམ་པ་རྣམ་པར་དཔྱད་ནས། ལུས་པོ་འདི་
ཉིད་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་རང་བཞིན་ཡིན་ནོ་ཞེས་བསྟན་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར།
གཟུགས་ནི་[1]རྣམ་པར་སྣང་མཛད་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། གང་
ཞིག་གཟུགས་ནི་གཟུགས་ཀྱི་ཕུང་པོ་སྟེ། དེ་ཉིད་རྣམ་པར་མཛེས་པའི་ཕྱིར་རྣམ་
པར་སྣང་མཛད་ནི་མེ་ལོང་ལྟ་བུའི་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་རང་བཞིན་ནོ། རྣམ་པ་དང་བཅས་
པའི་ཕྱི་རོལ་གྱི་སྐུ་དཀར་པོ་ཅན་ནི་མ་ཡིན་ནོ། །དེ་བཞིན་དུ་ཚོར་བ་ནི་བདེ་བ་
ལ་སོགས་པ་ཐ་མི་དད་པའི་ངོ་བོ་རང་བྱུང་གི་ཆ་གང་ཡིན་པ་དེ་ཉིད་རྡོ་རྗེ་ཉི་མ...
ནི་མཉམ་པ་ཉིད་ཀྱི་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་རང་བཞིན་གྱི་རིན་ཆེན་འབྱུང་ལྡན་ནོ། རྣམ་པ་
དང་བཅས་པའི་སྐུ་སེར་པོ་ནི་མ་ཡིན་ནོ། །དེ་བཞིན་དུ་འདུ་ཤེས་པདྨ་གར་
གྱི་དབང་ཕྱུག་ཅེས་བྱ་བ་ནི། པདྨའི་ནང་ན་གར་དབང་འདྲ་བའི་བྱེད་པའི་དེ་
ཉིད་དུ་དབང་བྱེད་པས་ན་པདྨ་གར་གྱི་དབང་ཕྱུག་སྟེ[2]། གང་ཞིག་དགེ་བ་ལ་
སོགས་པ་འདི་རྣམས་འདུ་བྱེད་ཅིང་ཆ་གཉིས་པོ་བསྐྱལ་བ་ལས་སྐྱེས་པའི.......
སེམས་ཅན་གྱི་སྤྲུལ་པ་སྣ་ཚོགས་པ་དེ་ཉིད་རྡོ་རྗེ་སྟེ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ....
རྣམས་ཀྱི་དབུས་སུ་གསལ་བའི་ཕྱིར་[3]རྒྱལ་པོའོ། །དཀའ་ཐུབ་ཀྱི་མཐར་དུ...
མཆོག་སྟེ་བྱ་བ་སྒྲུབ་པའི་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་རང་བཞིན་ཡིན་གྱི་སྔོ་བསངས་ནི་མ.......
ཡིན་ནོ། ༢ །

༡ ཅོ་ནེ་。 སངས་རྒྱས། ༢ རྒྱ་དཔེར་。 བསྟན་པ་གཉིས་པའི་འགོ་ནས་འདི་བར་མི་འདུག
༣ ཅོ་ནེ་。 རྡོ་རྗེ།

རྣམ་ཤེས་རྡོ་རྗེ་སེམས་དཔའ་སྟེ། །
ཀུན་གྱི་ངོ་བོ་ཧེ་རུ་ཀ །
མིག་ནི་གདི་ཐུག་རྡོ་རྗེ་ʼʼབརྗོད། །
ཞེ་སྡང་རྡོ་རྗེ་མཐོང་ཐོས་པ། ༢ །

གང་རྣམ་པར་ཤེས་པའི་དངོས་པོ་འདི་རྣམས་ཡོངས་སུ་གཙོད་པར་བྱེད་པ་དེ་ཉིད་རྡོ་རྗེ་ལྟར་མི་ཕྱེད་པའི་སེམས་དཔའ་གང་ཡིན་པ་དེ་ནི་རྡོ་རྗེ་སེམས་དཔའ་སྟེ། སྙིང་སྟོབས་དང་རྟུལ་གྱི་ཆ་གཉིས་པོ་རོ་མཉམ་པར་བྱེད་པའི་མཚན་ཉིད་མི་བསྐྱོད་པ་དང་ཐུགས་ཀྱི་རྡོ་རྗེ་ཤིན་དུ་རྣམ་པར་དག་པའི་ཆོས་ཀྱི་དབྱིངས་ཀྱི་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་རང་བཞིན་ཡིན་གྱི་ཕྱི་རོལ་གྱི་ཁ་དོག་སྔོན་པོ་མ་ཡིན་ནོ། །དེ་བཞིན་དུ་སྔར་གསུངས་པའི་ལྷ་པོ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པའི་བདག་ཉིད་ཅན་དེ། འདིའི་ཡོད་པའོ་ཞེས་པས་ཐམས་ཅད་ཀྱི་གཟུགས་ཅན་ཁྱབ་པར་བྱེད་པ་པོ་བཅོམ་ལྡན་འདས་དཔལ་ཧེ་རུ་ཀ་གང་ཡིན་པ་ནི་དྲུག་པ་རྡོ་རྗེ་འཆང་ཆེན་པོ་སྟེ། ཆོས་ཉིད་ཀྱི་རང་བཞིན་གྱི་བྱང་ཆུབ་ཨ་ཤེས་པར་བྱའོ་ཞེས་པ་ནི་ལྷག་མའོ། །དཔལ་གསང་བ་འདུས་པར་ཡང་གསུངས་པ།

མདོར་ན་ཕུང་པོ་ལྔ་རྣམས་ནི། །
སངས་རྒྱས་ལྔར་ནི་རབ་ཏུ་བསྒྲགས། ། (༡༥།༤༠)

ཞེས་དང་། །དགོངས་པ་ལུང་བསྟན་པར་ཡང་།

ཕུང་པོ་ཁོ་ན་རྫོགས་སངས་རྒྱས། །
བྱང་ཆུབ་དོན་ཕྱིར་རྒྱན་དུ་འབྱུང་། །
དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་བརྗོད་དེ་རྣམས། །
གཉིས་མེད་དེ་བཞིན་ཉིད་དུ་སྦྱོར། ། ཞེས་སོ། །

---

༡ སྦ་ ༠ དོ་རྗེས། ༢ ཙ་ནེ་ ༠ དུ།

ཟླ་གསང་ཐིག་ལེར་ཡང་།

འགྲོ་བ་འདི་ཀུན་སངས་རྒྱས་ལྷ་བདག་ཉིད། །
ལྷ་ཡི་ཟློས་གར་མཆོག་ཏུ་བཀྲ་བ་ལྡོས། །
གང་དུ་བདེ་ཆེན་ཞེས་བྱ་གཅིག་པུ་སྟེ། །
གཅིག་པུ་དུ་མའི་ཉམས་ཀྱིས་གར་མཛད་དོ། ། ཞེས་སོ། །

མཁའ་འགྲོ་མ་རྡོ་རྗེ་གུར་དུ་ཡང་།

མི་བསྐྱོད་ཉིད་ནི་འགྲོ་ཞེས་བྱ། །
འདོད་ཆགས་ཐམས་ཅད་རྣམ་པར་སྤངས། །
རྟག་པ་ཡི་ནི་ཁྲིར་གསུངས་དེ། །
རྡོར་མཚན་རྡོ་རྗེ་ཅན་བྱེ་བ། །
དཔག་མེད་ཚེ་དཔག་མེད་པར་བཤད། །
ནམ་མཁའ་ཇི་སྲིད་བདུན་གྱི་རྒྱལ། ། ཞེས་པ་ལ་སོགས་པའོ། །

དེ་བཞིན་དུ་ཁ་སྦྱོར་དུ་ཡང་།

མ་ལས་སྐྱེས་པ་གསུམ་དང་ནི། །
ཕ་ལས་སྐྱེས་པའི་ཆ་གསུམ་ཉིད། །
ལུས་ཀྱི་ཆ་དྲུག་འདི་རྣམས་ནི། །
དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་ལུས་ཅན་དྲུག །

སྐྱེ་མཆེད་རྣམས་དཔའ་བོ་རྣམས་སུ་སྦྱར་བའི་ཕྱིར། མིག་ལ་གཏི་མུག་རྡོ་རྗེ་བཤད། །ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་དེ། མིག་གཉིས་པོ་གཏི་མུག་རྡོ་རྗེ་སྟེ། གཟུགས་ཀྱི་ཡུལ་ལ་སྲིད་པ་མེད་པ་ཉིད་ཀྱིས་དེ་སྟུད་པའི་ཕྱིར་ན་ཡུལ་གཞན་ལ་རབ་ཏུ་འཇུག་པ་ནི་གཏི་མུག་སྟེ། འོད་གསལ་བའོ། །རྡོ་རྗེ་ནི་མི་ཕྱེད་པ་སྟེ། སྐུའི་འཁོར་ལོ་ལས་སྟོབས་པོ་ཆེར་བཤད

དེ་བཞིན་ཕྲག་དོག་རྡོ་རྗེ་སྐྱ། |

ཁ་ནི་འདོད་ཆགས་རྡོ་རྗེ་[1]བརྗོད། |

རེག་ལ་[2]སེར་སྣ་རྡོ་རྗེ་སྡེ། |

ལྟ་བོ་དེ་དག་སྟོམ་པོའི་ལྷ། ༨ |

སྐྱེ་མཆེད་ཁམས་རྣམས་ཐམས་ཅད་ནི། |

དམ་པའི་དབང་ཕྱུག་ཧེ་རུ་ཀ |

པའོ། །རྣ་བའི་དབང་པོ་ནི་ཞེ་སྡང་རྡོ་རྗེ་སྡེ་ཐུགས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་ལས་ཁཎྜ་ཀ་པཱ་ལའོ། །སྒྲ་འཛིན་པ་ན་རོ་གཅིག་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་ན་རྣམ་པར་རྟོག་པ་གཞན་ལ་སྡང་བའི་ཕྱིར་རོ། ༢ |

སྣའི་དབང་པོ་ནི་ཕྲག་དོག་རྡོ་རྗེ་སྡེ་གསུང་གི་འཁོར་ལོ་ལས་མིག་མི་བཟང་ངོ་། །འདི་ཉིད་ཐམས་ཅད་ཀྱི་བདག་ཉིད་ཡིན་པ་ཉིད་ཀྱིས་དྲི་ཐམས་ཅད་ཉེ་བར་ཟ་བ་པོ་གཞན་ཙུང་ཟད་ཀྱང་མེད་དེ་ཁྱབ་པར་བྱེད་པ་པོ་ཉིད་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ། །ཁ་ལ་ནི། །ཁ་ལ་གནས་པའི་ལྕེའི་དབང་པོ་ནི་ཆགས་པ་རྡོ་རྗེ་སྡེ། གསུང་གི་འཁོར་ལོ་ལས། དང་ཀྱི་སྒྲ་ཅན་ནོ། །རེག་པ་ལུས་ཀྱི་དབང་པོ་ནི་སེར་སྣ་རྡོ་རྗེ་འཁོར་ལོའི་མཐའ་ལས་རྡོ་རྗེ་སེམས་དཔའོ། །དབང་[3]པོ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་ཁྱབ་པར་བྱེད་པ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ན་ཕྱག་རྒྱ་མ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་པདྨ་རིག་པའི་བདེ་བའི་རང་བཞིན་[4]ཁོ་ན་སྐྱོང་ཞིང་གཞན་དུ་མ་ཡིན་པས་ན་སེར་སྣའོ། ༨ |

སྐྱེ་མཆེད་ཐམས་ཅད་ནི་ཡིད་ཀྱི་དབང་པོ་ཧེ་རུ་ཀ་སྡེ་ཐུགས་ཀྱི་འཁོར་ལོའི་མཐའ་ལས་རྡོ་རྗེའི་ལུས་སོ། །དབང་པོ་ཐམས་ཅད་ལ་ཁྱབ་པར་བྱེད་པ

---

༡ སྣ་ ° རྡོ་རྗེར། ༢ རྒྱ་དཔེ་ (ཀཱུཡོ) ཕུས་ནི།
༣ རྒྱ་དཔེ་ ° (ཕྲིར) དབང་པོ། ༤ རྒྱ་དཔེ་ ° (མཆིལ) རང་ཉིད།

[1]ལྷུང་བྱེད་མ་ནི་ས་ཡི་ཁམས། །
ཆུ་ཁམས་གསོད་པར་བྱེད་པར་བརྗོད། ༤ །
འགུགས་བྱེད་མ་ནི་མེ་ཡི་ཁམས། །
རླུང་ནི་གར་དབང་ཕྱུག་མར་བརྗོད། །
ནམ་མཁའི་[2]ཁམས་ཞེས་བརྗོད་པ་ནི། །
པདྨའི་དྲ་བ་མ་འབྲུགས་མ། ༥ །

ཉིད་དུ་ཤེས་པར་བྱ་སྟེ། འཁོར་ལོས་སྡུད་པ་དྲུག་པའོ་ཞེས་ཁ་ཅིག་སྟེ། ཡང་ན་སའི་སྙིང་པོ་དང་ཕྱག་ན་རྡོ་རྗེ་ནམ་མཁའི་སྙིང་པོ་དང་འཇིག་རྟེན་དབང་ཕྱུག་དང་སྒྲིབ་པ་རྣམ་པར་སེལ་བ་དང་དཔལ་ལྡན་ཀུན་དུ་བཟང་པོ་སྟེ་འདི་རྣམས་མིག་ལ་སོགས་པའི་འདུ་ཤེས་དེ་རྣམས་ལའོ་ཞེས་གསུངས་པའི་ཕྱིར་རོ། །གཙོ····
ཅོས་ནི་བདེ་བ་ཆེན་པོས་ཕྱུག་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་འདི་རྣམས་ནི་དཔའ་བོའི་རྣལ······
གྱིས་རྟེན་པར་གྱུར་གྱི། རྡོ་རྗེ་དང་རྡོ་རྗེ་དྲིལ་བུ་འཛིན་པ་ནི་མ་ཡིན་ཏེ། བདག་བ་ཉིད་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ། །དཔལ་གསང་བ་འདུས་པར་ཡང་། །

རྡོ་རྗེའི་སྐྱེ་མཆེད་ཉིད་ཀྱང་ནི། །
བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་དཀྱིལ་འཁོར་མཆོག ། (༡༧།༤༠)

ཅེས་པའི་ཚུལ་གྱིས་སོ། །

ལྷུང་བྱེད་མ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་ཁམས་ཀྱི་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་གསུངས་ཏེ། གང་འདིར་སའི་ཁམས་ནི་རྡུས་པ་དང་ཤ་ལ་སོགས་པའམ། སྤྲུལ་པའི་འཁོར་ལོའམ། སྙོམས་པར་ཞུགས་པའི་དུས་སུ་སྨྲ་བའི་རེག་པ་གང་ཡིན་པ་

---

༡ རྒྱ་དཔེ་ཉག་ཉ་ཞིག་ནང་།
ལྷུང་བྱེད་མ་ནི་དཀར་མོ་འི་དོག །
གསོད་བྱེད་མ་ནི་ནག་མོ་ཉི། །
སོགས་ཚིགས་བཅད་བཅུ་མང་ཉུག ། ༢ གེ༠ ཊ༠ མཁན།

སྟེ་དེ་ནི་ལྷུང་བྱེད་མ་དང་མཁའ་འགྲོ་མའོ། །དེར་མངོན་པར་ཞེན་པའི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་བཅོམ་པ་སྟོང་པ་ཉིད་དང་། དགའ་བ་དང་། དྲུམས་པ་དང་། ཐབས་ཀྱི་རང་བཞིན་དུ་ཤེས་པར་བྱའོ། །གང་འདིར་རྩུའི་ཁམས་ནི་རྩ་དང་ཁྲག་ལ་སོགས་པའམ། ཆོས་ཀྱི་འཁོར་ལོའམ། སྙོམས་པར་འཇུག་པའི་དུས་སུ་གཤེར་བ་ལ་རེག་པ་སྟེ་དེ་ནི་གསོད་བྱེད་མ་དང་ལ[1]མའོ། །དེར་མངོན་པར་ཞེན་པའི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་ཟད་པར་བྱེད་པ་མཚན་མ་མེད་པ་དང་། མཆོག་དགའ་དང་། སྙིང་རྗེ་དང་། སྨོན་ལམ་གྱི་རང་བཞིན་དུ་ཤེས་པར་བྱའོ། །གང་འདིར་མེའི་ཁམས་ནི་ལུས་རྣམས་ལ་དྲོ་བའམ། ལོངས་སྤྱོད་རྫོགས་པའི་འཁོར་ལོའམ། སྙོམས་པར་འཇུག་པའི་དུས་སུ་མེའི་རེག་[2]པ་སྟེ་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་མེ་འབར་བ་དེ་ནི་འགུགས་བྱེད་མ་དང་དུམ་སྐྱེས་མའོ། །དེར་མངོན་པར་ཞེན་པའི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་འཛོམས་པར་བྱེད་པ་སྨོན་པ་མེད་པ་དང་། དགའ་བྲལ་དང་། དགའ་བ་དང་། སྟོབས་ཀྱི་རང་བཞིན་དུ་ཤེས་པར་བྱའོ། །དེ་བཞིན་དུ་གང་འདིར་རླུང་གི་ཁམས་ནི་འགྲོ་བ་དང་འོང་བ་དང་བསྐུམ་པ་དང་བརྐྱང་བའི་མཚན་ཉིད་དམ་བདེ་བ་ཆེན་པོའི་འཁོར་ལོའམ། སྙོམས་པར་འཇུག་པ་ན་སྤྲོ་བ་སྟེ། གནས་པའམ། རྒྱུ་བ་དང་འཛུག་[3]པ་དང་། ལངས་པའམ། ཉིན་དང་མཚན་དུ་ཉི་ཁྲི་ཆིག་སྟོང་དྲུག་བརྒྱའི་དབུགས་རྒྱུ་བའང་རུང་སྟེ། དེར་ནི་གར་གྱི་དབང་ཕྱུག་མ་ཡན་ལག་ཐམས་ཅད་ཀྱི་གར་གྱི་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བའི་ཕྲིན་ལས་ཀྱི་དབང་ཕྱུག་མ་གཏུགས་ཅན་མ་སྟེ། མངོན་པར་འདུས་མ་བྱས་པ་དང་། ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པའི་དགའ་བ་དང་། བཏང་སྙོམས་དང་། ཡེ་ཤེས་ཀྱི་རང་བཞིན་དུ་ཤེས་པར་བྱའོ། །འདི་རྣམས་ཉིད་ལས་དང་། ཆོས་དང་། དམ་ཚིག་དང་། ཕྱག་རྒྱ་ཆེན་པོ་སྟེ། དེ་རྣམས་ཨེ་ཝཾ་མ་ཡཱའི་བརྡས་བསྟན་པ་ཡིན་ནོ། །ཡང་གསུངས་པ།

---

1 ཅོ་ནེ་° དང་། 2 སྣེ་དགེ་° རིག 3 ཅོ་ནེ་° འཛུག

ས་ནི་སྤྱན་མར་བརྗོད་པ་སྟེ། །
རྩ་ཁམས་གསོད་བྱེད་མ་རུ་དྲན། །
མེ་ནི་གོས་དཀར་མོ་ཡིན་ཏེ། །
རླུང་ནི་སྒྲོལ་མར་རབ་ཏུ་གྲགས། །ཞེས་པ་དང་།

གསང་བའི་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་རབ་ཏུ་གསལ་བར་ཡང་།

ཨེ་ཡིག་སར་ནི་ཞེས་བྱ་སྟེ། །
ལས་ཀྱི་ཕྱུག་རྒྱ་སྤྱན་མའོ། །ཞེས་པ་ལ་སོགས་པའོ།།

དེ་བཞིན་དུ། ཀྱེའི་རྡོ་རྗེ་ལས། །
བོ་ལླ་ཀཀྐོ་ལ་ལ་སྦྱོར་བས། །
ས་ནི་དེ་ལས་[1]སྐྱེ་བར་འགྱུར། །ཞེས་གསུངས་པའི་ཕྱིར་རོ།།

དེ་བཞིན་དུ་ནམ་མཁའི་ཁམས་ནི་རྩ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་ཕྱུག་པའམ། དབང་པོའི་སྒོ་རྣམས་ཀྱི་ཕྱུག་པའམ། བ་སྤུའི་བུ་གའི་ནམ་མཁའ་ཡང་རུང་སྟེ། དེ་ནི་པདྨའི་དྲ་བ་ཅན་མ་ཞེས་བྱ་བ་ཕག་མོའོ། །པདྨའི་རྩ་དྲ་བའི་རྩེ་མོ་སྟེ། དེ་ནི་ཆགས་པའི་འདམ་གྱིས་མ་གོས་པ། གཟུང་བ་དང་འཛིན་པའི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་ལས་གྲོལ་བ། སྔར་བཤད་པའི་ཁམས་བཞི་པོ་ལ་ཁྱབ་པ་མོར་རྣམ་པར····
ཞེས་པར་བྱའོ། །ཡང་གསུངས་པ།

ནམ་མཁའི་ཁམས་ཀྱི་གཟུགས་སུ་གནས། །
དེ་ཉིད་མཁའ་སྤྱོད་མ་རུ་དྲན། ། ཞེས་སོ། །

རྡོ་རྗེ་གུར་དུ་ཡང་།

ཁམས་རྣམས་ཀུན་གྱི་དབུས་སུ་གནས། །

ཞེས་གསུངས་པ་དང་།

ནམ་མཁའི་གཅིག་པུའི་རང་བཞིན་གྱིས། །
ཐུབ་པ་ཆེན་པོ་འདིར་བཞུགས་སོ། ། ཞེས་དགོངས་

པ་ལྗོང་སྟོན་[2]པ་ལས་གསུངས་པ་ལས་སོ། ༤—༦ །

[1] ཅོ་ནེ་ ༠ ག། ༤ [2] ཅོ་ནེ་ ༠ བསྟན།

དེ་ལྟར་ལུས་ཅན་རྣམས་ཀྱི་ལུས། །
ཕུང་པོ་ལ་སོགས་ལྔ་བདག་ཉིད། །
བདེ་དང་སྡུག་བསྔལ་དེ་བཞིན་ལས། །
ཉོན་མོངས་ལ་སོགས་ཉེར་ལྡན་པ། །
སྐྱེ་དང་འཇིག་པ་ལ་གནས་དེ། །
སྲིད་དང་མྱ་ངན་འདས་པ་ཐོབ། ༧ །

[1]དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེར་ཕུང་པོ་དང་ཁམས་དང་སྐྱེ་མཆེད་ཀྱི་རང་བཞིན་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་སྐུ་ཇི་ལྟ་བར་གནས་པར་རྣམ་པར་སྣང་མཛད་ལ་སོགས་པ་ལྔའི་ངོ་བོར་བཤད་པ་རྒྱས་པར་[2]བསྟན་པ་སྟེ་གཉིས་པའོ།། །།

འདི་ལྟར་ཞེས་པ་ལ་སོགས་པས་ཉེ་བར་བསྡུ་བ་གསུངས་ཏེ། ཚུལ་འདིས་ཁམས་གསུམ་ན་གནས་པའི་ལུས་ཅན་ཐམས་ཅད་ཀྱི་ཕུང་པོ་ལ་རྟོགས་པའི་ལུས་ནི་ལྔའི་བདག་ཉིད་ཅན་དུ་རྣམ་པར་ཤེས་པར་བྱ་བ་ཡིན་གྱི་ཕྱི་རོལ་གྱི་ཞལ་དང་ཕྱག་ལ་རྟོགས་པ་དང་ལྡན་པ་ནི་མ་ཡིན་ནོ། །གང་གི་ཕྱིར་ན། ཕུང་པོའི་ཟ་མ་ཏོག་གི་ནང་དུ་སོན་པའི་བདེ་བ་དང་། སྡུག་བསྔལ་དང་། ཉོན་མོངས་པ་དང་། ལས་དང་། སྐྱེ་བ་དང་། འཇིག་པ་ལ་སོགས་པ་གང་ཡིན་པ་འདི་རྣམས་ཐམས་ཅད་དུ་དེ་དང་དབྱེར་མེད་པའི་ཕྱིར་ལྔའི་བདག་ཉིད་ཅན་ཁོ་ནའོ། །འཁོར་བ་གང་ཡིན་པ་འདི་ཉིད་མྱ་ངན་ལས་འདས་པ་ཡང་དེ་ཁོ་ན་ཡིན་ཏེ། དེ་དག་གི་དབྱེ་བ་ནི་འགའ་ཡང་ཡོད་པ་མ་ཡིན་ནོ། ༧ །

ཞེས་པ་རྫོགས་པའི་རིམ་པའི་སྒྲུབ་པའི་ཐབས་ཀྱི་ཆོ་ག་དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པ་གསང་བ་ཆེན་པོའི་སྒྲོན་མ་ལས། རྒྱས་པར་བསྟན་པ་གཉིས་པའི་རྒྱས་པར་བཤད་པའོ།། །།

---

༡ རྒྱ་དཔེར° (ཀྲྀ) དམག། ༢ རྒྱ་དཔེར° རྒྱས་པར་མི་གསལ།

རྒྱས་པར་བསྟན་པ་གསུམ་པ།

དེ་ནས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་གང་ཡང་རུང་བའི་སྐུའི་སྐུ་དང་གསུང་དང་ཐུགས་སུ་སོན་པ་ཐ་མ་དང་'འབྲིང་དང་མཆོག་གི་དབྱེ་བས་སློའི་དབྱེ་བ་··· བརྗོད་པར་བྱའོ། ༡ །

ཀ་བ་གཅིག་པ་སློ་དགུ་པ། །
སློམ་པོ་ལྔ་ཡི་ལྷག་པའི་ལྷ། །
བུ་ག་དགུ་ཙ་གྱུར་པའི་སློ། །
རྣམ་པ་དགུ་ཙ་ཡོངས་སུ་གྲགས། ༢ །

ལུས་ཅན་ཐམས་ཅད་ཀྱི་ལུས་ནི་རེ་ཞིག་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་བདག་ཉིད་ཅན་ནོ་ཞེས་ལེའུ་གཉིས་པས་རྟོགས་པར་བྱས་པ་དེ་རྣམས་ཀྱི་གང་ལས····· འཇུག་པ་དང་འབྱུང་བར་གྱུར་པ་དེ་རྣམས་ཀྱི་ཐ་མ་དང་། འབྲིང་དང་། མཆོག་གི་དབྱེ་བས་སློ་རྣམས་རྟོགས་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར་དེ་ནས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་·· མདོར་བསྟན་པ་ལ་འཇུག་སྟེ། དེའི་དོན་གོ་སླའོ། ༡ །

ཀ་བ་གཅིག་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་རྒྱས་པར་བསྟན་པ་གསུངས་ཏེ། གང་འདི་རྣམས་ཐམས་ཅད་ལྷའི་སྐུ་ཅན་ཏེ། དེར་ཀ་བ་གཅིག་ནི་སྐལ[2]་ཚོགས་ཀྱི་སྒྲས་བརྗོད་པར་བྱ་བ་རྒྱབ་ཀྱི་ཕྱོགས་སུ། བཤང་ལམ་དང་། ལྟག་པ་དག་གི་བར་ལས་བརྩམས་ཏེ། དེ་ཛཱི་སྲིད་དུ་ཨབྡུ་དའི་མཐིལ་དུ་ཁྱབ་པར་གནས་པ་ཀ་བ་ལྟ་བུའོ། །གང་གི་གཡོན་དང་གཡས་ཀྱི་ལོགས་དག་ཏུ་དཔའ་བོ་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞི་ལྟ་བུ་དང་། ལོགས་སུ་གནས་པའི་ཐིགས་[3]པ་དཔའ་བོ་རྣལ་འབྱོར་མའི་རང་བཞིན། འཁོར་ལོ་གསུམ་གྱིས་བསྡུས་པར་རིག་པར་བྱ་སྟེ། གང་དུ་དེ་རྣམས་ཀྱི་དབུས་སུ་འཇུག་བཞིན་པ་དེའི་དེན་གྱི་དབུག་པས་འོག་དང་། ལྷའི་

༡ སྣེ་༠ ཐམས་ཅད། སྣ་༠ ཐ་མ་དང་མི་འདུག ༢ སྣེ་༠ སྒྲ་སོགས།
༣ རྒྱ་དཔེར་༠ ཟླ་ཝ་འབྲུ་ (ཀཱཾ ཀྲཱུ) འདུག

གནས་སྒྲ་ཧེ་རུ་ཀའི་རང་བཞིན་གྱི་ཀང་རུས་ཆེན་མོའི་ཟློལ་གྱིས་ཕྱེ་བ་དེ་ལྟ་བུ་
གང་གི་ཡིན་པ་ནི་ཀ་བ་གཅིག་པའོ། །ཁ་སྐོར་དུ་ཡང་གསུངས་པ།

ལོགས་ཀྱི་རྩིབ་མ་བཅུ་གཉིས་དག །
ཉིས་འགྱུར་དུ་ནི་གྱུར་པ་ལས། །
དཔའ་བོ་རྣལ་འབྱོར་མ་ཚོགས་ཀྱིས། །
ཀུན་ནས་ཡོངས་སུ་བསྐོར་བའོ། །
སྐལ་ཚོགས་དགུག་པའི་རྣམ་པ་འདི། །
མཆོག་གི་ཧེ་རུ་ཀ་ཡི་རྟེན། །
ཕྱུང་པོ་ཁམས་སོགས་སངས་རྒྱས་ཀྱིས། །
ཀ་བ་ཞེས་ནི་མངོན་བརྗོད་བྱ། །ཞེས་པ་དང་།

དཔལ་རྡོ་རྗེ་མཁའ་འགྲོ་ཡང་།

ཇི་ལྟར་ཀ་བ་ཆེན་པོ་ཡིས། །
རོལ་པའི་ཁྱིམ་ནི་གཟུང་བྱ་བ། །
དེ་བཞིན་སྒོ་དགུ་ཅན་གྱི་ལུས། །
སྐལ་ཚོགས་ཉིད་ཀྱིས་གཟུང་བར་བྱ། ། ཞེས་སོ། །

ཡང་ན་ཀ་བ་གཅིག་ལྟ་བུའི་ཀ་བ་སྟེ་ཨབཏྣཏྲཱིཎོ། །རྩ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་འཁོར་ལོ་འཛིན་པ་ལ་འདི་རྣམས་ནི་བརྗོད་པ་ཁོ་ན་ལས་རྩ་རྣམས་ཀྱི་དབུས་སུ་ཀ་བ་གཅིག་སྟེ།

ལྟེ་བའི་དབུས་ན་འཁོར་ལོ་ཆེ། །
སྐྱིད་པ་བཅུ་དྲུག་དང་ལྡན་པ། །
ཁ་སྐོར་བྱེད་པའི་སྐོར་བ་ཡིས། །
ཡི་གེ་ཨ་དང་ཡང་དག་ལྡན། །

ཐམས་ཅད་གཞི་''ཡི་ངོ་བོ་ཉིད། |
དེ་ཡི་དབུས་སུ་གནས་པ་གང་། |
ཀ་བར་གྱུར་པ་རྒྱལ་མོ་ཆེ། |
དེ་ནི་ཨབཧྣཀྲུདྲཱི་ར་བསྒྲགས། | ཞེས་བྱ་བ་འབྱུང་ངོ་།།

འཁོར་ལོ་ཆེན་པོར་ཀ་བ་བཅུ་དྲུག་གིས་སྨྲས་པའོ། །ཨ་ཡིག་དང་ཡང་དག་པར་སྦྱོར་བ་ཁ་སྦྱོར་གྱི་སྦྱོར་བ་ལས་ཐམས་ཅད་ཀྱི་རྟེན་གྱི་རང་བཞིན་''གྱིས་དེར་དབུས་སུ་རྣམ་པར་གནས་པ་ཡིན་ནོ། །ཀ་བར་གྱུར་པ་རྣམས་ཀྱི་''རྒྱལ་པོ་ཆེན་མོ་དེ་ནི་ཨབཧྣཀྲུདྲཱི་ར་རབ་ཏུ་བསྒྲགས་སོ། གཞན་ཡང་ཛེ་ཏྭ་བྲ་ཞི་''ན།[2] རྒྱུན་དགུ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས། སྒོ་དགུ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ། མདོར་བསྟན་པའི་རྒྱས་པར་བཤད་པ་གསུངས་ཏེ། རྒྱུན་དགུ་རྣམས་ནི་མིག་གཉིས་དང་། རྣ་བ་གཉིས་དང་། སྣ་གཉིས་དང་། ཁ་དང་། གསང་བ་དང་། བཤང་ལམ་དུ་བརྗོད་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ལ་དེ་སྐད་ཅེས་བྱའོ། །རེ་རེ་ལ་ཡང་''སྒོ་རྣམ་པ་དགུར་རབ་ཏུ་བསྒྲགས་ཏེ། དེ་ལྟར་མིག་གི་དབང་པོ་ནི་ས་དང་། ཆུ་དང་། མེ་དང་། རླུང་དང་། ནམ་མཁའ་དང་། རྣམ་པར་ཤེས་པ་དང་། དགེ་བ་དང་། མི་དགེ་བ་དང་། གཉི་གའི་སེམས་ལས་བྱུང་བའི་ཆོས་དང་''ལྡན་པ་ཉིད་ལས་དགུར་རབ་ཏུ་དབྱེ་སྟེ། དེ་ལྟར་གཞན་ལ་ཡང་རྟོགས་པར་''བྱའོ། །དེ་རྣམས་ཀྱང་སངས་རྒྱས་ལྔ་དང་རྣལ་འབྱོར་མ་བཞིའི་རང་བཞིན་''ཏེ། དེ་ལྟར་ན་སྒོ་དང་སྒོ་ནི་དགུའི་བདག་ཉིད་ཅན་གྱི་དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་འཁོར་ལོར་གསུངས་སོ་ཞེས་ཤེས་པར་བྱའོ། །ཡང་དེ་བཞིན་དུ་སྒོ་ཡང་དགུ་ཕྲག་''དགུའོ་ཞེས་པས། ལུས་ལ་སྒོ་བརྒྱད་ཅུ་རྩ་གཅིག་ཏུ་ཤེས་པར་བྱ་སྟེ། དེ་རྣམས་ལས་འཛག་[3]པ་གང་ཡིན་པ་དེ་རྣམས་ཀྱང་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཉིད་དོ་ཞེས་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱའོ། ༢ །

---

[1] ཅོ་ནེ་ ༠ བཞི། [2] འཁོར་ལོ་ཆེན་པོར་ཞེས་པ་ནས་ཛེ་ཏྭ་བྲ་ཞི་ན་བར་རྒྱ་དཔེར་མི་འདུག [3] ཅོ་ནེ་ ༠ འཇིག

ཐ་མ་སྐྱུ་དང་ལྡན་པའི་སྒོ། །
སྦོམ་པོ་ལྷ་ཡི་སྤྲུལ་པའོ། །
གཞན་པའི་སྒོ་ནི་རྣམ་པ་བཞི། །
གསུང་དང་ལྡན་པ་འཁྲིང་དུ་བརྗོད། ༢ །

མེ་ཉིད་དང་ནི་རླུང་ཉིད་དང་། །
དབང་ཆེན་དང་ནི་དེ་བཞིན་ཆུ། །
འཁོར་ལོ་སེམས་ཀྱི་ཀུན་སྤྱོད་ལས། །
སྟེང་ལོགས་ཐད་ཀ་འོག་ཏུ་གནས། ༣ །

དེའི་དོན་ནི། ལུས་ཅན་གྱི་ནི་ཐ་མའི་སྒོ། །རིགས་''པའི་ལྷ་ཙ་སྤྲུལ་པ་ཡིན། །ཞེས་བྱ་བས་གསུངས་ཏེ། ལུས་ཅན་གྱི་སྒོ་གང་ཡིན་པ་དེ་ནི་རྣམ་པ་དགུ་དང་ལྡན་པ་སྟེ། དེ་ཉིད་ནི་ཐ་མ་སྟེ་སྣང་བཞིན་པའི་གཟུགས་ཉིད་ཀྱི''' ཕྱིར་དང་། ཕྱི་རོལ་གྱི་གཟུགས་སུ་རབ་ཏུ་གསལ་བའི་ཕྱིར་དང་། ཤིན་ཏུ་འཇིག་ཅིང་འབབ་པའི་ཕྱིར་ན་ཐ་མ་སྟེ། དམན་པའི་ཕྱིར་ནི་མ་ཡིན་ནོ། །འདི་རྣམས་ཉིད་ལས་རགས་པ་སྟེ། སྒོ་གཞན་ལ་ལྟོས་ནས་གཟུགས་ལྟ་བུའོ། །སྤྲོར་བཤད་པའི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་ལྷ་མོ་དགུ་པོ་འི་རང་བཞིན་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར''''' ལྷ་ཙ་རྣམ་པར་སྤྲུལ་པ་ཡིན་ནོ། །གཞན་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་ངག་གི་སྒོ་མདོར་བསྟན་པ་གསུངས་ཏེ། ལུས་དང་སེམས་དག་གི་བར་དུ་འཇུག་བཞིན་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་འཁྲིང་པོ་སྟེ། ངག་གི་སྒོ་ནི་རྣམ་པ་བཞིར་ཤེས་པར་བྱའོ། ༢ །

མེ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་རྒྱས་པར་བཤད་པ་གསུངས་ཏེ། འདིར་བཞི་པོ་ནི། མེ་དང་། རླུང་དང་། དབང་ཆེན་དང་། ཆུར་བཤད་པ་རྣམས་ཏེ། གོ་རིམས་བཞིན་དུ་མགྲིན་པ་དང་། ལྟེ་བ་དང་། གསང་བ་དང་། སྙིང་

---

༡ ཅོ་ནེ་ ༠ རྒས།

གར་གནས་པ། པདྨ་གར་གྱི་དབང་ཕྱུག་དང་། ཏ་མཆོག་དང་། རིན་ཆེན་འབྱུང་ལྡན་དང་། མི་བསྐྱོད་པའི་རང་བཞིན་ཅན་དུ་མ་སྐྱེས་མ་དང་། གཟུགས་ཅན་མ་དང་། ལམ་དང་། མཁའ་འགྲོ་མའི་རང་བཞིན་ཏེ། གཡས་དང་། གཡོན་དང་། གཅིག་དང་། རེངས་ཤིང་དཔལ་བར་རྒྱུ་བ་ཅན་དམར་པོ་དང་། ལྗང་གུ་དང་། སེར་པོ་དང་། དཀར་པོའི་ཁ་དོག་ཅན་རྣམས་སོ། །གཙོ་བོའི་ཡོན་ཏན་གྱིས་ཕྱེ་བས་ཕན་ཚུན་དུ་གྲངས་བཞི་པ་སྟེ། ཉིན་དང་མཚན་དུ་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞིར་རྒྱུ་བ། འཇུག་པ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་ཀྱིས་བརྒྱ་ཕྲག་བཅུ་དྲུག་ལྷག་པའི་ཁྲི་ཕྲག་གཉིས་ཀྱི་དབུགས་འབབ་པ་ནི། ལུས་ཐམས་ཅད་ཀྱི་རྩ་འཁོར་ལོ་རྣམས་སུ་རང་རིག་པས་རིག་པར་བྱའོ། །གང་རྣམས་སུ་རླུང་འབབ་པར་རྣམ་པར་ཤེས་པའི་སྐད་ཅིག་སོ་སོ་ལ་རྒྱུ་ཞིང་རབ་ཏུ་འཇུག་པ་ནི་འགྲོ་བ་དང་འོང་བའི་རྣལ་འབྱོར་གྱིས་རྟོགས་པར་བྱའོ། །དེ་རྣམས་ཉིད་ནི་ངག་གི་སྒོ་སྟེ། གཡོན་དང་གཡས་དང་དབུས་ཀྱི་རྩའི་བུག་པ་དང་ལྡན་པ་དེ་རྣམས་ཉིད་ལས་བཅོམ་ལྡན་འདས་མའི་ཡི་གེ་ཕྱི་མོ་འཆར་བར་བྱེད་དོ། །རྒྱུ་དང་འབྲས་བུ་ཐ་མི་དད་པའི་ཕྱིར་དེ་རྣམས་ཉིད་ངག་གི་སྒོར་བསྟན་ཏོ། །དེ་གསལ་བའི་གནས་ནི་ཁ་ཡིན་ནོ། །དེ་རྣམས་ཀྱང་མེ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་འཇུག་པ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་སོ། །ཅི་ལྟར་ཞེ་ན། སྙིང་དུ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། གོ་རིམས་བཞིན་དུ་མེའི་དཀྱིལ་འཁོར་ནི་སྙིང་དུ་རབ་ཏུ་འཇུག་སྟེ། བྱིན་ཟ་གྱེན་དུ་འབར་བའི་ཕྱིར་རོ། །རླུང་གི་དཀྱིལ་འཁོར་ནི་ལོགས་ཀྱི་སྒོ་དག་ལས་འབབ་སྟེ། རླུང་དག་ནི་འཁྱོག་པོར་འགྲོ་བའི་ཕྱིར་རོ། །དབང་ཆེན་ནི་དྲང་པོར་རེག་[2]ཅིང་འབབ་སྟེ། དེའི་མཉམ་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ། །ཆུ་ནི་འོག་ཏུ་འབབ་སྟེ། ཆུ་རྣམས་ནི་ཐུར་ཁ་ནར་འབབ་པའི་ཕྱིར་རོ། །ཡང་གསུངས་པ།

---

༡ སྡེ་དགེ་。ཆེན། ༢ རྒྱ་ དཔེར་。(སྣར་ཐང) གསལ་བར།

གཡས་ལས་བྱུང་བའི་འོད་ཟེར་ནི། །
དེ་ནི་ཕྱིན་ཟླའི་དཀྱིལ་འཁོར་དེ། །
འདི་ནི་ཁ་དོག་དམར་པོར་གསལ། །
འདི་ལ་པདྨ་མགོན་པོ་ལྷ། །

དུང་དང་ཀུནྡ་ལྟ་བུར་དཀར། །
རིངས་ཤིང་དལ་བར་རྒྱུ་བ་ཡང་། །
འདི་ནི་ཆུ་ཡི་དཀྱིལ་འཁོར་དེ། །
འདི་ལ་རྡོ་རྗེ་མགོན་པོ་ལྷ། ། ཞེས་སོ། །

ཇི་སྐད་དུ། སྒྲོན་མ་[1]བཞི་པར་ཡང་།

འགྲོ་བ་བཞི་ནི་སྟེང་དང་ནི། །
ཡོགས་དང་དྲང་པོ་འོག་ཏུ་ཡང་། ། ཞེས་སོ། །

ཁ་སྦྱོར་དུ་ཡང་།

མེ་དང་ངེས་པར་རླུང་དང་ནི། །
དེ་བཞིན་དབང་ཆེན་དང་ནི་ཆུ། །
འཁོར་ལོར་སེམས་ཀྱི་རྒྱུ་བ་ལས། །
སྟེང་ཡོགས་དྲང་པོ་འོག་ཏུ་འགྲོ། ། ཞེས་པ་དང་།

དགོངས་པ་ལུང་སྟོན་ལས་ཀྱང་།

མེ་དང་ངེས་པར་རླུང་དང་ནི། །
དེ་བཞིན་དབང་ཆེན་དང་ནི་ཆུ། །
འཁོར་ལོ་སེམས་ཀྱི་རྒྱུ་བ་ལས། །
སྟེང་ཡོགས་དྲང་པོ་འོག་ཏུ་འགྲོ། །

---

[1] རྒྱ་དཔེར་ ཨུཙྪི་ཙཎྜཀ་འདུག

གསུམ་པའི་སྒོ་ནི་ཡིད་དང་བཅས། །
ཟླ་བ་ཉི་མ་རབ་དབྱེ་བས། །
གཟུག་དང་འབྱུང་བ་ཉིད་ལ་ནི། །
སྒོ་ནི་དམ་པ་ཉིད་ཡིན་དེ། ༤ །

དེ་རྣམས་དབུས་སུ་རང་ལྷ་ཉིད། །
པན་ཚུན་དུ་ནི་བཞི་པ་སྦྱོར། ། ཞེས་སོ། ༨ །

ཐུགས་ཀྱི་སྒོ་གསུངས་པ། གསུམ་པ་ནི་སྐུ་དང་གསུང་གི་སྒོ་ལ་ལྟོས་ནས་སོ། །ཡིད་ཀྱི་ཞེས་པ་ནི་ཡིད་ཙམ་དུ་རྟོགས་པར་བྱ་བའོ། །ཅི་ལྟར་ཞེ་ན། ཟླ་བ་ཉི་མའི་རབ་དབྱེ་ལས། ཞེས་པ་སྟེ། ཟླ་བ་ཉི་མ་ནི་གཡོན་དང་གཡས་ཀྱི་རྩ་སྟེ། གཉིས་པོ་འི་དབྱེ་བས་འབབ་པ་ལས་དང་། སྟེང་དུ་རླུང་གི་རིམ་པས་སྲོག་དང་རྩོལ་བ་དང་། འོག་ཏུ་རྫས་ཀྱི་རིམ་པས་ཁུ་བ་དང་ཁྲག་འབབ་པ་ལས་སོ། །འདི་ལས་ན་ཕྲ་མོའི་རྣལ་འབྱོར་གྱིས་རྟོགས་པར་བྱ་བ་ཁོ་ན་ཡིན་པའི་ཕྱིར་མཆོག་གི་སྒོའོ། །དེ་བཞིན་དུ་ཡང་། འཇུག་དང་འབྱུང་བ་ཉིད་ལས་ཀྱང་། །ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་ཏེ། སྟེང་དུ་སྲོག་དང་རྩོལ་བ་དག་གི་དང་། འོག་ཏུ་རྫས་དག་གི་འཇུག་པ་དང་འབྱུང་བ་དག་ལས་སོ།། ཡང་ན་འོག་གི་འཇུག་པ་ལས་དང་། སྟེང་ནི་འབྱུང་བ་ལས་སོ། །འདི་མཆོག་གི་སྒོ་ཡིན་ན། ཅི་ཞིག་གི་སྒོ་ནས་སུ་ཞིག་འཇུག་པ་ཡིན་ཞེ་ན། འོག་གི་སྒོ་ནས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། ལལནའི་ལམ་ནི་འོག་གི་སྒོའོ། ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་པའི་ཤེས་པ་ནི་རྣམ་པར་ཤེས་པ་སྟེ། བདེ་བ་ཆེན་པོར་[1]འཇུག་པའི་འཇུག་པ་ལས་སྣང་བ་གཉིས་པོ་འི་འོག་ཏུ་འཇུག་པ་ན་ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པ་འཆར་བའི་ཕྱིར་དཔྱིད་ཀྱི་དུས་སུ་སྣང་བར་འགྱུར་རོ། །

---

[1] རྒྱ་དཔེར་[ཨཱུཁཱུན] བརྗོད་པ།

གཙོ་བོའི་མཆོག་གི་སྒོ་མོ་ནི། |
འོག་དང་སྟེང་དུ་[1]རབ་ཏུ་གྲགས། |
འོག་གི་སྒོ་ནས་རྣམ་པར་ཤེས། |
སྟེང་གི་སྒོ་ནས་ཁམས་ཡིན་ཏེ། ༦ |

རྣམ་སྣང་ལ་སོགས་སངས་རྒྱས་རྣམས། |
སྟེང་གི་སྒོ་ནི་གཡོ་ཞིང་གནས། |
དེ་རྣམས་འོག་ཏུ་རྣམ་པར་གནས། |
སྟེང་གི་སྒོ་ནས་གཤེགས་སུ་གསོལ། ༧ |

རས་ཉར་བརྗོད་པ་ནི་སྟེང་གི་སྒོ་འོ། ཁམས་རྣམས་ནི་ས་ལ་སོགས་པའི་རང་བཞིན་[2]མིག་ལ་སོགས་པའི་དྲི་མ་རྣམས་སུ་སྣང་ངར་འགྱུར་ཏེ། རྩལ་པའི་དྲི་ལ་སོགས་པ་དུར་ཁྲོད་ཀྱི་གཟུགས་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ། །ཡང་ན་*འོག་གི་སྒོ་ནས་རྣམ་པར་ཤེས་པ་ལ་སོགས་པའི་ཕྲུང་པོ་ལྔ་པོ་ལུས་ཅན་རྣམས་ཀྱི་ལུས་ལ་སྣང་བར་འགྱུར་ཏེ། ཕྲུང་པོ་ལྔ་པོ་ནི་ནང་གི་བདག་ཉིད་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ། །སྟེང་གི་སྒོ་ནས་ས་ལ་སོགས་པའི་ཁམས་འབྱུང་བ་ལྔ་པོ་སྐྱེ་བར་འགྱུར་ཏེ། ཕྱི་རོལ་གྱི་ཕྱོགས་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ། ༥_༦ |

དེ་བཞིན་དུ་མིག་ལ་སོགས་པའི་རྣམ་པར་ཤེས་པ་དྲུག་གི་ཚོགས་གང་ཡིན་པ་འདི་རྣམས་ནི་རྣམ་པར་སྣང་མཛད་ལ་སོགས་པའི་སངས་རྒྱས་རྣམས་ཀྱི་རང་བཞིན་གྱི་གཟུགས་ལ་སོགས་པའི་ཡུལ་དྲུག་པོ་འཛིན་པའི་སྐད་དུ་སྟེང་གི་སྒོ་ནས་གཡོ་བ་རྣམས་ཏེ། འཇུག་བཞིན་པ་དེ་རྣམས་ཀྱི་ཡུལ་ལྷར་མཐོང་བར་ཞེན་པའི་སྒོ་ནས་འདོད་པ་རྫོགས་པ་རྣམས་གནས་པ་ནི་འཇུག་པར་རིག་པར་བྱའོ། །ནང་དུ་རབ་ཏུ་འཇུག་པ་དེ་རྣམས་སླར་ཡང་སྟེང་གི་སྒོ་ནས་

[1] ཅོ་ནེ་ ༠ དང་། [2] ཅོ་ནེ་ ༠ ན་མི་བཏུག

གདོང་བར་བྱེད་དེ་རང་གི་ལྷ་ལ་ཉེ་བར་ལོངས་སྤྱོད་པའི་སྐད་དུའོ། །ཡང་ན་བདེ་བ་ཆེན་པོའི་འཁོར་ལོ་ལས་རྣམ་པར་ཤེས་པ་སྡེ་ཁྲུད་པར་དུ་འཕགས་པའི་ཤེས་པ་དང་ལྡན་པ་འོག་གི་སྒོ་ནས་ལལནའི་ལམ་གྱིས་པདྨའི་ནང་དུ་ཐོབ་པར་འགྱུར་རོ། །རྣལ་འབྱོར་གྱི་སྟོབས་ལས་དེ་ཉིད་སྟེང་གི་ལམ་ནས་བཀུག་པ་ནི་ཁམས་ཏེ། ཁམས་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞི་རྒྱས་པར་བྱེད་ཅིང་གནས་དང་པོ་བཞི་རྣམས་སུ་སྐྱེ་བར་བྱེད་དོ། །ཡང་སྐབས་པ།

ཉི་མ་རྣམ་པར་རྒྱས་པའི་འོད་ཀྱིས་མཛེས་མ་ནི། །
སྟོབས་ཆེན་སྨྲ་ཡི་’’གོས་ཀྱིས་མཛེས་པའི་ཛེའུ་འབྲུ་ལས། །
མགོ་བོའི་རྩེ་མོར་སྐྱེག་ཅིང་ལེགས་པར་ཡོངས་གང་བའི། །
འོད་ཀྱིས་མཚན་པའི་རི་བོང་ཅན་ནི་སར་པ་འཆར། །
སྣ་ཚོགས་མེ་ཏོག་རོ་ཡིས་སྒྲོས་པའི་རིག་པ་ཡང་། །
སྒྱུར་དང་དལ་བ་བར་མ་ལ་ནི་གླུང་གི་སྒྲ། །
བྱུང་བ་ཉེར་ལྷགས་མཚན་ཕྱེད་དགའ་སྟོན་ཆེན་པོར་ནི། །
འཇོན་པར་བྱེད་ཅིང་དེར་སོན་བློ་ནི་ངོ་མཚར་རོ། །
འཆར་བའི་ནུབ་པ་ཉེར་འོངས་མཚན་མོར་བྱེད་པ་སྐར། །
འདི་ལས་ཀུང་ནི་གཡོ་མེད་ཅོད་པན་ལ་ནི་འཆར། །
མཐའ་གཉིས་པ་ཡི་ཆ་ཟད་སྐད་ཅིག་ལ། །
ཟླ་བ་ཉི་མ་སྣང་བར་འགྱུར་མ་ཡིན། །
རྒྱ་མཚོའི་རྒྱུ་ཡི་དབུས་སུ་ཉི་མ་འཆར་བ་སྟེ། །
རྩེ་མོ་ལས་ཀུང་ཟླ་བ་ནུབ་པར་འགྱུར་བ་ཡིན། །
སོང་བའི་སྟེང་གི་སྒྲ་གཅན་འཛིག་དུས་མེ་འདྲེས་ནི། །
འོག་གི་བསིལ་ཟེར་བྱེད་པ་དག་ནི་ཁྱུར་མིད་བྱེད། །

༡ ཙོ་ནེ་ ༠ ཡིས།

སྤྲུན་འདྲེན་ག་ཞིགས་སུ་གསོལ་ཚུལ་དང་། །
འགྲོ་འོང་རབ་ཏུ་གནས་རྣམས་ཀྱིས[1]། །
དུས་གསུམ་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་དང་། །
མཁའ་འགྲོ་རྣལ་འབྱོར་མ་མོ་རྣམས། ༨ །

པདྨ་ཅན་ནི་པདྨའི་བཞིན་ཏེ་སྤྲུན་མ་རུ། །
རབ་ཏུ་གསལ་ཏེ་ཡུལ་དང་ཡུལ་ཅན་འདྲེས་པ་ཡིན།།
དང་པོར་མི་ཤེས་[2]འདི་ནི་དེ་ལས་གཞན་དུ་ན། །
རྡོ་རྗེ་རྒྱ་སྐྱེས་གཉིས་པོ་འདྲེས་པ་འདི་རུའོ། །
སྐད་ཅིག་སྐྲུབ་པ་པོ་ནི་ས་ངོན་ཉིད་[3]པ་ལས། །
སྙོམ་པ་གསུམ་པོ་ཐོབ་པར་འགྱུར་ཏེ་བཞི་པ་ཅན། །
ལྷན་སྐྱེས་མི་ཟད་གནས་ཀྱི་ཆ་ཤས་ཐྲིང་བ་ནི། །
བླངས་བའི་དུས་སུ་བཟོད་པ་དང་བྲལ་ལྷག་པའོ། །
གལ་ཏེ་ལེགས་པར་བསླབ་པའི་རྡོ་རྗེ་སློག་མོ་དང་། །
བླ་མ་ཡི་ནི་ཞལ་ནས་རྟོགས་ཤིང་ཐོབ་འགྱུར་པ། །
གང་གི་ཡིན་པ་དེ་ཚེ་མཆོག་འབྲིང་སྒྲུབ་པ་ནི། །
རྣམ་པར་ངེས་པ་ཐོབ་འགྱུར་དེ་ནི་དེ་ཉིད་རིག ། ཅེས་སོ། ༩ །

དེ་ཉིད་འགྲོའོ་དེ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་གསུངས་ཏེ། འདིས་ནི་སྟེང་དང་འོག་གི་སྒོ་འི་དབྱེ་བས་འགྲོ་བ་དང་འོང་བའི་ཚུལ་དེ་ག་ཞིགས་སུ་གསོལ་བ་དང་། སྤྲུན་དྲང་བའི་ཚུལ་གང་དག་ཡིན་པ་དེ་དག་གི་དུས་གསུམ་པའི་སངས་རྒྱས་ཐམས་ཅད་དེ་འཁོར་ལོ་གསུམ་དུ་གནས་པའི་དཔའ་བོ་ཉི་ཤུ

---

[1] རྒྱ་དཔེར༌ སྤྲུན་འདྲེན་ཀ་སོགས་རྒྱལ་གྱི་ནི། །
འགྲོ་འོང་རབ་ཏུ་རྣམ་པར་བྱེད༌། ། ཅེས་འདུག

[2] རྒྱ་དཔེར་ (ཨོཾ་ག) ཡན་ལག [3] ཙ་ནེ་ ཅེར།

འཇུག་པ་དང་ནི་ལྡོག་པ་དང་། །
ཡོན་ཏན་སྐྱོན་གྱི་རང་བཞིན་དང་། །
བདེ་དང་སྡུག་བསྔལ་རང་བཞིན་གྱི[1]། །
ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པའི་ཚུལ་ལས་གྲུབ། ༩ །

[2]དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེ་[3]ཕྲུང་པོ་དང་། ཁམས་དང་སྐྱེ་མཆེད་ཀྱི་བདག་

རྩ་བཞི་རྣམས་དང་། ཉི་ཤུ་རྩ་ལྔ་པ་དཔལ་ཧེ་རུ་ཀའོ། །དེ་བཞིན་དུ་མཁའ་འགྲོ་མ་རྣམས་ནི་ཉི་ཤུ་རྩ་བརྒྱད་དེ། ཡེ་ཤེས་དང་། ཐུགས་དང་། གསུང་དང་། སྐུའི་འཁོར་ལོར་གནས་པ་མི་ཕྱེད་མ་ལ་སོགས་པའི་རྩ་ཡི་ནང་དུའོ། །སྦྱོར་བའི་མ་ནི་གྲུབ་པའི་དཔའ་བོ་དང་། ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པའི་རྣལ་འབྱོར་མ་རྣམས་མིག་ལ་སོགས་པའི་སྒོ་ནས་རྩའི་རང་བཞིན་གྱིས་གནས་པ་རྣམས་སོ། །ཡང་ན་ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་གྲུབ་དེ་རང་བཞིན་གྱིས་གྲུབ་པ་ཁོ་ན་འདིར་རྣམ་པར་གཞག་པ་ཡིན་གྱི་བརྟགས་པ་ནི་མ་ཡིན་ནོ། །དབྱེ་བ་ཛཱི་ཕྲ་བྲ་ཡིན་པ་སྟོན་པར་བྱེད་དེ། འཇུག་པ་དང་ལྡོག་པ་དང་། སྐྱེ་བ་དང་འཇིག་པ་དང་། ལྡང་[4]བ་དང་། འཇུག་པ་དང་། མཉམ་པར་གཞག་པ་དང་། མཉམ་པར་མ་བཞག་པ་དང་། ཡོན་ཏན་དང་སྐྱོན་དང་། ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པ་དང་། རྣམ་པར་བྱང་བ་དང་། བདེ་བ་དང་། སྡུག་བསྔལ་དང་། བདེ་བ་དང་མི་བདེ་བ་ལ་སོགས་པའི་...... རང་བཞིན་གྱི་འདུས་བྱས་ཀྱི་བདག་ཉིད་ཅན་སྒོ་གསུམ་ནས་འཇུག་བཞིན་པ་དེ་ཐམས་ཅད་ནི་ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་གྲུབ་སྟེ། དཔའ་བོ་དང་རྣལ་འབྱོར་མའི་རང...... བཞིན་དུ་ཤེས་པར་བྱའོ། ༨—༩ །

---

༡ རྒྱ་དཔེར། (སརྦབསྟུ) ངོ་བོ་ཉིད་ཀྱི། ༢ རྒྱ་དཔེར། (ཤྲཱི) དཔག། ༣ རྒྱ་དཔེར། དཔག་དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེར། ཅེས་འདུག ༤ ཙོ་ནེ། སྣང་།

ཉིད་ཀྱི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་སྐུའི་[1]དབྱེ་བས་བཤད་པ་རྒྱས་པར་[2]བསྟན་པ་... སྐུ་གསུམ་པའོ། །

ཞེས་པ་རྫོགས་པའི་རིམ་པའི་སྒྲུབ་པའི་ཐབས་ཀྱི་ཚིག་དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པ་གསང་བ་ཆེན་པོའི་སྒྲོན་མ་ལས་རྒྱས་པར་བསྟན་པ་........ གསུམ་པའི་རྒྱས་པར་བཤད་པའོ།། ༎



---

[1] ཕྱི་དཔེར་༠ (ཏྭར) སྦྱོ་ཞི། [2] ཕྱི་དཔེར་༠ རྒྱས་པར། མི་གསལ།

རྒྱས་པར་བསྟན་པ་བཞི་པ།

དེ་ནས་[1]དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་གང་[2]ཡང་རུང་བའི་སྐུའི་གནས་ལ་སོགས་པའི་ས་བཅུའི་གནས་བསྟན་པར་བྱའོ[3]། ༡ །

ཙ་རྣམས་གང་ཞིག་བྱ་ག་དགུའི། །
སྒོ་རྣམས་དགུ་ལ་ཡང་དག་གནས། །
ལྷ་གའི་ནང་གི་བཅུ་པ་ནི། །
དེ་དག་རྣམས་ཀྱི་ཆེ་[4]མཆོག་གཞན། ༢ །

སྒོ་གསུམ་པོའི་གནས་ལྷའི་འཁོར་ལོར་རྫོགས་པར་བྱ་བ་དེའི་གནས་ལ་སོགས་པ་ས་བཅུའི་རིམ་པས་གནས་པར་བསྟན་པར་བྱའོ། །དེ་ནས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། སྒོ་རྒྱས་པར་བསྟན་པའི་དེ་མ་ཐག་ཏུ་གསུངས་པས་ན། དེ་ནས་སོ། །གང་ཡང་རུང་ཞེས་པ་ནི། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་གང་ཡང་རུང་བའི་སྟེ། སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ཀྱི་ཐུན་མོང་བ་ཡིན་གྱི། བདག་ཉིད་ཁོ་ནའི་མ་ཡིན་པའོ། .གནས་ལ་སོགས་པ་ནི་གནས་ཏེ། བསྟན་པར་བྱ་སྟེ་ཞེས་བྱ་བར་འབྲེལ་ལོ། ༡ །

རྒྱུན་དགུ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་དེ་གསུངས་ཏེ། སྔར་གསུངས་པའི་སྐུའི་སྒོ་རྣམས་གང་ཡིན་པ་ནི་རྒྱུན་དགུའོ། །དེ་རྣམས་སུ་གནས་པ་ནི་ཙ་རྣམས་གང་ཡིན་པ་སྟེ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་ལྷ་དགུའོ། །དེ་བཞིན་དུ་མགོ་བོ་ནས་བརྩམས་ཏེ་ལྷ་གའི་དབུས་སུ་སོན་པའི་ཨབདྷཱུ་ཏཱིའི་ཆ་ཤས་བཅུ་པོ་ཁོ་ན་སངས་རྒྱས་དང་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས་ཀྱི་ས་བཅུར་བརྗོད་པར་བྱའོ། །བདེན་པ་མཐོང་བ་ལས་ནང་དུ་དེ་སྦྱོང་ཞིང་མཐོང་བ་དེའི་ཚེ་འབད་པ་མང་པོས་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བའི་མཐོང་བའི་ལམ་ལ་སོགས་པས་ཅི་ཞིག་བྱ་ཞེས་བྱ་བར་དགོངས་སོ། ༢ །

---

༡ སྣ་. དེ་ནས། མི་གསལ། ༢ པེ་. གང་། མི་འདུག ༣ རྒྱ་དཔེར་. སྐུའི་གནས་བཅུ་ལ་སོགས་པའི་ས་བསྟན་པར་བྱའོ། ཞེས་གསལ། ༤ རྒྱ་དཔེར. (ཤྲེཥྛ) ཆེས། སྣ་. ཆོས་མཆོག

དཔྲལ་བའི་གནས་ནས་བརྩམས་ནས་ནི། |
ཧཾ་ཡིག་འཁོར་ལོ་གདན་ལ་དབབ། |
སུམ་ཅུ་རྩ་གཉིས་ཉིད་མཚན་དུ། |
བྱང་ཆུབ་སེམས་རྣམས་འཛག་པའོ། ༢ |
གནས་ལ་སོགས་པའི་ངོ་བོར་བརྗོད། |
ཕྱི་དང་མཐུན་པར་ནང་ན་གནས། |

ས་བཤད་ནས། སའི་གནས་གཞན་གསུངས་པ། དཔྲལ་བ་ཞེས་པ་ལ་སོགས་ཏེ། འདིར་ལུས་འདི་ལས་དཔྲལ་བའི་གནས་བདེ་བ་ཆེན་པོའི་འཁོར་ལོ་ནས་བརྩམས་ཏེ། རྩའི་འཁོར་ལོའི་ངེས་པ་སྟེ་གདན་ལ་ཕབ་པ······ཤེས་པར་བྱའོ། །དེ་ལྟར་ན་དེར་སོན་པའི་སུམ་ཅུ་རྩ་གཉིས་ཁོ་ན་འོངས······སྤྱོད་རྫོགས་པ་ལ་སོགས་པ་དག་ཏུ་རབ་ཏུ་བྱུང་བ་སྟེ། གཙུག་ཏོར་གྱི་འཁོར་ལོ་ལུས་ཀྱི་ཤིང་གི་རྩ་བ་ཉིད་ཡིན་པའི་ཕྱིར་འདི་ཁོ་ན་ལས་འོག་ཏུ་ཡལ་ག་སྟེ་ལུས་ནི་ཤིང་ངོ་། །དེ་ལ་ལག་པ་གཉིས་དང་རྐང་པ་གཉིས་ཏེ་བཞི་ལ་ཁ་འོག་ཏུ་བལྟས་པའི་རྩ་ཉི་ཤུ་དང་། ཕྱོགས་གཉིས་དང་རྒྱབ་སྟེ་གསུམ་པོ་ལ་རྩ······གསུམ་དང་། སྙིང་ག་དང་རྡོ་རྗེ་ལ་རྩ་དྲུག་དང་། ལྟེ་བ་རྒྱུད་དུ་བཅིངས···པའི་རྩ་གསུམ་འཁོར་ལོ་བཞིའི་མཆོད་རྟེན་གྱིའ། །དེ་ལྟར་དཔྲལ་བ་ཁོ་ན······ལས་རྩའི་འཁོར་ལོ་ངེས་པ་ཡིན་ནོ། །རྣལ་འབྱོར་མ་ནི་སུམ་ཅུ་རྩ་གཉིས་པོ་དེ་རྣམས་ཏེ། བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་གང་ཡིན་པ་ནི་དེ་དང་མཚུངས་པར་འབབ་པོ། །དེ་ཁོ་ན་ཁཎྜ་ཀཱ་པཱ་ལ་ལ་སོགས་པའི་དཔའ་བོ་རྣམས་སོ། །རྡོ་རྗེ་གདུམ་པོ་ལ་སོགས་པ་ནི་དཔའ་བོ་ཆེན་པོ་སྟེ། རྡོ་རྗེ་གདུམ་པོ་ནི་དཔལ་ཧེ་རུ་ཀའོ།། དོན་དེ་བྱང་ཆུབ་སེམས་ནི་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་གསུངས་ཏེ། ༢ |

འདི་རྣམས་ཕྱི་རོལ་དུ་རྒྱུའི་སྒོ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་དང་། རྣག་གི···ཏྲི་ལ་སོགས་པའི་རྣམ་གྲངས་རྣམས་དང་། གདུམ་དྲག་ལ་སོགས་པ་རྣམས···

མཁའ་སྤྱོད་རྣལ་འབྱོར་མ་རྣམས་བརྒྱད། |
ས་སྤྱོད་མ་ཡང་དེ་བཞིན་གཞན། ༨ |
གང་ཞིག་ས་འོག་གནས་མ་སྟེ[1]། |
དེ་དག་ཐམས་ཅད་ལེགས་པར་ནི། |
གནས་གཞན་རབ་ཏུ་དབྱེ་བ་ཡིས། |
སྐུ་གསུང་ཐུགས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་གནས། ༩ |

སུའོ། །ནང་དུ་ནི་སྤྱི་བོ་ལ་སོགས་པའི་གནས་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞི་གནས་པ་རྣམས་ཀྱི་ཡུལ་གྱི་མིང་ཛཱ་ལནྡྷ་ར་ལ་སོགས་པ་རྣམས་སུའོ། །མཁའ་སྤྱོད་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་དེའི་རྣམ་པར་དབྱེ་བ་གསུངས་ཏེ། པུལླཱི་ར་ནས་བརྩམས་ཏེ་མཱ་ལ་བའི་བར་གྱི་རྩ་གང་ཡིན་པ་དེ་རྣམས་ནི་མཁའ་སྤྱོད་མའོ། །ཀཱ་མ་རཱུ་པ་ནས་བརྩམས་ཏེ། ཧི་མ་ལ་ཡའི་བར་ནི་ས་སྤྱོད་མའོ། །པྲེ་ཏ་པུ་རཱི་ནས་བརྩམས་ཏེ་ཀུ་ལུ་ཏའི་བར་གྱི་ས་འོག་ན་གནས་པ་རྣམས་ཏེ། ལུས་ཀྱི་སྟེང་དང་བར་དང་ཐ་མའི་དབྱེ་བ་ལས་སོ། །མཁའ་སྤྱོད་མ་ལ་སོགས་པ་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞི་པོ་འདི་རྣམས་ནི་ས་བཅུར་རབ་ཏུ་གནས་པ་རྣམས་སོ། །ཁྭ་གདོང་མ་ལ་སོགས་པའི་རང་བཞིན་གྱི་རྩ་རྣམས་ནི་དེའི་ཆ་ཤས་སྒོ་རྣམས་སུ་རྣམ་པར་གནས་པ་ཡིན་ནོ། ༨༢།

འདི་ཉིད་སྐུ་གསུང་ཐུགས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་གསུངས་ཏེ། གནས་ནི་ནང་གི་རབ་ཏུ་དབྱེ་བ་སྟེ། སྤྱི་བོ་ལ་སོགས་པར་ཕྱེ་བ་དེ་ལ་བརྟེན་ནས་གནས་པ་རྣམས་སོ་ཞེས་པ་ནི་ཚིག་གི་ལྷག་མའོ། །འདི་ཉིད་ནི[2]་གནས་ལ་སོགས་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ཉིད་བརྟེན་པ་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞིའི་རང་བཞིན་གྱི་རྩ་རྣམས་ནི་མཁའ་འགྲོ་མ་སྟེ། དེ་བཞིན་དུ་དེའི་རྟེན་དུ་གྱུར་པའི་རྩ་བཅུ་པོ་དེ་རྣམས་ནི་སའི་རང་བཞིན་ནོ། །ཇི་ལྟར་གནས་པའི་རང་བཞིན་གྱིས་ཞེས་པ་ནི་གནས་ལས་མ

1 སེ་° སྤྲོ། 2 ཅོ་ནེ་° ནི་མི་འདུག

གནས་ལ་སོགས་པའི་ས་བཅུ་དག །
ཉི་ཤུ་རྩ་བཞིའི་དབྱེ་བ་ཡིས། །
ཇི་ལྟར་གནས་པའི་རང་བཞིན་གྱིས། །
ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་ལ་གནས་པ་དབྱེ། ༦ །
དགའ་བ་ལ་སོགས་ས་རྣམས་སུ། །
འདི་དག་ཉིད་ལས་ཡང་དག་བཤད། །
དབང་པོ་ལ་སོགས་གཟུགས་ཅན་[1]ཀྱི། །
བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས་ཀྱི་གནས། ༧ །

འདས་པར་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་དུ་གནས་པ་སྟེ། རྣལ་འབྱོར་པ་གང་དང་གང་གིས་གནས་གང་དང་གང་ཡིན་པ་དེ་དང་དེར་ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པ་གནས་པ་ཡིན་གྱི····· བརྟགས་པ་ནི་མ་ཡིན་ནོ། ༤_༦ །

འདི་རྣམས་ཉིད་ནི་རབ་དགའ་སོགས། །
ས་རྣམས་སུ་ནི་ཡང་དག་བཤད། །

ཅེས་པ་ནི། དེ་ལ་སྤྱི་བོ་དང་། སྤྱི་གཙུག་དང་། རྣ་བ་གཡས་པ་དང་རྒྱབ་རྣམས་ནི་གནས་ཏེ་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་གནས་པའི་ཕྱིར་རོ། །འདི····· ཉིད་རབ་ཏུ་དགའ་བ་སྟེ། ཐིམ་པ་ལ་སོགས་པའི་རིམ་པས་དགའ་བ་གསུམ་'' པོ་སྐྱེད་པར་བྱེད་པའི་ཕྱིར་རོ། །རྣ་བ་གཡོན་དང་། སྨིན་མའི་དབུས་དང་། མིག་དང་དཔུང་པའི་རྩ་བ་ནི་ཉེ་བའི་གནས་ཏེ་གནས་དང་ཉེ་བའི་ཕྱིར་རོ། །འདི་ཉིད་ནི་དྲི་མ་མེད་པ་སྟེ། ཡེ་ཤེས་ཀྱི་མེས་རྣམ་པར་རྟོག་པའི་དྲི་མ་བསྲེགས་'' པའི་ཕྱིར་རོ། །མཆན་ཁུང་དང་ནུ་མ་ནི་ཞིང་སྟེ། རྟུལ་དང་འོ་མའི་ཟློལ་གྱིས་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་འབྱུང་བའི་ཕྱིར་རོ། །འདི་ཉིད་ནི་འོད་བྱེད་པ་སྟེ། དེ··· ལ་ཀུན་དུ་ལྟ་བ་ལས་ཡིད་ཀྱི་ཀུན་དུ་དགའ་བའི་འོད་བསྐྱེད་པའི་ཕྱིར་རོ། །ལྟེ་

---

[1] རྒྱ་དཔེར་ ༠ (སྭརཱུ པིཎཱམ) རང་བཞིན།

ཕྱུང་པོ་ལ་སོགས་ཁྱད་པར་གྱི། །

སངས་རྒྱས་ཐམས་ཅད་ཀྱི་ནི་གནས། །

པ་དང་སྣ་རྩེ་ནི་ཉེ་བའི་ཞིང་སྟེ། དྲི་དང་། སྣབས་འཛིན་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ།།
འདི་ཉིད་ནི་འོད་འཕྲོ་བ་སྟེ། ཡེ་ཤེས་ཀྱི་སེམས་རབ་ཏུ་སྣང་བར་བྱེད་པའི་...
ཕྱིར་རོ། ཁ་དང་མགྲིན་པ་ནི་འདུན་པ་སྟེ་རོ་ལ་ཉེ་བར་ལོངས་སྤྱོད་པས་འདོད་
པ་ལྡོག་པའི་ཕྱིར་རོ། །འདི་ཉིད་ནི་རྒྱལ་བར་དཀའ་བ་སྟེ། རོ་ལས་ལྡོག་པར་
མི་ནུས་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ། །སྙིང་ག་དང་ཚུ་སོ་ནི་ཉེ་བའི་འདུན་པ་སྟེ། དོན་
རྟོགས་པ་དག་ནི་བཟའ་བར་བྱ་བ་སྨིན་པ་ལ་དེ་རྒྱབ་ཀྱིས་ཕྱོགས་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་
རོ། །འདི་ཉིད་ནི་མངོན་དུ་གྱུར་པ་སྟེ། དེའི་མཚམས་སྦྱུའམ། སྨིན་པ་ན་མངོན་
དུ་གྱུར་པའི་ཕྱིར་རོ། །གསང་བ་དང་བཤང་ལམ་དག་ནི་འདུ་བ་སྟེ། ཐབས་
དང་ཤེས་རབ་དག་སྙོམས་པར་ཞུགས་པ་དེ་ལ་འདྲེས་ཤིང་རྩ་གཅིག་པ་ཉིད་ཀྱི་
ཕྱིར་རོ། །འདི་ཉིད་ནི་རིང་དུ་སོང་བ་སྟེ། དེའི་རྩའི་ཐུག་པ་དེ་ནི་རིང་བ་...
ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ། །བརླ་དང་བྱིན་པ་ནི་ཉེ་བའི་འདུ་བ་སྟེ། སྟེར་གསུངས་པ་...
དག་ལས་ཀྱང་འདྲེས་པའི་ཕྱིར་རོ། །འདི་ཉིད་ནི་མི་གཡོ་བ་སྟེ། དེའི་སྦྱོར་
བ་ལས་ལྡོག་པར་དཀའ་བ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ། །སོར་མོ་དང་རྐང་པའི་རྒྱབ་ནི་...
དུར་ཁྲོད་དེ། གནས་ཐམས་ཅད་ཀྱི་བདག་ཉིད་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ན་རྣམ་པར་མི་
རྟོག་པའི་གནས་སྟོང་བར་བྱེད་པའི་ཕྱིར་རོ། །འདི་ཉིད་ནི་ལེགས་པའི་བློ་གྲོས་
དེ། བདག་མེད་པ་ཉིད་ནི་ལེགས་པ་ཡིན་ལ། དེ་དེར་རིག་བཞིན་པ་ཉིད་ཀྱི་
ཕྱིར་རོ། །མཐེ་བོང་དང་པུས་མོ་ནི་ཉེ་བའི་དུར་ཁྲོད་དེ། སྟ་མ་ལྟ་བུའོ། །འདི་
ཉིད་ནི་ཆོས་ཀྱི་སྤྲིན་ཏེ། སྤྱི་བོ་ནས་སྤྲིན་གྱི་ཆར་འབབ་པ་བཞིན་དུ་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་...
སེམས་ཀུནྡུཙ(ར་)ལྷུང་བའི་ཕྱིར་རོ། །ས་བཅུས་ཡང་དག་པར་བསྡུས་པའི་
གནས་ལ་སོགས་པ་དེ་རྣམས་ཉིད་ས་བཅུ་པོ་སྟེ། དེ་དག་ཏུ་ཐིམ་པ་ལ......

སངས་རྒྱས་ཉིད་ནི་རབ་ཏུ་འཐབ་[1]། །
སངས་རྒྱས་བྱང་ཆུབ་སེམས་རྣམས་ཀྱི། ༨ །
བྱང་སེམས་སུམ་ཅུ་གཉིས་རྣམས་ཀྱི། །
གང་ཚེ་འདི་ལ་གང་[2]སྒྱུར་བ། །

སོགས་པའི་རིམ་གྱིས་ཡེ་ཤེས་གོང་ནས་གོང་དུ་རིམ་གྱིས་འཕེལ་བའི་ཕྱིར་རོ། ། དེ་རྣམས་སུའི་ས་ཡིན་ཞེ་ན། དབང་པོ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། མིག་ལ་སོགས་པའི་དབང་པོ་དྲུག་པོ་གང་ཡིན་པ་འདི་ཉིད་རང་བཞིན་གྱིས་··· བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སྟེ། དེ་བཞིན་དུ་གཟུགས་ལ་སོགས་པའི་ཕུང་པོ་གང་ཡིན་པ་རང་བཞིན་གྱིས་སངས་རྒྱས་རྣམས་སུ་སྣང་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱས་པ་དེ··· རྣམས་ཀྱི་སར་[3]འགྱུར་པ་ཡིན་ཏེ། རང་བཞིན་གྱིས་བཞུགས་པའི་སངས་རྒྱས··· དང་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས་ནི་འདི་རྣམས་སུའོ་ཞེས་པས་སོ། །འདི་ཉིད་ལས་ཡ་འཕགས་པ་རྣམས་ཁོ་ནས་སངས་རྒྱས་ཉིད་ཐོབ་པར་བྱེད་པ་མ་ཡིན་གྱི། ཇི་ཙམ་དུ་སོ་སོའི་སྐྱེ་བོ་རྣམས་ཀྱི་ཕུང་པོ་དང་དབང་པོ་གང་ཡིན་པ······ རྣམས་ཀྱང་རང་བཞིན་གྱིས་སངས་རྒྱས་དང་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཉིད་ཡིན་པ་ལས། དེ་རྣམས་ཀྱང་སངས་རྒྱས་ཉིད་ཐོབ་པར་བྱེད་པར་འགྱུར་ཏེ། དེ་ཁོ་ན་ཉིད་དུ་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དང་སོ་སོའི་སྐྱེ་བོ་དག་དབྱེར་མེད་པ་ཉིད་ཀྱི····· ཕྱིར་རོ། ༥-༨ །

འོ་ན་བསྐལ་པ་གྲངས་མེད་པ་གསུམ་གྱིས་བྱང་ཆུབ་འཐོབ་པ་[4]ཡིན་ཏེ། དེ་ཇི་ལྟར་ན་ཕུང་པོ་ལ་སོགས་པ་སངས་རྒྱས་ལ་རྟོགས་པའི་རང་བཞིན་དུ······ ཤེས་པ་ཙམ་གྱིས་ཐོབ་པར་འགྱུར་ཞེ་ན། བྱང་སེམས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས···

---

1 སེ་ སྣ་ འཕབ། རྒྱ་དཔེར་ (ཝཱཧིཀཱ) འཛིན་པའམ་འདྲེན་མཁན།
2 རྒྱ་དཔེར་ (ཝྲྀནྟམ) གངས། 3 སྡེ་ ཀྱིས་འགྱུར་བ། 4 ཅོ་ནེ་ ཐོབ་པར།

དེ་ཚེ་སངས་རྒྱས་སྲས་བཅས་པའི། །
སངས་རྒྱས་ཉིད་ནི་ངེས་པར་ཐོབ[1]། ༨ །
རང་ལུས་ཉིད་ལ་སངས་རྒྱས་གནས། །
གཞན་ནི་གང་ཡང་[2]ཡོད་མ་ཡིན། །

པ་གསུངས་ཏེ། གང་གི་ཆ་རྡོ་རྗེའི་ཁའམ། ཆུ་སྐྱེས་ཀྱི་ནང་དུ་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་སུམ་ཅུ་རྩ་གཉིས་ཀྱིས་གང་བ་ཉིད་སྦྱོང་བར་གྱུར་པ་དེའི་ཚེ། དེ་རྣམས་སངས་རྒྱས་ཉིད་དུ་འགྱུར་རོ། །དེས་ན་དུས་ལ་ལྟོས་པ་ནི་མ་ཡིན་ནོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ལྷག་མའོ། ༨ །

འོ་ན་སངས་རྒྱས་རྣམས་ནི་མངོན་པར་དགའ་བ་ལ་སོགས་པའི་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཞིང་རྣམས་སུ་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་རྣམ་པས་བཞུགས་སོ་ཞེས་པ་མ་ཡིན་ནམ། མིའི་སྲིད་པར་འཁོར་བཞིན་པ་བདག་ཅག་རྣམས་གང་ལས་ན་བྱང་ཆུབ་ཏུ་ཉེ་བར་འགྱུར་ཞེས་པའི་དོགས་པ་བསལ་བའི་ཕྱིར། རང་ལུས་ཉིད་ལ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། རང་གི་རང་བཞིན་ཁོང་དུ་ཆུད་པ་ལས་སད་པ། དེའི་སྲིད་པ་ནི་སངས་རྒྱས་ཉིད་དེ། དེ་ནི་རང་གི་ལུས་ཉིད་ལ་གནས་པ་དེ་རྣམ་པར་གཞག་པ་ཡིན་ནོ། །འདི་ཉིད་ལས་ན་དེ་ཉིད་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཞིང་སྟེ། འདི་ཉིད་དུ་རང་བཞིན་གྱིས་གྲུབ་པའི་ལྷན་[3]ཅིག་སྐྱེས་པའི་སངས་རྒྱས་བཞུགས་པའི་ཕྱིར་ན། གཞན་མངོན་པར་དགའ་བ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་སུ་ནི་མ་ཡིན་ནོ། །དེའི་ཕྱིར་ལུས་ལས་གཞན་དུ་ནི་ཕྱི་རོལ་གྱི་གནས་རྣམས་སུའོ། །སངས་རྒྱས་ཉིད་ནི་རང་བཞིན་གྱིས་ཏེ་རང་དགར་བྱུང་བ་རྣམས་སོ། །རང་བཞིན་ཏེ་ཇི་ལྟར་སྐྱེས་པ་དེ་ཉིད་ཀྱིས་[4]གནས་པ་ཡིན་གྱི་ཁྲུད་པར་དུ་བྱས་པ་ནི་མ་ཡིན་ནོ། །འདོད་པ་ནི་གང་དེ་རྣམས་ལ་འདོད་ཅིང་རེ་བའོ། །རྫོགས་པའི་

[1] སྡེ་དགེ་° ([illegible]) ཉེ་བར་འགྱུར། [2] སྡེ་དགེ་° ([illegible]) གང་དབང་།
[3] ཅོ་ནེ་° ལྷ། [4] ཅོ་ནེ་° ཀྱི།

ལུས་ལས་གཞན་དུ་སངས་རྒྱས་ཉིད། །
མི་ཤེས་པ་ཡིས་གཡོགས་པའི་ལུས་ [1]། ༡༠ །

རིམ་པ་རྟོགས་ཤིང་རིག་པ་རྣམས་ཀྱིས་ནི། རང་བཞིན་གྱིས་གྲུབ་པ་ཁོ་ནས་སངས་རྒྱས་ཉིད་དུ་འདོད་པར་བྱ་སྟེ།

འགྲོ་བ་འདི་ཀུན་སངས་རྒྱས་མངའ་ [2] བདག་ཉིད། །

ཅེས་གསུངས་པའི་ཕྱིར་རོ། །དེ་བཞིན་གཤེགས་པར་གྱུར་པ་འཆི་བ་ལས་ན་ཕ་རོལ་དུ་ཡིན་པའི་ཕྱིར། ལུང་དུ་མ་བསྟན་པའི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་ཡང་སྤྲངས་པ་ཡིན་ནོ། །དཔལ་ཀྱེའི་རྡོ་རྗེ་ལས།

སངས་རྒྱས་མ་ཡིན་སེམས་ཅན་ནི། །
གཅིག་ཀྱང་ཡོད་པ་མ་ཡིན་ཏེ། །
རང་དང་རང་གི་རྟོག་པ་ལས། ། ཞེས་གསུངས་པའི་ཕྱིར་དང་། སློབ་དཔོན་ཕྱུག་ན་རྡོ་རྗེས་ཀྱང་།

མི་ནི་རྡོ་རྗེ་འཛིན་རྣམ་པ། །
བུད་མེད་རྡོ་རྗེ་བཙུན་མོ་འོ། ། ཞེས་གསུངས་པ་དང་།

དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་གསང་བའི་མདོར་ཡང་།

སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ཀྱི་ལུས་དང་ངག་དང་སེམས་ཀྱི་ཐ་སྙད་ནི···· རིགས་གསུམ་གྱི་གསང་བའོ། །ཞེས་པ་དང་། ཡེ་ཤེས་ཞབས་ཀྱིས་ཀྱང་།

དེ་ལྟར་སེམས་ལས་བྱུང་བ་རྣམ་པ་སྣ་ཚོགས་ཀྱིས་གང་ཡང་རུང་བའི་ལུས་དང་ངག་དང་ཡིད་ཀྱི་ལས་ནི་ཕྱག་རྒྱ་དང་སྔགས་ཀྱི་རྣམ་པར་སངས་རྒྱས་རྣམས་ཀྱིས་རྟོགས་སོ། །ཞེས་གསུངས་པའི་ཕྱིར་རོ། ༡༠ །

---

[1] རྒྱ་དཔེར་ ༠ (མཏམ྄) ཕྱུགས། [2] རྒྱ་དཔེར་ ༠ བུདྡྷ་བྲཧྨ (སངས་རྒྱས་ཚངས་)།

གནས་དང་དེ་ཡི་གནས་དང་ནི། །
ཞིང་དང་དེ་ཡི་ཞིང་ཉིད་དང་[1]། །
ཚནྡོ་དང་ནི་དེ་བཞིན་གཞན། །
དེ་ཡང་ཉེ་བའི་ཚནྡོ་ཧ། ༡༡ །

དེ་བཞིན་འདུ་བ་ཅན་ཉིད་དང་། །
ཉེ་བའི་འདུ་བ་ཅན་དེ་བཞིན། །
དུར་ཁྲོད་ཉེ་བའི་དུར་ཁྲོད་དེ། །
གནས་ལ་སོགས་ནི་བཅུ་རྣམས་སོ། ༡༢ །

[2]དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་སྐུའི་ཐུ་ག་དགུ་[3]དང་། སྣ་གའི་དབུས་སུ་སོན་པའི་རྩའི་[4]གནས་བཅུ་ལ་སོགས་པའི་ས་བཅུའི་དབང་ཕྱུག་གི་[5]བཤད་པ་[6]རྒྱས་པར་བསྟན་པ་སྟེ་བཞི་པའོ།། །།

གནས་དང་ཉེ་བའི་གནས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་ནི་སྟོར་གསུངས་པའི་ས་བཅུ་པོ་རྣམས་ཀྱི་མིང་གསུངས་ཏེ། འདི་རྣམས་ཀྱི་ངེས་པའི་ཚིག་ནི་སྔོན་དུ་བཤད་པའོ། ༡༡–༡༢ །

ཞེས་པ་རྫོགས་པའི་རིམ་པ་སྒྲུབ་པའི་[7]ཚིག་དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པ་གསང་བ་ཆེན་པོའི་སྒྲོན་མ་ལས་རྒྱས་པར་བསྟན་པ་བཞི་པའི་རྣམ་····པར་བཤད་པའོ།། །།

---

༡ ཅུ་དགེར་. གནས་དང་དེ་ཡི་ཉེ་གནས་དང་། །
ཞིང་དང་དེ་བཞིན་ཉེ་ཞིང་དང་། །
༢ ཅུ་དགེར་. (ཏྲི) དཔལ། ༣ ཅུ་དགེར་. (ཀུལགཏ) སྐུའི་ངོ་བོ། ༤ སྣ་. པའི།
༥ ཅུ་དགེར་. (ཀྲྀམི ཤཏྲུམ) སའི་ངོ་བོ། ༦ པེ་. སྣ་. ཡུལ་ཀྱི་དབྱེ་བ། ༧ ཅོ་ནེ་. ཐབས་ཀྱི།



རྒྱས་པར་བསྟན་པ་ལྔ་པ།

དེ་ནས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་གང་ཡང་[1]ཏུང་བའི་སྐུའི་བུ་ག་དགུའི་ནང་དུ་སོན་པའི་[2]རྩའི་རང་བཞིན་གནས་ལ་སོགས་པ་ས་བཅུ་[3]དང་། སྐུ་དང་གསུང་དང་ཐུགས་སུ་[4]འགྲོན་པ་གནས་གཞན་གྱི་དབྱེ་བས་ཡུལ་གྱི་དབྱེ་[5]བ་བཤད་པར་བྱའོ། ༡ །

སྤྱི་བོ་མཱ་ལ་ཡ་ཡི་ཡུལ། །
དེ་བཞིན་སྤྱི་གཙུག་ཛཱ་ལནྡྷར། །

དེ་ནས་གང་ཡང་ཏུང་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་སྟོར་གསུངས་པའི་གནས་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞི་རྣམས་དང་སྤྱི་བོ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་གཞི་མཐུན་པའི་མིང་དང་། དེར་གནས་པའི་རྩ་རྣམས་མཁའ་སྤྱོད་མ་ལ་སོགས་པའི་རང་བཞིན་ཏེ། དེ་རྣམས་ཀྱི་མདོར་བསྟན་པ་དང་རྒྱས་པར་བཤད་པ་གསུངས་ཏེ། དེ་ནས་ཞེས་པ་ནས། བཤད་པར་བྱའོ་ཞེས་པའི་བར་དུ་ནི་མདོར་བསྟན་པ་སྟེ་གོ་སླའོ། ༡།

སྤྱི་བོ་མ་ལ་ཡ་ཡི་ཡུལ། ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་ནི་རྒྱས་པར་བཤད་པ་གསུམ་པ་ཡིན་ནོ། །དེ་ལ་མ་ལ་ཡ་ཞེས་པ་ནི། གང་དུ་བདེ་བ་ཆེན་པོའི་རང་བཞིན་ཀུན་རྫོབ་དང་དོན་དམ་པ་མི་ཕྱེད་པའི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་འདྲིན་པར་བྱེད་པ་དེ་ནི་མ་ལ་ཡ་སྟེ། དེ་ལྟ་བུར་གྱུར་པའི་ཡུལ་ནི་མ་ལ་ཡའི་ཡུལ་ལོ། །སྤྱི་བོ་དེ་ཉིད་དུ་སྟེ། དེར་འབྱུང་བའི་ཕྱིར་རོ། །རྩའི་དྲྭ་བའི་རྩ་བར་འཛིན་པར་བྱེད་པས་ན། སྤྱི་གཙུག་ནི་ཛཱ་ལནྡྷ་རའོ། །ན་བ་གཡས་

[1] ས་ སྣ་ ཀང་བའི་སྐུའི་བུ་ག [2] སྣ་ ས་ རྒྱ་དམར་ ཐིག་ ནང་སོན་པའི་རྩའི།
[3] རྒྱ་དམར་ (པུརམིར) ས་ཆོལ་དུ་ཕྱིན་པ། [4] རྒྱ་དམར་ (ཙམྤ) འཁོར་ལོ།
[5] ས་ སྣ་ ཡུལ་གྱི་དབྱེ་བ་མི་གསལ།

དེ་བཞིན་ཨོ་ཊི་ཡཱན་ཉིད། |
རྩ་བ་གཡས་པ་ཉིད་དུ་བརྗོད། ༢ |
རྒྱབ་ཀྱི་ལོགས་ནི་ཨབྲུད། |
བཞི་པོ་གནས་ཀྱི་མིང་ཡིན་ནོ། |
རྩ་བ་གཡོན་པའི་རང་བཞིན་ཅན། |
དེ་བཞིན་གོ་དཱ་བ་ཞེས་"བྱ། ༢ |

པའི་ལམ་ནས་གཏུམ་མོས་འཕྱུར་བར་བརྗོད་དེ། མཁའ་ལ་རྒྱུ་ཞིང་འཇུག""
པས་ན་འགྲོ་བའོ། །ཕྱི་རོལ་དུ་འབྱུང་བ་ནི་དེར་ཨོ་ཊི་ཡཱན་སྟེ་རྩ་བ་གཡས་པའོ།།
དབྱངས་དང་གསལ་བྱེད་ཀྱི་ཡི་ཀ་མོ་འདི་དག་གིས་ཕྱུག་རྒྱ་གསུམ་པོ་སྙོམས""
པར་ཞུགས་པ་ལས། ལས་ཀྱི་རླུང་དབང་ཕྱུག་གི་དབྱུག་པས་ཕྱེ་བའི་ཕྱིར་རྣམ་
པར་མི་རྟོག་པའི་བདེ་བ་སྐྱོང་བར་རྟོགས་པར་བྱའོ་ཞེས་པས་ཨབྲུད་སྟེ། མགོ་
བོའི་རྒྱབ་གོ། །ཕྲི་ཧཱ་ཊ་ཀ་ར་ལ་སོགས་པ་ཉིད་ལས་ཀཱའི་དའོ། །སྔར་གསུངས་པའི་
ཚུལ་གྱིས་བཞི་པོ་འདི་རྣམས་ནི་གནས་ཀྱི་མིང་ཅན་དུ་ཤེས་པར་བྱའོ། །དེ་
ལ་བརྟེན་པའི་རྩ་བཞི་པོ་ནི་མཁའ་སྤྱོད་མ་སྟེ། རབ་གཏུམ་མ་ལ་སོགས་པར་
བརྗོད་པར་བྱ་བ་རྣམས་ཀྱི་སྤྱོད་ཡུལ་དང་ཡུལ་དེ་བཞིའི་*རང་བཞིན་དྲི་བ་ལ""
སོགས་པའི་ཆོས་ཀྱི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་རྣམ་པ་བཞི་པོ་བདེ་བ་ཆེན་པོར་སྐྱོང་བས་
ན་ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་པའི་དགའ་བ་སྐྱོང་བའི་ཕྱིར་རབ་ཏུ་དགའ་བའི་ས་ཡང་
ཡིན་ནོ། ༢ ༡/༢ |

གོ་སྟེ་སའི་རང་བཞིན་སྨྲུལ་པའི་འཁོར་ལོར་སྨིན་པར་བྱེད་དོ་ཞེས""
པས་གོ་དཱ་ནི་ཨབནྟཱདཱའི་སྟེ། དེས་འཛིན་པར་བྱེད་ཅིང་ཁེབས་པར་བྱེད་དོ""
ཞེས་པས་གོདཱབརཱི་ནི་རྩ་བ་གཡོན་པ་སྟེ། དེས་དེ་ལ་ཁྱབ་པའི་ཕྱིར་རོ། །དགའ་

---

༡ རྒྱ་དཔེར་° (ཛྲེམ) ཤེས། ༢ རྒྱ་དཔེར་° (ཨུཏྟར) གཞི།

རཱམི་ཤྲཱི་[1]ཞེས་གྲགས་པས། །
སྨིན་དབུས་དེ་དག་མིག་དག་ལ། །
དེ་བཞིན་དེཝཱི་ཀོ་ཊ་གཞན། །
ལག་པའི་རྩ་བ་མཱ་ལ་ཝ། །
དེ་ལྟར་ཉེ་བའི་གནས་ཉིད་ནི། །
ཐུགས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་[2]རྣམ་པར་གནས། །
གནས་ཀྱི་ཁྱད་པར་ངོ་བོ་ཡིས། །
མཁའ་སྤྱོད་རྣམས་ཀྱི་ཡང་དག་བཤད། ༤ །

བ་དང་དགའ་བ་ནི་དགའ་བ་དག་སྟེ། ལ་ལནཱ་དང་རསནཱའི་རང་བཞིན་སྨིན་… མ་དག་གོ །དེ་དག་གི་དབུས་སུ་དབང་ཕྱུག་སྟེ། གང་གི་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་མེ་… དེའི་དབུས་སུའོ་ཞེས་པ་མཛོད་སྤུའི་ནང་དུའོ། །ཡེ་ཤེས་ཀྱི་མེ་དེ་ཉིད་ལྷ་མོ་སྟེ། ལྷ་མོ་དེ་ཉིད་ཀྱི་ཛོང་ནི་འདིར་ཀོ་ཊ་སྟེ། མིག་གཉིས་ནི་དེཝཱི་ཀོ་ཊའོ། །དེ་དང་དེ་ལ་བརྟེན་པ་སྟེ། དེར་ཐོབ་པའི་ཕྱིར་རོ། །དེ་བཞིན་དུ་དཔུང་པ་དག་གི… བར་ནི་ལག་པ་དག་གི་སྟེ། གང་འདི་རྣམས་ཀྱི་རྩ་བ་གཉིས་པོ་སྟེ། འདི… ཐྲག་པ་གཉིས་པོ་འདི་ཉིད་མཱ་ལ་ཝའོ། །སོ་སོར་སྐྱེས་པའི་རྣམ་པར་རྟོག་[3]པའི་ཕྲེང་བ་འཇིག་ཅིང་གཅོད་པར་བྱེད་པའི་ཕྱིར་མཱ་ལ་ཝར་བརྗོད་པར་བྱ་སྟེ། ཐོས་པ་སྐྱོང་བའི་ཕྱིར་རོ། །འདི་རྣམས་ནི་ཉེ་བའི་གནས་ཏེ། དེ་ལ་བརྟེན་པའི… རྩ་རྣམས་དཔའ་བོའི་བློ་ཅན་མ་དང་། མིའུ་ཐུང་མ་དང་། ལཀྵའི་དབང་ཕྱུག་མ་དང་། ཤིང་གྲིབ་མ་རྣམས་ཀྱི་རང་བཞིན་ཏེ། མཁའ་སྤྱོད་མ་རྣམས་ཀྱི་སྤྱོད་ཡུལ་དང་ཡུལ་དུ་ཤེས་པར་བྱའོ་ཞེས་པ་ཐུགས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་ལའོ། ༣–༤ །

---

༡ རྒྱ་དཔེར། ° ར་འདུག ༢ རྒྱ་དཔེར། ° ལོར། ༣ ཅོ་ནེ། ° རྟོགས།

མཚན་ཁྲང་ཀཱ་མརྟུ་པར་བརྗོད། །
ནུ་མ་ཨོ་ཊྲེར་རབ་ཏུ་གྲགས། །
འདི་དག་ཞིང་ཏུ་ཡང་དག་བརྗོད། །
ལྟེ་བ་ཏྲི་ཤཀུ་ནིར་[1]འདོད། ༦ །

སྣ་ཡི་རྩེ་མོ་ཀོསལར[2]། །
དེ་དག་ཉེ་བའི་ཞིང་དུ་བརྗོད། །
ཁ་ནི་ཀ་ལིངྐ་ཙ་སྣ[3]། །
ལམྦཱུ་ཀ་ནི་མགྲིན་པའི་དབུས། ༧ །

མཚན་ཁྲང་གཉིས་ནི་ཀཱ་མརཱུ་པ་སྟེ། མངོན་པར་འདོད་པར་བྱ་ཞིང་མཐོང་བ་གང་གི་ཡིན་པ་དེའི་ནི་འདོད་པའི་གཟུགས་ཏེ་མཚན་ཁྲང་གཉིས་སོ།། ཨོ་ནི་སྟེང་དུ་འགྲོ་བས་ལེན་ཅིང་ཁས་ལེན་པར་བྱེད་པ་ནི་གཏུམ་མོའོ་ཞེས་པས་ནུ་མ་གཉིས་ནི་ཨོ་ཊྲེའོ། །གཉིས་པོ་འདི་རྣམས་ནི་སྤྱར་གསུངས་པའི་ཚུལ་གྱི་ཞིང་ངོ་། །ལྟེ་བ་དང་སྣ་རྩེ་གཉིས་པོ་དག་ནི། ཏྲི་ཤཀུ་ནི་དང་། ཀོ་ཤལ་སྟེ། འདིར་གང་ཞིག་ཤཀུ་ནི་སྟེ་བྱ་ལྷ་བྱའི་ཁྱུ་གདོང་མའི་རྣམ་པ་ལུས་དང་ངག་དང་སེམས་ཀྱི་རྩ་གང་ཡིན་པ་དེ་ནི་ཏྲི་ཤཀུ་ནི་སྟེ། རྡོ་རྗེའི་མདུད་པའི་གཟུགས་ཉིད་ཀྱི་.....ཕྱིར་ལྟེ་བའི་གནས་སུའོ། །དེ་བཞིན་དུ་སྣའི་རྩེ་མོ་ནི་ཀོ་ཤལ་སྟེ། ངར་སྣབས་འགྲོ་བ་གང་གི་ཕྱིར། དེ་ནི་ཀོསལའོ། །འདི་དག་ནི་སྔར་གསུངས་པའི་....ཚུལ་གྱིས་ཉེ་བའི་ཞིང་དུ་ཤེས་པར་བྱའོ། ༦–༦½ །

ཁ་དང་མགྲིན་པ་ནི་ཀ་ལིངྐ་དང་ལམྦཱུ་ཀ་དག་གོ །ཀཾ་ནི་བདེ་བ་ཡིན་ལ། ལི་ནི་འགྲོ་བར་བྱེད་པའོ། །ཞེས་པས་ནི་ཀ་ལིངྐ་སྟེ། བསྟེན་པའི་དུས་སུ་དེ་མཐོང་བ་ལས་ལྷའི་དགའ་བ་བསྐྱེད་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར་རོ། །དེ་བཞིན་དུ་ལམྦུ་

---

[1] སྡེ་° ཀུནེར། པེ་° ཀུནར། [2] རྒྱ་དཔེར་° ཀོཤལར། [3] པེ་° སྣ་° སྨས།

ཚནྡོ་ཧ་ཞེས་རྣམ་པར་བཤད། |
སྐྱིང་གར་ཀཱཉྩིར་བརྗོད་པ་སྟེ། |
རྒྱུ་སོ་ཁ་ཡི་གནས་ཉིད་དོ། |
དེ་ཡང་ཉེ་བའི་ཚནྡོ་ཧའོ ༨ |

དེ་ལྟར་ཡུལ་གནས་ཐམས་ཅད་ནི[1]། |
གསུང་གི་འཁོར་ལོར་རྣམ་པར་གནས། |
གནས་ཀྱི་ཁྱད་པར་ངོ་བོ་ཡིས། |
ས་སྤྱོད་རྣམས་ཀྱི་ཡང་དག་བཤད། ༩ |

རྒྱུང་གི་གཞི་ལས་བདུད་རྩི་སྦྱང་བ་ལ་ཆེར་སྤྲོད་པའི་ལྟེས་དེར་སྦྱོར་བའི་ཕྱིར་ན། མགྲིན་པ་ནི་ལཾ་པཱ་ཀ་སྟེ། དེ་དག་ནི་སྔར་གསུངས་པའི་རྣམ་པར་བཤད་པ་ལས་འདུན་པ་ཞེས་བརྗོད་པར་བྱའོ། །སྐྱིང་ག་དང་རྒྱུ་སོ་ཡང་ཀཱཉྩི་དང་ཧི་མཱ་ལ་ཡ་དག་སྟེ་དེ་ལྟར་ན། ཀཾ་ནི་བདེ་བ་ཡིན་ལ། ཨུཛྫ་ཡི་ནི་འགྲོ་ཞིང་རྒྱུག····པར་བྱེད་པ། རྒྱུ་ཤིང་གི་མེ་ཏོག་ལྟ་བུར་འཆད་བཞིན་པའི་འོག་གི་ཁ་ལས···བདུད་རྩི་ཐིག་ལེ་འཛག་པ། སྐྱུ་གི་རྣམ་པའི་བདུད་དྲུལ་ཙའི་རྩ་དང་ལྡན་པ····ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ། །བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་ཁ་བའི་མདོག་ཅན་དེའི་གནས་ཉིད་ཀྱི····ཕྱིར། རྒྱུ་སོ་ནི་ཧི་མཱ་ལ་ཡར་བརྗོད་པར་བྱའོ། །དེ་དག་ནི་ཉེ་བའི་འདུན་པ···སྟེ་སྔར་བཞིན་ནོ། །དེ་ལྟར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ནི། དེ་ལ་བརྟེན་པའི་རྩ་རྣམས་ནི་ས་སྲུང་མ་དང་། འཇིགས་བྱེད་ཆེན་མོ་དང་། རླུང་ཤུགས་མ་དང་། ཆང་འཐུང་མ་དང་། ལྷ་མོ་སྦྲོ་བསངས་མ་དང་། ཤིན་ཏུ་བཟང་མོ་དང་། རྟ་ན་དང་། མཁའ་འགྲོ་གདོང་མ་སྟེ། ས་ལ་སྤྱོད་པ་འདི་རྣམས་ཀྱི་གནས་རྣམས་ཤེས་པར་བྱའོ། །ལུས་ཀྱི་དབུས་སུ་གནས་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་ས་སྤྱོད་མའོ། ༧–༩ |

---

[1] རྒྱ་དཔེ་གཅིག་ནང་། དེ་ལྟར་ཉེ་བའི་གནས་རྣམས་སུ།། འདུག རྒྱ་དཔེ་གཞན་དག་གཅིག་གི་ནང་། དེ་ལྟར་ཡུལ་རྣམས་ཐམས་ཅད་དུ། །ཅེས་གསལ།

ཡི་དགས་ལྷ་གནས་དྭགས་ལ་སྟེ། |
བཤང་ལམ་གྲྀཧདེབདཱ། |
འདི་དག་འདུ་བར་བརྗོད་པའོ། |
བཅླ་ནི་སཽརཱཥྚྲ་ཏུ་བརྗོད། ༡༠ |

གསེར་གྱི་གླིང་ནི་མིང་ཅན་དུ། |
ཛི་ངར་གཉིས་ནི་རྣམ་པར་བཤད། |
ཉི་བ''ཡང་ནི་འདུ་བ་ཉིད། |
སེན་མོ་[2]ནགར་ཧུ་དྲན། ༡༡ |

དེ་བཞིན་དུ་མཚན་མ་འདི་རྣམ་པ་གཉིས་ཏེ། བུད་མེད་ཀྱི་མཚན''' མའོ། །དེ་ཁོ་ན་བཞིན་དུ་བཤང་ལམ་ཡང་སྟེ། དེ་དག་ནི་གོ་རིམས་བཞིན་དུ་སྟེ་བྲེདཔུཏྲི་དང་། གྲྀཧདེབདཱར་ཞེས་པར་བྱའོ། །དེ་ལྟར་ན་བྲེད་[3]ནི་ནམ་མཁའོ།། གྲོང་ཁྱེར་ལྟ་བུའི་ནམ་མཁའ་ལྟ་རྣམས་ནི་གྲོང་ཁྱེར་ཏེ། དེ་ཡི་རྒྱལ་མཚན་ཆུང་ནི་བྲེདཔུཏྲིའོ། །བཤང་ལམ་གྱི་སྒོ་ནི། གྲྀཧདེབད་སྟེ་ཁྱིམ་ནི་ལུས་ཡིན་ལ། ལྷ་རྣམ་པར་སྣང་མཛད་ཡིན་པ་ནི་ཁྱིམ་གྱི་ལྷ་སྟེ། དེ་བཤང་ངའི་ཁམས་ཀྱི''' གནས་ཉིད་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ། །དེ་རྣམས་ནི་གོ་རིམས་བཞིན་དུ་འདུ་བའི་མིང་ཅན་དུ་ཞེས་པར་བྱ་སྟེ། སྙོམས་པར་འཇུག་པའི་དུས་སུ། རྒྱལ་མཚན'''''' གཉིས་པོ་འི་ཐུར་སེར་གྱི་ལམ་གཉིས་པོ་སྦྱོར་ངའི་ཕྱིར་རོ། །དེ་བཞིན་དུ་བཅླ་གཉིས་པོ་དང་གྲིན་པ་གཉིས་པོ་ཡང་སཽརཱཥྚྲ་དང་སུཔྲཀཻཊྟི་པར་ཞེས་པར་བྱའོ།། དེ་ལྟར་ནི། བདེ་བའི་ཡུལ་འཁོར་ལྟ་བུ་ནི་ཡུལ་འཁོར་ཏེ། བཅླ་གཉིས་པོ་ཉིད་ཕན་ཚུན་ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་པའི་དུས་དང་། ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་པ་མཐོང་བ་ནི་སཽརཱཥྚྲའོ། །དེ་བཞིན་དུ་འོད་ཤིན་ཏུ་དཀར་བའི་སེམས་ནི''''''

---

༡ ཅོ་ནེ་° ཉི་མ། ༢ རྒྱ་དཔེ་° སྣར་° (ཨཾ་གུ་ལཱ་°) སོར་མོ། ༣ སྡེ་° བེ་སྣ།

སིནྡྷུ་ངེས་པ་ཀང་པའི་རྒྱབ། །
དུར་ཁྲོད་དུ་ནི་ཡང་དག་བརྗོད། །
མཐེ་བོ་སྒྲ་ངམ་དུ་རབ་སྣ[1]། །
ཕུས་མོ་ཀུལླུཏྟ་བརྗོད། ༡༢ །
དེ་དག་ཉེ་བའི་དུར་ཁྲོད་ཉིད། །
གནས་ལ་སོགས་པ་ས་བཅུ་རྣམས། །
འདི་རྣམས་རང་ལུས་སྐྱེས་པ་ཀུན། །
གནས་ཀྱི་དབྱེ་བས་འབྱེད་པའོ། ༡༣ །

མདོག་བཟང་སྟེ། དེའི་སླིང་ལྷ་བྲ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ཅིན་པ་གཉིས་པོ་ནི་སླིང་ངོ༎ དེ་རྣམས་ནི་སྔར་བཞིན་དུ་ཉེ་ངའི་འདུ་ངར་ཤེས་པར་བྱའོ། །དེ་བཞིན་དུ་ཀང་པའི་སོར་མོ་བརྒྱད་དང་། ཀང་པའི་རྒྱབ་ཀྱི་གནས་ནི་ནགར་དང་སིནྡྷུར་ཤེས་པར་བྱ་སྟེ། སོར་མོ་ནི་འགྲོ་བར་མི་བྱེད་དོ་ཞེས་པས་ནབ[2]ཡིན་ལོ། དེ་ལ་མཆོག་ཏུ་རྒྱས་པར་བྱེད་ངའི་ཕྱིར་ར་སྟེ་ནགརའོ། །ཀང་པའི་རྒྱབ་ལས་མཐེ་བོང་ལ་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་འཛག་པར་བྱེད་པའི་ཕྱིར་ཀང་ངའི་རྒྱབ་ནི་སིནྡྷུའོ། །གཉིས་པོ་འདི་ནི་སྔར་གསུངས་པའི་ཚུལ་གྱིས་དུར་ཁྲོད་དོ། །ཀང་པའི་མཐེ་བོང་དང་ཕུས་མོ་ནི། མ་རུ་དང་ཀུལླུཏར་ཤེས་པར་བྱ་སྟེ། མ་ནི་བདེ་བ་ཆེན་པོ་ཡིན་ལ། དེ་སྐྲོགས་པའི་ལས་ནི་མརུའོ། །ཀུ་ནི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་སྟེ། དེ་འཇོམས་པར་བྱེད་པའི་ཕྱིར་ཀུལླུཏའོ། །གཉིས་པ་འདི་ནི། གོ་རིམས་བཞིན་དུ་སྔ་མ་ལྟར་ཉེ་བའི་དུར་ཁྲོད་དུ་བརྗོད་པར་བྱའོ། །ས་བཅུ་འདི་རྣམས་གནས་ལ་སོགས། །ཞེས་པ་ནི། གནས་ལ་སོགས་པའི་བརྡས་བསྟན་པ་ཡིན་ནོ། ༡༠–༡༢ ༡/༢ །

རང་ལུས་སྐྱེས་ཞེས་པ་ནི། ཟླ་བ་བཅུའི་རིམ་པས་སྐྱེས་པའི་རང་

---

[1] སྣ°. མེ°. སྣམ། [2] སྟེ°. ན་གང་།

ཕྱི་རོལ་དང་མཐུན་ནང་ནས་ནི། །
སངས་རྒྱས་རྣམས་ཀྱི་ས་བཅུ་རྣམས། །
སྐུ་གསུང་ཐུགས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་ལ། །
ཉི་ཤུ་རྩ་བཞིར་དབྱེ་བ་ཡིས། ༡༨ །
རྩ་རྣམས་ཀུན་གྱི་གནས་དག་ནི། །
ཀུན་ནས་ཡང་དག་བཤད་པ་ཡི། །

གི་ལུས་དང་ལྷན་ཅིག་ཏུ་སྐྱེས་པ་རྣམས་ཏེ། མཐོང་བའི་ལམ་གྱི་རིམ་པས་ཐོབ་པར་བྱ་བ་ནི་མ་ཡིན་ནོ། །དེ་རྣམས་ནི་བཤད་པའི་ཚུལ་གྱིས་གནས་ཀྱི་དབྱེ་བས་འབྱེད་པར་བྱེད་དོ། །དེ་ཉིད་ཕྱི་རོལ་གྱི་སྒོ་རྣམས་དང་ལྷན་ཅིག་ཏུ་ནང་གི་དགུ་པོ་ལས་གཅིག་བཟུང་སྟེ་ས་བཅུར་བརྗོད་པར་བྱའོ། །དེ་རྣམས་སུའི་ས་ཡིན་ཞེ་ན། སངས་རྒྱས་རྣམས་ཀྱི་ས་ཞེས་པ་སྟེ། གཟུགས་ལ་སོགས་པ་ཕུང་པོའི་རང་བཞིན་ཡེ་ཤེས་གཅིག་པུའི་བདག་ཉིད་ཅན་རྣམས་སོ། །ཡང་ན། སངས་རྒྱས་རྣམས་ནི་ཁམས་ཀྱི་རང་བཞིན་གྱིས་དཔའ་བོ་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞི་རྣམས་སམ། མི་ཕྱེད་མ་ལ་སོགས་པའི་རྩ་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞི་རྣམས་ཀྱང་སངས་རྒྱས་རྣམས་སོ། །གཅིག་ལྷག་པ་ལས་དཔའ་བོ་དང་རྣལ་འབྱོར་མ་འདི་རྣམས་ནི་ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པའི་ས་བཅུའམ། བཏགས་པ་མ་ཡིན་པའི་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་ཡང་ཡིན་ནོ་ཞེས་དགོངས་སོ། ༡༣–༡༨½ །

འཕགས་པ་རྣམས་ཁོ་ནའི་ས་མ་ཡིན་གྱི་སོ་སོའི་སྐྱེ་བོ་རྣམས་ཀྱི་ཡང་ཡིན་ནོ་ཞེས་བསྟན་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར། སྐུ་གསུང་ཐུགས་[1]ཀྱི་འཁོར་ལོ་ལ། །ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། །སྔར་གསུངས་པའི་རིམ་པ་རྣམས་ཀྱིས་ལུས་ལ་གནས་པའི་ཐུགས་ལ་སོགས་པའི་འཁོར་ལོ་གནས་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞིའི་

---

༡ རྒྱ་དཔེར། ° ཐུགས་གསུང་སྐུ་ཅེས་གོ་རིམ་འཁྲུག

གནས་འདི་རྣམས་སུ་མཁའ་འགྲོ་རྣམས། །

རྩ་ཡི་གཟུགས་སུ་ཡང་དག་གནས། ༡༤ །

[1]དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེར་གནས་ལ་སོགས་པ་ས་བཅུ་[2]རྒྱས་པར་བསྟན་··· པའི་དབྱེ་བ་སྟེ་ལྔ་པའོ། །

དབྱེ་བས་ཕྱེ་བ་རྣམས་སུ། ཀང་མེད་དང་། ཀང་གཉིས་དང་། ཀང་བཞི་དང་། ཀང་མངས་དེ་ལུས་ཅན་ཐམས་ཅད་ལ་ཡང་རྩའི་རང་བཞིན་གྱི་ས་འདི་རྣམས་ནི་གནས་གཙོ་བོ་སྟེ། དེ་ཁོ་ན་ཉིད་ཀྱིས་སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ནི····· སའི་དབང་ཕྱུག་ཡིན་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ། ༡༨–༡༤ །

ཞེས་པ་རྫོགས་པའི་རིམ་པའི་སྒྲུབ་པའི་ཐབས་ཀྱི་ཚིག་དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པ་གསང་བ་ཆེན་པོའི་སྒྲོན་མ་ལས། རྒྱས་པར་བསྟན་པ་ལྔ་པའི་རྒྱས་པར་བཤད་པའོ།། །།



---

[1] རྒྱ་དཔེར་ (ཤྲཱི) དཔལ། [2] རྒྱ་དཔེར་ (ནེཏ་རྣིད་ཏི་རྡེཏཿ) ཡུལ་གྱི་དབྱེ་བ་བསྟན།

རྒྱས་པར་བསྟན་པ་དྲུག་པ།

དེ་ནས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་གང་ཡང་རུང་བའི་སྐུའི་གནས་ཛཱ་ལནྡྷར་སོན་པ་རྩའི་འཁོར་ལོ་མདོར་བསྟན་པ་[1]མཚོན་པར་བྱའོ། ༡ །

སྙིང་གི་[2]ནང་སོན་པདྨ་ནི། །
འདབ་མ་བརྒྱད་པ་སྙིང་པོར་[3]བཅས། །

ད་ནི་རང་གི་ལུས་ལ་གནས་པའི་རྩའི་འཁོར་ལོ་རྣམས་ཁོ་ན་འཁོར་ལོ་ཐམས་ཅད་དུ་གནས་པའི་མཁའ་འགྲོ་མའི་རང་བཞིན་དེའི་གཙོ་བོ་ནི་རང་བཞིན་གྱིས་གྲུབ་པའི་སྟུགས་ཀྱི་བདག་ཉིད་དེ། དེ་རྣམས་རྟོགས་པ་བྱ་བའི་སླད་དུ། རྒྱས་པར་བསྟན་པ་དྲུག་པ་ལ་འཇུག་པའི་ཕྱིར། དེ་ནས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། གང་ཡང་རུང་ཞེས་པ་ནི། སེམས་ཅན་གྱི་ཁམས་ཐམས་ཅད་དུ་གཏོགས་པ་ནི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་སྐུ་སྟེ། སྟ་མ་བཞིན་དུ་ཕྱུང་པོ་ལ་སོགས་པའི་རང་བཞིན་ལས་[4]ལྷའི་ངོ་བོ་ཉིད་ཀྱིའོ། །གནས་ཛཱ་ལནྡྷ་ར་བཞིན་དུ་ནི། གནས་ལ་མ་འདས་པར་བྱས་ནས། རྩའི་འཁོར་ལོ་ཁོ་ན་རྣལ་འབྱོར་མའི་ཚོགས་སུ་མཚོན་པར་བྱ་སྟེ། བཤད་པར་བྱའོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་མདོར་བསྟན་པའོ། ༡ །

སྙིང་གི་དབུས་སོན་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས། དེར་གཙོ་བོ་སྟུགས་ཀྱི་རང་བཞིན་གྱིས་གནས་པར་གསུངས་པ་སྟེ། འདིར་ལུས་ཅན་ཐམས་ཅད་ཀྱི་སྙིང་ག་ནི། ཆོས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་ཟླུ་འབྲུ་དང་གི་སར་དང་བཅས་ཤིང་ཐུན་

༡ རྒྱ་དཔེར། མདོར་བསྟན་པ་མི་གསལ། ༢ རྒྱ་དཔེར། (ནུ་ཤྲི་ཏུ) རང་བྱིང་། ༣ ཅོ་ནེ། གཉིས་པོར། ༤ རྒྱ་དཔེར། (ནཡྻ) དགུ་བཅུ།

དེ་ཡི་ནང་དུ་སོན་པའི་རྩ། |
རང་གི་ངོ་བོ་འབར་བའི་མེ། ༢ |

རྩ་ཤིང་གི་ནི་མེ་ཏོག་བཞིན། |
འཕྱང་བཞིན་པ་ནི་ཁ་འོག་ཏུའོ། |
དེ་ཡི་ནང་[1] གནས་དཔའ་བོ་ནི། |
ཡུངས་ཀར་གྱི་ནི་སྦྲུམ་ཕྲ་ཙམ། ༣ |

གཞོམ་མེད་ཧཱུྃ་ཡིག་ས་བོན་ནི། |
བ་མོ་ཙམ་དུ་འཛག་པ་ཉིད། |
ལུས་ཅན་རྣམས་ཀྱི་སྙིང་དགའ་བ། |
འདི་ནི་དཔྱིད་ཅེས་བྱ་བར་བཤད། ༤ |
གོད་དང་མར་མེའི་ངོ་བོ་ནི། |
ཕག་མོར་ཐིག་ལེར་བརྗོད་པ་སྟེ། |

ཚོད་བརྒྱད་རྣམ་པར་དག་པའི་རང་བཞིན་དུ་གནས་པའི་འདབ་མ་བརྒྱད་པའི་···· རྩའི་འཁོར་ལོའོ། །དེའི་དབུས་སུ་སྟེ། ཏིལ་གྱི་མར་མེའི་རང་བཞིན་ཅན་རྩ་ཤིང་གི་མེ་ཏོག་ལྟར་འོག་གི་གདོང་མ་སྲུམ་སྐོར་མ་ཞེས་བྱ་བ་གང་ཡིན་པ་དེའི་དབུས་སུ། ཉི་མའི་འོད་ཟེར་གྱི་ཚོགས་ལྷུང་བའི་སྔ་དྲོའི་བ་མོའི་ཟིལ་པ་ལྟ་··· བུའི་ཐིག་ལེ་འཛག་བཞིན་པ་ཡུངས་ཀར་ཕྲ་མོའི་ཚད་ཙམ་གྱི་ཧཱུྃ་གི་ཡི་གེ་ནི···· བརྗོད་པར་མི་ནུས་པ་ཉིད་ཀྱིས་ན་གཞོམ་དུ་མེད་པ་སྟེ། རྣམ་པར་རྟོག་པའི···· དངོས་པོ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་འཇིགས་པ་མེད་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་དཔའ་བོའོ། །དེ་ཉིད་ལུས་ཅན་ཐམས་ཅད་ཀྱི་སྙིང་དགའ་བར་བྱེད་པ་ཉིད་ཀྱི་དཔྱིད་ལྟ་བུ་ཡིན་པའི····

---

༡ རྒྱ་དཔེར་。 (མཆན) དབུས།

ལས་ཀྱི་རླུང་གིས་བསྐུལ་བ་ཡིས། ।
ལྟེ་བའི་དཀྱིལ་འཁོར་དུ་ནི་འབར། ༤ ।
དཔྱིད་ཐོབ་པས་ནི་ཚིག་ཤེས་པ། ।
སྙོམས་པར་འཇུག་པར་རྣམ་པར་གནས། ।
འདི་ནི་ཧེ་རུ་ཀ་དཔལ་དཔའ། ।
དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེར་བརྗོད་པ་སྟེ། ༦ ।
[1]རྣལ་འབྱོར་མ་ཡི་གཙུགས་སླངས་ནས། ।
རྒྱུ་དང་མི་རྒྱུ་ཡང་དག་གནས། ।
སྐུ་གསུང་ཐུགས་ཀྱི་དབྱེ་བ་ཡིས། ।
སྒོ་ནི་རྣམ་པ་གསུམ་བྱུང་བ། ༨ ।

ཕྱིར་ན་དཔྱིད་དེ། བཅོམ་ལྡན་འདས་དཔལ་ཧེ་རུ་ཀའི་ཞེས་ཤེས་པར་བྱ་བ······
ཡིན་གྱི། ཞལ་བཞི་པ་ཕྱག་བཅུ་གཉིས་པ་ནི་མ་ཡིན་ནོ། ༢–༣ །

རྟ་གདོང་གི་མེ་ལྟ་བུའི་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་མེ་གང་ཡིན་པ་འདི་ནི་བསྒྲུབ་པར་བྱ་བ་དང་སྒྲུབ་པར་བྱེད་པ་ཡང་དག་པར་སྦྱོར་བའི་མཚན་ཉིད་ལས་ཀྱི་རླུང་གིས་སྙིང་དུ་བསྐུལ་བ་ལས་ལྟེ་བའི་གནས་ནས་འབར་བ་སྙིང་གི་ལམ་དུ་སོང་ནས། དེ་ལ་སྙིང་གར་གནས་པའི་དཔའ་བོ་དེའི་བདུད་རྩིའི་བཀོད་མའི་རྒྱུན་ལྷུང་བས་དེ་ཉིད་དུ་ཞུ་བས་རིག་པ་འདི་ཉིད་གཉིས་སུ་མེད་པར་སྦྱོར་བ་ཡིན་པའི་ཕྱིར······སྙོམས་པར་ཞུགས་པ་སྟེ། དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེ་ཞེས་བརྗོད་པར་བྱའོ། ༤–༤½ །

དེ་ཉིད་འདི་ནི་ཧེ་རུ་ཀ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། ཧཱུྃ་གི་ཡི་གེ་གང་ཡིན་པ་འདི་ནི་སྔར་གསུངས་པའི་མཚན་ཉིད་ཀྱིས་བརྗོད་པ་དེ་ཉིད་དཔལ་ཧེ་རུ་ཀ་སྟེ། ཡེ་ཤེས་འབར་བའི་ཕྱིར་ན་རྡོ་རྗེ་ཕག་མོ་ནི་ཐིག་ལེར་བརྗོད

---

[1] རྒྱ་དཔེ་ཉག་ཉ་ཞིག་ནང་། རྒྱུ་བ་དང་ནི་མི་རྒྱུ་བའི། །སོགས་ཀ་ཡོག་གཉིས་དང་ཕྱིར་མང་ཉུག

དེ་ནི་འགྲོ་དང་འོང་བྱེད་པ། །
འདི་ནི་ཀུན་གྱི་ལུས་ལ་གནས། །
ལྟེ་བར་ཨ་[1]ཡིག་གཟུགས་ཀྱིས་ཏེ། །
ཐུང་ངུ་རྩ་ནི་ཡོངས་སུ་གྲགས། ༨ །

སྙིང་ལ་ཡང་ནི་ཡི་གེ་ཧཱུྃ། །
རིང་པོ་ཚ་ནི་གཉིས་དང་བཅས[2]། །
མགྲིན་པར་ཨོཾ་[3]ཡིག་གཟུགས་ཀྱིས་ནི། །
ཚ་གསུམ་སྦྱོར་[4]བ་ཞེས་སུ་བརྗོད། ༩ །

པར་བྱའོ། །དེ་ཉིད་རྒྱུ་བ་དང་བཅས་པའི་མི་རྒྱུ་བ་སྟེ། གནས་པ་དང་འགྲོ་བའི་བདག་ཉིད་ཀྱི་འགྲོ་བ་ལ་སྣང་གསུངས་པའི་རྣལ་འབྱོར་མའི་གཟུགས་དེ། ཁ་དོག་དམར་པོ་བླངས་ནས་གནས་པའོ། །དེ་བཞིན་དུ་བཅོམ་ལྡན་འདས་མ་དེ་ཉིད་ལུས་ལ་སོགས་པའི་དབྱེ་བས་དབྱེ་བར་འགྱུར་བའི་དམན་པ་དང་འབྲིང་······དང་དམ་པའི་སྒོ་གསུམ་གྱི་དབྱེ་བས[5]། འགྲོ་བ་དང་སོང་བ་དང་གནས་པ····རྣམས་མཛད་པ་ཡིན་ནོ། །དེ་ཁོ་ནའི་ཡིན་གྱི། ལུས་ཅན་ཐམས་ཅད་ལ····ཡང་རྣམ་པར་གནས་སོ་ཞེས་པའི་དོན་ཏོ། ༦–༧ ༡/༢ །

དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་[6]གཙོ་ཆོས་འཁོར་ལོ་བཞི་ལ་ཁྱབ་པར་བསྟན་པའི་ཕྱིར། ལྟེ་བར་ཞེས་བྱ་བ་ནས་བརྩམས་ཏེ། འདིར་ནི་ཇི་ལྟར་བདེ་བར་རོལ།། ཞེས་བྱ་བའི་མཐར་ཐུག་པ་གསུངས་ཏེ། དེ་ལ་ལྟེ་བ་སྤྲུལ་པའི་འཁོར་ལོ་ལ···དཔྱིད་དེ་ཉིད་ཨ་ཡིག་ཐུང་ངུའི་གཟུགས་སོ། །སྙིང་ག་ཆོས་ཀྱི་འཁོར་ལོར···ནི་ནཱ་ད་དང་ཐིག་ལེ་དང་ལྡན་པའི་ཧཱུྃ་ཡིག་གི་རྣམ་པའོ། །མགྲིན་པར་ལོངས་

---

1 རྒྱ་དཔེར༌ ཨཱ། 2 རྒྱ་དཔེར༌ (སྦྱ5ཿ) བརྗོད། 3 སྡེ༌ ཅོ་ནེ༌ ཨ། 4 ཅོ་ནེ༌ སྦྱོང་།
5 རྒྱ་དཔེར༌ བཅོ་ལྔ་འདུག . 6 ཅོ་ནེ༌ གྱི་མི་འདུག

དཔྲལ་བ་རྩ་ནི་ཧཾ་ཡིག་འདེ། |
སྒྲ་དང་ཐིག་ལེ་མི་ཤིགས་པའ། |
འཁོར་ལོ་བཞི་ཡིས་རབ་དབྱེ་བས། |
ས་སོགས་འབྱུང་བ་ཆེན་པོ་དང་། ༡༠ |
ཐུན་བཞིར་བྱིན་གྱིས་བརླབས་ནས་ནི། |
སྐད་ཅིག་བཞིར་ནི་ཡང་དག་འབྱུང་། |
དགའ་བ་བཞི་ཡི་ངོ་བོ་དང་། |
རྣལ་འབྱོར་བཞི་རྩ་གཞོལ་བའོ། ༡༡ |

སྤྲོད་རྫོགས་པའི་འཁོར་ལོར་ནི་ཆ་གསུམ་པ་ཤིན་ཏུ་རིང་པོའི་ཨོཾ་ཡིག་གི······
གཟུགས་ཏེ། རྩ་འཁྲུག་པོ་ཉིད་ལས་དེ་ལ་ལན་གསུམ་དུ་བསྐོར་བས་གཏུམ······
མོའི་འཇུག་པ་དང་འབྱུང་བའོ་ཞེས་བྱས་ནས་སོ། །དཔྲལ་བར་བདེ་བ་ཆེན···
པོའི་འཁོར་ལོར་ནི་ནད་དང་ཐིག་ལེས་བརྒྱན་པ་གཞོམ་དུ་མེད་ཅིང་འགྱུར་བ···
མེད་པ་ཧའི་ཡི་གེའོ། །དེ་ཉིད་ལུས་[1]ལས་ལྡོག་པ་དཔྲལ་བ་དང་། མགྲིན་པ་དང་།
སྙིང་ག་དང་། ལྟེ་བ་རྣམས་སུ་དཔལ་ཧེ་རུ་ཀ་སྟགས་ཀྱི་སྐུའི་གཟུགས་སོ། །ས་
སོགས་འབྱུང་བ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་དེའི་དོན་གསུངས་ཏེ། དེའི་སངས་
རྒྱས་ཀྱི་ཞིང་ནི་ས་ལ་སོགས་པའི་རང་བཞིན་གྱི་འཁོར་ལོ་བཞི་པོ་རྣམས་སོ། །
ཉིན་དང་མཚན་མོ་དང་གུང་དང་། ཕྱི་དྲོ་དང་མཚན་ཕྱེད་དང་སྔ་དྲོའི་མཚན···
ཉིད་ཀྱིས་ཐུན་བཞི་པོ་འཁོར་ལོ་བཞིར་འབབ་པ་ཅན། བརྒྱ་ཕྲག་ལྔ་བཅུ་རྩ···
བཞི་དབྱུགས་ཀྱི་གྲངས་ཏེ། དེ་ཉིད་ནི། ཤེས་རབ་དང་ལྡན་པའི་བཅོམ་ལྡན་
འདས་དེ་ཉིད་ཀྱི་ཞལ་[2]བཞི་ཡིན་ནོ། །རྣམ་པ་སྣ་ཚོགས་པ་ལ་སོགས་པ་ལ···
དགའ་བ་ཉེ་བར་མཚོན་པའི་སྐད་ཅིག་བཞི་དང་། དགའ་བ་ལ་སོགས་པ་བཞི་

---

༡ སྡེ་༠ ཅོ་ནེ་༠ ཁུགས། ༢ རྒྱ་དཔེར་༠ (ཅར༨) ཞབས།

མཆོག་དུ་དགའ་བའི་ངོ་བོ་ཡིས། །
བྱ་དང་བྱེད་པའི་དངོས་པོ་ལས། །
རྡོ་རྗེ་སེམས་དཔའི་[1]གཟུགས་ཀྱིས་ནི། །
འདི་ནི་ཇི་ལྟར་བདེ་བར་རོལ། ༡༢ །

འདབ་མ་རྣམས་ནི་བཞི་པོ་ཡང་། །
ཕྱོགས་བཞིར་རྣམ་པས་གནས་པ་སྟེ། །
འབྱུང་བ་བཞི་ཡི་རྩ་རྣམས་ནི། །
ཐུགས་ཀྱི་རྡོ་རྗེའི་གནས་སུ་གནས། ༡༣ །

དང་། སྐྱུར་བ་དང་། ཀླངས་[2]པ་དང་། རྣམ་པར་བཅིངས་པ་དང་། སྣ་ཚོགས་བྱེད་པའི་སྦྱོར་བ་བཞི་པོ་རྣམས་གང་ཡིན་པ་འདི་རྣམས་སོ་སོར་བཤད་པ་ལས། དེ་ཉིད་དེའི་ཕྱག་བཅུ་གཉིས་པོ་རྣམས་དང་དེ་ཉིད་སྟེང་དུ་རབ་དུ་འཇུག་པ་ལས་ནི་སྤྱན་བཅུ་གཉིས་དང་། དེ་ཉིད་དབུས་སུ་རབ་དུ་འཇུག་པ་ལས་ནི་མཚན་ཆ་བཅུ་གཉིས་པོ་རྣམས་སོ། །འདི་ཉིད་བྱ་བ་དང་བྱེད་པ་པོ་དག་གི་སྟེ། སྤྲིག་པར་བྱེད་པ་དང་འཕེལ་བར་བྱེད་པའི་དངོས་པོས་རོ་མཉམ་པ་ཉིད་ཀྱིས་ན། དཔལ་ཐིག་ལེ་རྡོ་རྗེ་སེམས་དཔའ་དཔྱིད་དེའི་གཟུགས་སོ། །དེས་ཇི་ལྟར་བདེ་བར་ཏེ། དགའ་བ་བཞིའི་རང་བཞིན་ཉིད་ལ་བརྟེན་ནས་རོལ་ཞིང་ལུས་ཅན་ཐམས་ཅད་ཀྱི་ལུས་ལ་དགའ་བར་བྱེད་དོ་ཞེས་བྱ་བའི་དོན་ཏོ། ༨–༡༢།

དེ་ལྟར་དབུས་ཀྱི་གཙོ་བོ་ཤེས་རབ་དང་བཅས་པའི་ཞལ་དང་། ཕྱག་དང་། སྐུ་མདོག་དང་། དབྱིབས་དང་། མཚན་མ་ནི་ནང་གི་གཟུགས་སུ་གསལ་བར་བྱས་ནས། འདབ་མ་བཞི་པོ་དག་ནི་ཡང་། །ཞེས་བྱ་བ་ནས་བརྩམས་ཏེ། རྩ་ལྔ་རྣམས་ནི་རྣམ་པར་གནས། །ཞེས་པའི་མཐར་ཐུག་པའི་གཞུང་ནི།

---

[1] རྒྱ་དཔེར་° (ཤྲཱི) དཔལ་ལྡན་རྡོར་སེམས། [2] ཅོ་ནེ་° སླངས།

མཁའ་འགྲོ་དེ་བཞིན་ལཱ་མ་དང་། །
དུམ་སྐྱེས་མ་དང་གཟུགས་ཅན་མ། །
[1]མཚམས་ན་གནས་པའི་རྩ་རྣམས་ནི། །
[2]བཞི་པོ་ཡང་དེ་རུ་སོན་པའོ། ༡༣ །

བདུད་རྩི་ལྔ་འབབ་པ་དེ་ནི། །
མཆོད་པའི་ངོ་ངོར་གནས་པ་སྟེ། །
དེ་ཡི་གཟུགས་ཉིད་དངོས་པོ་ཡིས། །
མཆོད་པ་བཞི་ཞེས་རྣམ་པར་བཤད། ༡༤ །

ཡེ་ཤེས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་འི་མཁའ་འགྲོ་མ་བཞི་པོ་དང་མཆོད་པའི་བུམ་པ་བཞི་པོ་ཡང་རྟོགས་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར་གསུངས་པ་ཡིན་ཏེ། དེ་ལ་ཆོས་ཀྱི་འཁོར་ལོའི་ཤར་དང་། བྱང་དང་། ནུབ་དང་། ལྷོ་སྟེ་ཕྱོགས་ཀྱི་ཆར་གནས་པ་བཞི་པོ་ནི་འཇོན་པ་དང་། གཤེར་བ་དང་། དྲོ་བ་དང་། གཡོ་བའི་མཚན་ཉིད་དེ། ཐུགས་ཀྱི་རྡོ་རྗེ་དཔལ་ཧེ་རུ་ཀའི་གནས་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་འཁོར་ལོར་གནས་ཞིང་སོན་པ་དེ་རྣམས་ཉིད་ནི་མཁའ་འགྲོ་མ་ལ་སོགས་ཏེ། མཁའ་འགྲོ་མ་དང་། ལཱ་མ་དང་། དུམ་སྐྱེས་མ་དང་། གཟུགས་ཅན་མར་ཤེས་པར་བྱའོ། །དེ་ལས་ནམ་མཁའ་ལ་ཐིམ་པ་ལས་མཁའ་འགྲོ་མ་དང་། རྩ་ནམ་མཁའ་ལ་རོལ་པས་ན་ལཱ་མ་[3]སྟེ། སྟེབ་སྦྱོར་ལས་ཡི་གེ་བཟློག་པའོ། །མེ་ནམ་མཁའ་དུམ་བུར་བྱེད་ཅིང་འགྲོ་བར་བྱེད་དོ་ཞེས་པས་དུམ་བུ་སྟེ། དེ་རྣམ་པར་དག་པ་ལས། དེ་ཉིད་དུ་གསལ་བའི་ཕྱིར་ཁཎྜ་རོ་ཧཱའོ། །དེས་ན་གཞི་མཐུན་པའི་བསྡུ་བ་ཡིན་ནོ། །རླུང་ནམ་མཁའི་གཟུགས་སུ་འགྲོ་ཞིང་རྣམ་པར་སྦྱོང་བའི

[1] སེ༌ ༠ མཚམས་ན་གནས་བྱེས་པའི་སྐབས་ནི་འབབ་པའོ་འདུག [2] སེ༌ ༠ སྣ༌ ༠ བཞི་པོ་ཡང་དེ་རུ་སོན་པའོ་ནས་ཀུ་ཤུ་ཏཱར་ནི་བརྩོན་ཆེན་མོ་པར་ཚོགས་བཅད་རྒྱ་ཕྱ་རྒྱ་བཞི་མི་གསལ། [3] སྡེ༌ ༠ ཅོ་ནེ༌ ༠ སྣར་ཐ།

ལུས་ཅན་སྐྱིང་གི་ནང་དུ་ནི། །
རྩ་[1] རྣམ་ལྔ་ནི་རྣམ་པར་གནས། །
སྐུ་གསུང་ཐུགས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་ལ། །
ཉི་ཤུ་རྩ་བཞིར་ཡང་དག་བརྗོད། ༡༦ །

ཕྱིར། གཟུགས་ཅན་མའོ། །ཕྱོགས་ཀྱི་མཁའ་འགྲོ་མ་རྣམས་བཤད་ནས། ཕྱོགས་བྲལ་དུ་གནས་པའི་ཁྲུམ་པ་རྣམས། ཕྱོགས་བྲལ་གནས་པའི་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་གསུངས་ཏེ། ཡེ་ཤེས་ཀྱི་འཁོར་ལོའི་སྐྱིང་ག་དེ་ཉིད་དུ་བདུད་རྩི་ལྔ་འབབ་ཅིང་མཚམས་སུ་གནས་པའི་རྩ་གང་ཡིན་པ་དེ་ཉིད་ནི་ཁྲུམ་པའི་རྣམ་པ་སྟེ། དེ་ལས་བྱུང་བའི་ཁྲུག་པ་ཐོད་པའི་ཕྲེང་བར་གནས་པ་དེ་རྣམས་སུ་བདུད་རྩིའི་བདག་ཉིད་ཀྱི་མཆོད་པ་བཞི་པོ་ཤེས་པར་དགོའ་ཞེས་ལུས་ཀྱི་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་ཉེ་བར་བསྟུ་བ་གསུངས་ཏེ། དེ་ལྟར་བཤད་པའི་ཚུལ་གྱིས་ལུས་ཀྱི་དབུས་སུ་རྩ་ལྔ་སྟེ། སུམ་སྐོར་མ་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་པདྨའི་མཆོད་པའི་མཁའ་འགྲོ་མ་བཞི་དང་བཅས་པ་རྣམས་སོ་ཞེས་ཤེས་པར་བྱའི། ནཱ་དའི་གཟུགས་སུ་སྐྱོང་བ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་ཕྱི་རོལ་རྣམས་དང་རྟག་པ་ནི་མ་ཡིན་ནོ། ༡༣–༡༤½ །

སྐུ་གསུང་ཐུགས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས། འཁོར་ལོ་གསུམ་གྱི་རྩ་རྣམས་རྣལ་འབྱོར་མར་གསུངས་ཏེ། ཐུགས་གསུང་སྐུ་ཞེས་བརྗོད་པར་བྱ་བ་ཡིན་ན་ཡང་། ལུགས་ལས་བཟློག་པས་ཟློག་པ་ནི། །སྐལ་བ་མེད་པ་རྣམས་ལ་སྦ་བའི་དོན་ཏོ། །དེའི་ཕྱིར་ཐུགས་ལ་སོགས་པའི་འཁོར་ལོ་དང་། སྤྱི་བོ་ལ་སོགས་པ་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞིའི་བདག་ཉིད་ཀྱི་གནས་སུ། རབ་གཏུམ་མ་ལ་སོགས་པ་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞི་པོ་རྩའི་གཟུགས་ཁོ་ནས་གནས་དང་གནས་སུ་སྟེ། གནས་དང་ཉེ་བའི་གནས་ནས་ཉེ་བའི་དུར་ཁྲོད་ཀྱི་མཐར་ཐུག་པ་སྟེ། མཐར་ཐུག་པ་རང་བཞིན་གྱིས་གྲུབ་པ་ཁོ་ནས་རྣམ་པར་གནས་ཏེ།

---

༡ སྡེ་. ཅོ་ནེ་. སྣ།

གནས་སོགས་དབྱེ་བ་ལ་བརྟེན་ཏེ། །
གནས་དང་གནས་ལ་རྣམ་པར་གནས། །
སྤྲི་བོར་ཡང་དག་འབྱུང་བ་ཡི། །
རྩ་རྣམས་སྤྲི་བོར་སྐྱེས་ཞེས་བྲན། ༡༧།
དེ་ཡི་ནང་''ན་འདྲེན་པ་ནི། །
རྡུལ་དང་སྙིང་སྟོབས་མུན་པའི་ཚུལ། །
ཕྱུལཱིར་རབ་གཏུམ་མ་ཞེས་བྲན། །
སོ་དང་སེན་མོ་འབབ་པར་བྲན། ༡༨ །
ཛྷལནྡྷརར་གཏུམ་མིག་མ། །
དེ་བཞིན་སྐྲ་དང་བ་སྤུ་འབབ། །

རྩ་བའི་རྒྱུད་དུ་ཡང་།

ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་ཁྱབ་མཁའ་འགྲོ་རྣམས། །

ཞེས་གསུངས་པའི་ཕྱིར་རོ།།

སྤྲི་བོར་ཡང་དག་བྱུང་བ་ཡི། །
རྩ་རྣམས་སྤྲི་བོ[2]སྐྱེས་ཞེས་བྲན། ། ཞེས་བྱ་བས་དེ་ཉིད་གསུངས་ཏེ། འདིར་བདེ་བ་ཆེན་པོ་འི་འཁོར་ལོ་ལས་རྩ་སུམ་ཅུ་རྩ་གཉིས་རབ་ཏུ་འབྱུང་བར་འགྱུར་ཏེ། གང་[3]དང་ལྷན་པ་ལྟ་བུ་བྱུང་བ། དེ་རྣམས་ལས་ཁ་བ་དང་། ཁྲག་དང་། གཅི་ག་འཛིན་པར་བྱེད་པ། ལལན་དང་རསན་དང་ཨཝ་དྷཱུ་ཏཱི་རྣམས་ནི་ཁམས་གསུམ་པོ་མ་ལུས་པར་སྐྱེད་པར་བྱེད་པ་སྟེ། སྙིང་སྟོབས་དང་རྡུལ་དང་མུན་པའི་རང་བཞིན་ལུས་དང་ངག་དང་སེམས་ཀྱི་བདག་ཉིད་ཅན་དུ་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱའོ། ༡༧–༡༨ །

དེ་ལ་རྩ་སུམ་ཅུ་རྩ་གཉིས་ཀྱི་མིང་ནི། དཔལ་ཀྱིའི་རྡོ་རྗེར།

---

༡ རྒྱ་དཔེར་。 (མཆུ) དབུས། ༢ ཅོ་ནེ。 སྤྲི་བོར། ༣ རྒྱ་དཔེར་。 (དེམ) གངས།

ཨོཾ་ཧཱི་ཡན་གནས་ཆོན་པར་ཡ། །
འདོད་ལྡན་མ་ནི་རྣམ་པར་གནས། ༡༩ །
གཡས་པའི་གནས་[2]ལ་བརྟེན་ནས་ནི། །
པགས་[3]པའི་དྲི་མ་འཛིན་ལ་གནས། །
ཨབྲུ་དར་ནི་སྣ་ཆེན་མོ། །
མཁའ་འགྲོ་མ་ནི་ཤ་ཟན་པསམ། ༢༠ །

མི་ཕྲེད་མ་དང་ཕྲ་གཙུགས་མ། །
མཛེས་མ་གཡོན་མ་ལུས་ཕྲུང་མ། །
ཅུས་སྤྲལ་སྐྱེས་མ་སྐོམ་པ་མ། །
དབང་མ་སྐྱོན་མ་བ་ཤང་བ་མ། །
མ་དང་མཚན་མོ་གསལ་སྦྱིན་དྲོད། །
བརྒྱང་མ་ཀུན་འདར་རོ་མ་དང་། །
གཞིལ་མ་རངས་པའི་གདོང་མ་དང་། །
[4]སྤྲི་མ་རྒྱ་སྦྱིན་སྦྱོར་བྲལ་མ། །
སྡུག་མ་ཀུབ་མ་མེ་མ་དང་། །
དེ་བཞིན་ཡིད་བཟང་སྣུམ་སྐོར་མ། །
འདོད་མ་ཁྲིམ་མ་གཏུམ་མོ་དང་། །
བདུད་དྲལ་ཀཱ་ཏྲའི་བྲུ་མོ་དང་། ། ཞེས་པའོ། །སྣུམ་
ཙ་རྩ་གཉིས་པོ་འདི་རྣམས་ཐུན་མཚམས་ཀྱི་རྩ་བཞི་དང་བཅས་པ་ནི་སྣུམ་ཙ་རྩ་
དྲུག་ཡིན་ལ། སྣུམ་སྐོར་མ་ལ་སོགས་པ་དང་། ཨཝ་དྷཱུ་ཏཱི་ལ་སོགས་······

[1] རྒྱ་དཔེར༌ (མདྷཱ་མཱི་ཥྛ) གནས་ཆེན་པོར། ཅོ་ནེ༌ ཆེན་པོར། [2] རྒྱ་དཔེར༌ (ཀཾ) ནི།
[3] ཅོ་ནེ༌ པགས། [4] ཅོ་ནེ༌ སྦྱིན་མ།

གནས་ཀྱི་འདྲེན་པ་མཁའ་འགྲོ་མ། །
གནས་བཞི་ཙ་ནི་ཡང་དག་བཤད། །
གང་ཞིག་ཚུ་རྒྱུས་འབབ་པའི་ས[1]། །
གོ་དཱ་ཝ་རཱི་རྣམ་དག་[2]གནས། ༣༡ །
དེ་ནི་སྲ་བའི་ཚུལ་གྱིས་གནས། །
དཔའ་བོའི་བློ་གྲོས་མ་ཞེས་བཤད། །
རཱ་མེ་ཤྭ་རའི་རྩ་གང་ཞིག །
དེ་ནི་མིཙུ་ཐུང་མ་ཞེས་གྲགས། ༣༢ །
ཙུས་པའི་ཕྲེང་བ་རྣམ་གནས་པ། །
སྲ་བ་ཡི་ནི་དངོས་པོས་གནས། །
ལྷ་མོའི་མཁར་དུའང་གང་ཞིག་རྩ། །
འཛམ་ལུས་ལང་ཀའི་དབང་ཕྱུག་མ། ༣༣ །
དེ་ནི་རྟག་ཏུ་མཆིན་པ་འབབ། །
ཀུན་གྱི་ལུས་ནི་རྟག་པར་གནས། །
མལབར་ནི་ཤིང་གྲིབ་[3]མ། །
རྒྱལ་བའི་དབང་ཕྱུག་སྙིང་ལ་གནས། ༣༤ །

བརྒྱུད་དོར་ནས། ལྷག་མ་མི་ཕྱེད་མ་ལ་སོགས་པ་ནི་རབ་གཏུམ་མ་ལ་སོགས་པ་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞིར་ཤེས་པར་བྱ་ལ། འདི་རྣམས་ཀྱི་སོ་དང་སེན་མོ་ལ་སོགས་པའི་ཁམས་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞི་ནི། ཐོད་པའི་དུམ་བུ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་སུ་ཤེས་པར་བྱའོ། །དེ་ལ་རྩ་གཉིས་དང་མཁའ་འགྲོ་མ་རྣམས་ཀྱི་ངེས་པའི་ཚིག་ནི།

---

༡ རྒྱ་དཔེར་° (མཧཱཙྩཱུཏཱཨཱནཱཏི) གང་ཞིག་བརྡར་ནི་གནས་པའི་རྩ།། ༢ རྒྱ་དཔེར་° (ཙུཎྜཱིཨཱིནྡྲ) རྣམ་པར་གནས། ༣ སྡེ་° གྲིམ།

མཁའ་འགྲོ་འཇིག་རྟེན་མ་མོ་རྣམས། །
ཉེ་བའི་གནས་སུ་ཡང་དག་བཤད། །
སྦུགས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་མཁའ་སྤྱོད་མ། །
གནས་དང་ཉེ་གནས་ཡང་དག་གནས། ༡༥ །

མི་[1]འབབ་པ་ཡི་རྩ་གང་ཞིག །
འདོད་པའི་གཟུགས་སུ་རྣམ་པར་གནས། །
གཟུགས་ནི་མཐོང་བར་འདོད་པ་སྟེ། །
ཨེརཱབཏཱི་ཞེས་བྱར་བཤད། ༡༦ །

ཨོཾ་ཧེར་མཁྲིས་པ་འབབ་པའི་རྩ། །
འཇིགས་བྱེད་ཆེན་མོ་ཙ་ནི་བརྗོད། །
མཁའ་འགྲོ་རྣལ་འབྱོར་མ་མོ་དག །
འདི་དག་ཞིང་དུ་ཡང་དག་བཤད། ༡༧ །

ཧཱི་ཤཀུ་ནིར་ཡང་དག་བྱུང་། །
ཀླུང་གི་ཤུགས་མ་འགྲོ་བར་[2]བཅས། །
ཆང་འཐུང་མ་ནི་ཀོ་ས་ལར། །
རྒྱུ་མའི་ཕྲེང་བ་འཁྲུག་ལྷ་རྫས། ༡༨ །

དབྱེ་བར་བྱ་བ་མ་ཡིན་པའི་སེན་མོ་དང་སོ་རབ་ཏུ་འབྱུང་བའི་ཕྱིར། མི་ཕྱེད་མ་སྟེ་སྤྱི་བོ་ལའོ། །ཤིན་ཏུ་ཕྲ་བའི་སྐྲ་དང་བ་སྤུ་འབབ་པའི་ཕྱིར་ཕྲ་གཟུགས་མ་སྟེ་སྤྱི་གཙུག་ཏུའོ། །པགས་པའི་དྲི་མ་ཕྱི་རོལ་དུ་སྣང་བཞིན་པས་འབབ་པའི་ཕྱིར། མཛེས་མ་སྟེ་རྣ་བ་གཡས་པ་ལའོ། །གཡོན་ཉིད་དུ་གང་བའི་ཤ་འབབ་པའི་ཕྱིར་རམ། གཡོན་གྱི་རྣམ་པའི་སྙིང་སྟོབས་ཀྱི་ཁམས་འབྱུང

---

༡ རྒྱ་དཔེར་° (ཙཀྲ) མིག ༢ རྒྱ་དཔེར་° (ཤུགསཤུ) ཕྲོད་པར།

མཁའ་འགྲོ་རྣལ་འབྱོར་མ་མོ་དག །
ཉེ་བའི་ཞིང་དུ་ཡང་དག་བཤད། །
ལྷུང་ལྷ་མ་ནི་ཀ་ལིངགར། །
ཡོགས་སུ་ཡང་དག་གནས་པའོ། ༡༩ །
ལྷོར་གནས་ཤིན་ཏུ་བཟང་མོར་ངེས། །
ལམྤ྄ཀ྄ར་ནི་ཡོངས་སུ་གྲགས། །
མཁའ་འགྲོ་རྣལ་འབྱོར་མ་མོ་དག །
ཚན྄དོ་ཧར་ནི་རྣམ་བཤད་པའོ། ༢༠ །

བའི་ཕྱིར་ཏེ། གཅིག་ལས་གཡོན་པ་མ་སྟེ་རྒྱབ་ཏུའོ། །ཙུ་རྒྱུས་འབབ་པ་ལས་སམ། ཟེམ་པ་སྐྱུགས་པ་ལས་ཏེ། གཅིག་ལས་ཐུང་ངུ་མ་ནི་རྣ་བ་གཡོན་པ་ལའོ། །རུས་སྦལ་གྱི་རྒྱབ་ལྟ་བུར་མི་ཕྱེད་པའི་རུས་པའི་ཕྲེང་བ་འབབ་པའི་ཕྱིར། རུས་སྦལ་སྐྱེས་མ་སྟེ་སྨིན་མའི་དབུས་སུའོ། །མཆིན་པ་འབྱུང་བར་བྱེད་ཅིང་འཛག་པར་བྱེད་དོ་ཞེས་པས། སྒོམ་པ་མ་སྟེ་མིག་གཉིས་ལའོ། །སྙིང་ལས་བདུད་རྩིའི་རོ་གཏོར་བར་བྱེད་པའི་ཕྱིར། དབང་མ་སྟེ་དཔྱུང་པའི་རྩ་བ་གཉིས་ལའོ། །གནས་དང་ཉེ་བའི་གནས་སུ་རྩ་བརྒྱད་པོ་འདི་རྣམས་ནི་མཁའ་སྤྱོད་མ་སྟེ། ཐབས་དང་བཅས་པ་ཐུགས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་ལའོ། །

སྐྲོན་བྱེད་ཅིང་རང་གི་ཡུལ་གྱི་རྣམ་པར་འགྱུར་བར་བྱེད་དོ་ཞེས་པ་སྐྲོན་མ་སྟེ། མིག་གི་ཁམས་ལ་གནོད་པའི་མཆན་ཁུང་དག་ལའོ། །མཆན་ཁུང་མཐོང་བ་ལས་ཡིད་རྣམ་པར་འགྱུར་ཏེ། འདི་ནི་བདག་གིའོ་ཞེས་ཞེ་སྡང་འབྱུང་བའི་ཕྱིར་ཡང་སྟེ། ཞེ་སྡང་སྐྲོན་ཞེས་པ་ནི་རྣམ་གྲངས་སོ། །མགྲིས་

ཧ་ན་མ་ནི་ཀཱུ་ཙོར་གནས། །
བཤད་པ་རྟག་ཏུ་འབབ་པའོ། །
ཧིམཱལཡར་བྱ་གདོང་མ། །
མཚམས་མཐའི་དབུས་སུ་སོན་པ་སྟེ། ༢༡ །
མཁའ་འགྲོ་རྣལ་འབྱོར་མ་མོ་དག །
ཉེ་བའི་ཚན་དོཧ་ཞེས་བཤད། །

པར་བརྗོད་པའི་བཤད་པ་འབབ་པར་བྱེད་དོ་ཞེས་པས་བཤད་པ་མ་སྟེ། ཉུ་མ་གཉིས་ལའོ། །བཤད་པའི་ཁམས་བསྐྱུལ་བ་ན་སྙིང་དུ་སློ་བ་འབབ་པའི་ཕྱིར་མ་ལྷ་བྱ་ཡིན་པས་མདའམ། མ་ལ་བརྟེན་ནས་མངོན་པར་འདོད་པ་སྐྱེད་པའི་ཕྱིར་དང་། འགྲོ་བ་སྐྱེད་པར་བྱེད་པའི་ཕྱིར་ཡང་སྟེ་ལྟེ་བ་ལའོ། །རྒྱུ་མའི་ཕྲེང་བ་རྣམས་སུ་བདེ་བ་ཆེན་པོར་ཉལ་བའི་ཕྱིར་རི་ཁྲོད་མའོ། །མཚན་མོ་འི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་སྐྱེད་པའི་ཕྱིར། མཚན་མ་མོ་[2]སྟེ་སྣ་རྩེ་ལའོ། །གཉེ་མ་དང་ཚིལ་བུའི་ཚོགས་ཀྱིས་རྒྱུ་མ་ལ་ཡོངས་སུ་བསྐོར་ནས་གནས་སོ། །དེ་འབབ་པར་བྱེད་པའི་ཕྱིར་དཀར་སྦྱིན་མ་ཡིན་པའམ། དེས་བསིལ་སྦྱིན་མ་སྟེ་ཁ་ལའོ། །ལྟོ་བར་བཀྲེས་པའི་མེ་སྟེ། དེ་འབབ་པར་བྱེད་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར། དྲོད་མ་སྟེ་མགྲིན་པ་ལའོ། །བཤད་པ་འབབ་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར། གཞོལ་མ་སྟེ་ཡི་གེ་བཟློག་པ་ལས་པྲཙཎྜའོ[3]། །རྣམ་པར་སྣང་མཛད་འབབ་མ་སྟེང་ག་ལའོ། །མཚམས་མཐའི་སྟོད་[4]ཀྱི་ནང་དུ་དེ་འབབ་པ་ཉིད་ལས་རངས་པའི་གདོང་མ་སྟེ། དེའི་རིག་པ་ལས་ཐབས་དང་ཤེས་རབ་དག་གི་དགའ་བ་ཉིད་ཀྱི་

---

༡ ཅོ་ནེ་° ཞེ་སྡང་དང་། ༢ སྡེ་° མཚན་མ་མ། ༣ སྡེ་° པྲལ་པཱ་ནོ།། ༤ རྒྱ་དམེར་° ཕྱར་ཏག།

གསུང་གི་འཁོར་ལོ་ཡང་དག་བཤད།[1] །
ས་སྤྱོད་ཕོ་ཉ་རྣམ་གནས་པའོ། ༢༡།

ཡི་དྭགས་ལྷ་གནས་ཡང་དག་གནས། །
འཁོར་ལོའི་ཤུགས་མ་བདུད་ཀུན་ཅན། །
གང་ཞིག་[2]དྲག་ཏུ་ནག་འབབ་པ། །
ཁྲིམ་གྱི་ལྷར་ནི་ཡང་དག་གནས། ༢༢ །

མཁའ་འགྲོ་དམ་པའི་དབང་ཕྱུག་མ། །
དུམ་སྐྱེས་མ་ཞེས་རྣམ་པར་བཤད། །
མཁའ་འགྲོ་རྣལ་འབྱོར་མ་མོ་དག །
འདུ་བ་ཅན་དུ་ཡང་དག་བཤད། ༢༣ །

ཕྱིར་རྩ་སོ་ལའོ། །གསུང་གི་འཁོར་ལོ་ལ། ཞིང་དང་ཉེ་བའི་ཞིང་དང་། འདུན་པ་དང་ཉེ་བའི་འདུན་པ་འདི་རྣམས་སུ་རྩ་བརྒྱད་པོ་ནི་ས་སྤྱོད་མ་རྣམས་སོ། །

ཁམས་མཉམ་པ་ཉིད་ཀྱི་བདུད་ཀུན་འབབ་པའི་ཕྱིར་སྤྱི་མ་སྡེ་གསང་བ་ལའོ། །ཕལ་ཆེར་ཤ་ཟ་བའི་ཕྱིར་རམ། མི་སྤྱོར་བའི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་སྐྱེད་པར་བྱེད་པའི་ཕྱིར། སྦྱོར་བྲལ་མ་སྟེ་བཤང་ལམ་ལའོ། །ཁྲག་འབབ་པ་ལས་དཔྱིད་ཀྱི་མེ་ཏོག་རྣམས་ཀྱི་དགའ་བ་སྐྱེད་པར་བྱེད་པའི་ཕྱིར་སྐྱུ་གུ་མ་སྟེ་བརླ་དག་ལའོ། །སྨོམས་པར་འཇུག་པ་ན་རྡུལ་སྐྱེ་བ་ནི་ཐམས་ཅད་ལ་གྲུབ་སྟེ། དེ་འབབ་པར་བྱེད་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་གྲུབ་མ་སྟེ་བྱིན་པ་ལའོ། །གྲུབ་པའི་མཚན་མ་སྐྱེ་བའི་རྟེན་ཡིན་པའམ། དེ་གཙོ་བོ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ན་ལུས་རྒྱས་པ་ལ་ཆོལ་བ་ཉིད་རྒྱུ་ཡིན་ལ། དེ་འབབ་པའི་ཕྱིར་རྒྱུ་སྟོན་མ་སྟེ། ཀང་པའི་སོར་མོ་རྣམས་ལའོ། །གདོང་གི་མཆི་མ་ནི་རྒྱུ་ངན་འབབ་བ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་མེ་མ་སྟེ་

---

[1] རྒྱ་དཔེར། (ཙཀྲཾསཾསཱབྲིཎྜུཏྲཱཡཾ) འཁོར་ལོར་ཡང་གནས་སྟེ། [2] རྒྱ་དཔེར། (སུ) དེར་ནི།

སྨེར་ནཱ་ཊ་ནི་དམར་པོས་མནན[1]། །
ཚང་འཚོང་མ་ནི་མཁའ་འགྲོར་འདོད། །
རྟུལ་ནི་འབབ་པར་འགྱུར་བའི་རྩ། །
གསེར་གླིང་དུ་ནི་ཡང་དག་གནས། ༢༥ །
ཤིན་ཏུ་བཟང་ལུགས་[2]ཡང་དག་འཁྲུག །
དེ་ཡི་འཁོར་ལོ་གོ་ཆ་འདོད། །
མཁའ་འགྲོ་རྣལ་འབྱོར་མ་མོ་དག །
ཉེ་བའི་འདུ་བ་ཅན་རབ་སྤྲས། ༢༦།

ཀང་པའི་རྒྱབ་ལའོ། །ལྷུད་པ་དོར་བས་རྣལ་འབྱོར་པ་རྣམས་ཀྱི་དགའ་བ་སྐྱེད་པར་བྱེད་པའི་ཕྱིར་ཡིད་བཟངས་མ་སྟེ་ཀང་པའི་མཐེ་བོ་ལའོ། །ཛེ་སྲིད་དུ་ངར་སྐབས་ཀྱི་སྐྱོན་བྱེད་པའི་ཕྱིར་ཀཊྟ་ཡ་ཡན་སྟེ་བྱིས་མོ་གཉིས་ལའོ་ཞེས་པ་སྐྱུའི་འཁོར་ལོ་ལ་འདུ་བ་དང་། ཉེ་བའི་འདུ་བ་དང་། དུར་ཁྲོད་དང་། ཉེ་བའི་དུར་ཁྲོད་དུ་བརྗོད་པ་རྣམས་སྲུ་རྩ་བརྒྱད་པོ་རྣམས་ནི་ས་འོག་ན་གནས་པ་རྣམས་སོ། །

ངག་གི་སྦྱ་མའི་སྒོ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་དམ་ཚིག་གི་འཁོར་ལོའི་རྩའི་ངེས་པའི་ཚིག་རྒྱས་པར་གསུངས་ཏེ[3]། ངག་གི་སྒོ་ལས། སྦྱ་མ་ནི་ལུས་ཀྱི་སྒོ་དེ་རྣམས་སུའོ། །མིག་ལ་སོགས་པའི་རྩ་བརྒྱད་པོ་གཡས་དང་གཡོན་དུ་ཡང་སྟེ། མིག་དང་། རྣ་བ་དང་། སྣ་དང་། ཁ་དང་། གསང་བ་དག་ཏུའོ།། དེ་རྣམས་ཀྱི་མིང་ནི་རབ་ཏུ་གྲགས་པ་ཁོ་ན་སྟེ། ཡུལ་ཉེ་བར་མཚོན་པའི་དམ་ཚིག་གི་རྗེས་སུ་གནས་པའི་ཕྱིར། དམ་ཚིག་གི་འཁོར་ལོར་གནས་པར་ཤེས་པར་བྱའོ་ཞེས་པ་ནི་རྩའི་ངེས་པའི་ཚིག་གོ །

---

༡ རྒྱ་དཔེར་。(ཨུཏྲུ) བརྗོད། ༢ རྒྱ་དཔེར་。(སུནྡ་མཏྟངྒ) ཤིན་བཟང་ལན་ལག
༣ རྒྱ་དཔེར་。(དུརམཎྜིཏལ) རིང་དུ་བོར་ནས་འདུག

ནགར་ཤིན་ཏུ་དཔའ་མོ་ཞེས། |
ཆོལ་[1]ཙན་སྦྲམ་པོའི་ལུས་ཅན་མ |
སིན་ ཧྣར་སྟོབས་ཆེན་མ་ཞེས་བྱ། |
སྒྱུ་ངམ་གྱི་ནི་མཆོ་མ་འབབ། ༢༧ |
མཁའ་འགྲོ་རྣལ་འབྱོར་མ་མོ་དག |
འདི་དག་དུར་ཁྲོད་ཡང་དག་འབབ། |

གནས་ཀྱི་རིམ་པའི་ཚིག་ནི་སྔར་བཤད་པ་རྣམས་སོ། །མཁའ་འགྲོ་མ་རྣམས་ཀྱི་ངེས་པའི་ཚིག་བརྗོད་པར་བྱ་སྟེ། འདིར་གཡས་ཁོ་ནའི་མཁའ་འགྲོ་མ་རྣམས་ནི་[2]ཕག་མོའི་རིགས་ལས་ཡང་དག་པར་བྱུང་བ་ཡིན་ནོ་ཞེས་ལན་མང་དུ་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱས་པ་ཡིན་ནོ། །དེ་དང་མི་ཕྱེད་པའི་གཙུགས་ཉིད་ཀྱིས་དེ་རྣམས་ཀྱི་བརྗོད་པར་བྱ་སྟེ། དེ་ལ་རབ་ཏུ་ཤ་ཞི་བ་དང་གདུམ་པ་ཉིད་གང་གི་ཡིན་པ་དེ་ནི་རབ་ཏུ་གདུམ་མའོ། །གཡོན་དང་ཅིག་ཤོས་ཀྱི་རྩ་དག་བདེ་བ་ཆེན་པོའི་གནས་སུ་སོན་པ་ཇི་སྲིད་པར་གདུམ་ཞིང་ནོ་བའི་སྲིག་པར་བྱེད་པ་ནི་འདིའི་ཡིན་ནོ་ཞེས་པས་གདུམ་མིག་མའོ། །གཉིས་པོ་དག་དབུ་མར་རབ་ཏུ་གསལ་བ་ལས་མེའི་ཁ་དོག་གི་འོད་དང་ལྡན་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་འོད་ལྡན་མ་དང་། གསང་བ་དང་། སྙིང་ག་དང་། གདོང་གི་སྣ་རྩེ་ཆེན་པོ་རྣམས་གང་གི་ཡིན་པ་དེ་ནི་སྣ་ཆེན་མ་སྟེ། གནས་ཀྱི་མཁའ་འགྲོ་མ་རྣམས་ནི་དོན་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་ནོ། །དཔའ་བོ་སྐྱེད་པར་བྱེད་པ་ཉིད་ཀྱིས་ཡོད་པར་བྱེད་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ནི་དཔའ་བོའི་བློ་ཅན་མ་སྟེ། ལྟེ་བའི་དབུས་ནས་དཔའ་བོ་ནི། །ཞེས་གསུངས་པའི་ཕྱིར་རོ། །ཊོན་པོ་ཡང་འདི་ཡིན་ལ་འཁོར་ལོ་གསུམ་སྲིག་པར་བྱེད་པའི་སྒོ་ཡང་འདི་ཡིན་ཏེ། སྔར་ཡང་དེ་འཕེལ་བར་བྱེད་པའི་ཕྱིར། མིའུ་ཐུང་མའོ། །ལཀྑ་ནི་ལུས་ཀྱི་གྲོང་སྟེ། དེའི་

༡ སྡེ་ ° ཚལ། ༢ ཅོ་ནེ་ ° རྣམས་ཀྱི།

མཆིལ་མ་སྐམ་པོ་འབབ་པ་གང་། །
རྒྱ་ངན་འཁོར་ལོས་སྒྱུར་མ་འོ། ༢༨ །
ཀུལླུཏྟ་ར་ནི་བརྩོན་ཆེན་མོ། །
ཁྲིས་པའི་སྐབས་ནི་འབབ་པ་འོ། །
མཁའ་འགྲོ་རྣལ་འབྱོར་མ་མོ་དག །
ཉེ་བའི་དུར་ཁྲོད་ཡང་དག་གནས། ༢༩ །
སྒྲ་ཡི་འཁོར་ལོར་མཁའ་འགྲོ་མ། །
ཕྱི་རོལ་ས་འོག་གནས་པ་འོ། །

དབང་ཕྱུག་མའམ་ཧེ་མོ་ནི་ལམྤཱཀའི་དབང་ཕྱུག་མའོ། །ཞིང་གི་གྲིབ་མ་ལྟ······ བུར་བསིལ་བ་འཕེལ་བར་བྱེད་པའི་ཕྱིར། ཞིང་གྲིབ་མའོ་ཞེས་པ་ཉེ་བའི······ གནས་ཀྱི་མཁའ་འགྲོ་མ་རྣམས་ཀྱི་དོན་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་ཏེ། ཐུགས་ཀྱི་འཁོར་ལོའི་མཁའ་[1]སྤྱོད་པ་རྣམས་སོ། །

ས་སྲུང་ལྟ་བུའི་ཤུགས་འབབ་པ་ནི་ས་སྲུང་མའོ། །སྒྲོན་མ་གཉིས་པ་ལ་འདུད་པ་[2]གཏོད་པའི་ཕྱིར། འཇིགས་བྱེད་ཆེན་མོའོ། །རླུང་ལྟ་བུར་སྙིང་དང་འོག་དང་ཕྱོགས་བཅུ་རྣམས་སུ་ཡང་མགྱོགས་པའི་ཤུགས་གང་གི······ ཡིན་པ་དེ་ནི་རླུང་ཤུགས་མའོ། །སྒྲོན་མ་གཉིས་པར་[3]ཡང་ཆང་ནི་བདུད་རྩི་སྟེ་འཐུང་བར་བྱེད་དོ་ཞེས་པས་ཆང་འཐུང་མ་སྟེ། ཡེ་ཤེས་ཀྱི་སྒྲོན་མའོ་ཞེས······ པ་ཞིང་དང་ཉེ་བའི་ཞིང་གི་མཁའ་འགྲོ་མ་རྣམས་ཀྱི་དོན་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་ནོ། །

རབ་ཏུ་དགའ་བ་ལྡང་བའི་ཕྱིར་སྦྲོ་བསངས་ཀྱང་འདི་ཡིན་ལ། འཁོར་ལོ་ཐམས་ཅད་དུ་རོལ་པ་ལས་ལྷ་མོ་ཡང་ཡིན་པ་ནི་ལྷ་མོ་སྦྲོ་བསངས་མའོ། །ལེགས་པ་ནི་མི་ལོང་ཡིན་ལ། བཟང་བ་ནི་དགེ་བ་སྟེ། དེ་གང་གི་ཡིན་པ་དེ་

---

༡ ཅོ་ནེ° མཁའ་ལ། ༢ ཅུ་དགེ་ར° (ཀྲི་ཐི) མདུད་པ། ༣ ཅོ་ནེ° གཉིས་པ།

གོང་གི་ངག་ལྷན་སྐྱོ་ལ་ནི། །
མཁའ་འགྲོ་མ་ནི་རྣམ་པ་བཞི། ༨༠ །
དེ་ཡི་གྲྭ་ཡི་ཚར་གནས་པ། །
གཞན་མ་དེ་བཞིན་རྣམ་པར་གནས། །
རྩ་ཡི་སྒོ་རུ་བྱ་གདོང་མ། །
གཉིས་པ་ལ་ནི་འུག་གདོང་མ། ༨༡ །

ནི་ཤྲིན་དུ་བཟང་མོ་འོ། །ཧ་ལྟ་བུར་རྣ་བ་གཡས་ནས་འབྱུང་བར་བྱེད་པ་ནི་ཧ་རྣ་མའོ། །བྱའི་གདོང་གི་རྣམ་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་མཁའ་འགྲོ་བྱ་གདོང་མ་སྟེ། འདུན་པ་དང་ཉེ་བའི་འདུན་པའི་མཁའ་འགྲོ་མ་རྣམས་ཀྱི་དོན་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་དུའོ་ཞེས་པ་གསུང་གི་འཁོར་ལོ་ལས་མ་སྤྱོད་མ་རྣམས་སོ། །

འཁོར་ལོ་ལྟ་བུར་འཁོར་ལོ་རྣམས་སུ་འདོད་ཤུགས་ཀྱིས་འགྲོ་ཞིང་འོང་བས་ན་འཁོར་ལོའི་ཤུགས་ཅན་མའོ། །དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་དང་སྤྱན་མ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་དང་ཡོར་དུས་བུར་བྱེད་ཅིང་། སྐར་ཡང་འཇུག་པར་བྱེད་ཅིང་སྐྱེད་པར་བྱེད་པའི་ཕྱིར་དུས་སྐྱེས་མའོ། །སྐྱོས་པར་བྱེད་པའི་ཚང་འཐུང་བའི་ཕྱིར་ཚང་འཐུང་མའོ། །འདོའི་གོ་ཆ་འཁོར་ལོ་ལྟ་བུ་*ཡིན་པ་དེ་ནི། འཁོར་ལོའི་གོ་ཆ་མའོ་ཞེས་པ་འདུ་བ་དང་ཉེ་བའི་འདུ་བའི་མཁའ་འགྲོ་མ་རྣམས་ཀྱི་དོན་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་ནོ། །

ཤྲིན་དུ་དཔའ་བའི་ཨ་ཡིག་ལས་བྱུང་བའི་ཕྱིར། ཤྲིན་དུ་དཔའ་མོའོ། །འགྲོ་བ་དང་འོང་བ་དག་གི་སྟོབས་ཆེན་མོ་གང་གི་ཡིན་པ་དེ་ནི་སྟོབས་ཆེན་མོ་འོ། །འཁོར་ལོ་རྣམས་སུ་འཇུག་པའི་ངང་ཚུལ་གང་ཡིན་པ་དེ་ནི་འཁོར་ལོས་སྒྱུར་མའོ། །ལྷང་བ་ན་བརྩོན་འགྲུས་ཆེན་མོ་གང་གི་ཡིན་པ་དེ་

---

༡ ཅོ་ནེ༰ ནི་མི་ཤུདུག ༢ ཅོ་ནེ་༰ བུར།

གསུམ་པ་ལ་ནི་ཁྲི་གདོང་མ། |

བཞི་པ་ལ་ནི་ཕག་གདོང་མ། |

ནི། བརྟན་འགྱུས་ཆེན་མོ་འོ་ཞེས་པ་དུར་ཁྲོད་དང་ཉེ་ངའི་དུར་ཁྲོད་ཀྱི་མཁའ་འགྲོ་རྣམས་ཀྱི་དོན་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་ནོ། །[1]དེ་ནི་རྒྱུའི་འཁོར་ལོའི་ས་འོག་སྤྱོད་པ་རྣམས་སོ། །མིག་ལ་སོགས་པའི་དབང་པོ་བཅུ་ལ་སོགས་པས་ཡུལ་གྱི་བཟའ་བ་ལ་སོགས་པ་འཛིན་པའི་ཕྱིར། དབང་པོའི་རྩ་བརྒྱད་པོ་ཁྭ་གདོང་མ་ལ་······ སོགས་པ་སྟེ། དམ་ཚིག་གི་འཁོར་ལོའི་དཔའ་མོ་རྣམས་ཀྱི་ངེས་ཚིག་གོ །

དེ་ནི་དཔའ་བོ་རྣམས་ཀྱི་ངེས་པའི་ཚིག་བརྗོད་པར་བྱ་སྟེ། དུམ་བུ་སྟེ་མགོ་བོའི་གནས་སུ་སོ་དང་སེན་མོའི་གཟུགས་ཀྱིས་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་ལེན་པར་བྱེད་ཅིང་སྐྱེལ་བར་བྱེད་པའི་ཕྱིར་ཐོད་པའི་དུམ་བུའོ། །མདཀཾཀན་སྤྱི་གཙུག་གི་གནས་སུ་ཡོད་[2]པ་དེ་ཉིད་དེ། སྐྲ་དང་བ་སྤུ་ལེན་པར་བྱེད་པའི་ཕྱིར་ཀང་ཀུས་ཆེན་པོ་འོ། །ན་ངའི་རྩ་བར་སོན་ནས་པགས་པའི་དྲི་མ་སྐྱེལ་བར་བྱེད་པའི་ཕྱིར་ཀང་ཀུས་སོ། །རྒྱབ་ཏུ་ཤའི་རང་བཞིན་གྱི་མཆེ་བ་རྣམ་པར་གཅོགས་པ་གང་གི་ཡིན་པ་དེ་ལ་དེ་སྐད་ཅེས་བྱ་སྟེ། གནས་ཀྱི་དཔའ་བོའི་ངེས་པའི་ཚིག་གོ །

ཆང་རྣམས་ཀྱི་སྟེ་ཆུ་རྒྱུས་རྣམས་ཀྱི་དགྲ་ན་བ་གཡོན་པ་ལ་འཇུག་པར་བྱེད་པ་[3]ནི་ཆང་དགྲའོ། །སྨིན་མའི་དབུས་སུ་གནས་ནས་དཔག་ཏུ་མེད་པའི་རྩས་པའི་ཕྲེང་བ་རབ་ཏུ་འཇུག་པར་བྱེད་པ་ཉིད་ལས་བྱུང་བ་ནི་འོད་དཔག་མེད་དོ། །རྡོ་རྗེ་རིན་ཆེན་ལྟ་བུའི་འོད་མིག་གང་གི་ཡིན་པ་དེ་ལས་མཆེད་པ་རབ་ཏུ་འཇུག་པར་བྱེད་པའི་ཕྱིར་རྡོ་རྗེ་འོད་དོ། །གང་གི་ལུས་རྡོ་རྗེ་ལྟ་བུར······

---

1 རྒྱ་དཔེར་。 དེ་ནི་རྒྱུའི་འཁོར་ལོ་ནས······ དཔའ་མོ་རྣམས་ཀྱི་ངེས་ཚིག་གོ་བར་མི་འདུག
2 ཅོ་ནེ་。 ཡོད་པ། 3 ཅོ་ནེ་。 ན་མི་འདུག

ཀླུ་ཙུ་ག་ཤིན་རྗེ་བརྟན་མ་དང་།
དེ་བཞིན་ག་ཤིན་རྗེ་ཡོ་ཉ་མོ། ༧༢
དེ་མ་ཐག་ཏུ་འཇིགས་ཆེན་མ།
ག་ཤིན་རྗེ་ཆེ་བ་གཙོགས་མར་བཤད།
ག་ཤིན་རྗེ་འཇོམས་མ་འཇིགས་བྱེད་མ།
བཞི་པར་ཡང་ནི་ཡང་དག་བཤད། ༧༣

བརྟན་པའི་དབྱུང་བའི་རྩ་བ་ལས་སྙིང་རབ་ཏུ་འཇུག་པར་བྱེད་པའི་ཕྱིར་རྡོ་རྗེ་ལུས་ཏེ། ཉེ་བའི་གནས་ཀྱི་དཔའ་བོའི་ཚིག་གོ །

མཚན་ཁྲང་དག་ལས་མིག་གི་སྤྱུ་གུ་སྐྱེ་བའི་ཕྱིར་སྤྱུ་གུ་ཅན་ནོ། །ནུ་མ་དག་ལས་རྡོ་རྗེའི་རལ་པ་ལྟ་བུའི་མཁྲིས་པའི་ཁམས་སྐྱེད་པར་བྱེད་པའི་ཕྱིར་རྡོ་རྗེ་རལ་པ་ཅན་ནོ། །ལྟེ་བར་རྡོ་རྗེ་ཆེན་པོ་ཡང་འཇིག་པར་བྱེད་པ་གློ་བ་རབ་ཏུ་འཇུག་པ་ལས་དཔའ་བོ་ཆེན་པོ་འོ། །སྣ་རྩེ་ལས་རྒྱུ་མའི་སྒོ་རབ་ཏུ་འཇུག་པར་བྱེད་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར། རྡོ་རྗེ་ཧཱུྃ་མཛད་དོ་ཞེས་པ་ཞིང་དང་ཉེ་བའི་ཞིང་གི་དཔའ་བོའི་ངེས་པའི་ཚིག་གོ །

བདེ་བ་འཕེལ་བར་བྱེད་པ་མོ། །གཉེ་མ་རབ་ཏུ་འཇུག་པར་བྱེད་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་ཤིན་ཏུ་བཟང་པོ་འོ། །མགྲིན་པ་ལས་ལྟོ་བ་རབ་འཇུག་པར་བྱེད་པའི་ཕྱིར། རྡོ་རྗེ་བཟང་པོ་འོ། །ཡང་ན་མགྲིན་པ་དང་ལྟོ་བ་དག་ལས་ཐོག་མ་དང་བར་དང་ཐ་མར་དགེ་བའི་རྡོ་རྗེ་ཐེག་པའི་ཆོས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་རབ་ཏུ་བསྐོར་བ་ལས་ཀྱང་ངོ་། །སྤྱི་བོ་སྨར་མའི་སྙིང་ལ་སྐྲག་པར་བྱེད་པ་བཤད་པ་རབ་ཏུ་འཇུག་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རྡོ་རྗེ་འཇིགས་བྱེད་དོ། །ཆུ་སོ་ལས་མཚམས་ཀྱི་མཐའི་མིག་གསུམ་རབ་ཏུ་འཇུག་པར་བྱེད་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར། ཤིག་མི་བཟང་ངོ་ཞེས་པ་འདུན་པ་དང་། ཉེ་བའི་འདུན་པའི་དཔའ་བོ་རྣམས་ཀྱི་ངེས་པའི་ཚིག་གོ །

---

༡ སྣ་༠ པེ་༠ སྡེ་༠ མ།

རྡོ་རྗེ་མཁའ་འགྲོ་མ་འདི་རྣམས། |
ཙ་ཡི་གཟུགས་ཀྱིས་ཡང་དག་བཤད། |
ཐུགས་ཀྱི་རྡོ་རྗེ་རྣལ་འབྱོར་མ། |
སུམ་ཅུ་ཙ་བདུན་དུ་ནི་བརྗོད། |
འདི་རྣམས་ཤེས་རབ་ཕ་རོལ་ཕྱིན། |
ལུས་ལ་ཡང་དག་རྣམ་པར་གནས། ༢༢ |

གསང་བ་ལས་ལུས་འཛིན་པར་ནུས་པའི་བད་ཀན་འབབ་པའི་ཕྱིར་སྟོབས་པོ་ཆེའོ། །བཤང་ལམ་ལས་ཁ་དོག་སེར་པོའི་རྣག་རབ་ཏུ་འཇུག་པར་བྱེད་པའི་ཕྱིར་རིན་ཆེན་རྡོ་རྗེའོ། །བརླ་དག་ལས་སྟོབས་དང་ལྡན་པའི་ཁྲག་རབ་ཏུ་འཇུག་པའི་ཕྱིར་ཧ་མགྲིན་ནོ། །བྱིན་པ་དག་ལས་བ་སྤུའི་སྦུ་གའི་ནང་ཁྱབ་པར་བྱེད་པའི་རྡུལ་རབ་ཏུ་འཇུག་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་ནམ་མཁའི་སྙིང་པོའོ་ཞེས་པ་འདུ་བ་དང་ཉེ་བའི་འདུ་བའི་དཔའ་བོའི་ངེས་པའི་ཚིག་གོ །

རྐང་པའི་སོར་མོ་དག་ལས་མི་ཕྱེད་པའི་རྐྱུ་གི་ཡི་གེའི་གཟུགས་ཀྱི་ཚོལ་བུ་རབ་ཏུ་འཇུག་པར་བྱེད་པའི་ཕྱིར་དཔལ་ཧེ་རུ་ཀའོ། །རྐང་པའི་རྒྱབ་ལས་པདྨ་གར་གྱི་དབང་ཕྱུག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་མཆི་མའི་རང་བཞིན་རབ་ཏུ་འཇུག་པའི་ཕྱིར་པདྨ་གར་གྱི་དབང་ཕྱུག་གོ །མཐེ་བོ[1]དག་ལས་ཁ་དོག་དཀར་པོའི་ལུད་པ་རབ་ཏུ་འཇུག་པར་བྱེད་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རྣམ་པར་སྣང་མཛད་དོ། །པུས་མོ་དག་ལ་ཟླ་བ་དཀར་པོའི་ངར་སྣབས་རབ་ཏུ་འཇུག་པར་བྱེད་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རྡོ་རྗེ་སེམས་དཔའ་ཞེས་པ་དུར་ཁྲོད་དང་ཉེ་བའི་དུར་ཁྲོད་ཀྱི་དཔའ་བོའི་ངེས་པའི་ཚིག་གོ །

---

[1] ཅོ་ནེ་ ༠ མཐེ་བོང་།

[1]དབྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེར་དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་སྐྱར་སོན་པའི་རྩ་སུམ་ཅུ་རྩ་བདུན་གྱི་འཁོར་ལོ་རྣམ་པར་གཞག་པ་རྒྱས་པར་[2]བསྟན་པ་སྟེ་དྲུག་པའོ།། །།

གཡོན་དང་གཡས་སུ་འབབ་པ་ལས་རབ་ཏུ་འཇུག་བཞིན་པ་འདི་རྣམས་ཀྱི་སྔོན་དུ་ངེས་པར་བྱས་པའི་མཁའ་འགྲོ་མ་རྣམས་དང་། དོན་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་གྱི་ཉེ་བའི་གནས་ན་གནས་པ་རྣམས་དང་། རྣལ་འབྱོར་མ་རྣམས་ཀྱི་ཐིམ་པ་དང་། ལོངས་སྤྱོད་དང་། དབང་བྱེད་པ་ལས་བདུན་ཅུ་རྩ་གཉིས་སུ་ཤེས་པར་བྱའོ། །དོན་འདི་ནི།

སྐུ་གསུང་ཐུགས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་ལ། །
ཉི་ཤུ་རྩ་བཞིར་ཡང་དག་བརྗོད། །ཅེས་བྱ་བ་ནས།

བརྩམས་ཏེ།

ཤེས་རབ་ཕ་རོལ་ཕྱིན་འདི་རྣམས། །
ལུས་ལ་ཡང་དག་རྣམ་པར་གནས། །ཞེས་བྱ་བའི་མཐར་ཐུག་པའི་གཞུང་གིས་རྟོགས་པར་བྱས་པ་ཡིན་ནོ། །འདི་རྣམས་ཀྱི་ཚིག་གི་དོན་གྱི་ངེས་པར་སྦྱར་བ་ནི་གོ་སླའོ། ༡༦–༨༨ །

ཞེས་པ་རྫོགས་པའི་རིམ་པའི་སྒྲུབ་པའི་ཐབས་ཀྱི་ཚིག་དབྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པ་གསང་བ་ཆེན་པོའི་སྒྲོན་མ་ལས། རྒྱས་པར་བསྟན་པ་དྲུག་པའི་རྒྱས་པར་བཤད་པའོ།། །།



---

༡ རྒྱ་དཔེར༌ (ཀྲཱི) ནམག། ༢ རྒྱ་དཔེར༌ རྒྱས་པར་མི་གསལ།

རྒྱས་པར་བསྟན་པ་བདུན་པ།

དེ་ནས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་གང་ཡང་རུང་བའི་རྒྱའི་འཁོར་ལོ། བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཕྱོགས་ཀྱི་ཆོས་སུམ་ཅུ་རྩ་བདུན་རྣམ་པར་དག་པ་[1]བཤད་པར་བྱའོ། ༡ །

ལུས་དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པ་མཁའ་འགྲོ་མའོ། །ཚོར་བ་དྲན་པ་ཉེ་

རྒྱའི་རང་བཞིན་གྱི་རྣལ་འབྱོར་མ་རྣམས་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཕྱོགས་ཀྱི་ཆོས་རང་བཞིན་དུ་རྟོགས་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར། དེ་ནས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་རྒྱས་པར་བསྟན་པ་བདུན་པ་གསུངས་ཏེ། གང་ཡང་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ལ། ༡ །

དང་པོར་རིག་པར་བྱ་བ་ནི། ལུས་དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པ་ནི་མཁའ་འགྲོ་མའོ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པའི་གཞུང་གི་སྐབས་ལ་སོགས་པ་དང་། མགོ་བོ་ལ་སོགས་པའི་ལུས་ཀྱི་སྒོ་འདི་རྣམས་སུ་མཁའ་འགྲོ་མའི་རང་བཞིན་གྱི་རྩ་རྣམས་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཕྱོགས་ཀྱི་ཆོས་ཀྱི་ངོ་བོ་ཉིད་དུ་ཡང་འགྱུར་རོ་ཞེས་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱའོ། །འདིར་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་སེམས་དཔའ་ཆེན་པོས་བླ་ན་མེད་པ་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ཏུ་མངོན་པར་རྫོགས་པར་འཚང་རྒྱ་བར་འདོད་པས། ལམ་ལྔས་བསྡུས་པའི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཕྱོགས་ཀྱི་ཆོས་སུམ་ཅུ་རྩ་བདུན་ལ་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་དུ་བསླབ་པར་བྱའོ། །དེ་ལ་ལམ་གང་ཞེ་ན། ཚོགས་ཀྱི་ལམ་དང་། སྦྱོར་བའི་ལམ་དང་། མཐོང་བའི་ལམ་དང་། སྒོམ་པའི་ལམ་དང་། མི་སློབ་པའི་ལམ་མོ། །དེ་ལ་ཚོགས་ཀྱི་ལམ་གང་ཞེ་ན། ཆོས་བཅུ་གཉིས་རྣམས་སོ། །བཅུ་གཉིས་[3]གང་ཞེ་ན། དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པ་བཞི་དང་། ཡང་དག་པར་སྤོང་བ་བཞི་དང་། རྫུ་འཕྲུལ་གྱི་རྐང་

---

[1] རྒྱ་དཔེར°(ཀཱུཡསྱ) སྒྲུའི། [2] རྒྱ་དཔེར°(ཀྲམ) ཆོས་རྣམ་པར་དག་པ། སྣར°ཞེ°རྣམ་པ་བཀྲ། [3] སྡེ°ཅོ་ནེ°གཉིས་མི་འདུག

བར་གཞག་པ་ལ་མྲའོ། །ཆོས་དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པ་དུམ་སྐྱེས་མའོ། །སེམས་དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པ་གཟུགས་ཅན་མའོ། ༢ །

པ་བཞི་རྣམས་སོ། །དེ་ལ་སྦྱོར་བའི་ལམ་གང་ཞེ་ན། ཆོས་བཅུ་རྣམས་སོ།། བཅུ་གང་ཞེ་ན། དབང་པོ་ལྔ་དང་སྟོབས་ལྔ་རྣམས་སོ། །དེ་ལ་མཐོང་བའི་ལམ་གང་ཞེ་ན། ཆོས་བདུན་རྣམས་སོ། །བདུན་གང་ཞེ་ན། བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་བདུན་རྣམས་སོ། །དེ་ལ་སྒོམ་པའི་ལམ་གང་ཞེ་ན། ལམ་གྱི་ཡན་ལག་རྣམས་སོ། །ལམ་གྱི་ཡན་ལག་གང་ཞེ་ན། འཕགས་པའི་ལམ་ཡན་ལག་བརྒྱད་པོ་རྣམས་སོ། །མི་སློབ་པའི་ལམ་གང་ཞེ་ན། ལམ་ཤེས་པའི་མཐའ་ལས་མཐའི་སྐད་ཅིག་གོ །

ཅི་སྐད་དུ་དེ་རྣམས་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཕྱོགས་ཡིན། ཆོས་རྣམས་ཀུན་གང་ལས་ཡིན། བྱང་ཆུབ་ཀུང་གང་ཡིན་ཞེ་ན། སྨྲས་པ། འདིས་ཐམས་ཅད་ཀྱི་བདག་ཉིད་ཀྱི་ངོ་བོ་ཉིད་རྟོགས་པར་བྱའོ་ཞེས་པས་བྱང་ཆུབ་བོ། །ཅི་དེ་ཁྲབ་པ་ཡིན་ཞེ་ན། སྨྲས་པ་ཁྲབ་བྱེད་ཡིན་དེ་ཕྱོགས་གཅིག་པ་ནི་མ་ཡིན་ནོ། །དེ་གང་གི་ཕྱིར་གང་ཟག་བདག་མེད་པའི་མཚན་ཉིད་ཀྱི[2] བྱང་ཆུབ་ནི་ཉན་ཐོས་པའི་བྱང་ཆུབ་སྟེ། ཕྱོགས་གཅིག་པའོ། །ཆོས་རྣམས་ཐམས་ཉིད་ཀྱིས་མངོན་པར་རྟོགས་པ་ལས། དེ་བཞིན་དུ་རྣམ་པར་གྲོལ་བཞིན་པ་ཉན་ཐོས་ཀྱི་བྱང་ཆུབ་དུ་ངེས་པར་གྱུར་པ་དེའི་བྱང་ཆུབ་ནི། རང་གི་དོན་ཙམ་གཙོ་ཆེར་བྱེད་པས་ནི་རྣམ་པར་མ་དག་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་ཉི་ཚེ་བའོ་ཞེས་བརྗོད་པར་བྱའོ། །བདག་མེད་པ་གཉིས་གའི་མཚན་ཉིད་ལས་ནི་བྱང་ཆུབ་སྟེ། ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་ནི་ཁྲབ་པར་བྱེད་པ་པོ་ཉིད་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ན་ཉི་ཚེ་བ་མ་ཡིན་ནོ། ཆོས་རྣམས་[2]ཀྱི་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་ཀྱི་དངོས་པོས་རྣམ་པར་གཞག་པའི་ཕྱིར་རོ། །དེའི་མཚམས་ཀྱི་ཡན་ལག་རྣམས་ནི་ཐབས་ཏེ། བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་

---

༡ སྣེ་。 མཚན་གྱི། ༢ ཅོ་ནེ་。 ཐམས་ཅད།

ལག་རྣམས་སོ། །ཡན་ལག་དང་། ཐབས་དང་། ཕྱོགས་དང་མངོན་པར་
གསལ་བར་བྱེད་པ་ཞེས་པ་རྣམ་གྲངས་སོ། །

ཆོས་རྣམས་ཀྱང་གང་ལས་ཡིན་ཞེས་པ་ནི། འཛིན་པར་བྱེད་པ་དེ།
བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ལམ་ལ་གནས་པ་རྣམས་ཀྱི་སེམས་ལས་བྱུང་བ་རྣམ་པར་
གཞག་པར་བྱ་བ་རྣམས་དེ། དགེ་བའི་ཕྱོགས་ཀྱིས་བསྡུས་པ་རྣམས་སོ། །ཟག་
པ་མེད་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་ལམ་གྱི་བདེན་པ་ནི་མཐའ་གཅིག་ཏུ་དགེ་བའི་ཕྱིར། ལམ་
གྱི་དབྱེ་བ་ལས་དགེ་བ་སྟེ། ཟག་པ་དང་བཅས་པའི་སྒྲུབ་པ་པོ་དེ་ལས་ལྡོས་
ནས་སོ། །ལམ་ལྔ་པོ་རྣམས་ནི། གཉིས་དག་གིས་བསྡུས་པར་རིག་པར་བྱ་སྟེ།
གཉིས་པོ་གང་དག་གིས་ཤེ་ན་འཇིག་རྟེན་པའི་ལམ་དང་། འཇིག་རྟེན་ལས་
འདས་པའི་ལམ་གྱིས་སོ། །དེ་ལ་འཇིག་རྟེན་པའི་ལམ་གྱི་ཆོས་རྣམས་གང་ཞེ་ན།
ཆོས་ཉི་ཤུ་རྩ་གཉིས་པོ་རྣམས་སོ། །གང་ཞེ་ན། དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པ་
རྣམས་དང་ཡང་དག་པར་སྤོང་[1]བ་དང་། རྫུ་འཕྲུལ་གྱི་རྐང་པ་རྣམས་དང་།
དབང་པོ་རྣམས་དང་། སྟོབས་སུ་བརྗོད་པ་རྣམས་སོ། །དེ་ལ་འཇིག་རྟེན་
ལས་[2]འདས་པའི་ལམ་གྱི་ཆོས་རྣམས་གང་ཞེ་ན། བཅོ་ལྔ་རྣམས་སོ། །གང་
ཞེ་ན་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་བདུན་དང་། འཕགས་པའི་ལམ་ཡན་ལག་བརྒྱད་
པོ་རྣམས་སོ། །

དེ་ལ་དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པ་བཞི་གང་ཞེ་ན། སྨྲས་པ། ལུས་
དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པ་དང་། ཚོར་བ་དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པ་དང་། སེམས་
དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པ་དང་། ཆོས་དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པ་རྣམས་སོ། །དེ་
ལ་ལུས་དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པ་ནི། འདིར་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་ཐམས་ཅད་དུ། རང་
དང་གཞན་གྱི་ལུས་འདི་ནི་ཇི་སྲིད་དུ་རྒྱུན་གྱིས་འཇུག་པ་ན་ཁམས་གསུམ་པོར་
གང་ཞིག་སྣང་བ་[3]དེ་ཉིད། དེ་རབ་ཏུ་རྣམ་པར་སྤྱོད་བཞིན་པ་དེ་སྲིད་དུ་གཅིག་

༡ སྡེ་༠ སྤང་། ༢ སྡེ་༠ ཅོ་ནེ་༠ ལས་ལས། ༣ ཅོ་ནེ་༠ སྣང་བར།

པར་འགྱུར་བ་མ་ཡིན་ཏེ། ཆ་ཤས་ཅན་མ་གྲུབ་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་དང་། དེ་མ་གྲུབ་པ་ཡང་། སྔོན་པ་དང་། མ་སྔོན་པ་དང་། དམར་བ་དང་། དམར་བ་མ་ཡིན་པ་ལ་སོགས་པ་ལ་སྐྱོན་མཐོང་བ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་ཏེ། གཅིག་ཉིད་གྲུབ་པ་ལས། དུ་མ་ཉིད་དུ་མ་སྐྱེས་པའི་རྡུལ་ཕྲ་རབ་ཏུ་དབྱེ་བར་བྱ་བཞིན་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར། ཚོགས་པ་མ་སྐྱེས་པའམ། དེ་མངོན་པར་རྟོགས་ན་སྣ་ཚོགས་པ་རྡུལ་ཕྲ་རབ་ཏུ་ལྟུང་བའི་ཕྱིར་རོ། །དེའི་ཕྱིར་གཉི་གའི་ཆོས་དང་བྲལ་བ་ཉིད་ལས་ལུས་འདི་ནི་སྟོང་པའོ་ཞེས་བྱ་བར་རྗེས་སུ་དྲན་པ་གང་ཡིན་པ་དེའི་ཉེ་ཞིང་ཉེ་བར་སེམས་ཀྱི་གནས་པ་ནི་ལུས་དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པ་ཡིན་ནོ། །དེ་བཞིན་དུ། བདེ་བ་ལ་སོགས་པའི་བདག་ཉིད་ཅན་གྱི་ཚོར་བ་རྣམས་ཀྱང་། རྣམ་པར་ཤེས་པའི་ཚོགས་དྲུག་ལ་བརྟེན་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར། རྣམ་པ་བཅོ་བརྒྱད་དེ། དེ་བདེ་ཡང་བདེ་[1]བ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་འདས་པ་ལ་སོགས་པར་ཕྱེ་ན་མ་གྲུབ་པའི་ཕྱིར་སྟོང་པའོ་ཞེས་དྲན་པའི་རང་གི་སེམས་ཉེ་བར་གནས་པ་ནི། ཚོར་བ་དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པ་ཡིན་ནོ། །ཤེས་བྱ་དེ་ལྟ་བུ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ན་སེམས་དང་། སྔ་མ་དང་ཕྱི་མ་དང་ལྷན་ཅིག་ཏུ་བྱུང་བ་ཉིད་དུ་མ་གྲུབ་པའི་སྟོང་པ་ཉིད་དོ་ཞེས་དྲན་པ་གང་ཡིན་པའི་ཉེ་བར་གནས་པ་ནི་སེམས་དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པ་ཡིན་ནོ། །དེ་བཞིན་དུ་དགེ་བ་དང་མི་དགེ་བ་དང་ལུང་དུ་མ་བསྟན་པ་ལ་སོགས་པའི་ཕྱེ་བའི་ཆོས་རྣམས་སྔ་མ་བཞིན་དུ་སྟོང་པ་ཉིད་ལས་དྲན་པའི་གནས་པ་གང་ཡིན་པ་ནི་ཆོས་དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པ་སྟེ། བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའི་ལམ་མོ། །གང་གི་ཕྱིར་ཞེ་ན། ཁམས་གསུམ་པ་ནི་ལྟའི་བདག་ཉིད་དེ། དེ་ལ་ལུས་དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པས་གཟུགས་ཀྱི་ཕུང་པོའི་ཡང་དག་པར་རྗེས་སུ་ཁོང་དུ་ཆུད་པ་ལས། བར་མ་གཉིས་པོས། ཚོར་བ་དང་རྣམ་པར་ཤེས་པ་གཉིས་དག་གི་མཐའ་ལས་འདུ་ཤེས་དང་འདུ་བྱེད་དག་སྟེ། ཆོས་ཀྱི་སྒྲས་

---

[1] སྡེ་。 ཅོ་ནེ་。 བདེ་བདེ།

འདུན་པའི་རྫུ་འཕྲུལ་གྱི་རྐང་པ་རབ་གདམས་མའོ། །བརྩོན་འགྲུས་

བྱུན་མོང་བ་སློད་ཀྱི་འཛིག་རྟེན་ནོ། །ཉན་ཐོས་ཀྱི་ལྟ་བ་ལ་ནི་རྟག་པ་དང་། བདེ་བ་དང་། གཙང་བ་དང་། བདག་དང་བཅས་པའི་ཕྱིན་ཅི་ལོག་བཞིའི་གཉེན་པོར། མི་རྟག་པ་དང་། སྡུག་བསྔལ་བ་དང་། མི་གཙང་བ་དང་། བདག་མེད་པའི་མཚན་ཉིད་ཀྱི་དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པ་རྣམས་སོ་ཞེས་པ་ནི་ཁྱད་པར་རོ། །སྔགས་ཀྱི་ལྟ་བ་ལ་ནི་རང་རིག་པའི་རང་བཞིན་གྱི་’མཁའ་འགྲོ་མ་རྣམས་ནི་ལུས་ལ་སོགས་པ་རྣམས་ཏེ། ཆོས་ཉིད་ཀྱི་གཟུགས་སུ་ཞེས་པར་བྱའོ། །དེའི་དོན་ནི། ལུས་དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པ་ནི་མཁའ་འགྲོ་མའོ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་གསུངས་སོ། ༢ །

དེ་ལ་རྫུ་འཕྲུལ་གྱི་རྐང་པ་ནི་དུ་ཞིག་ཅེས་ཁ་ཅིག་དོགས་པས་སྨྲས་པ། རྫུ་འཕྲུལ་གྱི་རྐང་པ་རྣམས་ནི་བཞི་ཡིན་ཏེ། འདུན་པའི་རྫུ་འཕྲུལ་གྱི་རྐང་པ་དང་། བརྩོན་འགྲུས་ཀྱི་རྫུ་འཕྲུལ་གྱི་རྐང་པ་དང་། དཔྱོད་པའི་རྫུ་འཕྲུལ་གྱི་རྐང་པ་དང་། སེམས་ཀྱི་རྫུ་འཕྲུལ་གྱི་རྐང་པའོ། །དེ་ལ་འདུན་པའི་རྫུ་འཕྲུལ་གྱི་རྐང་པ་ལ་སོགས་པ་གང་ཞེ་ན། འདུན་པའི་ཏིང་ངེ་འཛིན་སྤོང་བའི་འདུ་བྱེད་དང་ལྡན་པའི་རྫུ་འཕྲུལ་གྱི་རྐང་པ་དང་། བརྩོན་འགྲུས་ཀྱི་ཏིང་ངེ་འཛིན་སྤོང་བའི་འདུ་བྱེད་དང་ལྡན་པའི་རྫུ་འཕྲུལ་གྱི་རྐང་པ་དང་། དཔྱོད་པའི་ཏིང་ངེ་འཛིན་སྤོང་བའི་འདུ་བྱེད་དང་ལྡན་པའི་རྫུ་འཕྲུལ་གྱི་རྐང་པ་དང་། སེམས་ཀྱི་ཏིང་ངེ་འཛིན་སྤོང་བའི་འདུ་བྱེད་དང་ལྡན་པའི་རྫུ་འཕྲུལ་གྱི་རྐང་པའོ།།

མདོ་འདི་རྣམས་ཀྱི་དོན་ནི་འདི་ཡིན་ཏེ། འདིར་ཏིང་ངེ་འཛིན་ཐམས་ཅད་ཀྱི་སྐྱོན་དྲུག་ཉིད་དུ་འགྱུར་བ་འདི་ལྟ་སྟེ། ལེ་ལོ་དང་། དམིགས་པ་བརྗེད་པ་དང་། བྱིང་བ་དང་། རྒོད་པ་དང་། འདུ་མི་བྱེད་པ་དང་། འདུ་

’ ཅོ་ནེ་ ༠ གྱིས།

ཀྱི་རྫུ་འཕྲུལ་གྱི་རྐང་པ་གཏུམ་མིག་མའོ། །དཔྱོད་པའི་རྫུ་འཕྲུལ་གྱི་རྐང་པ་
འོད་ལྡན་མའོ། །སེམས་ཀྱི་རྫུ་འཕྲུལ་གྱི་རྐང་པ་སྣ་ཆེན་མའོ། ༢ །

བྱེད་པའོ། །འདི་ལས་བྱིང་བ་དང་། གོད་པ་གཅིག་ཏུ་བྱས་ནས་སྐྱོན་ལྡར་
འགྱུར་རོ། །དེ་རྣམས་སྤོང་བའི་འདུ་བྱེད་བརྒྱད་དོ། །བརྒྱད་གང་ཞེ་ན། དད་
པ་དང་། འདུན་པ་དང་། བརྩོན་འགྲུས་དང་། ཤིན་ཏུ་སྦྱངས་པ་སྟེ་བཞི་
དང་། དྲན་པ་དང་། ཤེས་བཞིན་དང་། སེམས་པ་དང་། བཏང་སྙོམས་
ཏེ་བརྒྱད་དོ། །དེ་ལ་དང་པོ་ནི་ལེ་ལོའི་གཉེན་པོ་སྟེ། དད་པ་ནི་དགེ་བའི་···
ལས་ལ་རབ་ཏུ་འཇུག་གོ །འདུན་པ་ནི་དེའི་བསམ་པ་དང་ལྡན་ཅིག་ཏུ་གནས་
པ་ཉིད་དོ། །བརྩོན་འགྲུས་ཀྱིས་ནི་ལེ་ལོ་སྤོང་ངོ་། །ཤིན་ཏུ་སྦྱངས་པས་སྤོང་
བ་མངོན་སུམ་དུ་བྱས་པའི་བྱ་བ་དེ་ཉིད་ནི་འདུན་པའི་རྫུ་འཕྲུལ་གྱི་རྐང་པར······
བརྗོད་པར་བྱའོ། །དྲན་པས་ནི་དམིགས་པ་བརྗེད་པ་སྤོང་བར་བྱེད་ལ། ཤེས་
བཞིན་གྱིས་ནི་བྱིང་བ་དང་གོད་པ་སྟེ། འདི་དག་ནི་བརྩོན་འགྲུས་དང་དཔྱོད་··
པའི་རྫུ་འཕྲུལ་གྱི་རྐང་པ་དག་གོ །གང་གི་ཚེ་སེམས་དང་བཏང་སྙོམས་དག་··
གིས་གང་ཞིག་འབད་པས་སྤོང་བ་དེ་ནི་སེམས་ཀྱི་རྫུ་འཕྲུལ་གྱི་རྐང་པར་བརྗོད་··
པར་བྱའོ། །དེ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་དེ་དག་ནི་བརྩོན་འགྲུས་ངཞིར་བརྗོད་པར་ཏྲུའོ། །
དེ་ཉིད་ཏུང་ངེ་འཛིན་རྒྱལ་པོའི་མདོར་གསུངས་ཏེ།

དབེན་པ་ལ་གནས་པ། འདོད་ཆགས་དང་བྲལ་བ་ལ་གནས་པ།
འགོག་པ་ལ་གནས་པ། རྣམ་པར་སྤོང་བས་ཡོངས་སུ་བསྒྱུར་བ། འདུས···
བྱས་ཀྱི་དམིགས་པ་ལ་སྦྱོར་བ་དང་བྲལ་བའི་ཕྱིར་རྫས་སྤོང་བ་དེ་ནི་སྤོང་བ་དང་···
ལྡན་པའི་རྫུ་འཕྲུལ་གྱི་རྐང་པ་ཞེས་པ་སྟེ། ཡན་ལག་ལྔ་པོ་བསྡུ་བར་བྱས་ན་
རྫུ་འཕྲུལ་གྱི་རྐང་པ་བཞི་པོ་ནི་རྣམ་པ་ཉི་ཤུ་རྣམས་སོ། །

རྫུ་འཕྲུལ་ཇི་ལྟ་བུ་ཞེ་ན། འཕེལ་བ་ནི་རྫུ་འཕྲུལ་ཏེ། རིདྡྷི་འཕེལ་
བ་ལའོ་ཞེས་པའི་བྱིངས་པར[༢༢]ཨྠ་ལས་འདོད་པའི་ཕྱིར་རོ། །དེ་ལ་སྟོབས་བཅུ་

དད་པའི་དབང་པོ་དཔའ་བོའི་བློ་གྲོས་མའོ། །བརྩོན་འགྲུས་ཀྱི·····
དབང་པོ་མཻཏྲ་ཐུབ་མའོ། །དྲན་པའི་དབང་པོ་ལཀྵའི་དབང་ཕྱུག་མའོ། །ཏིང་

དང་། མི་འཇིགས་པ་ལ་སོགས་པའི་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཡོན་ཏན་གང་ཡིན་པ···
ཐམས་ཅད་ཉིད་འཕེལ་བར་བྱེད་ཅིང་འཐོབ་པར་བྱེད་པ་དེ་ནི་རྫུ་འཕྲུལ་ཏེ་ཡང···
དག་པར་རྫོགས་པའི་བྱང་ཆུབ་བོ། །དེའི་རྐང་པ་ལྟ་བུ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རྐང་པ་
སྟེ། ཐོབ་པར་བྱེད་པ་ལ་ནི་རྫུ་འཕྲུལ་གྱི་རྐང་པའོ། །ཐུན་མོང་པ་ཡིན་ཡང་
ལམ་གྱི་ཐབས་ཉིད་དེ། འདི་ཁོ་ནའི་རྐང་པ་གཉིས་ཉིད་ནི་ཏིང་ངེ་འཛིན་གྱི····
སྐྱོན་གྱི་གཉེན་པོ་ཤིན་ཏུ་བ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ། །འདི་རྣམས་ཀྱི་རང་བཞིན་ནི··
རབ་གཏུམ་མ་དང་། གཏུམ་མིག་མ་དང་། འོད་ལྡན་མ་དང་། སྣ་ཆེན་མ་
སྟེ་ཐུགས་ཀྱི་འཁོར་ལོའི་གནས་ཀྱི་མཁའ་འགྲོ་མ་རྣམས་སོ། ༢ །

དེ་ལ་དབང་པོ་རྣམས་ནི་ཏུ་ཞེ་ན། ལྔའོ། ལྔ་གང་ཞེ་ན། དད་
པ་དང་། བརྩོན་འགྲུས་དང་། དྲན་པ་དང་། ཏིང་ངེ་འཛིན་དང་། ཤེས་
རབ་བོ། །དེ་ལ་སྦྱོར་བའི་ལམ་དུ་ངེས་པར་འབྱེད་པའི་ཆ་དང་མཐུན་པའི་ཆོས་
བཞི་པོ་དྲོ་བར་གྱུར་པ་དང་། རྩེ་མོར་གྱུར་པ་དང་། བཟོད་པར་གྱུར་པ·····
དང་། འཇིག་རྟེན་པའི་ཆོས་ཀྱི་མཆོག་རྣམས་སོ། །དེ་ལ་བྱང་ཆུབ་སེམས···
དཔའ་ཟག་པ་མེད་པའི་ཏིང་ངེ་འཛིན་ལ་མངོན་དུ་ཕྱོགས་པར་ཏུས་པས་མེའི་སྔ་
ལྟས་སུ་དྲོ་བར་འབྱུང་བ་ལྟར། སེམས་ལས་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་མེ་སྐྱེ་བ་དེ་ནི་དྲོ་བར་
གྱུར་པར་བརྗོད་པར་བྱའོ། །དེ་ཉིད་ཤིན་ཏུ་ངའི་ལྷག་པའི་བསམ་པ་དང་ལྡན··
ཅིག་ཏུ་གནས་པ་ནི་རྩེ་མོ འོ། །དེ་ཉིད་སེམས་སུ་བཟོད་པར་བྱེད་པའི་བདག··
ཉིད་ནི་བཟོད་པའོ། །དེ་ཉིད་བཟོད་པའི་དེ་མ་ཐག་ཏུ་འབྱུང་བ་ནི་འཇིག་རྟེན··
ཆོས་མཆོག་སྟེ། ཉེ་བར་སྤྱོད་པ་ལས་འདི་ནི་སྦྱོར་བ་དང་བཅས་པའོ། །དེ་
ལ་ངེས་པར་འབྱེད་པའི་ཆ་དང་མཐུན་པ་དང་པོ་དག་ཏུ་དད་པ་ལ་སོགས་པ་དེ··
རྣམས་དབང་པོ་ལྔར་བརྗོད་པར་བྱའོ། །དེ་ལ་དད་པ་ནི་ཡོད་པ་ཉིད་དང········

ང་འཛིན་གྱི་དབང་པོ་ཤིང་གྲིབ་མའོ། །ཤེས་རབ་ཀྱི་དབང་པོ་ས་སྒྲུངས་མའོ། ‿ །

དད་པའི་སྟོབས་ནི་འཛིགས་བྱེད་ཆེན་མོའོ། །བརྩོན་འགྲུས་ཀྱི་

འཇིག་རྟེན་ལས་འདས་པའི་ལམ་དང་། བདེན་པ་དང་དཀོན་མཆོག་གསུམ་ལ་སོགས་པ་ལ་སེམས་ཀྱི་ཡིད་ཆེས་པ་དེ་ནི་དད་པའི་དབང་པོ་འོ། །དད་པའི་དབང་པོས་བསྐྱེད་པའི་ཆོས་རྣམས་ལ་འབད་པར་བྱེད་པ་དེ་ནི་བརྩོན་འགྲུས་ཀྱི་དབང་པོ་འོ། །དེ་ཡང་རྣམ་པ་བཞི་སྟེ། སྔོན་དུ་འགྲོ་བའི་བརྩོན་འགྲུས་དང་། མི་ལྡོག་པའི་བརྩོན་འགྲུས་དང་། སོ་སོར་རྟོག་པའི་བརྩོན་འགྲུས་དང་། སྒྲུབ་པའི་བརྩོན་འགྲུས་སོ། །བརྩོན་འགྲུས་ཀྱིས་བསྐྱེད་པའི་ཆོས་རྣམས་ལ་ཡང་དང་ཡང་དུ་སྔོན་དུ་ཕྱོགས་པར་བྱས་ནས་[1]བརྗེད་པ་མེད་པ་དེ་ནི་དྲན་པའི་དབང་པོའོ།། དྲན་པའི་དབང་པོས་བསྐྱེད་པའི་ཆོས་རྣམས་ཀྱི་དེ་ལ་རྩེད་པ་ནི་ཐ་སྙད་གཞན་ཐམས་ཅད་ཡོངས་སུ་དོར་ནས་གནས་པར་བྱེད་པ་དེ་ནི་ཏིང་ངེ་འཛིན་གྱི་དབང་པོའོ། །ཏིང་ངེ་འཛིན་གྱི་དབང་པོས་བསྐྱེད་པའི་ཆོས་རྣམས་ལ་ཡང་དག་པར་སོ་སོར་རྟོག་ཅིང་རྣམ་པར་དཔྱོད་པར་བྱེད་པ་གང་ཡིན་པ་དེ་ནི་ཤེས་རབ་ཀྱི་དབང་པོའོ། །ཅིའི་ཕྱིར་དབང་པོ་ཞེས་བྱ་ཞེ་ན། དགེ་བའི་ཆོས་རྣམས་རབ་ཏུ་འབྱུང་བ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་དབང་པོ་སྟེ། ཀུན་ནས་ཉོན་མོངས་པ་དང་རྣམ་པར་བྱང་བའི་ཕུང་པོ་ལྔ་རྣམས་ཀྱིས་ཤིན་ཏུ་སྐྱེད་པར་བྱེད་པའོ། །ཤེས་རབ་ཀྱི་དབང་པོ་དོར་ནས་དཔའ་བོའི་བློ་ཅན་མ་དང་། མིའུ་ཐུང་མ་དང་། ལྡའི་དབང་ཕྱུག་མ་དང་། ཤིང་གྲིབ་[2]མ་སྟེ་མཁའ་འགྲོ་མ་བཞི་རྣམས་ནི། དད་པ་དང་། བརྩོན་འགྲུས་དང་། དྲན་པ་དང་། ཏིང་ངེ་འཛིན་རྣམས་རྣམ་པར་དག་པར་ཤེས་པར་བྱའོ། ‿ །

དེ་ལ་སྟོབས་རྣམས་ནི་དུ་ཞེ་ན། ལྔའོ། ལྔ་གང་ཞེ་ན། སྔར་བཤད་

---

༡ ཅོ་ནེ་ ༠ པས། ༢ སྣེ་ ༠ གྲིམ།

སྦྱོར་བས་ནི་རླུང་ཤུགས་མའོ། །དྲན་པའི་སྦྱོར་བས་ནི་ཚང་འབྱུང་མའོ། །ཏིང་ངེ་འཛིན་གྱི་སྦྱོར་བས་ནི་ལྡང་ལྷ་མའོ། །ཤེས་རབ་ཀྱི་སྦྱོར་བས་ནི་ཤིན་ཏུ་བཟང་མོ་འོ། ༤ །

ཏིང་ངེ་འཛིན་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་ནི་དུ་ནུ་མའོ། །བརྩོན་འགྲུས་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་ནི་མཁའ་འགྲོ་[1]གདོང་མའོ། དགའ་

བའི་དད་པ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་ཁོ་ནའོ། །དབང་པོ་དང་སྦྱོར་བ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་ཀྱི་བྱེད་པ་པོ་དད་པ་ཡིན་ནམ་ཅི་ཞེ་ན། སྨྲས་པ། གང་གི་ཚེ་དད་པ་ལ་སོགས་པ་རྣམ་པར་འགྱུར་བ་དེ་ནི། དབང་པོའི་རྩོལ་ལ་བརྟེན་ནས་འགྱུར་ཏེ། གང་གི་ཚེ་མི་མཐུན་པའི་ཕྱོགས་མ་དད་པ་དང་། ལེ་ལོ་དང་། བརྗེད་ངས་པ་དང་། རྣམ་པར་གཡེངས་ཤིང་སྐྱེ་བའི་གནས་[2]ཡིད་ལ་བྱེད་པ་དང་། ཤེས་རབ་འཆལ་བས་མི་བཟླ་བ་ནི་སྦྱོར་བས་སྤུ་[3]འགྱུར་རོ་ཞེས་པས་བྱེད་[4]པ་པོ་དད་པའོ། །སྦྱོར་གསུངས་པའི་ཤེས་རབ་ཀྱི་དབང་པོ་དང་བཅས་གསུང་གི་འཁོར་ལོའི་ས་སྲུང་མ་དང་། འཛིགས་བྱེད་ཆེན་པོ་དང་། རླུང་ཤུགས་མ་དང་། ཚང་འབྱུང་མ་དང་། ལྷ་མོ་སྦྱོ་བསངས་མ་དང་། ཤིན་ཏུ་བཟང་མོ་རྣམས་རྣམ་པར་དག་པར་ཤེས་པར་བྱའོ། ༤ །

དེ་ལ་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་ནི་དུ་ཞེ་ན། བདུན་ནོ། །བདུན་གང་ཞེ་ན། ཏིང་ངེ་འཛིན་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་དང་། བརྩོན་འགྲུས་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་དང་། དགའ་བ་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་དང་། ཤིན་ཏུ་སྦྱངས་པ་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་དང་། ཆོས་རབ་ཏུ་རྣམ་པར་འབྱེད་པ་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་དང་། དྲན་པ་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་དང་། བཏང་སྙོམས་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་

---

༡ རྒྱ་དཔེར། (ཁག) བྱ། ༢ རྒྱ་དཔེར། (ཨསཾནིཔཾ) ཚུལ་བཞིན་མ་ཡིན་པ། ༣ རྒྱ་དཔེར། (སཤྲཙ) སྤྲས། ༤ ཅོ་ནེ། བྱས།

བ་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་ནི་འཁོར་ལོས་སྒྱུར་ཙའོ[1]། །ཤིན་དུ་སྦྱངས་པ་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་ནི་དུས་སྐྱེས་མའོ། །ཆོས་རྣམ་པར་འབྱེད་པ་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་ནི་ཚང་འཚོང་མའོ། །དྲན་པ་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་ནི་འཁོར་ལོའི་གོ་ཚ་མའོ[2]། །བཏང་སྙོམས་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་ནི་ཤིན་དུ་དཔའ་མོའོ། ༦ །

ལག་གོ །ཡན་ལག་འདི་རྣམས་ནི་མཐོང་བའི་ལམ་དུ་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡིན་ཏེ། སྒྲིབ་པ་མེད་པའི་ཡེ་ཤེས་ནི་བྱང་ཆུབ་བོ། །གང་གིས་བདེན་པ་མཐོང་བའི་སེམས་ལ་ཏིང་ངེ་འཛིན་དུ་བྱེད་པ་དེ་ནི་ཏིང་ངེ་འཛིན་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་གོ །གང་གིས་དེ་ཁོ་ན་ལ་འབད་པར་བྱེད་པ་དེ་ནི་བརྩོན་འགྲུས་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་གོ །གང་དུ་དེ་ཁོ་ན་ལ་ཐེ་ཚོམ་མེད་པའི་སེམས་སུ་བྱེད་པ་དེ་ནི་དགའ་བ་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་གོ །དགའ་བ་དེ་ཉིད་ཀྱིས་ལུས་དང་ངག་དང་སེམས་[3]ལས་ལ་དབང་བ་ལས་ཉོན་མོངས་པའི་གདུང་བ་སྤངས་པའི་ཕྱིར། ཤིན་དུ་བསིལ་བ་ཐོབ་པ་དེ་ནི་ཤིན་དུ་སྦྱངས་པ་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་གོ །ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་དངོས་པོའི་རང་བཞིན་ཡོངས་སུ་ཤེས་པ་དེ་ནི་ཆོས་རབ་དུ་རྣམ་པར་འབྱེད་པ་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་གོ །དེ་ཉིད་ལ་སེམས་ཀྱི་བརྗེད་པ་མེད་པ་ནི་དྲན་པ་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་གོ །ཏིང་ངེ་འཛིན་ལ་མི་བཟོད་པ་དང་། ཞེན་པ་མེད་པ་དོར་བ་དེ་ཉི་[4]བཏང་སྙོམས་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་གོ། འདི་རྣམས་ཀྱི་ནང་ནས་ཏིང་ངེ་འཛིན་དང་། བརྩོན་འགྲུས་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་གི་རང་བཞིན་ནི། ད་ནི་མ་དང་། མཁའ་འགྲོ་གདོང་མར་ཤེས་པར་བྱའོ་ཞེས་པ་གསུང་གི་འཁོར་ལོའི་དཔའ་མོ་རྣམ་པར་དག་པའོ། །དགའ་བ་ལ་སོགས་པ་ལྷག་མ་ལྔ་རྣམས་ཀྱི་ནི་འཁོར་ལོའི་ཤུགས་ཅན་མ་དང་།

---

༡ རྒྱ་དཔེར་° (ཙཀྲ) ཅུས། ༢ སྣ་° ཆགོ། ༣ སྡེ་° སེམས་དང་། ༤ ཅོ་ནེ་° ཉིད།

ཡང་དག་པའི་ལྟ་བ་སྟོབས་ཆེན་མའོ། །ཡང་དག་པའི་རྟོག་པ་འཁོར་ལོས་སྒྱུར་བའོ། །ཡང་དག་པའི་ངག་བརྗོད་ཆེན་མའོ། །ཡང་དག་པའི་ལས་ཀྱི་མཐའ་བྲ་གདོང་མའོ། །ཡང་དག་པའི་འཚོ་བ་ཁྱུག་གདོང་མའོ།།

ཁཎྜརོཧི་དང་། ཚང་འཚོང་མ་དང་། འཁོར་ལོའི་གོ་ཆ་མ་དང་། ཤིན་ཏུ་དཔའ་མོའི་རྣམས་རྣམ་པར་དག་པའོ། ༦ །

ཉོན་མོངས་པའི་སྒྲིབ་པའི་གཉེན་པོ་མཐོང་བའི་ལམ་གསུངས་ནས། ཤེས་བྱའི་སྒྲིབ་པའི་གཉེན་པོ་སྒོམ་པའི་ལམ་གསུངས་ཏེ། དེ་ཡང་འཕགས་པའི་ལམ་ཡན་ལག་བརྒྱད་དོ། །བརྒྱད་གང་ཞེ་ན། ཡང་དག་པའི་ལྟ་བ་དང་། ཡང་དག་པའི་རྟོག་པ་དང་། ཡང་དག་པའི་ངག་དང་། ཡང་དག་པའི་ལས་ཀྱི་མཐའ་དང་། ཡང་དག་པའི་འཚོ་བ་དང་། ཡང་དག་པའི་རྩོལ་བ་དང་། ཡང་དག་པའི་དྲན་པ་དང་། ཡང་དག་པའི་ཏིང་ངེ་འཛིན་རྣམས་སོ། །དེ་ལ་སྒོམ་པའི་ལམ་དུ་ཤེས་བྱའི་སྒྲིབ་པ་རང་བཞིན་མེད་པའོ་ཞེས་པའི་བློ་གང་ཡིན་པ་དེ་ནི་ཡང་དག་པའི་ལྟ་བ་སྟེ། འཇིག་རྟེན་ཕ་རོལ་ཡོད་པ་ཉིད་དུ་ལྟ་བ་ཡང་ཡིན་ནོ། །ལྟ་བ་དེ་ཉིད་ནས་ཀུང་བདག་མེད་པ་ལ་དམིགས་པ་ནི་ཡང་དག་པའི་རྟོག་པའོ། །རང་གིས་མཐོང་བའི་དོན་སེམས་ཅན་རྣམས་ལ་རབ་ཏུ་གསལ་བར་སྟོན་པ་ནི་ཡང་དག་པའི་ངག་གོ །མཐའ་གཅིག་ཏུ་དགེ་བ་ནི་ལུས་ཀྱི་ལས་ཀྱི་མཐའ་ཡིན་ལ། རྫུ་འཕྲུལ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་ཀྱིས་འདུལ་བར་བྱ་བའི་ཕྱིར་དུ་ཕ་རོལ་སྐྲག་པར་བྱེད་པ་ཡང་ཡང་དག་པའི་ལས་ཀྱི་མཐའོ། །བསམ་གཏན་གྱི་ཁ་ཟས་ཙམ་དང་ཆོས་གོས་ལ་སོགས་པ་ཚོལ་བ་གང་ཡིན་པ་དེ་ནི་ཡང་དག་པའི་འཚོ་བའོ། །སྤྱོད་ལམ་ཐམས་ཅད་དུ་རང་གི་སེམས་དང་ལུས་དང་ངག་དང་སེམས་ཀྱི་ཐ་སྙད་དང་མཐུན་པར་སྦྱོར་བ་ནི་ཡང་དག་པའི་རྩོལ་བའོ། །ཡང་གསུངས་པ།

ཡང་དག་པའི་རྩོལ་བ་ཁྲོ་གཉེར་མའོ། །ཡང་དག་པའི་དྲན་པ་ཕག་གདོང་མའོ། །ཡང་དག་པའི་ཏིང་ངེ་འཛིན་ནི་དཔལ་ཧེ་རུ་ཀའོ། ༈ །

དགེ་བའི་ཆོས་མ་སྐྱེས་པ་བསྐྱེད་པ་ཨམ་ད་ཀླཱི་ཎོའོ། །དགེ་བའི་ཆོས་སྐྱེས་པ་རྣམས་ཡང་དག་པར་བསྲུང་བ་ནི་ཨམ་ད་ཏྲཱི་ཎོའོ། །མི་དགེ་བའི་ཆོས་མ་

སྤྲོད་པ་ལ་ཞུགས་རྒྱལ་སྲས་དབང་པོ་ཡི། །
ཡུལ་དུ་སྣ་ཚོགས་ཇི་ལྟ་ཇི་ལྟར་འཇུག །
དེ་ལྟ་དེ་ལྟར་རིག་པ་མཐུ་ཚོགས་གིས། །
སེམས་ཅན་ཕན་ཕྱིར་མངོན་པར་འདུ་བྱེད་དོ། ། ཞེས་སོ། །

སྒོམ་པའི་ལམ་དུ་དམིགས་པ་མ་བརྗེད་པ་ནི་ཡང་དག་པའི་དྲན་པའོ།། དེར་རྩེ་གཅིག་པའི་སེམས་མ་གཡོས་པ་ཧེ་རུ་ཀ་ལྟ་བུའི་ཏིང་ངེ་འཛིན་གྱི་མཚན་ཉིད་ནི་ཡང་དག་པའི་ཏིང་ངེ་འཛིན་ཏེ། ཀུན་དུ་འོད་ཀྱི་སའི་བར་དུ་གསལ་བར་འགྱུར་བ་གང་ཡིན་པའོ། །དེ་ལ་དང་པོ་གསུམ་གྱིས་ནི། རྟོབས་ཆེན་མ་དང་། འཁོར་ལོས་སྒྱུར་མ་དང་། བརྩོན་འགྲུས་ཆེན་མོ་རྣམས་རྣམ་པར་དག་པའོ་ཞེས་སྐྱུའི་འཁོར་ལོའི་རྣམ་པར་དག་པའོ། །ཡང་དག་པའི་ལས་ཀྱི་མཐའ་ནི་ཁྭ་གདོང་མ་དང་། ཡང་དག་པའི་འཚོ་བ་ནི་འུག་གདོང་མའོ།། ཡང་དག་པའི་རྩོལ་བ་ནི་ཁྲོ་གདོང་མའོ། །ཡང་དག་པའི་དྲན་པ་ནི་ཕག་གདོང་མའོ་ཞེས་པ་ནི་སྒོ་སྐྱོང་མ་རྣམ་པར་དག་པའོ། །ཡང་དག་པའི་ཏིང་ངེ་འཛིན་ནི་བཅོམ་ལྡན་འདས་དཔལ་ཧེ་རུ་ཀ་ཧེ་རུ་ཀ་སྤྱི་ཡི་ཤེས་ཀྱི་པདྨའི་ལྟེ་བ་རྣམ་པར་དག་པའོ། ༈ །

དགེ་བའི་ཆོས་མ་སྐྱེས་པ་རྣམས་སྐྱེད་པའི་ཕྱིར་ལ་སོགས་པ་ནི་གཞན་

སྐྱེས་པ་རྣམས་མི་སྐྱེད་པ་ནི་ཨཱ་ཨ་དཾ་ཏྣི་ནིའོ། །མི་དགེ་བའི་ཆོས་སྐྱེས་པ……
རྣམས་སྤོང་བ་ཡམ་མཐྲཎི་ཡིན་ནོ། ༨ །

དེ་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཕྱོགས་ཀྱི་ཆོས་སུམ་ཅུ་རྩ་བདུན་རྣམ་པར་དག་པ་

ཛྙེ་བདུན་མ་ལ་སོགས་སོ་ཞེས་པ་ནི། དམ་ཚིག་གི་འཁོར་ལོའི་མཚམས་ཀྱི་ལྷ་མོ་རྣམ་པར་དག་པའོ། ༨ །

བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཕྱོགས་ཀྱི་ཆོས་སུམ་ཅུ་རྩ་བདུན་པོ་འདི་རྣམས་ཀྱི་རབ་ཏུ་དབྱེ་བ་ནི། ཛས་སུ་ན། དེ་རྣམས་དབང་པོ་ལྔ་དང་། སྟོབས་ལྔའི་གནས་སྐབས་ཀྱིས་བསྡུས་ཤིང་འགྱུར་བ་ཡིན་ཏེ། དྲན་པ་ཉེ་བར་གཞག་པ་ནི་དྲན་པའི་སྟོབས་སམ། དྲན་པའི་དབང་པོའོ། །རྫུ་འཕྲུལ་ཀང་པ་རྣམས་ནི་ཤེས་རབ་བམ་བརྩོན་འགྲུས་ཀྱི་སྟོབས་སུའོ། །ཡང་དག་པར་སྤོང་བ་རྣམས་ནི……བརྩོན་འགྲུས་སུའོ། །ཏིང་ངེ་འཛིན་གྱི་སྟོབས་ནི་ཏིང་ངེ་འཛིན་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་ཏུའོ། །བརྩོན་འགྲུས་ཀྱི་སྟོབས་ནི་བརྩོན་འགྲུས་ཀྱི་བྱང……ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་ཏུའོ། །ཤེས་རབ་ཀྱི་སྟོངས་ནི་ཆོས་རབ་ཏུ་རྣམ་པར་འབྱེད་པ་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་ཏུའོ། །དྲན་པའི་སྟོབས་ནི་དྲན་པ་ཡང་དག་བྱང……ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་ཏུའོ། །དད་པའི་སྟོབས་ནི་བརྩོན་འགྲུས་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་ཏུའོ། །བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་རྣམས་ལམ་གྱི་ཡན་ལག་བརྒྱད་དུ་བསྡུས་པ་འདི་ལྟ་སྟེ། ཡང་དག་པའི་དྲན་པ་དང་ཏིང་ངེ་འཛིན་དག་ནི་དྲན་པ་དང་ཏིང་ངེ་འཛིན་གྱི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་ཏུ་བསྡུས་ཤིང་སོན་པའོ། །བརྩོན་འགྲུས་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་ནི་ཡང་དག་པའི་རྩོལ་བར་རོ། །ཆོས་རབ་ཏུ་རྣམ་པར་འབྱེད་པ་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་ནི་ཡང་དག་ངའི་ལྟ་བར་རོ། །ཡང་དག་པའི་ངག་དང་། ལས་ཀྱི་མཐའ་དང་། འཚོ་བ་སྟེ་ཚུལ་ཁྲིམས་དག་པའི་ལས་གསུམ་པོ་དང་། དེ་བཞིན་དུ་ཡང་དག་པའི་ལྟ་བ་དང་།

ལྷུས་[1]སྲུ་སོན་པའི་རྩ་ཐམས་ཅད་ལྷའི་ཁ་དོག་དང་ཕྱག་མཚན་དང་དབྱིབས་ལ་བརྟེན་ཏེ་རྣམ་པར་གནས་པའོ། ༨ །

ཡང་དག་པའི་རྟོག་པ་དང་། ཡང་དག་པའི་རྩོལ་བ་དང་། ཡང་དག་པའི་དྲན་པ་དང་། ཡང་དག་པའི་ཏིང་ངེ་འཛིན་རྣམས་ནི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་ལྔ་རྣམས་ལས་ཏེ། ཤིན་ཏུ་སྦྱངས་པ་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་དང་། བཏང་སྙོམས་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་སྟེ། ཡང་དག་པར་བསྡུས་ན་དངོས་པོ་བཅུར་འགྱུར་བ་ཡིན་ནོ། །དེ་རྣམས་ཀྱང་ཚུལ་ཁྲིམས་དང་། . ཏིང་ངེ་འཛིན་དང་། ཤེས་རབ་ཀྱི་སྟོབས་ཏེ་གསུམ་པོ་རྣམས་སུ་བསྡུས་པ་ཡིན་ནོ། །དེ་ལ་ཡང་དག་པའི་ངག་དང་། ལས་ཀྱི་མཐའ་དང་། འཚོ་བ་ནི་ཚུལ་ཁྲིམས་དག་པའི་ལས་ཡིན་ལ། ཡང་དག་པའི་རྩོལ་བ་ནི་ཚུལ་ཁྲིམས་དག་པའི་ལས་ཀྱི་འབྲས་བུ་སྟེ་ཚུལ་ཁྲིམས་ཀྱི་ཕུང་པོའོ། །ཡང་དག་པའི་ལྟ་བ་དང་། ཡང་དག་པའི་རྟོག་པ་དང་། ཤིན་ཏུ་སྦྱངས་པ་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་དང་། བཏང་སྙོམས་ཡང་དག་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཡན་ལག་སྟེ་བཞི་རྣམས་ནི་ཤེས་རབ་ཀྱི་ཕུང་པོའོ། །ཡང་དག་པའི་དྲན་པ་དང་། ཡང་དག་པའི་ཏིང་ངེ་འཛིན་ནི། ཏིང་ངེ་འཛིན་གྱི་ཕུང་པོའོ། ཚུལ་ཁྲིམས་དང་། ཏིང་ངེ་འཛིན་ཡང་ཤེས་རབ་ཀྱི་མཐར་ཐུག་པར་འགྱུར་བ་ཡིན་ཏེ། ཤེས་རབ་ཁོ་ན་ངོས་རྣམས་ཀྱི་རྟོགས་པ་པོ་འོ་ཞེས་པའི་རིགས་པ་ལའོ། །དེ་ལྟར་ན་སུམ་ཅུ་རྩ་བདུན་པོ་ནི་བཅུ་རྣམས་ཀྱིས་དང་། བཅུ་རྣམས་ནི་གསུམ་གྱིས་དང་། གསུམ་རྣམས་ནི་གཅིག་གིས་ཡང་དག་པར་བསྡུས་སོ་ཞེས་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱས་པ་ཡིན་ནོ། །

འདི་སྐད་དུ་གསུངས་པ་ཡིན་ཏེ། འདིར་སྟོར་གསུངས་པའི་ཡང་དག་པར་རིག་པའི་རང་བཞིན་གྱི་མཁའ་འགྲོ་མའི་རྣམ་པའི་རྩ་སྤྱི་བོ་ལ་སོགས་

---

1 ཞེ° ལུས།

པ་ནས་ཕྲུས་མོའི་གནས་ཀྱི་མཐར་ཐུག་པ་དང་ལྟེ་བའི་འཁོར་ལོའི་ནང་གི་བཞི་སྟེ། སུམ་ཅུ་རྩ་བདུན་ཏེ། སྒོ་བརྒྱད་པོ་རྣམས་དང་། བརྒྱད་པོའི་དབུས་ཀྱི་ཨཝདྷཱུཏཱིའི་རང་བཞིན་གྱི་ལུས་ཀྱི་གནས་རྣམས་ལ་ཡང་དག་པར་བརྟེན་པའི་རྩ་དགུ་དང་། དབུས་ཀྱི་རྩ་བཅུ་རྣམས་སུ་ཡང་བསྡུས་ཤིང་སོན་པ་ཡིན་ལ། བཅུ་པོ[1]་དེ་རྣམས་ལ་ལ་ནཱ་ལ་སོགས་པ་གསུམ་དུ་དང་། དེ་ཡང་དབུས་མའི་རྩར་རོ། དེ་ལྟར་ན་དབུས་ཀྱི་ཨཝདྷཱུཏཱི་ནི། རྡོ་རྗེ་ཕག་མོའི་རང་བཞིན་ནོ། །དེ་ལས་རྩའི་ཚོགས་ཐམས་ཅད་གསལ་བར་འགྱུར་བས་ན་དེ་ཁོ་ན་ལ་བརྟེན་པར་འགྱུར་བ་ཡིན་ནོ། །འདི་རྣམས་ཀྱིས་ནི་ཀུན་རྫོབ་དང་། དོན་དམ་པའི་དངོས་པོ་གཉིས་གསལ་བར་བྱས་པ་ཡིན་ཏེ། དེ་ཉིད་ཟུང་འཇུག་གི་ལམ་གསལ་བར་བྱས་པ་ཡིན་ནོ། །ཇི་སྐད་དུ་གསུངས་པ།

ཇི་ལྟར་ཆུ་འཛིན་དུ་མ་ནི། |
དབྱིབས་དང་ཁ་དོག་སྣ་ཚོགས་ཅན། |
ནམ་མཁའི་ཁོངས་སུ་བྱུང་ནས་ནི། |
དེ་ཉིད་དུ་ནི་ཐིམ་འགྱུར་བ། |
དེ་ལྟར་སྣང་བ་གསུམ་པོ་ཡི། |
རྒྱུ་ཅན་རང་བཞིན་ཐམས་ཅད་ཡིན། |
ཡུལ་རྣམས་ཀུན་ལ་ཞུགས་ནས་ཀྱང་། |
འོད་གསལ་བར་ནི་འཇུག་པར་འགྱུར།། ཞེས་པ་དང་།

དེ་བཞིན་དུ་གཟུགས་ཁོ་ན་སྟོང་པ་ཉིད་དང་། སྟོང་པ་ཉིད་ཁོ་ན་གཟུགས་སོ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པའི་ཕྱིར་དང་།

ཀུན་རྫོབ་ལས་ནི་ལོགས་ཤིག་ཏུ། |
དོན་དམ་པ་ནི་སུ་ཞིག་སྣྲ། |

[1] སྡེ་ ༠ བཅུ་པོ་བཅུ་པོ།

ཞེས་གསུངས་པའི་ཕྱིར་རོ། །འདི་དག་གིས་ནི་ཀུན་རྫོབ་དང་དོན་དམ་པ་དག་སོ་སོར་འབྱེད་ཅིང་། མངོན་པར་ཞེན་པ་ཉིད་ལས། ཞི་བ་དང་། ཚངས་པ་དང་། གྲངས་ཅན་གྱི་སྐྱེས་བུ་ལ་སོགས་པར་སྨྲ་བའི་གཞན་གྱི་སྡེ་པ་དང་། ཉམས་པ་མེད་པར་ཁས་ལེན་ཞིང་སྨྲ་བ་ལ་སོགས་པའི་རང་གི་སྡེ་པ་ཡང་སེལ་བར་བྱེད་པར་འགྱུར་རོ་ཞེས་པ་སྨྲས་པས་ཆོག་གོ །

དཀྱུས་མ་བརྗོད་པར་བྱ་སྟེ། དེ་ལྟར་འདི་རྣམས་ནང་དུ་ཙའི་རང་བཞིན་དང་། ཕྱི་རོལ་དུ་ནི་ཞལ་དང་སྐུ་མདོག་དང་། ཕྱག་དང་། དབྱིབས་དང་། མཚོན་ཆ་ལ་སོགས་པ་འཛིན་པ་སྟེ། སེམས་ཅན་གྱི་བསམ་པའི་དབང་ལ་བརྟེན་ནས་དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་འཁོར་ལོར་རྣམ་པར་གཞག་པ་དང་། ཕུལླཱིར་ལ་སོགས་པའི་གནས་རྣམས་སུ། ཞིང་སྐྱེས་མའི་གཟུགས་ཀྱིས་རྗེས་སུ་འཛིན་པར་མཛད་པ་རྣམས་རོལ་བར་བྱེད་ཅིང་། དགའ་བར་བྱེད་ལ། རབ་ཏུ་རྒྱུ་བར་བྱེད་དོ། །དེ་བཞིན་དུ་ནང་དུ་ཡང་། དེ་རྣམས་ཀྱི་ཞལ་ལ་སོགས་པ་ཡོད་དེ། རྩ་ཐམས་ཅད་ཉིད་བདེ་བ་ཆེན་པོའི་འཁོར་ལོ་ལས་བྱུང་ནས་རྡོ་རྗེ་དང་ཆུ་སྐྱེས་ཀྱི་མཐར་ཐུག་པ་ན་ཞལ་དུ་རབ་ཏུ་གསལ་བར་འགྱུར་ལ། དེའི་སྦུ་གུ་རྣམས་ནི་སོ་སོའི་ཕྱོགས་མང་པོ་རྣམས་སོ། །ཁམས་ཀྱིས་གཙོས་པ་ལས་སྐུ་མདོག་དང་ལྡན་པ་སྟེ། དེ་ལྟར་ཡང་སོ་དང་སེན་མོ་ནི་དཀར་པོ་དང་། སྐྲ་དང་བ་སྤུ་ནི་ནག་པོ་དང་། པགས་པའི་དྲི་མ་ནི་དམར་ནག་དང་། ཤ་ནི་དམར་པོའི་མདོག་དང་། ཆུ་རྒྱུས་རྣམས་ནི་དཀར་པོ་དང་། རུས་པའི་ཕྲིང་བ་ནི་དཀར་པོ་དང་། མཆིན་པ་ནི་ཤིན་ཏུ་ནག་པོ་དང་། སྙིང་ནི་དམར་དཀར་དང་། མིག་དག་ནི་དཀར་པོ་དང་། ནག་པོ་དང་། མཁྲིས་པ་ནི་སེར་པོ་དང་། གློ་བ་ནི་དམར་པོ་དང་། རྒྱུ་མ་དང་གཉེ་མ་ནི་དཀར་པོ་དང་། ལྟོ་བ་ནི་སྔོ་བསངས་དང་། བཤང་བ་ནི་སེར་པོ་དང་། མཚམས་མཐའ་ནི་དམར་དཀར་དང་། བད་ཀན་ནི་དཀར་པོ་དང་། རྣག་ནི་ལྷ་བ་ལྟར་དཀར་

སེར་དང་། ཁྲག་ནི་དམར་པོ་དང་། རྒྱལ་ནི་མེའི་ཁ་དོག་དང་། ཆོལ་བུ་ནི་དཀར་པོ་དང་། མཆི་མ་ནི་ཨུ་ཌིག་གི་འབྲས་བུ་ལྟར་དཀར་བ་དང་། མཆིལ་མ་ནི་གནག་ཅིང་དཀར་བ་དང་། ངར་སྣབས་ནི་སེར་པོ་དང་དཀར་པོ་འོ་…… ཞེས་པ་ནི་ཁ་དོག་གི་དབྱེ་བའོ། །འདི་རྣམས་ཀྱི་དབྱིབས་ནི། འཁྱོག[1]པོའི་གཟུགས་ཉིད་ཀྱིས་གཡོན་དང་གཡས་སུ་རབ་ཏུ་རྒྱུ་བས་གནས་པ་སྟེ། གཡས་བརྐྱང་བ་ལ་སོགས་པའི་གཟུགས་སུ་གྲུབ་པའོ། །མཚོན་ཆ་འདི་རྣམས་ཀྱི་གྲི་གུག་དང་ཐོད་པ་རྣམ་པར་[2]རྟོག་པའི་དྲི་མ་འབྱེད་པར་བྱེད་པའི་ལྷན་སྐྱེས་ཀྱི་རང་བཞིན་དུ་ཤེས་པར་བྱའོ། །འདིར་ཚིགས་སུ་བཅད་པ།

རྣམ་རྟོག་དྲི་མ་རྣམ་གཅོད་པའི། །
ཡང་དག་སྐྱོང་བའི་བདག་ཉིད་ཐོབ། །
གཟུང་དང་འཛིན་ལས་ངེས་པར་གྲོལ། །
ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་དཀར་ངེས་པའོ། །

རིག་པ་ཙམ་གྱིས་འཇིག་རྟེན་ལ། །
སངས་རྒྱས་འབྲས་བུ་ཉིད་སྟོན་བྱེད། །
མཁའ་འགྲོ་མ་སོགས་བཙུར་ཙ་ཤད་པའི། །
འཁོར་ལོར་སོན་སྣད་རྟོག་པ་ནི། །

མི་ཕྱེད་ལ་སོགས་རང་བཞིན་གྱིས། །
དུས་ཀུན་དུ་ནི་འགྲོ་ལ་གནས། །
ཁམས་ཀྱི་རང་བཞིན་དཔའ་བོ་ཆེ། །
ཉི་ཤུ་རྩ་བཞི་ཡང་དག་ལྡན། །

---

༡ ཅོ་ནེ་ ° འཁྱོགས། ༢ ཅོ་ནེ་ ° རྣམ་པར་དག་པ་ནི།

¹དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེར་རྩའི་འཁོར་ལོ་དང་བཅས་པའི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཕྱོགས་ཀྱི་ཆོས་སུམ་ཅུ་རྩ་བདུན་རྣམ་པར་དག་པ་བཤད་པ་ཀྲུས་པར་²བསྟན་པ་སྟེ······ བདུན་པའོ།། །།

རང་ལུས་དབུས་སོན་རྩ་རྣམས་ནི། །
དཔའ་མོ་ཡིན་ན་གལ་ཏེ་འདིར། །
ཛཱི་ལྟར་སྒོངས་ཤིང་འཕྲུལ་པར་གྱུར། །
ཀླུལླི་ར་སོགས་གནས་རིགས་³ན། །
ཕྲི་རོལ་ཡོངས་སུ་དོར་འགྱུར་ཏེ། །
སྒོམ་པ་དེ་ལྟར་འཕྲུལ་པ་ཡིན། །
ནང་གི་རྣལ་འབྱོར་ལྡན་པ་ལས། །
རྣལ་འབྱོར་པ་རྣམས་ཐར་པ་འཐོབ། ༦ །

ཞེས་པ་རྫོགས་པའི་རིམ་པའི་སྒྲུབ་པའི་ཐབས་ཀྱི་ཆོ་ག་དཔྱིད་ཀྱི······ ཐིག་ལེའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པ་གསང་བ་ཆེན་པོའི་སྒྲོན་མ་ལས། ཀྲུས་པར་བསྟན་པ་བདུན་པའི་ཀྲུས་པར་བཤད་པའོ།། །།



---

¹ རྒྱ་དཔེར་༌ (ཀླཱ) དཔལ། ² རྒྱ་དཔེར་༌ ཀྲུས་པར་མི་གསལ། ³ རྒྱ་དཔེར་༌ (ཕྲིར) རིག

རྒྱས་པར་བསྟན་པ་བརྒྱད་པ།

དེ་ནས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་གང་ཡང་རུང་བའི་སྐུའི་དཀྱིལ་འཁོར་དང་། གནོད་སྦྱིན་དང་[1]། མཆོད་སྦྱིན་དང་། བཟླས་པ་དང་། བསྒོམ་པ་ལ་སོགས་པའི་ཆོ་གའི་བྱ་བ་ཕྱི་རོལ་དང་མཐུན་པར་ནང་གི་ངོ་བོས་ཡང་དག་པར་རབ་ཏུ་བཤད་པར་བྱའོ། ༡ །

བྱང་ཆུབ་ཆེན་པོའི་ཕྱོགས་ཆོས་ནི། །
སུམ་ཅུ་རྩ་བདུན་གནས་མཚན་ཉིད། །
ཧེ་རུ་ཀ་སོགས་ལྷ་རྣམས་ནི། །
རྩ་ཡི་གཟུགས་སུ་ཡང་དག་གནས། ༢ །

ད་ནི་ཕྱི་རོལ་གྱི་དཀྱིལ་འཁོར་དང་། མཆད་སྦྱིན་དང་། བཟླས་པ་དང་། སྦྱིན་སྲེག་ལ་སོགས་པ་ནང་དུ་གཞག་པ་དེ་རྣམས་རབ་ཏུ་གསལ་བར་བྱ་བའི་ཕྱིར། དེ་ནས་གང་ཡང་རུང་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། འདི་རྣམས་ཀུང་སྤྲར་བརྫོད་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་གོ་སླའོ། །དེ་ལ་ལུས་ཁོ་ན་དཀྱིལ་འཁོར་དུ་རྟོགས་པར་བྱ་སྟེ། ལུས་ཀྱི་དཀྱིལ་འཁོར་ཞེས་བྱ་བར་འབྲེལ་[2]ལོ། ༡།

ཛཻ་[3]ལྡ་སྭ་ཞེ་ན། བྱང་ཆུབ་ཆེ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་སྟེ། བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཕྱོགས་ཀྱི་ཆོས་སུམ་ཅུ་རྩ་བདུན་རྣམ་པར་དག་པ་རྣམ་པར་གཞག་པའི་རྩ་གང་ཡིན་པ་འདི་རྣམས་ནི་རྣམ་པ་དེ་ཉིད་ཀྱིས་ཡེ་ཤེས་དང་། ཐུགས་དང་གསུང་དང་སྐུ་དང་དམ་ཚིག་གི་འཁོར་ལོར་གནས་པའི་མཁའ་འགྲོ་མ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་སུ་རྣམ་པར་གཞག་གོ་ཞེས་བརྟེན་པའི་དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་རྣམ

---

༡ སེ་。 སྣ་。 གནོད་སྦྱིན་དང་མི་གསལ། རྒྱ་དཔེར་。 (ཡོག) ནག་འབྱོར། ༢ ཅོ་ནེ་。 འབྲེལ།
༣ ཅོ་ནེ་。 ཙི། ༤ ཅོ་ནེ་。 མཁའ།

ལུས་ཀྱི་དཀྱིལ་འཁོར་ཉམས་དགའ་བའི། །
སྒོ་བཞི་ཛི་ལྟར་བརྗོད་པའོ། །
རང་གི་ཡན་ལག་ལས་བྱུང་བརྒྱད། །
དཀའ་བ་[1]དེ་དག་འཛིན་ཅིང་གནས། ༢ །

པར་དག་པ་གསུངས་པ་ཡིན་ནོ། །དེ་སྤུའི་རྒྱུ་ཡིན་ཞེ་ན། འདི་ནི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་མེད་ཅིང་དམིགས་པ་མེད་པ་སྒྲིབ་པ་མེད་པའི་རང་བཞིན་གྱི་མཁའ་འགྲོ་མའི་ཡིན་ནོ་ཞེས་བརྗོད་པར་བྱ་སྟེ།

ཏྲེ་ནི་ནམ་མཁར་[2]འགྲོ་བ་སྟེ། །
སངས་རྒྱས་དབྱིངས་སུ་རབ་ཏུ་བརྟགས། །
ནམ་མཁའ་ཀུན་རྒྱུའི་དངོས་གྲུབ་རྣམས། །
མཁའ་འགྲོ་མ་ཞེས་བརྗོད་པར་བྱ། །

ཞེས་གསུངས་ངའི་ཕྱིར་རོ། །ཡེ་ཤེས་ལྔའི་ནམ་མཁའ་ཆེན་པོ་ལ་རྒྱུ་བ་ནི་ཙ་རྣམས་ཏེ། དེའི་ཕྱིར་དེ་ཉིད་ནི་མཁའ་འགྲོ་མ་ཞེས་བརྗོད་པར་བྱ་སྟེ། དེ་ལ་རིག་[3]པ་ལས་གཉིས་ཀ་ལ་རྣམ་པར་མི་རྟོག་པའི་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་འཆར་བའི་ཕྱིར་རོ། ༣ །

བརྟེན་པའི་དཀྱིལ་འཁོར་གསུངས་ནས། ལུས་ཀྱི་དཀྱིལ་འཁོར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་རྟེན་གྱི་དཀྱིལ་འཁོར་གསུངས་ཏེ། དེ་ལ་ལུས་ཁོ་ན་དཀྱིལ་འཁོར་ཏེ། ཐུགས་དང་གསུང་དང་སྐུའི་དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་ཙ་དང་། ཁམས་ཀྱི་རང་བཞིན། རྣལ་འབྱོར་མ་དང་དཔའ་བོ་རྣམས་ཀྱི་རྟེན་ཉིད་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ། །དེ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་ཉམས་དགའ་བ་སྟེ། ཕྱི་རོལ་གྱི་རྡུལ་ཚོན་ལ་སོགས་པ་ལ་ལྟོས་པ་མེད་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ། །ཕྱི་རོལ་གྱི་དཀྱིལ་འཁོར་ལ་སྒོ་བཞི་ཡོད་པ་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་དུ་ནང་དུ་ཡང་ཡིན་ནོ་ཞེས་བསྟན་པའི་ཕྱིར

---

༡ སྡེ་° དཀའ། ༢ ཅོ་ནེ་° མཁའ། ༣ ཅོ་ནེ་° རིག

དངོས་པོ་ཀུན་གྱི་[1]ཀུན་ནས་ནི། །
ཀུ་བཞི་ཙ་ནི་རབ་ཏུ་བརྗོད། །
སྐུ་གསུང་ཐུགས་ཀྱི་ངོ་བོ་ཡིས། །
འཁོར་ལོ་གསུམ་གྱི་བདག་ཉིད་བརྗོད། ༨ །

བཤད་པ། དེ་ལ་ལུས་ཀྱི་དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་སྒོ་བཞི་རྣམས་ནི། མིག་དང་། རྣ་བ་དང་། སྣ་དག་དང་། ཁར་བརྗོད་པ་རྣམས་སོ། །ཡང་ན་ཛི་སྐད་གསུངས་པའི་ཞེས་པ། སྔར་གསུངས་པ་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་གྱི་སྒོ་གསུམ་པོ་རྣམས་ཀྱི་ཆ་ཤས་ལས་བཞིར་འགྱུར་ཏེ། གཡོན་དང་གཡས་ཀྱི་རྩ་ནི་ཐུགས་ཀྱི་སྒོ་སྟེ་དང་པོའོ། །བདག་གི་གདན་ལ་སོགས་པ་བཞི་ནི་གསུང་གི་སྒོ་སྟེ་གཉིས་པའོ། །དཀྱིའི་བདག་ཉིད་ཅན་སྐུའི་སྒོ་ནི་འོག་དང་སྟེང་གི་དཀྱེ་བས་རྣམ་པ་གཉིས་སོ། །དེ་ལྟར་སྒོ་བཞི་ལ་བརྟེན་པའི་ཀ་བ་གཉིས་གཉིས་དང་ལྡན་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་ཀ་བ་བརྒྱད་དོ། །ནང་གི་མིག་ལ་སོགས་པའི་རྩའི་ཀ་བ་རྣམས་དང་ལྡན་པའོ། །ཇི་ལྟར་ཕྱི་རོལ་གྱི་དཀྱིལ་འཁོར་གྲུ་བཞི་པ་ཡིན་པ་དེ་བཞིན་དུ་མཉམ་པའི་དངོས་པོས་ལུས་ཀྱི་དཀྱིལ་འཁོར་ཡང་གྲུ་བཞིར་ཤེས་པར་བྱའོ། །གང་ལས་ཤེ་ན། མཉམ་པ་ཉིད་དེ། འདི་ནི་ལུས་འདི་ཇི་ལྟ་བ་བཞིན་ཏེ། རྐང་པའི་འོག་ནས་གཙུག་ཏོར་གྱི་མཐར་ཚད་དང་ལྡན་པ་དེ་བཞིན་དུ་ལག་པ་བརྒྱང་[2]བ་ན་ཡང་ཚད་དེ་ཁོ་ནའོ། །ཕྱི་རོལ་གྱི་དཀྱིལ་འཁོར་ནི་ཐུགས་དང་གསུང་དང་སྐུའི་བདག་ཉིད་ཅན་གྱི་འཁོར་ལོ་གསུམ་ལ་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞི་སྟེ་གཞན་ནོ། །དེ་བཞིན་དུ་ནང་དུ་ཡང་ཐུགས་དང་གསུང་དང་སྐུའི་རྩ་རྣམས་ཀྱི་རྟེན་དུ་གྱུར་པ་སྤྱི་བོ་ལ་སོགས་པ་ནས་ཕྱིན་པའི་མཐར་ཐུག་པའི་གནས་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞིའི་བདག་ཉིད་ཅན་གྱི་འཁོར་ལོ་གསུམ་དང་ལྡན་པའོ། ༢–༨ །

---

༡ ཀྱི་དཔེར་° སྣ་° གྱིས། ༢ ཅོ་ནེ་° བརྒྱད།

རི་བོ་མགོ་ཡི་ཟླེཙཱ་འབྲུ་ལ། །
བཻཌཱུརྻ་བ་[1]སོགས་རིམ་ཇི་ལྟར། །
ཟླ་མའི་དུས་ཚོགས་རིམ་ཉིད་ཀྱིས། །
དེ་ལ་དཀྱིལ་འཁོར་རྫོགས་པ་སྟེ། ༤ །

ཀང་པའི་འོག་ཏུ་གནས་པའི་རླུང་། །
བཻཌཱུརྻ་བ་[1]གཞུའི་[2]རྣམ་པར་གནས། །
སུམ་མདོ་འི་ཕྱོགས་སུ་གནས་པ་ནི། །
ཀུ་གསུམ་འབར་བ་དེ་བཞིན་ནོ། ༥ །

མགོ་བོའི་རི་བོའི་ཟླེཙཱ་འབྲུ་ལ། ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ནི་མདོར་བསྟན་པ་སྟེ། དེ་ཡང་རླུང་ལ་སོགས་པའི་དཀྱིལ་འཁོར་བཞི་པོའི་སྟེང་དུ་་་ གནས་པའི་རི་རབ་ཀྱི་རྩེ་མོ་ལ་གནས་པའི་སྣ་ཚོགས་པདྨར་བཤད་ཅིང་ཁོང་དུ་་ ཆུད་པར་བྱ་བཟླེན་པ་དེ་ཁོ་ན་བཞིན་དུ་ནང་དུ་ཡང་ལུས་ཀྱི་དཀྱིལ་འཁོར་ལ་་་་ དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་མཚན་མ་ནི། ཟླ་མའི་མན་ངག་ལས་རྟོགས་པར་བྱའོ། ༤ །

ཀང་མཐིལ་དུ་ནི་གནས་པའི་རླུང་། །ཞེས་བྱ་བ་ནས་བརྩམས་ཏེ། མི་གསལ་གསལ་བའི་གཟུགས་ཅན་གྱིས། །ཞེས་བྱ་བའི་མཐར་ཐུག་པས་་་་་ དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་མཚན་མའི་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་རྒྱས་པར་གསུངས་པ་བཤད་པར་བྱ་སྟེ། ཀང་པའི་མཐིལ་དུ་སྟེ་ཀང་པའི་འོག་གོ །དེར་རླུང་གནས་པ་སྟེ་གཞུའི་རྣམ་ པ་ཉིད་ཀྱིས་ཁྱད་པར་དུ་འཕགས་པ་ལས་བརྩམས་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར། དེ་ཉིད་་་ བཻཌཱུརྻའོ། །རང་གི་དོན་ལ་ཨན་དེ་བཻཀྲི་ཏ་བྱའོ། །ཀང་པའི་གནས་ཀྱི་་་ བདག་ཉིད་ཅན་གྱི་བྱ་བ་ནི་བཻཌཱུརྻ་ཞེས་བརྗོད་པར་བྱ་སྟེ། འདིས་[3]ནི་རླུང་གི་ དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་བྱེད་པ་པོའི་དབྱིབས་ཀྱང་གསུངས་པ་ཡིན་ནོ། །དེའི་སྟེང་་་

༡ རྒྱ་དཔེར་༌ བཻཌཱུ། ༢ སྡེ་༌ གཞིའི། ༣ ཅོ་ནེ་༌ དྲི།

ཀླུམ་པོ་འི་རྣམ་པའི་གཟུགས་ཀྱིས་ནི། །
ཆུ་ནི་ལྟོ་བ་རུ་ནི་གནས། །
སྙིང་ག་རུ་ནི་ས་ཉིད་ནི། །
ཀུན་ནས་གྲུ་བཞི་པ་ཡིན་ནོ། ༧ །
ཀེང་རུས་དབྱུག་པའི་གཟུགས་ཅན་ནི། །
རི་རབ་རི་རྒྱལ་དེ་བཞིན་དུ། །
མགོ་དེའི་ཆ་ལ་ཡང་དག་གནས། །
འདམ་སྐྱེས་འདབ་མ་སུམ་ཅུ་གཉིས། ༨ །
དབྱངས་དང་གསལ་བྱེད་ཡན་ལག་ཧྲུག[1] །
སུམ་ཅུ་རྩ་གཉིས་བྱང་ཆུབ་སེམས། །

ཏུ་ཡང་ཡིན་པ་སུམ་མདོའི་ཕྱོགས་ཏེ། ཀེད་པའི་ཚའོ། །དེར་བུད་མེད་… དང་སྐྱེས་པ་དག་གི རཀྟ་དང་ནོར་བུ་གྲོལ་བ[2]་ཉིད་ལས་མེའི་དཀྱིལ་འཁོར་གྲུ་གསུམ་པའི་རང་བཞིན་གྱིས་འབར་བ[3]་རྣམ་པར་གནས་སོ། །དེའི་སྟེང་དུ་ཐིགས་ཀྱི་ཕྲེང་བ་ཀླུམ་པོ་ཞུ་ཞིང་སྦྱོར་བ་ལས་ཆུའི་དཀྱིལ་འཁོར་ཏེ། ལྟོ་བའི་ཕྱོགས་སུ་རང་བཞིན་གྱིས་གནས་སོ། །དེའི་སྟེང་དུ་སྙིང་གར་གྲུ་བཞི་པ…… གསེར་ལྟ་བུའི་སའི་དཀྱིལ་འཁོར་ཡོད་དེ། དེའི་སྟེང་གང་ཡིན་པ་མགྲིན…… པའི་ཚ་ནི། རྣམ་གྲངས་གཞན་དུ་ན་སྐལ་ཚོགས་ཏེ། དེ་ཉིད་ནི་རི་རབ་ཏུ… ཤེས་པར་བྱ་སྟེ། མིག་ལ་སོགས་པའི་རྩེ་མོ་བརྒྱད་དང་ལྡན་ཞིང་། དེའི… འདབ་མ་བཞི་ཕྲ་རིན་པོ་ཆེའི་རང་བཞིན་ཡིན་པའི་ཕྱིར་རོ། རི་རབ་གང…… ཡིན་པ་འདི་ལས་མགོ་བོའི་དབུས་དེར་མི་ཕྱེད་མ་ལ་སོགས་པའི་རྩ་སུམ་ཅུ… རྩ་གཉིས་པོ་དེ་ཉིད་ནི་སྣ་ཚོགས་པདྨར་ཏེ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་གདན་དུ… ཤེས་པར་བྱའོ། །དེའི་ནང་དུ་ཨཱ་ལི་དང་ཀཱ་ལི་དབྱངས་དང་གསལ་བྱེད་ཀྱི…

༡ རྒྱ་དཔེར། (སཾབྷཱུཏམ) ཡང་དག་འབྱུང་། ༢ རྒྱ་དཔེར། (ཡུཀྟ) ལྡན། ༣ ཅོ་ནེ། བར།

པདྨའི་དབུས་སུ་སོན་པ་གང་། |
ཟླ་བའི་དཀྱིལ་འཁོར་ཞེས་བྱ་བར། ༩ |
མགོ་ཡི་ནང་དུ་སྣད་པ་ནི། |
གནས་པ་གང་ནི་དེ་ལ་བརྗོད། |
དེ་ཡི་ནང་དུ་ཧཾ་ཡིག་ནི། |
ཐིག་ལེའི་གཟུགས་ཏེ་མི་ཤིགས་པ། ༡༠ |
འཇིག་རྟེན་ཀུན་གྱི་རྩ་བ་དེ། |
བརྟན་དང་གཡོ་བའི་བདག་ཉིད་ནི། |

བདག་ཉིད་ཅན་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་སྲུམ་ཙུ་ཙ་གཉིས་ཀྱི་གོང་བུ་སྣང་བ་ཉིད་ནི་ཟླ་བའི་དཀྱིལ་འཁོར་ཏེ། བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་ཁྱད་པར་གྱི་གདན་ནོ། །གདན་རྣམས་རང་བཞིན་གྱིས་གྲུབ་པ་ནི་བྱེ་བྲག་གི་རྒྱུད་ཁ་ཅིག་ཏུ་མ་གསུངས་པར་རྟོགས་པར་བྱའོ། །རྣམ་པར་དག་པའི་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་ནི་[1]ཐམས་ཅད་ཀྱི་[2]ཚེ་སྣ་བར་བྱ་བ་མ་ཡིན་པའི་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་ཡིན་པའི་ཕྱིར། གང་ཟག་གི་མོས་པའི་དབང་ལས་གདན་རྣམས་སྣ་རབ་ཏུ་ཕྱེ་བ་ཡིན་ནོ། །དེ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་འཁོར་ལོ་གསུམ་དུ་གནས་པའི་དཔའ་བོ་དང་རྣལ་འབྱོར་མ་རྣམས་ལ་ཁ་ཅིག་ཏུ་ཟླ་བའི་གདན་དང་། ཁ་ཅིག་ཏུ་ཉི་མའི་གདན་ནོ་ཞེས་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱའོ། ༨—༩½།

དེ་ཡི་དབུས་སུ་ཞེས་པ་[3]ལ་སོགས་པ་ལ། དེ་ཡི་སྙེ་སྣད་པའི་དབུས་སུ་གཞོམ་དུ་མེད་ཅིང་འགྱུར་བ་མེད་པ་ཧཾ་གི་ཡི་གེ་སྟེ། ཞུ་བའི་[4]བདུད་རྩི་རྒྱས་པ་ལས་ཐིག་ལེའི་ཚོར་བ་བསིལ་བ་ནི་ཐིག་ལེ་ཞེས་བརྗོད་པར་བྱའོ། །དེ་ནི་བརྟན་པ་དང་། གཡོ་བའི་བདག་ཉིད་དངོས་པོ་ཐམས་ཅད་དུ་འགྱུར་བ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རྫོགས་ཤིང་རབ་ཏུ་གནས་པའི་གནས་རྣམས་ཀྱི་དེ་ཉིད་ས་བོན་གྱི་གཟུགས་ཀྱིས་གསལ་ཞིང་། དོན་དམ་པའི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་ཀྱི་གཟུགས་ཀྱིས་ནི་མི་

---

༡ ཅོ་ནེ་༠ ནི་མི་དྲུག ༢ ཅོ་ནེ་༠ ཀྱིས། ༣ ཅོ་ནེ་༠ བྱ་བ། ༤ སྡེ་༠ ཞུའི།

གསལ་དང་མི་གསལ་གཟུགས་ཀྱི་¹ནི། །
དེ་ནི་ས་བོན་ངོ་བོར་གནས། ༡༡།
ལུས་ཅན་ཐམས་ཅད་རྣམས་ཀྱི་གཟུགས། །
དེ་²ལས་དང་པོ་ནས་བསྐྱེད་པའོ། །
བདུད་རྩིའི་གཟུགས་ཀྱིས་འཛག་པ་ནི། །
ཉིན་དང་མཚན་དུ་རྣམ་པར་གནས། ༡༢།

གསལ་བའོ། །དེ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར། ཀུན་གྱི་སྟེ། ཁང་མེད་དང་། ³ཁང་གཉིས་དང་། ཁང་བཞི་དང་། ཁང་མང་དང་། སྒོང་སྐྱེས་དང་། མངལ་སྐྱེས་དང་། དྲོད་གཤེར་སྐྱེས་དང་། རྫུས་སྐྱེས་དང་། དུད་འགྲོ་དང་། ཡི་དྭགས་དང་། དམྱལ་བ་དང་། ལྷ་དང་། ལྷ་མ་ཡིན་དང་། མི་རྣམས་ཀྱིའོ། །ལུས་ཅན་རྣམས་ཀྱི་ལུས་ནི། དང་པོ་དེ་ཁྲོ་ན་ལས་སྐྱེས་པ་ཡིན་ཏེ། ཕ་དང་མ་སྙོམས་པར་ཞུགས་པའི་དབང་གིས་གཞན་གྱི་ཚེ་ན། བདུད་རྩི་ཁོ་ན་ཉུ་བཞིན་པ་རྣམ་པར་གནས་པ་ཡིན་ནོ། །དེ་ཉིད་ནི་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཧེ་རུ་ཀའི་རང་བཞིན་ཏེ། ཆོས་ཉིད་ཡིན་པ་ཉིད་ཀྱིས་ཆོས་རྣམས་ལ་ཁྱབ་པ་ན། སངས་རྒྱས་འབྱུང་བ་དང་མི་འབྱུང་བ་ན་ཡང་དེ་གནས་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ། །ཆོས་ཐམས་ཅད་ནི། གདོད་མ་ནས་མ་སྐྱེས་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རྟེན་ཅིང་འབྲེལ་བར་འབྱུང་བ་ཡིན་པ་ཉིད་ཀྱིས། འབྱུང་བའི་དངོས་པོ་འདི་རྣམས་ཉིད་ཀྱིས་འགོག་པ་གྲུབ་པ་ཡིན་ཏེ།

འདིར་ནི་འགག་ཡང་སྐྱེ་བ་མེད། །
འགག་ཡང་འཆི་བ་ཡོད་མིན་ཏེ། །
སེམས་ཀྱི་རང་བཞིན་རྣམ་པ་ནི། །
འཁོར་བར་གནས་པར་ཤེས་པར་བྱ། །

---

༡ ཅོ་ནེ་° སྣེ་° གྱིས། ༢ པེ་° ར། ༣ རྒྱ་དཔེར་° ཁང་གཅིག་མ་ཡང་འདུག

དེ་ཉིད་ཀྱིས་ནི་སྣ་¹འབྱེད་ཅིང་། །
མེ་ནི་དགའ་བར་བྱེད་པ་སྟེ། །

ཞེས་གསུངས་པའི་ཕྱིར་རོ། །སྐྱེ་བ་དང་འགག་པའི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་ཡང་དངོས་པོ་ཉིད་ལ་དམིགས་པ་མ་ཡིན་ལ། སྟོང་ཉ་ལ་དམིགས་པ་ཡང་སྒྱུ་མ་དང་མཚུངས་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར། དངོས་པོ་ཐམས་ཅད་ནི་སྐྱེས་པར་སྣ་བར་མི་བྱ་སྟེ། མ་སྐྱེས་ཤིང་མ་འགག་པར་ཤེས་པར་བྱའོ། ༡༠–༡༣ །

ཐབས་དང་ཤེས་རབ་སྙོམས་པར་འཇུག་པ་གསུངས་པ། དེ་ཉིད་ཀྱིས་ཏེ་བདེ་བ་ཆེན་པོ་འི་འཁོར་ལོས་རང་གི་ལུས་ཀྱི་དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་སྟེང་དུའམ། དཀྱིལ་འཁོར་བའི་རང་བཞིན་གྱི་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་མེ་དགའ་བར་བྱེད་པས་ནའོ། །ནད་ནི་སྤྲུལ་པའི་འཁོར་ལོ་འི་ཟེའུ་འབྲུར་གནས་པའི་ཨ་ཡིག་སྟེ། འབྱེད་པར་བྱེད་པ་ནི་རང་གི་གནས་ལས་གཡོ་བའི་རང་བཞིན་ཉིད་ཀྱིས་སོང་སྟེ། བདུད་རྩིའི་རྒྱུ་འཕྱུང་བ་ལ་སྲིད་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་འཁྲུག་པོར་ཐུས་ནས་རྩ་པ་ནས་འབྱིན་པར་བྱེད་དོ་ཞེས་བྱ་བའི་དོན་ཏོ། །ཡང་སྣས་པ།

ནད་ཡི་གེ་ཀུན་གྱི་སྟེ། །
བྱེད་པ་གཅིག་ཉིད་ཐོབ་པ་ན། །
གང་ཕྱིར་ངག་ཚིག་རབ་དབྱེ་བས། །
ལྟེ་བའི་ཕྱོགས་སུ་རྣམ་པར་གནས། །
རླུང་དང་ཉེ་རླུང་འཁོར་ལོ་ཡི། །
ལྷང་སོགས་བྱ་བ་ལ་བརྟེན་ནས། །
རེངས་²པ་ལ་སོགས་རང་བཞིན་གྱིས། །
འཇུག་ཅིང་གཞན་པ་ཉིད་ལ་བརྟེན། །

---

༡ པེ་ ༠ སྣ་ ༠ སྣང་། ༢ རྒྱ་དཔེར་ ༠ (རེཏཀ) དབུགས་དབྱུང་།

དེ་ཡི་དཀྱིལ་འཁོར་རྫོགས་པར་ནི།
འགྱུར་བ་ཉིད་དུ་ཐེ་ཚོམ་མེད། ༡༣

དབུ་མའི་རང་བཞིན་རྣམ་པ་བཅུའི།
དེ་ཉིད་བརྟེན་པར་བཟོད་པར་བྱ།
བསྒྲུབ་བྱ་སྒྲུབ་བྱེད་སྦྱོར་བ་ལས།
དེ་ནི་བདེ་ཆེན་བྱེད་པའོ།

གྱེན་དུ་འབར་བའི་རྣལ་འབྱོར་གྱིས།
ཕྱུང་སོགས་དབང་པོ་སྨིག་པར་བྱེད།
བསྐལ་བའི་མེ་གཟུགས་ཉིད་འདི་ནི།
ཀུན་གྱི་སྨྱུད་དང་བྱེད་པོ་ཡིན།

ཟླ་བ་ཐིག་ལེའི་རང་བཞིན་གྱིས།
འགྲོ་བ་དགའ་བར་བྱེད་པ་པོ།
བདེ་ཆེན་འཁོར་ལོ་ཆེན་པོར་ནི།
གཞོམ་མེད་ཡི་གེའི་གཟུགས་འཆང་བ།

ཁ་བའི་འོད་དང་མཚུངས་པ་ཡི།
བྱང་ཆུབ་སེམས་ལས་བྱུང་བའི་འོད།
སྤྲོས་དེ་རིན་ཆེན་འཁོར་ལོའི་མཐར།
འཇུག་པར་བྱེད་ཅིང་རྣམ་པར་གནས།

དེ་ཉིད་སྲོག་ཆགས་རྣམས་ཀྱི་སྲོག
དེ་ཉིད་མཆོག་གི་ཡི་གེ་སྟེ།
དེ་ཉིད་ཀུན་ལ་ཁྱབ་སྟེ་འདི།
ལུས་ཀུན་ལ་ནི་རྣམ་པར་གནས།

དངོས་པོ་རྣམས་ཀྱི་སྙིང་པོ་མཆོག །
དེ་ཉིད་སྙིང་ཁྲང་ཞེས་བརྗོད་དོ། །
དེ་ནི་འཛིན་ཅིང་ལེན་པས་ན། །
ལུས་ཅན་དཀྱིལ་འཁོར་དུ་ནི་འདོད། ༡༨ །
རྩ་ཆེན་སུམ་ཅུ་རྩ་བདུན་གྱི[1]། །
འཁོར་ལོའི་དཀྱིལ་འཁོར་དུ་འདོད་དོ། །

འདིས་ནི་ནད་འཕེལ་བྱེད་དེ། །
དགའ་བའི་གནས་ཀྱི་ཆ་རྩ་འགྱུར། །
དེ་ཉིད་དབྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེ་ཡི། །
རྣལ་འབྱོར་དུ་ནི་བརྗོད་པར་བྱ། ། ཞེས་སོ། །

དེའི་ཕྱིར་དེ་གཉིས་ཀྱིས་གདན་བཞིའི་བདག་ཉིད་ཅན་གྱི་དཀྱིལ་འཁོར་རམ། སྤྲུལ་པ་ལ་སོགས་པའི་དཀྱིལ་འཁོར་ཚོགས་པར་བཤད་པར་འགྱུར་བ་ཡིན་ཏེ། ཕྱི་རོལ་དུ་ཡང་དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་གཙོ་བོ་རང་འདྲ་དང་བཅས་པས་དཀྱིལ་འཁོར་ཡོངས་སུ་རྫོགས་པར་འགྱུར་བ་ཡིན་གྱི། གཞན་དུ་ནི་མ་ཡིན་ནོ། ༡༢ །

དེ་ཉིད་དཀྱིལ་འཁོར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་རྟེན་གྱི་དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་ངེས་པའི་ཚིག་གསུངས་ཏེ། སྙིང་པོ་སྟེ་རྩ་དང་ཁམས་དང་དབྱིད་དང་ཐིག་ལེའི་རང་བཞིན་གྱི་མཁའ་འགྲོ་མ་དང་དཔའ་བོ་དང་དཔལ་ཧེ་རུ་ཀ་དང་རྡོ་རྗེ་ཕག་མོའི་རང་བཞིན་ཡང་དག་པར་འཛིན་པའི་ཕྱིར་ན། ལུས་ཁོ་ན་དཀྱིལ་འཁོར་དུ་བརྗོད་པར་བྱའོ། །མཎྜ་ནི་ཉེ་བའི་ཚིག་སྟེ། ལེན་པའི་དོན་ལས། ལ་ཏི་ལ་ཊའི་ཀྱེན་བྱས་པ་ལས་སོ། ༡༨ །

རྩ་ཆེན་སུམ་ཅུ་རྩ་བདུན་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་ནང་གི་བདག་ཉིད

---

༡ སྣ°. གྱིས།

བྱང་ཆུབ་སེམས་ནི་རིན་པོ་ཆེ། །
སྙིང་པོ་[1]དེ་ཉིད་ཀྱང་དཀྱིལ་འཁོར། ༡༥ །
ཕྱི་རོལ་ནང་གི་ངོ་བོར་ནི། །
སྣ་ཚོགས་ཁྱབ་ཅིང་རྣམ་པར་གནས། །
ཕྱི་རོལ་གཟུགས་དང་སྒྲ་ལ་སོགས། །
དབང་པོ་དྲུག་པ་འཇུག་པའོ། ༡༦ །

ཀྱི་རྣམ་པར་དག་པ་གསུངས་ཏེ། བྱང་ཆུབ་ཀྱི་ཕྱོགས་ཀྱི་ཆོས་སུམ་ཅུ་རྩ་བདུན་པོ་གང་ཡིན་པ་འདི་རྣམས་ནི་རིག་པ་དང་བཅས་པའི་རང་བཞིན་ཏེ། དེ་རྣམ་པར་དག་པ་ལས། སྔར་གསུངས་པའི་རྩའི་འཁོར་ལོ་ཁོ་ན་དཀྱིལ་འཁོར་རོ།། བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་དཔའ་བོའི་རྣམ་པར་དག་པ······གསུངས་ཏེ། བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་འཛག་པའི་ཁམས་ཀྱི་རང་བཞིན་ཉི་ཤུ་རྩ···བཞི་པོ་དེ་ཉིད་ནི་རིན་ཐང་མེད་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར། རིན་པོ་ཆེ་སྟེ་ལྷ་མོའི་འཁོར་ལོའི་དཀྱིལ་འཁོར་རོ། །དཀྱིལ་འཁོར་དེའི་སྙིང་པོ་འཛིན་པར་བྱེད་པ་ནི·····དཔའ་བོའི་དཀྱིལ་འཁོར་ཏེ་དཀྱིལ་འཁོར་རྣམ་པ་གཉིས་སོ། ༡༥ །

ཕྱི་རོལ་དུ་ནི་གྲུ་བཞི་པ་ལ་སོགས་པ་ཡིན་ལ། ནང་དུ་སྙིང་གའི··དཀྱིལ་འཁོར་ནི་འཁོར་ལོ་གསུམ་ལ་སོགས་པའོ། །འདིར་ཕྱི་རོལ་དུ་སྐྱི་བོ··ལ་སོགས་པ་ནི་ཛཱ་ལནྡྷར་ལ་སོགས་པ་ཡིན་ལ། ནང་དུ་ནི་རྩ་དང་ཁམས····ཀྱི་རང་བཞིན་ནོ། །དཀྱིལ་འཁོར་འདི་རྣམས་ཀྱང་འདི་ཉིད་གཅིག་པུའི་མ·····ཡིན་གྱི། སྣ་ཚོགས་པའི་འགྲོ་བ་ལྔ་པོ་འདི་རྣམས་ཀྱང་དེའི་དཀྱིལ་འཁོར་དུ་ཤེས་པར་བྱའོ། །དེ་གསུངས་པ་ནི། སྣ་ཚོགས་ཁྱབ་ཅིང་རྣམ་པར་གནས། ཞེས་པའོ། །ཡང་ན་ཕྱི་རོལ་གྱི་དཀྱིལ་འཁོར་དུ་གཟུགས་དང་སྒྲ་ལ་སོགས····

---

[1] རྒྱ་དཔེར་ཿ (मण्डलं) དཀྱིལ་འཁོར།

ནང་གི་ཁྲ་བ་ལ་སོགས་པ། །
གྱུབ་པའི་རྫས་ནི་རྣམ་པར་གནས། །
ཕྲི་རོལ་ཞབས་པའི་ནང་ཉིད་ཀྱིས། །
རྡོ་རྗེ་ཅན་གྱི་བྱང་ཆུབ་སེམས། ༡༨ །
སྒྲོམ་དང་ཕྲ་བའི་རང་བཞིན་གྱིས། །
འགྲོ་བའི་གཉེན་གྱི་རང་བཞིན་ཅན། །

པ་རྣམས་ཀྱིས་ཏེ་མཆོད་པ་དེ་རྣམས་ཀྱིས་ནང་གི་དཀྱིལ་འཁོར་མཆོད་པར་བྱའོ།། ནང་དུ་བྲུམ་པ་ནི་ཀཔ[1]ལའི་ནང་དུ་བདུད་རྩི་ལྔ་རྣམས་བདེ་བའི་མཆོད་པའི་སྣོད་དུ་རིག་པར་བྱའོ། །འདིར་ཕྱི་རོལ་དུ་གཟུགས་ལ་སོགས་པ་འདོད་པའི་ཡོན་ཏན་ལྔ་རྣམས་ཀྱིས་དབང་པོ་འི་སྒོ་རྣམས་མཆོད་པར་བྱ་ལ། ནང་དུ་ནི་གྲུབ་པ་སྟེ་རང་བཞིན་གྱིས་གྲུབ་པའི་རྫས་ནམ་མཁའ་ལྟར་འཛག་"པའི་རྫས་རྣམས་སྒྲུ་གནས་པའོ། །དོན་དེ་ནི། ཕྱི་རོལ་དུ་ནི་གཟུགས་སྒྲ་སོགས། །ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་གསུངས་སོ། །ཕྱི་རོལ་དུ་སྒྲོམ་པོ་དང་ཕྲ་མོ་ནི་དམ་ཚིག་སྦྱིན་པའི་སྣོད་དུ་སློབ་མ་རྣམས་ལ་སྟོན་པར་བྱེད་དོ། །འདིར་[2]ནི་སྒྲོམ་པོ་དང་ཕྲ་མོའི་དབྱེ་བས་ཐ་དད་པའི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་རྡོ་རྗེ་འཛིན་པས། འགྲོ་བ་ཐམས་ཅད་སངས་རྒྱས་ཉིད་དུ་སྒྲུབ་པར་བྱེད་པས་ན། སངས་རྒྱས་ཉིད་དང་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཉིད་ཀྱང་དམ་ཚིག་སྔ་སྦྱིན་ཞིང་ཤར་བའི་རྒྱུ་མཚན་གྱིས་དཀྱིལ་འཁོར་འདི་ཁོ་ན་ལས་གོ་འཕང་ཐོབ་པར་འགྱུར་རོ། ༡༦–༡༨ །

དོན་འདི་ནི་སྒྲོམ་པོ་དང་ཕྲ་བ་ལ་བརྟེན་ནས་གསུངས་པ་ཡིན་ཏེ། དེ་ལ་སྒྲོམ་པོ་ནི་ཁམས་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞི་རྣམས་དང་། ཕྲ་བ་ནི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་སོ།། ཡང་ན་སྒྲོམ་པོ་ནི་[3]སྒོ་ལས་བྱུང་བའི་དྲི་མའི་རྫས་རྣམས་དང་། ཕྲ་མོ་ནི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སྙིང་པོ་ཕྱུ་བར་བྱེད་པའོ། །ཡང་གསུངས་པ།

---

༡ ཅོ་ནེ་° འཛོག ༢ ཅོ་ནེ་° འདི། ༣ རྒྱ་དཔེར་° (ནཐ) དགུ་ཡང་འདུག

སངས་རྒྱས་བྱང་ཆུབ་སེམས་རྣམས་ཀྱིས། །
དམ་ཚིག་དོན་ནི་སྐྱེས་པ་ཡིན། ༡༨།
སྐྱེ་བ་འདི་ལ་སངས་རྒྱས་ཉིད། །
དཀྱིལ་འཁོར་འདི་ལས་ཐོབ་པར་འགྱུར། །
ཉན་ཐོས་རྣམས་དང་སངས་རྒྱས་དང་། །
རང་རྒྱལ་རྣམས་དང་དེ་བཞིན་ཏེ། ༡༩།
ཚངས་ལ་སོགས་པའི་ལྷ་རྣམས་ནི། །
དཀྱིལ་འཁོར་འདི་ལས་བསྐྱེད་པ་ཡིན། །

སྦྱོར་དང་ཕྲ་བའི་རབ་དབྱེ་བས། །
དངོས་པོར་རྟོགས་པ་རྣམ་པ་གཉིས། །
རགས་པའི་རྫས་ནི་རྣམ་དགུ་སྟེ། །
ཕྲ་མོའི་ཚོལ་བུ་[1] གྲུབ་པའི་རྫས། །
གཞན་པ་ཉུ་ཏྲེད་རྫས་དབྱེ་བས། ། ཞེས་སོ། །

ཕྱི་རོལ་གྱི་དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་གཙོ་བོས་སེམས་ཅན་གྱི་དོན་དུ་ཉན་ཐོས་དང་། རང་སངས་རྒྱས་དང་། ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་དང་། ཚངས་པ་ལ་སོགས་པ་སྤྲུལ་པར་བྱེད་ལ། ནང་དུ་ནི་འཛག་པར་བྱེད་དོ་ཞེས་པས་སྒོ་དགུ་པོ་རྣམས་ནི་ཉན་ཐོས་དང་། མིག་ལ་སོགས་པའི་སྒོ་རྣམས་ནི་རང་སངས་རྒྱས་ཏེ། འདུས་མ་བྱས་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ། །དགའ་བ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་ནི་ཡང་དག་པར་རྫོགས་པའི་སངས་རྒྱས་ཡིན་ལ། ལུས་དང་ངག་དང་སེམས་རྣམས་ནི་ཚངས་པ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་སོ། །འདི་རྣམས་ཐམས་ཅད་དཀྱིལ་འཁོར་དེ་ཉིད་ལས་རྫོགས་པར་འགྱུར་རོ་ཞེས་པ་དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་ངེས་པའོ། ༡༨–༡༩½ །

---

༡ རྒྱ་དཔེར་ ° (སྐྱེད་སུ་ཙྪམ་ཀཱི) དབྱེ་བའི་རང་བཞིན།

ཤེས་རབ་མེ་ནི་ཆེར་འབར་བ། །
ནང་གི་ཁྲ་བ[1]ལ་སོགས་དང་། ༢༠ །
དེ་བཞིན་ཕྱི་ཡི་གཟུགས་སོགས་པའི། །
སྲེག[2]རྫས་རྣམས་ཀྱི[3]སྦྱིན་སྲེག་བྱ། །
སྐྱེ་མཆེད་དྲུག་དང་ཁམས་རྣམས་དང་། །
ཕུང་པོ་རྣམས་ཀྱི་ཁྱད་པར་ལས། ༢༡།

ནང་གི་ཁྲ་བ་ལ་སོགས་དང་། །ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་ཕྱི་དང་ནང་གི་བདག་ཉིད་ཅན་གྱི་སྦྱིན་སྲེག་གསུངས་ཏེ། འདིར་ཕྱི་རོལ་དུ་ཏིལ་བརྫང་བའི་སློབ་དཔོན་རྣམས་ཀྱི་དམ་ཚིག་གི་མེའི་ཁ་ནས་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་མེ་ཚིམ་པར་བྱེད་པ་དེ་ཁོ་ན་བཞིན་དུ་གཟུགས་ལ་སོགས་པའི་ཡུལ་རྣམས་ཀྱིས་དང་། སོ་སོར་སྡུད་པ་དང་བསམ་གཏན་དག་དང་སྙོམས་པར་འཇུག་པ་ལས་སྐྱེས་པའི་ཁྲ་བ····ལ་སོགས་པ་རྣམས་ཀྱིས་ཕུང་པོ་ལ་སོགས་པའི་སངས་རྒྱས་དང་དེའི་སྲས་ཀྱི····དཀྱིལ་འཁོར་ཚིམ་པར་བྱའོ། །ཤེས་རབ་ཀྱི་མེ་ནི་གཏུམ་མོ་སྟེ། འབར་ཞིང་ཉོ་བ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ། །བསྲེག་ཅིང་འབར་བའི་ཕྱིར་འདི་ནི་སྦྱིན་སྲེག་ཏུ་ཤེས་པར་བྱའོ། ༢༠–༢༠½ །

སྐྱེ་མཆེད་དྲུག་དང་ཁམས་རྣམས་དང་། །ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་མཆོད་པ་གསུངས་ཏེ། འདིར་སྔར་བཤད་པའི་ཚུལ་གྱིས་ཕུང་པོ་ལྔ་རྣམས་ནི་མཁའ་འགྲོ་ལྔ་དང་། སྐྱེ་མཆེད་དྲུག་ནི་འཁོར་ལོས་སྒྱུར་བ་དྲུག་དང་། ཁམས་རྣམས་ནི་ཐོད་པའི་དུམ་བུ་ལ་སོགས་པ་བཞི་རྣམས་དང་། རྩ་སུམ་ཅུ་རྩ་དྲུག་རྣམས་ནི་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་ལྷ་མོ་དང་མཁའ་འགྲོ་མ་རྣམས་སོ། །དེ་ལྟར་ལྷ་ལ······

---

[1] སྡེ་. ཚ་བོ། [2] སྣ་. བསྲེག [3] ཅོ་ནེ་. ཀྱིས།

དེ་རྣམས་ལྷ་ཡི་གཟུགས་ཅན་ཏེ། །
མཁའ་འགྲོ་མ་རྣམས་དེ་བཞིན་དུ། །
དེ་རྣམས་དེར་ནི་མཆོད་པའི་ཕྱིར། །
མཆོད་སྦྱིན་[1]མཆོད་པར་ཡང་དག་བཤད། ༢༢ །

སྤྱི་བོ་ཡང་ནི་ཐོད་པ་ཉིད། །
སྲེག[2]རྫས་སྣོད་དུ་བཤད་པ་སྟེ། །
བླུགས་གཟར་རོ་མ་ཉིད་དུ་བཤད། །
སྙིང་གི་འཁོར་ལོ་[3]བརྒྱང་མའི་བདག ༢༣ །

སོགས་པའི་གཟུགས་ཅན་འདི་རྣམས་ཀྱི་ཤེས་རབ་དང་ཐབས་གཉིས་པ་སྦྱོར་བ་ལས་མཆོད་སྦྱིན་གང་ཡིན་པ་དེ་ནི་མཆོད་པར་ཤེས་པར་བྱའོ། །ཡང་གསུངས་པ།

རང་བཞིན་མེད་པའི་གནས་བསྒོམས་པས། །
ལྷ་ཡི་གཟུགས་སུ་བསྒོམ་དེ་ནི། །
མཆོད་པ་ཆེན་པོའི་མཆོད་པ་སྟེ། །
སངས་རྒྱས་ཀུན་གྱི་སྒྲུབ་པའི་ཐབས། ། ཞེས་སོ།།

འདི་ཉིད་ནི། དེ་ཡིས་[4]དེ་རྣམས་མཆོད་པའི་ཕྱིར། །ཞེས་གསུངས་པ་ཡིན་ནོ། ༢༡–༢༢ །

སྤྱི་བོ་ཡི་ནི་ཐོད་པ་ནི། །ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་སྦྱར་བཤད་པའི་སྦྱིན་སྲེག་གི་ཡན་ལག་རྣམས་གསུངས་ཏེ། སྤྱི་བོའི་ཐོད་པ་གང་ཡིན་པ་འདི་རྣམས་ནི་མགོ་བོའི་ཐོད་པ་སྟེ། དེ་ཉིད་ཟླ་བའི་བསྲེག་རྫས་རྣམས་ཀྱི་གཞིར་གྱུར་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་བསྲེག་རྫས་ཀྱི་སྣོད་ཡིན་གྱི་གཞན་ནི་མ་ཡིན་ནོ། །དེ……

---

༡ རྒྱ་དཔེར་༠ (ཡོག) རྣལ་འབྱོར། ༢ སྣར་༠ བསྲེག ༣ རྒྱ་དཔེར་༠ (ཙནྡྲ) ཟླ་བ།
༤ ཅོ་ནེ་༠ ཡི།

དེ་ནི་དགང་གཟར་ཡང་དག་བརྗོད། །
ཐབ་ཁྲུང་ལྟེ་བའི་དཀྱིལ་འཁོར་ནི། །
ལས་ཀྱི་རླུང་གིས་བསྐྱོད་པའོ། །
ཚངས་པའི་མེ་ནི་སུམ་མདོར་གནས། ༢༨ །
སྒྲ་ནི་སྔགས་ཞེས་བརྗོད་པ་སྟེ། །
བཟླས་པ་བསྒོར་བར་གྱུར་པ་ཡིན། །

བཞིན་དུ་གཡོན་དང་གཡས་སུ་སོན་པའི་ལལན་དང་རསན་ར་འོག་ཏུ་ཛས་ཕུ་བ་འབབ་པའི་ཕྱིར་གོ་རིམས་བཞིན་དུ་དཀར་གཟིར་དང་རླུགས་གཟར་དུ་ཤེས་པར་བྱའོ། །སྤྲུལ་པའི་འཁོར་ལོ་ལྟེ་བའི་དཀྱིལ་འཁོར་ནི་མེ་ཐབ་སྟེ། དེར་མེ་ལྷུང་བའི་ཕྱིར་རོ། །བསྲུབ་བྱ་དང་སྲུབ་བྱེད་ཡང་དག་པར་སྦྱོར་བ་ལས། ལས་ཀྱི་ཆེད་དུ་གང་དུ་འབྱུང་བ་ནི་ཚངས་པའི་མེ་སྟེ། དེ་ནི་སུམ་མདོ་དང་དེ་ལས་འོག་ཏུ་གསང་བར་གྱུ་གསུམ་དུ་འབར་བ་ཡིན་ནོ། །རང་བཞིན་གྱིས་ཞེས་པ་ནི་ཚིག་གི་ལྷག་མའོ། །ཕྱི་རོལ་དུ་ཡང་ཚངས་པའི་མེ་ནི་ཞི་བ་ཅན་ལ་བསྟེན་པར་བྱེད་དོ། །དེ་ཡང་གཙུབ་ཤིང་གཙུབས་པ་ལས་བྱུང་བར་གྱུར་པའོ། ༢༢–༢༨།

སྦྱིན་སྲེག་བརྗོད་ནས། ནད་སྔགས་ཞེས་བརྗོད་པར་བྱ། །ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་བཟླས་པ་གསུངས་ཏེ། གང་འདི་ནི་སྔར་གསུངས་པའི་ལྟེ་བའི་གནས་ལས་འཐོན་པའི་ཕྱིར་སྲོག་གི་རླུང་སྟེ། དེ་ཉིད་ནི་སྔགས་ཐམས་ཅད་ཀྱི་རྒྱུ་ཡིན་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་སྔགས་ཞེས་བརྗོད་པར་བྱའོ། །དེ་ཉིད་ཀྱི་འཇུག་པ་ལ་སོགས་པའི་རིམ་པ་གང་གི་ཚེ་འཁོར་མོར་ཡིན་པ་དེ་ནི་བཟླས་པ་ཞེས་བརྗོད་པར་བྱ་སྟེ། དེ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རང་བཞིན་གྱིས་བཟླས་པ་འདི་ནི་འཇིག་རྟེན་ཐམས་ཅད་ཀྱི་ཐུན་མོང་བར་གསུངས་སོ། །ཡང་གསུངས་པ།

---

༡ ཅོ་ནེ་ ༠ གོར།
༡༦

དཀྱིལ་འཁོར་གཉིས་མེད་རྣལ་འབྱོར་གྱིས།།
སོ་སོར་སྣང་བ་བསྒོམ་པ་ཡིན། ༢༤།

ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པའི་ངོ་བོ་འདི། །
རྒྱལ་བ་རྣམས་ཀྱི་དཀྱིལ་འཁོར་སོགས། །

གང་ཡང་ཁམས་གསུམ་སེམས་ཅན་རྣམས།།
སྒྲོག་དང་རྩོལ་བ་ལ་བརྟེན་ནས། །
གསང་སྔགས་རྒྱལ་པོ་ཟློས་བཞིན་དུ། །
མི་ཤེས་བསམ་གཏན་བསམ་བྱ་སྤྲངས། ། ཞེས་སོ།།

བཟླས་པ་གསུངས་ནས། དཀྱིལ་འཁོར་གཉིས་མེད་རྣལ་འབྱོར་···· ཀྱིས། །ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་སྒོམ་པ་གསུངས་ཏེ། ཕྱི་རོལ་དུ་ནི་སྐུ་··· དང་གསུང་དང་ཐུགས་རྣམས་ལ་དམིགས་ནས་རྣལ་འབྱོར་པ་རྣམས་ཀྱི་སོ་སོར་ སྣང་བ་སྟེ་ནང་དུ་ནི། སྤྲུལ་པ་ལ་སོགས་པའི་དཀྱིལ་འཁོར་བཞིར་ཕྱག་རྒྱའི་ ཚོགས་ལ་སོགས་པ་སོ་སོར་སྣང་བ་དེ་ཉིད་བསྒོམ་པ་སྟེ། རང་བཞིན་མེད་····· པའི་ཕྱིར་དམིགས་པ་མེད་པའམ། གཉིས་སུ་མེད་པའི་དཀྱིལ་འཁོར་དེ་ཉིད་ ནི་བསྒོམ་པའོ། །ཡང་གསུངས་པ།

དངོས་པོ་མེད་ལ་བསྒོམ་པའི་དངོས། །
བསྒོམ་པ་བསྒོམ་པ་མིན་པ་ཉིད། །
དེ་ལྟར་དངོས་པོ་དངོས་མེད་པས། །
བསྒོམ་པ་དམིགས་སུ་མེད་པའོ། ། ཞེས་སོ། ༢༤ །

ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པའི་ངོ་བོ་འདི། །
རྒྱལ་བ་རྣམས་ཀྱི་དཀྱིལ་འཁོར་སོགས།།

ཞེས་བྱ་བས་ཉེ་བར་བསྡུ་བ་གསུངས་ཏེ། རྒྱལ་བ་རྣམས་ཀྱི་ནི་སེམས་

དཀྱིལ་འཁོར་བདག་པོའི་གཟུགས་ཀྱིས་ནི། །
སེམས་ཀྱི་རྒྱལ་པོ་སློབ་དཔོན་གྱི། །

ཅན་ཐམས་ཅད་ཀྱི་སྟེ་འདི་རྣམས་ཀྱི་དཀྱིལ་འཁོར་ལ་སོགས་པ་སྟེ། དཀྱིལ་འཁོར་དང་། སྦྱིན་སྲེག་དང་། མཆོད་སྦྱིན་དང་། བཟླས་པ་དང་། བསྒོམ་པ་ཞེས་བརྗོད་པ་ནི་ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པའི་ངོ་བོ་དེ་རང་བཞིན་གྱི་གནས་པ་ཡིན་གྱིས་བཅོས་མ་ནི་མ་ཡིན་པའོ། །བཅོས་མ་ནི་ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པ་ལ་ཞུགས་པའི་དོན་ཁོ་ན་བསྟན་པ་ཡིན་ཏེ། སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ནི་རྡོ་རྗེ་འཆང་ཉིད་དོ་ཞེས་པའོ། །དཀྱིལ་འཁོར་འདི་རྣམས་ཕྱི་རོལ་ཏུ་སློབ་དཔོན་གྱིས་བྱིན་གྱིས་བརླབས་པ་ཡིན་ན་ནང་དུ་སུ་ཞིག་གིས་ཞེས་དོགས་པ་ལ།

དཀྱིལ་འཁོར་དབང་པོའི་གཟུགས་ཀྱིས་ནི།།
སེམས་ཀྱི་རྒྱལ་པོ་སློབ་དཔོན་ནོ། །

ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་ཏེ། རང་རིག་པའི་རང་བཞིན་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར། སེམས་ཀྱི་རྡོ་རྗེ་འཆང་གང་ཡིན་པ་དེ་ནི་སྔར་གསུངས་པའི་དཀྱིལ་འཁོར་དང་། མི་ཕྱེད་པ་ལས་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱ་སྟེ། དེ་ཉིད་ནི་སློབ་དཔོན་ནོ། །དེ་ནི་ཡང་དག་པར་རིག་པའི་ཆ་བྱད་ཀྱིས་རྒྱུ་བའི་ཕྱིར་སློབ་དཔོན་ཞེས་བརྗོད་པར་བྱ་སྟེ། འདི་ཉིད། དཀྱིལ་འཁོར་དབང་པོའི་གཟུགས་ཀྱིས་ནི། །ཞེས་བྱ་བས་གསུངས་པ་ཡིན་ཏེ། འདིར་ལ་སོགས་པའི་སྒྲ་ཕྱིས་པར་བལྟ་བར་བྱའོ། །ཤིན་ཏུ་བསྟན་པ་གསུངས་ཏེ། དཀྱིལ་འཁོར་ལ་སོགས་པ་ཇི་སྐད་དུ་གསུངས་པ་ཐམས་ཅད་ནི་འདི་ཉིད་དུ་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱའོ། །གལ་ཏེ་འདིར་གསུངས་པའི་དཀྱིལ་འཁོར་ལ་སོགས་པ་རྣམས་ནི། དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་ཡོ་བྱད་རྣམས་དང་། ཐིག་དང་། རྡུལ་ཚོན་དང་། ས་ཡོངས་སུ་གཟུང་བ་དང་། སྦྱིན་བྲངས་པ་དང་། བཞུགས་སུ་གསོལ་བ་དང་། གཤེགས་སུ་གསོལ་བ་དང་། དཀྱིལ་འཁོར་སྒྲུབ་པ་དང་། མངོན་པར་དབང་བསྐུར་བ་དང་། ཁྲུས་དང་།

དེ་ལ་སོགས་པ་[1]ཌི་སྐད་གསུངས། །

ཐམས་ཅད་འདིར་ནི་རྟོགས་པར་བྱ[2]། ༢༧།

[3]དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེར་དཀྱིལ་འཁོར་དང་སྦྱིན་སྲེག་དང་མཆོད་པ་[4]དང་བཟླས་པ་དང་། བསྒོམ་པ་ལ་སོགས་པའི་ཚོ་གའི་བྱ་བ་གདན་ལ་དབབ་པ་⋯⋯ རྒྱས་པར་[5]བསྟན་པ་སྟེ་བརྒྱད་པའོ།། །།

གཏོར་མ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་ཏེ། དེ་རྣམས་ཉིད་ནི་ལུས་ཀྱི་དཀྱིལ་འཁོར་དུ་⋯ ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱ་ཞིང་། ཤེས་པར་བྱ་ཞེས་བྱ་བའི་ཐ་ཚིག་གོ །དེ་ལྟར་ནི་དཔུས་ཀྱི་རྩ་ནི་ཐིག་དང་། རྟུལ་ཚོན་ནི་ཁྲ་བ་དང་། གཙིན་ལ་སོགས་པ་⋯⋯ རྣམས་དང་། གནས་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞི་བསྡུས་པའི་རྩ་བཅུའི་ས་དེ་རྣམས་སུ་⋯⋯ ཐིམ་པ་ལ་སོགས་པའི་རིམ་པས་ཡོངས་སུ་འཛིན་པ་ནི་ས་ཡོངས་སུ་གཟུང་བ་⋯ དང་། འདུག་པ་ལ་སོགས་པའི་རིམ་པས་སྤྱན་དྲང་བ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་དང་། ཡེ་ཤེས་ཀྱི་རིམ་པ་ནི་དཀྱིལ་འཁོར་སྒྲུབ་པ་དང་། རྡོ་རྗེ་ནོར་བུའི་བུམ་པ་⋯⋯ ལས་བདུད་རྩིའི་གདན་ལ་གནས་པའི་ལྷ་དང་ལྷ་མོའི་འཁོར་ལོ་ལ་རྒྱུན་ལྷུང་བས་⋯⋯ མངོན་པར་དབང་བསྐུར་བ་དང་། འདིས་ནི་འཛགས་པ་ལྷེས་སྦྱང་བ་ནི་⋯⋯ གཏོར་མའོ། ༢༨ །

ཞེས་རྫོགས་པའི་རིམ་པའི་སྒྲུབ་པའི་ཐབས་ཀྱི་ཚོ་ག་དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་⋯ ལེའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པ་གསང་བ་ཆེན་པོའི་སྒྲོན་མ་ལས་རྒྱས་པར་བསྟན་པ་བརྒྱད་པའི་རྒྱས་པར་བཤད་པའོ།། །།



---

[1] སེ་ ༠ སྣ་ ༠ སེམས་པ་ཐེ་སྐར། [2] རྒྱ་དཔེ་དཀར་ཞིག་ནང་མཁའ་འགྲོ་རྒྱ་མཚོའི་ཚོགས་བཅད་བཅུ་གཉིས་སྣང་འདུག [3] རྒྱ་དཔེར་ ༠ (ཤྲཱི) དཔལ། [4] རྒྱ་དཔེར་ ༠ (ཡོག) རྣལ་འབྱོར། [5] རྒྱ་དཔེར་ ༠ རྒྱས་པར་མི་གསལ།

རྒྱས་པར་བསྟན་པ་དགུ་པ།

དེ་ནས་”དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་སྐུའི་གསང་སྔགས་ཐམས་ཅད་བཏུ་བའི་འཁོར་ལོ་བརྗོད་པར་བྱའོ། ༡ །

དཀྱིལ་འཁོར་གསུམ་ཉམས་དགའ་བར།།
ཧོ་ཧྲེ་ཨརལླི་ཞེས་གསུངས། །
ཆོས་ཀྱི་འབྱུང་གནས་ཞེས་བྱར་བཤད། །
བཙུན་མོ་ཡི་པདྨ་ཞེས་བྱ་སྟེ། ༢།

གང་གོང་དུ་སྔགས་བཀླས་པར་གསུངས་པའི་སྔགས་འདི་ནི་ཅི་ཞིག་ཅེ་ན། དེ་ལྟ་བུ་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར། དེ་ནས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་རྒྱས་པར་བསྟན་པ་དགུ་པ་གསུངས་ཏེ། གང་ཡང་རུང་ཞེས་བྱ་བ་ནི། གང་ཞིག་སུ་ཡང་རུང་བའི་སེམས་ཅན་གྱིས་གྲུབ་[2]པའི་སྔགས་ནི་བཏུ་བ་སྟེ། དེ་ལས་སྔགས་ཐམས་ཅད་རབ་ཏུ་སྐྱེའོ་ཞེས་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱའོ། ༡ །

དེ་ལ་ཕྱི་རོལ་ཏུ་དཀྱིལ་འཁོར་གསུམ་པ་བྲིས་ཏེ། དེའི་ནང་དུ་པདྨ་འདབ་མ་བརྒྱད་པའི་རི་མོ་བྱས་ནས། དེའི་དབུས་ཀྱི་ལྟེ་བ་ལ་ཨ་ཡིག་གོ །འདབ་མ་རྣམས་ལ་བརྒྱད་བརྒྱད་ཀྱི་དབྱེ་བས་ཨཱལི་དང་ཀཱལི་བཀོད་པའི་བཞི་པ་དང་། ལྟ་བ་ལ་སོགས་པའི་རིམ་གྱིས་ལྟ་བའི་ལྟ་བ་ལ་སོགས་པ་ངའི····སྦྱོར་བས་ཙ་བའི་སྔགས་བཏུ་བར་བྱའོ། །ནང་དུ་ནི་གསུམ་པ་གང་ཡིན····པ་འདི་རྣམས་ནི། ཙ་ངའི་དབུས་ཀྱི་ཙ་[3]བརྒྱད་པོ་ཨཱལི་དང་ཀཱལི་དང་བཅས་པའི་དབུས་སུ་གནས་པའི་ཨ་ཡིག་ནི་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཡི་གེ་དང་ཚིག་དང·····

---

༡ རྒྱ་དཔེར་。(ཨནུཊམསུ) གང་ཡང་རུང་བའི་ཡང་གསལ། ༢ ཅོ་ནེ་。 རང་བཞིན་གྱིས་གྲུབ་པའི། ༣ ཅོ་ནེ་。 རྩབ།

དེ་ཡི་ནང་སྲོན་པདྨ་ནི། |
འདབ་བརྒྱད་སྙིང་པོ་དང་བཅས་པ། |
དེ་ལ་ཨཱ་ལི་ཀཱ་ལི་འདྲིས། |
སྙེ་ཚན་བརྒྱད་པོ་རྣམ་པར་གནས། ༢ |
སྔགས་ཀྱི་གཟུགས་ཀྱིས་ལུས་ཅན་གྱིས། |
ལས་ཀྱི་ཚོགས་ནི་བྱེད་པ་ཡིན། |

ངག་མ་ལུས་པ་དང་ངག་ཆེན་པོ་འི་གཟུགས་ཀྱིས་རྣམ་པར་གནས་པ་དེ་ཉིད····ལས་ཡི་གེ་རྣམས་གསལ་བར་འགྱུར་ཏེ། དེ་རྣམས་ཀྱང་ཚིག་སྦྱོར་བར་བྱེད···པ་ཡིན་ལ། དེ་རྣམས་ཀྱིས་ཀྱང་ངག་དང་། དེ་རྣམས་ཀྱིས་ཀྱང་ངག་ཆེན···པོ་སྟེ[1]། ཇི་སྲིད་དུ་འཇིག་རྟེན་པའི་དངོས་པོ་འི་དབྱེ་བ་མཐའ་ཡས་པ་དང་། ཆོས་ཀྱི་ཕུང་པོ་སྟོང་ཕྲག་བརྒྱད་ཅུ་རྩ་བཞི་འོ་ཞེས་པས། འདི་ཐམས་ཅད་ནི···ཡི་གེ་ལས་རབ་ཏུ་སྐྱེ་བ་གང་ཡིན་པའོ། །དེ་ཡང་ལྟེ་བ་དང་[2]གསང་བ་དག··ནི་རྟེན་དང་བརྟེན་པའི་དངོས་པོར་བརྗོད་པ་དེ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར། སྤྲུལ་པའི་འཁོར་ལོ་ཁོ་ན་སྔགས་ཀྱི་རྟེན་ཡིན་ནོ་ཞེས་བརྗོད་དོ། ༢–༢ |

དེ་ལྟར་ན་ཨ་ཡིག་ནི་རིས་མེད་པ་སྟེ། ཨ་ཡིག་ལས་རབ་ཏུ་བྱུང་བའི་སྔགས་རྣམས་ནི། མཐུན་པའི་གཟུགས་ཀྱིས་ཞི་བ་ལ་སོགས་པའི་ལས···ཀྱི་ཚོགས་བྱེད་ཅིང་རབ་ཏུ་འཇུག་པ་ཡིན་གྱི་རྣམ་པ་གཞན་དུ་ནི་མ་ཡིན་ཏེ། ཡོངས་སུ་ཤེས་པའི་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་ནི་སྔགས་སོ། །ཡང་གསུངས་པ།

མཆོག་ཏུ་མི་འགྱུར་གཅིག་བུ་བའི། |
ངོ་བོ་ཉིད་ཀྱི་སྔགས་ཀྱི་སྟེ། |
དེ་ཡོངས་ཤེས་པ་ཙམ་གྱིས་ནི། |
སྔགས་རྣམས་འདིར་ནི་ལས་བྱེད་དོ། | ཞེས་པ་དང་།

---

༡ ཅོ་ནེ༠ དང་། ༢ ཅོ་ནེ༠ དང་མི་འདུག

ཡི་གེ་རྣམས་ནི་ལྔ་བཅུ་ཉིད། །
རིག་བྱེད་སྔགས་[1]པས་གང་དག་གནས། ༨ །

དེ་བཞིན་དུ།

དེ་ཉིད་ཕྱིར་ན་སྔགས་རྣམས་ནི། །
ཡི་གེའི་རང་གཟུགས་སུ་མི་འདོད། །
གང་ཕྱིར་ཙ་ཡང་འཁྲུག་པོར་ནི། །
བྱེད་པ་ཙམ་དུ་མི་ནུས་སོ། ། ཞེས་སོ།།

འདི་ནི།

སྔགས་ཀྱི་གཟུགས་ཀྱིས་ལུས་ཅན་གྱི།།
ལས་ཀྱི་ཚོགས་ནི་བྱེད་པ་ཡིན། །

ཞེས་བྱ་བས་གསུངས་པ་ཡིན་ནོ། །ཡི་གེ་རྣམས་ནི་ལྔ་བཅུ་ཉིད། །ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་ནི་གཉིས་པ་གསུངས་ཏེ། ཨཱ་ལི་རྣམས་ཐབས་དང་ཤེས་རབ་ཀྱི་རང་བཞིན་གྱིས་གཉིས་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་དང་། དེ་ལ་ཨཱ་ལིའི་སྡེ་ཚན་དོར་བར་བྱས་པའི་ཡི་གེ་སུམ་ཅུ་ཙ་གཉིས་ཏེ། ར་དང་ཀཾ་དག་འོག་དང་སྟེང་དུ་འགོད་པའི་ཕྱིར་ན། ཀཱ་ལི་སུམ་ཅུ་ཙ་གཉིས་ཁ་ན་ཡིན་པའི་ཕྱིར། ཊུག་ཙ་ཚ་བཞིར་ཡང་དག་པར་རྟོགས་པར་བྱ་ལ། བརྟེན་པ་ནི་དངོས་སུ་ན་ཡི་གེ་ལྔ་བཅུ་རྣམས་སོ། །གཞན་གྱི་སྡེ་པ་ལ་གྲགས་པའི་རིག་བྱེད་ལ་སོགས་པ་རིག་པའི་གནས་བཅུ་བཞི་དང་། རང་གི་སྡེ་པ་ལ་གྲགས་པའི་རིག་པའི་གནས་ལྔ་ལ་བརྟེན་ནས། ཨ་ཡིག་ནི་ཡི་གེ་དེ་རྣམས་ཉིད་ཀྱིས་འཇུག་པར་བྱེད་དོ། །ཡང་གསུངས་པ།

དང་པོ་གཅིག་ནི་དགུ་དབུས་ན། །
བཅུ་ཡིས་མ་བཅིངས་གང་ཡིན་པ། །

---

༡ ཅོ་ནེ་° སྣེ་° གཡོགས།

དེ་ནི་བཅིངས་མེད་ཤེས་བྱ་གང་། །
དེ་ཉིད་མཆོག་གི་གོ་འཕང་རིག །

དབྱངས་གསལ་ཡི་གེ་རྣམས་ཀྱང་ནི། །
གྲངས་བཅུའི་[1]ཐེམ་སུ་འཇུག་པའོ། །
ཕན་ཚུན་སྦྱོར་ཕྱིར་ཨས་བཅིངས་པར།།
གང་གིས་ཤེས་དེ་འགྲོ་བའི་བླ། ། ཞེས་སོ།།

སྦྲོད་པའི་རིག་བྱེད་ཡན་ལག་བཞིར། །
དེ་ཡི་བཀོད་པ་རྒྱས་པར་དེ། །
རྙིང་པའི་ཆོས་ཀྱི་བསྟན་བཅོས་སུ། །
རིག་པ་བཅུ་བཞི་འདི་རྣམས་སོ[2]། །

སྒྲ་དང་གཏན་ཚིགས་རིག་པ་དང་། །
དེ་བཞིན་ཁ་ནར་ནང་དང་ནི། །
གསོ་བ་དང་ནི་བཟོ་རིག་གཉིས། །
རིག་པའི་གནས་ནི་ལྔ་པོའོ། །

འདི་རྣམས་ཐམས་ཅད་ནི་ཨ་ཡིག་ལས་འབྱིན་པར་བྱེད་དོ་ཞེས་པས་ཡི་གེ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་དབང་ཕྱུག་སྟེ། དེ་དོར་ནས་དེ་རྣམས་འདོན་པ་ནི་ཡོད་པ་མ་ཡིན་ནོ། །འདི་ནི། རིག་བྱེད་སོགས་སུ་ཡང་དག་གནས། །ཞེས་བྱ་བས་གསུངས་པ་ཡིན་ཏེ། ༨ །

---

1 རྒྱ་དཔེར་ ༠ (ནཱ) དཀུའི།

2 ཡན་ལག་རིག་བྱེད་བཞི་དང་དཔྱོད། །
དེ་བཞིན་རིག་པ་རྒྱས་པ་དང་། །
སྔོན་རབས་ཆོས་ཀྱི་བསྟན་བཅོས་བཅས། །
རིག་པ་བཅུ་བཞི་འདི་རྣམས་སོ། ། ཞེས་བསྒྱུར་ན་རྒྱ་དཔེ་དང་མཐུན་ཆེའོ། །

སྔགས་རྣམས་ཉིད་དང་རྒྱུད་རྣམས་དང་། |
ཕྱི་རོལ་ཚུལ་གྱི་བསྟན་བཅོས་འདི། |
དེ་དག་ཉིད་ཀྱི་རང་བཞིན་ཏེ། |
འདི་ལས་གཞན་དུ་ཅུང་ཟད་མེད། ༡ |
ཨ་ཀ་ཙ་ཊ་ཏ་པ་ཡ་ཤ་སྔེ་དགའ་བ'། |
ལྔ་བཅུ་རྣམས་ནི་ཡང་དག་པར་ནི་བསྟེན་པ་སྟེ། |

ཞི་བ་དང་དྲག་པོ་དང་གཉིས་ཀའི་རང་བཞིན་གྱི་སྔགས་དང་། ཕྱིར་བཟློག་པ་ལ་སོགས་པ་དང་། སྲུང་བའི་འཁོར་ལོ་དང་། ཕྱི་རོལ་གྱི་བསྟན་བཅོས་དང་། སྔར་བཤད་པའི་རིག་པའི་གནས་རྣམས་ཏེ། འདི་རྣམས་སུ་ཡི་གེའི་བྱེད་པ་རབ་ཏུ་འཇུག་གི གཞན་དུ་ན་ཅུང་ཟད་ཀྱང་ཡོད་པ་མ་ཡིན་ནོ་ཞེས་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱའོ། །དེ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར། སྔགས་བརྟུ་བ་འདི་ནི་ཐམས་ཅད་དུ་རྣམ་པ་མི་རྟོག་པ་ཡིན་པར་རྣལ་འབྱོར་མའི་རྒྱུད་ལ་སོགས་པ་རྣམས་སུ་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱ་སྟེ། དོན་དེ་ནི། གཞན་དུ་ཅུང་ཟད་ཡོད་མ་ཡིན། །ཞེས་བྱ་བས་གསུངས་པ་ཡིན་ནོ། ༡ |

སྔགས་འདི་ནི་ཅི་ཞིག འཁོར་ནི་སུ། གནས་ནི་གང་དུ་ཡིན། གྲངས་ནི་ཇི་ཙམ་ཞེས་དོགས་པ་ལ། ཨ་ཀ་ཙ་ཊ་ཏ་པ་ཡ་ཤ། དབུས་སུ་སོན་པ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པའི་གཞུང་གསུངས་ཏེ། སྔེ་པ་སོ་སོ་ལས་ཡི་གེ་དང་པོ་བླངས་པ་སྟེ། ཨཱ་ལཱི་ཀཱ་ལཱི་གང་ཡིན་པ་ནི་ངག་མ་ལུས་པའི་རང་བཞིན་ཏེ་རྒྱུ་ཡིན་ལ། སྔེ་ཚན་ནི་བརྒྱད་དུ་འགྱུར་རོ། །དེ་ཉིད་ནི་ཡི་གེ་ལྔ་བཅུ་སྟེ། ཨཱ་ལཱི་ཀཱ་ལཱི་རྣམས་མཉམ་དུ་བྱས་པ་ལས་ནི་དྲུག་ཅུ་རྩ་བཞིར་ཡང་དག་པར་རྟོགས་པར་བྱ་སྟེ། རྩ་སོ་སོ་ལ་ཡི་གེ་རེ་རེ་བསམས་པ་ལས་སྤྲུལ་པའི་

---

༡ རྒྱ་དཔེར་。(ཨེཀྣཱི) ཊེ་ཏག

རྫ་ཧྲི་ཨརྞ་ལླི་ཡི་པདྨར་གནས་པ་རྣམས[1]། །
འདབ་མ་བརྒྱད་པ[2]སོ་སོར་ཕྱོགས་དང་མཚམས་སུ་གནས[3]། ༦།
དེ་ཡི་དབུས་ཀྱི་ཟེའུ་འབྲུ་ལ། །
དམ་པའི་དབང་ཕྱུག་ཡོད་པ་སྟེ། །
སྡེ་ཚན་བརྒྱད་པོ་ཉིད་ཀྱིས་ཀྱང་། །
ཡི་གེ་དམ་པར་བསྐོར་བའོ། ༧ །

འཁོར་ལོ་ལ་རང་བཞིན་གྱིས་གྲུབ་པའི་ཡི་གེ་ལྔ་བཅུ་པོ་འདི་རྣམས་ཉིད་བརྒྱད་པ་བརྒྱད་ཀྱིས་དབྱེ་བས་ཐ་དད་པའི་འཁོར་ལོ་སྒོམ་པའི་དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་ལྷ་ཚུག་ཙ་ཙ་བཞིའི་རང་བཞིན་ཡིན་ནོ། ཕྱོགས་དང་ཕྱོགས་བྲལ་བརྒྱད་རྣམས་སུ་རྣམ་པར་གནས་པར་ཤེས་པར་བྱའོ། ༦ །

དེ་རྣམས་དབུས་ཀྱི་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་དབུས་ཀྱི་གཙོ་བོ་གསུངས་ཏེ། ཨམྲྀ་ཀུ་ལིའི་རང་བཞིན་ཅན་གྱི་རྩ་དེ་རྣམས་ཀྱི་དབུས་སུ་མཆོག་གི་དབང་ཕྱུག་སྟེ་མཆོག་གི་དཔའ་བོ་དང་རྣལ་འབྱོར་མའི་རང་བཞིན་གྱི་ཡི་གེ་དེ་རྣམས་ཀྱི་དབང་ཕྱུག་འཁོར་ལོས་སྒྱུར་བའོ། །དེ་བཞིན་དུ་མ་ཉིང་ག་ས་ཛོན་བཞི་པོ་ཡོངས་སུ་རྫོར་ནས་ཨ་ཡིག་ལ་སོགས་པའི་ཡི་གེ་བཅུ་གཉིས་ནི་བཅོམ་ལྡན་འདས་ཀྱི་ཕྱུག་བཅུ་གཉིས་སོ། །བསྲིགས་པའི་ས་ཛོན་བཞི་པོ་ནི། མཁའ་འགྲོ་མ་དང་། ལཱ་མ་དང་། དུམ་སྐྱེས་མ་དང་། གཟུགས་ཅན་མ་རྣམས་སོ། །ཀ་ཡིག་ལ་སོགས་པ་ཏ་ཡིག་གི་མཐར་ཐུག་པ། མ་ཡིག་ཐིག་ལེས་མཚན་པ་ནི་འཁོར་ལོ་གསུམ་གྱི་དཔའ་བོ་དང་དཔའ་མོ་རྣམས་སོ། །ཡ་ལ་སོགས་པ་ཏ་ཡིག་གི་མཐར་ཐུག་པ་རྣམས་ནི་ཁྲ་གདོང་མ་ལ་སོགས་པ་རྣམས་ཏེ། ཀྵ་ཡིག་ནི་ཟད་པའི་མཁའ་འགྲོ་ཡིན་ལ། དབུས་སུ་ཨ་ཡིག་ནི

---

༡ རྒྱ་དཔེར། (པདྨ་ཀཎྜི) པདྨ་སྡོང་རྣམས་ནི། ༢ རྒྱ་དཔེར། བརྒྱད་པ་མི་གསལ།
༣ རྒྱ་དཔེར། (ཀེ་ཤ་ར་ཀཎྜི) ཛེའུ་སྡོང་ནི། ༤ ཅོ་ནེ། སྡེ། ས་ལ་སོགས་འདུག

ཨ་ནི་ཡིག་འབྲུ་ཀུན་གྱི་མཆོག། །

དོན་ཆེན་ཡི་གེ་དམ་པ་སྟེ[1]། །

ལུས་ཅན་རྣམས་ཀྱི་སྔགས་ཀུན་ནི། །

དེ་ཉིད་ལས་ནི་[2]བྱུང་བའོ། ༤།

གང་ཞིག་རལ་གྲི་དང་ནི་མིག་སྨན་རྐང་པ་བྱུག་པ་རི་ལུ་ས་འོག་གཏོད་སྒྲིན་མའོ། །

འཇིག་རྟེན་གསུམ་[3]གྱི་ཁོངས་སུ་གཏོགས་པའི་མདོ་རྒྱུད་[4]རྟོགས་གནས་ལས་ཀྱི་རྫེས་འགྲོ་དངོས་གྲུབ་དང་། །

རྡོ་རྗེ་ཕག་མོ་འོ། །དེའི་ཕྱིར་འདི་ནི་སྔོ་ཚན་བརྒྱད་པོ་འདི་རྣམས་ཀྱིས་བསྐོར་བ་ཡིན་ལ། མཆོག་ཏུ་མི་འགྱུར་བའི་ཨ་ཡིག་ཁོ་ན་སྔགས་ཐམས་ཅད་ཀྱི་རྒྱུ་སྟེ། དེས་ན་འདིས་སྔགས་འབྱིན་པར་བྱེད་པ་ཡིན་ནོ། ༥ །

ཨ་ཡིག་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་དེའི་ཕན་ཡོན་གསུངས་ཏེ། གདོད་མ་ནས་མ་སྐྱེས་པའི་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་གསལ་པོར་བྱེད་པའི་ཕྱིར་དོན་ཆེན་ནོ། །དེ་རྣམས་དེ་ཁོ་ནས་བྱེད་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར། སྔོ་ཚན་རྣམས་ཀྱི་གཙོ་བོའོ། །ལུས་ཅན་ཏེ་སྐྱབ་པ་པོ་རྣམས་སམ། གང་ཞིག་སྔགས་ཀྱི་ཚིག་ཚད་མར་སྨྲ་བ་རྣམས་ཀྱང་དེ་ཉིད་ལས་སྐྱེས་ཤིང་བྱུང་བ་ཡིན་ནོ། །དེ་ལྟར་ན་རང་བཞིན་གྱིས་སེམས་ཅན་གྱི་སྔགས་ཐམས་ཅད་ཁོ་ནའི་དབྱུང་གཉེན་ནོ་ཞེས་བྱ་བར་གནས་སོ། ༤ །

གང་ཞིག་རལ་གྲི་མིག་སྨན་དང་། །ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་ལས་རབ་འབྱམས་ཀྱིས་དངོས་གྲུབ་རྣམས་ཀྱིས་འདི་ཡོངས་སུ་ཤེས་པ་ཁོ་ན་ལས་ཡིན་གྱི་གཞན་ལས་ནི་མ་ཡིན་ནོ། །ཞེས་གསུངས་ཏེ། རལ་གྲི་དང་།

---

[1] ཀྱི་དཔེར༌ (པཏྲཱུཡཀ) སྔོ་ཚན་འཇིན་པ་པོ། [2] ཀྱི་དཔེར༌ (ཨཏེཔམསྡུདཔྟྲཱུཿ) དེ་ནས་ཡང་དག་བྱུང་བའོ། ། [3] པེ༌ སྣ༌ གསུམ་མི་གསལ། [4] ཀྱི་དཔེར༌ རྒྱུད་མི་འདུག

གང་ཞིག་ཐམས་ཅད་དུ་ནི་ཧྲུ་འཕྲུལ་ཆེ་བ་རང་གི་གནས་འདོད་དམ་པ་ལྔ་ལྡན་པ།

དེ་དག་སྟེ་ཚན་བརྒྱད་ཀྱི་ནང་སོན་དབྱངས་མཆོག་ལྷེ་ཚན་བདག་ཉིད་ནས་ནི་འབྱུང་བར་བྱེད། ༨ །

འཁོར་ལོ་དང་རིན་པོ་ཆེ་དང་རྡོ་རྗེ་དང་པདྨའི་རིག་པ་འཛིན་པའི་དངོས་གྲུབ་ལྔ་པོ་རྣམས་རལ་གྲི་ཉེ་བར་མཚོན་པ་ཉིད་ལས་སོ། །གང་གིས་གྲིབ་མ་ཉམས་པར་གྱུར་པ་དེ་ནི་མིག་སྨན་གྱི་དངོས་གྲུབ་སྟེ་གཉིས་པའོ། །གང་གིས་སྐད་ཅིག་ཙམ་གྱིས་དཔག་ཚད་བརྒྱ་སྟོང་དུ་འགྲོ་བར་བྱེད་པ་དེ་ནི་ཀང་པ་མྱུག་པའི་དངོས་གྲུབ་སྟེ་གསུམ་པའོ། །གང་གིས་ས་ལ་གནས་པའི་གཏེར་མཐོང་བའམ། བྱུག་པའི་སྐོར་རབ་ཏུ་ཞུགས་ནས་ལྷ་མ་ཡིན་གྱི་བུ་མོ་འགུགས་པར་བྱེད་པ་དེ་ནི་ས་འོག་གི་དངོས་གྲུབ་སྟེ་བཞི་པའོ། །གང་གིས་ཞིན་ཏུ་ཡིད་དུ་འོང་བའི་གནོད་སྦྱིན་མོ་ལ་ལོངས་སྤྱོད་པ་དེ་ནི། གནོད་སྦྱིན་གྱི་ལུས་ཅན་མའི་དངོས་གྲུབ་སྟེ་ལྔ་པའོ། །གང་ཞིག་ཁར་བཅུག་པ་ཙམ་གྱིས་སངས་རྒྱས་ཀྱི་ཞིང་ཐམས་ཅད་དུ་འཕུར་ནས་སངས་རྒྱས་རྣམས་ལས་ཆོས་ཉན་པར་བྱེད་པ་དེ་ནི་རི་ལུའི་དངོས་གྲུབ་སྟེ་དྲུག་པའོ། །གང་གིས་ཞི་བ་ལ་སོགས་པའི་ལས་བརྒྱད་པོ་སྒྲུབ་པར་བྱེད་པ་ནི། འཇིག་རྟེན་གསུམ་གྱི་ཁོངས་སུ་གྱུ་བའི་དངོས་གྲུབ་སྟེ་བདུན་པའོ། །གང་གིས་རྡོ་དང་ཟངས་ལ་སོགས་པ་གསེར་དུ་བྱེད་པ་དེ་ནི་དངུལ་ཆུའི་དངོས་གྲུབ་སྟེ་བརྒྱད་པའོ་ཞེས་པ་གྲུབ་ཆེན་བརྒྱད་པོ་རྣམས་སོ། །གཞན་ཡང་ལྷའི་སྨན་ལ་སོགས་པའི་མཚན་ཉིད་དང་། ཕྲ་བ་ལ་སོགས་པའམ། སྐྱུའི་དབང་ཕྱུག་ལ་སོགས་པ་འཇིག་རྟེན་དང་འཇིག་རྟེན་ལས་འདས་པ་རྣམས་ཏེ། སྟེ་ཚན་བརྒྱད་ཀྱིས་བརྒྱན་པའི་དངོས་གྲུབ་སྟེ་དེ་རྣམས་ནི་དབྱངས་དང་པོ་ཁ་ན་ལས་བྱུང་བ་ཡིན་གྱི་སོ་སོ་འི་སྦྱོས་པས་དེ་སྒྲུབ་པའི་འབད་པ་བྱེད་པ་ནི་མ་ཡིན་ནོ་ཞེས་གསུངས་པ་ཡིན་ནོ། ༨ །

ངག་གི་རབ་འབྱམས་གང་གང་ཞིག །
སྐྱེ་བོ་རྣམས་ཀྱིས་རྟོགས་བྱེད་པ། །
དེ་དག་ཐམས་ཅད་སྔགས་ཀྱི་གཟུགས། །
དེ་ཉིད་ལས་ནི་རབ་ཏུ་སྐྱེ། ༡༠།

སྣྲ་ནི་[1]སྔགས་ཞེས་སྨྲས་པ་སྟེ། །
ལུས་ཅན་རྣམས་ནི་ཐམས་ཅད་ཀྱི། །

གང་ཞིག་ཙུང་ཟད་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ནི། སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ཀྱི་མཐར་ཐུག་པར་སོན་པ་ཉིད་ཀྱིས་ན་ཁྱབ་པ་པོར་བསྟན་པའི་ཕྱིར་གསུངས་པ་ཡིན་ཏེ། ལུས་ཅན་རྣམས་ཀྱི་ནི་ཀང་མེད་ལ་སོགས་པ་རྣམས་ཀྱི་སྟེ་ཚིག་དང་དབྱངས་གསལ་བ་དང་མི་གསལ་བ་དང་གཉིས་ཀའི་བདག་ཉིད་ཅན་སྐྱེད་པར་བྱེད་པ་དེ་ནི་སྔགས་ཐམས་ཅད་ཀྱི་གཟུགས་ཁོ་ན་སྟེ། དེ་ལས་སྐྱེས་པར་གྱུར་ཅིང་ནང་དུ་སོན་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ། ༡༠ །

ལྟེ་བའི་ཕྱོགས་ལས་འཐོན་པའི་བདེ་བ་ཆེན་པོའི་སྐབས། གཞན་དུ་[2]ནད་ཉིད་སྔགས་ཏེ། ཡིད་སྐྱོབ་པའི་ཕྱིར་རོ། །གསང་བའི་སྐད་ཀྱིས་སྐྱོམས་པར་འཇུག་པ་ན་འདི་ཐམས་ཅད་དེ། བུད་མེད་དང་སྐྱེས་པའི་ཚོགས་དེ་ཉིད་ནི་སྐད་དེ་ཁོ་ནས་རབ་ཏུ་དགའ་བར་བྱེད་དོ། །དབུ་གུའི་དབྱེ་བས་བཀྲལ་བར་གྱུར་པ་དེ་ཉིད་ཀྱིས་ཐིག་ལེའི་དབྱེ་བ་འཕེལ་བར་བྱེད་དོ་ཞེས་པས། དེ་ལྟ་བུ་ལ་སོགས་པའི་ལས་ཀྱི་ཚོགས་བྱས་པའོ། །ལུས་ཅན་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་སྣ་ཚོགས་པའི་མདུད་པའི་གནས་ཆེན་པོ་སྤྲུལ་པའི་འཁོར་ལོ་ལས་ཆོས་ཀྱི་རོལ་པ་སྟེ། ཡི་གེ་ཐམས་ཅད་དང་། ཚིག་དང་། ངག་དང་། ངག་ཆེན་པོ་

---

[1] པེ་ ༠ སྣྲ་ནི་སྣྲ་ནི། སྣ་ ༠ སྣྲ་ན་སྣྲ་ནི། [2] ཅོ་ནེ་ ༠ དུ་ན།

སྣ་ཚོགས་མདུད་[1]པ་གནས་ཆེན་ལས། །
ཆོས་ཀྱི་ནཱ་ལཱི་[2]རྣམ་པར་འབྱུང་། ༡༡ །
དངོས་གྲུབ་དོན་དུ་རྣམ་གནས་པའི། །
སྔགས་ནི་འགའ་ཡང་ངེས་པ་མེད། །

ལ་སོགས་པ་རྣམས་དང་། ཆོས་ཀྱི་ཕུང་པོ་སྟོང་ཕྲག་བརྒྱད་ཅུ་[3]རྩ་བཞི་ལ་···· ཁྱབ་པར་བྱེད་པ་རྣམ་པར་འབྱུང་སྟེ་རབ་ཏུ་སྐྱེའོ། །

དགའ་བ་སྐྱེས་པའི་དུས་སུ་ནི། །
སྟོན་དུ་གཟུང་བ་གང་ཞིག་སྣ། །
གསལ་དང་མི་གསལ་རང་བཞིན་དེ། །
ནད་འདི་ནི་སྔགས་སུ་བཤད། །
དགའ་དང་ཁྲོ་དང་རྨི་ལམ་དང་། །
བརྒྱལ་དང་འཆི་བའི་སྐད་ཅིག་དང་། །
སད་དང་དགའ་བའི་དུས་སུ་ནི། །
སྒྲ་དེ་ཉིད་ནི་ཐོས་[4]པར་འགྱུར། ༡༢ །

ཉེ་བར་བསྟུ་བ་གསུངས་པ། སྔར་གསུངས་པའི་སྔགས་གྲུབ་པ་ལ། སྔགས་ཁ་ཅིག་གཏོང་ཞེས་བྱ་བའི་ངེས་པ་ཡོད་པ་མ་ཡིན་ན། གང་གིས་ན···· འདི་སྔགས་ཀྱི་དངོས་གྲུབ་ལས་མངོན་དུ་ཕྱོགས་པར་བྱེད། བསྒོམ་པ་ན་ཕྱུལ··· དུ་བྱུང་བ་དང་ཕྱུལ་དུ་བྱུང་བ་མ་ཡིན་པ་ཉིད་ལས་ཏེ། གང་ཞིག་ཆོས་ཉིད···· ཀྱིས་ཡི་གེས་ཁྱབ་པ་དེ་ལ་ཡོད་པ་ན། དེས་རྣམ་པ་སྣ་ཚོགས་པའི་ལས་བྱེད··· པ་འདི་ཉིད་ནི་ཕྱུལ་དུ་བྱུང་བའོ། །དོན་དེ་ནི།

---

༡ སྡེ་༠ འདུན། ༢ པེ་༠ ར་ལ། རྒྱ་དཔེ་འགའ་ཞིག་ནང་ཆོས་ཀྱི་རིན་ཆེན་ཡང་གསལ།
༣ སྡེ་༠ བརྒྱད་མི་འདུག ༤ ཅོ་ནེ་༠ ཐོབ།

མ་སྐྱེས་པ་ཡི་རང་བཞིན་ནི། །

སྟོགས་ཀྱི་སྐྱེ་ཚན་དབང་ཕྱུག་མཆོག ༡༢ །

[1]དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེར་སྟོགས་བཏུ་བ་རྒྱས་པར་[2]བསྟན་པ་སྟེ་དགུ་པའོ།། །།

མ་སྐྱེས་པ་ཡི་རང་བཞིན་ནི། །

སྟོགས་ཀྱི་སྐྱེ་ཚན་དབང་ཕྱུག་མཆོག །

ཅེས་བྱ་བས་གསུངས་ཏེ། གདོད་མ་ནས་མ་སྐྱེས་པའི་དངོས་པོ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་རང་བཞིན་མཚོན་པར་བྱེད་པ་ཨ་ཡིག་འདི་ནི་དེའི་དཔེ་ཉིད་ཀྱིས་སྟོགས་ཏེ་རྣམས་རང་གི་ལས་དང་རབ་ཏུ་སྦྱོར་ཏེ། འབྲས་བུ་དང་བཅས་པ་ཡིན་ནོ། །དེ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་སྐྱེ་ཚན་དབང་ཕྱུག་མཆོག་ཅེས་པ་དེ་རྣམས་ཀྱི་བདག་པོ་ཉིད་དུ་ཁྱུས་ནས་ཏེ། དེ་རྣམས་དེའི་བདག་པོ་ནི་མ་ཡིན་ནོ་ཞེས་པའོ། ༡༢ །

ཞེས་པ་རྫོགས་པའི་རིམ་པའི་སྒྲུབ་པའི་ཐབས་ཀྱི་ཚིག་དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པ་གསང་བ་ཆེན་པོའི་སྒྲོན་མ་ལས། རྒྱས་པར་བསྟན་པ་དགུ་པའི་རྒྱས་པར་བཤད་པའོ།། །།



---

[1] རྒྱ་དཔེར༌ ༠ (ཤྲཱི) དཔལ། [2] རྒྱ་དཔེར༌ ༠ རྒྱས་པར་མི་གསལ།

རྒྱས་པར་བསྟན་པ་བཅུ་པ།

དེ་ནས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་གང་ཡང་རུང་བའི་སྐུའི་ཆོས་དང་······ ···
ལངས་སྤྱོད་རྫོགས་པ་དང་སྤྲུལ་པའི་[1] སྐུ་གསུམ་གྱི་གཟུགས་ཀྱི་བདེ་བ་ཆེན་པོའི་
ཡེ་ཤེས་རབ་ཏུ་བཤད་པར་བྱའོ། ༡ །

སྤྱི་བོ་[2] ལྟེ་བར་གནས་འཁོར་ལོ། །
ཨེ་ཡི་ཆ་བྱེད་ཡང་དག་གནས། །

དེ་ནི་ཆོས་ལ་སོགས་པའི་སྐུ་གསུམ་གྱི་རང་བཞིན་གྱི་འཁོར་ལོ······
བཞི་དང་། དབྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེའི་ངེས་པའི་ཚིག་དང་། ཐུགས་ལས་སྐྱེ་གནས་
བཞི་དང་དབྱངས་[3] ལ་སོགས་པའི་རང་བཞིན་རྣམས་ནི། བཟློད་དུ་མེད་པའི···
ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པར་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར། དེ་ནས་ཞེས་བྱ་བ་ལ·······
སོགས་པས་རྒྱས་པར་བསྟན་པ་བཅུ་པ་གསུངས་ཏེ། དེ་ནས་ཞེས་པ་ནི་རྒྱས་
པར་བསྟན་པ་དགུ་པ་ལ་ལྟོས་ནས་བར་མེད་པའི་དོན་ཏོ། །གང་ཡང་རུང་ནི།
གང་སུ་ཡང་རུང་བའི་སྟེ། ཆོས་ལ་སོགས་པའི་གཟུགས་ཀྱིས་ནི། སྐུ་གསུམ་
གྱི་རྣམ་པས་སོ། །བདེ་བ་ཆེན་པོའི་ཡེ་ཤེས་ནི་ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པ་སྟེ། ལྷན་
ཅིག་སྐྱེས་པ་རབ་ཏུ་བཤད་པར་བྱའོ་ཞེས་པ་ནི་མདོར་བསྟན་པའོ། །སེམས··
ཅན་ཐམས་ཅད་ནི་སྐུ་གསུམ་སྟེ། ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པའི་རང་བཞིན་གསུམ་དང་
ལྡན་པ་ཁོ་ནའོ་ཞེས་བྱ་བ་འདི་གསུངས་པ་ཡིན་ནོ། ༡ །

སྤྱི་བོ་ལྟེ་བར་གནས་འཁོར་ལོ། །ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས། དེ་
རྣམས་ཀྱི་གནས་གསུངས་ཏེ། སྤྱི་བོ་དང་ལྟེ་བའི་བར་དུ་གནས་པའི་འཁོར་ལོ་

---

1 པེ་. སྤྲུལ་པའི་མི་གསལ། 2 ཅོ་ནེ་. སྤྱི་བོར། 3 རྒྱ་དཔེར་. (ཤཀྲ་ཙཀྲ) དབྱངས་ཕྲ་འདུག

སྙིང་ག་མགྲིན་པ་ལེགས་གནས་[1]པ། །
བཾ་ཡིག་འདྲ་བར་འདོད་པའོ། ༢ །
ལྟེ་བའི་ནང་གནས་པདྨ་ནི། །
འདབ་མ་དྲུག་ཅུ་རྩ་བཞིར་གནས། །

གཉིས་པོ་གང་ཡིན་པ་འདི་སྟེ། འོག་ཏུ་ཆོས་འབྱུང་གི་ཉུས་པ་ལས་རིའི་ཆོས་དང་བཅས་པའི་ཕྱིར་དང་། སྙིང་དུ་སྤྱི་གཙུག་གི་པདྨའི་ལྟེ་བ་ལ་ཡང་སྒྲུ་གསུམ་གྱི་རྣམ་པའི་ཆོས་འབྱུང་གི་རང་བཞིན་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་དེ་ནི་ཨེའི་རྣམ་པའོ། །དེ་བཞིན་དུ་སྙིང་ག་དང་མགྲིན་པར་གནས་པའི་འཁོར་ལོ་གཉིས་ཀྱང་བཾ་ཡིག་གི་རྣམ་པ་སྟེ། བཾ་ཡིག་ལུགས་ལས་བཟློག་པའི་རྣམ་པ་ལས་ཀྱང་སྒྲུ་གསུམ་ཉིད་དོ། །འདི་སྐད་དུ་གསུངས་པ་ཡིན་ཏེ། སྤྲུལ་པ་དང་བདེ་བ་ཆེན་པོའི་འཁོར་ལོ་གཉིས་ཀ་ཤེས་རབ་ཀྱི་རང་བཞིན་ཡིན་པ་ཉིད་ལས་ཤེས་རབ་དང་ཐབས་ཀྱི་རང་ངཞིན་ཡང་ཡིན་ལ། དེ་ཁོ་ན་བཞིན་དུ་སྙིང་ག་དང་མགྲིན་པའི་འཁོར་ལོ་དག་ཀྱང་ཤེས་རབ་ཀྱི་རང་བཞིན་ཉིད་ཐབས་དང་ཤེས་རབ་ཀྱི་རང་བཞིན་ཡང་ཡིན་ཏེ། ཨལླཱཧྣཱདས་ཐམས་ཅད་ལ་ཁྱབ་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ། ༢ །

ལྟེ་བའི་དབུས་ཞེས་བྱ་བ་ནས་བརྩམས་ཏེ། པདྨ་འདབ་མ་བརྒྱད་དུ་བརྗོད། །ཅེས་བྱ་ངའི་མཐར་ཐུག་པས་ནི། སྤྲུལ་པའི་སྐུ་ལ་རྟོགས་པའི་འཁོར་ལོ་བཞི་ལ། གོ་རིམས་བཞིན་དུ་འདབ་མ་དྲུག་ཅུ་རྩ་ངཞི་དང་། སུམ་ཅུ་རྩ་གཉིས་དང་། བཅུ་དྲུག་དང་། བརྒྱད་རྣམས་ཏེ། དབྱུ་གུ་དང་། ཆུ་ཚོད་དང་། འཕོ་བ་དང་། ཐུན་ཚོད་ཀྱི་རང་བཞིན་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ། །ཇི་ལྟར་ཕྱི་རོལ་དུ་ཉི་མ་[2]རབ་ཏུ་རྒྱུ་བས་དབྱུ་གུ་ལ་སོགས་པར་རྣམ་པར་འཛིན་པ་དེ

༡ ཀྱི་དགེར་° (ག་ཅ) སོན་པ། ༢ སྟེ་° ཉིད་པ།

པདྨ་འདབ་མ་སུམ་ཅུ་གཉིས། |
སྤྱི་བོའི་ནང་དུ་རྣམ་པར་གནས། ༢ |
མགྲིན་པའི་ནང་དུ་སོན་པ་ཡང་། |
པདྨ་འདབ་མ་བཅུ་དྲུག་གོ |
དེ་བཞིན་དུ་ནི་སྙིང་ཉིད་དུ། |
པདྨ་འདབ་མ་བརྒྱད་དུ་བརྗོད། ༣ |
འདབ་མ་དྲུག་ཅུ་རྩ་བཞི་འདི། |
སྤྲུལ་པ་རུ་ནི་ཡོངས་སུ་གྲགས། |
པདྨ་ཆེན་པོ་འདབ་བརྒྱད་པར། |
ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ནི་རབ་ཏུ་གྲགས། ༤ |

ཁོ་ན་བཞིན་དུ། ནང་དུ་སྒྲོག་རབ་ཏུ་རྒྱུ་བས། དེ་འཁོར་ལོ་ལ་བརྟེན་པ་ཁོ་ན་སྟེ། འདི་རྣམས་ནི་དུས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་ལས་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱས་པ་ཡིན་ནོ། ༢–༣ །

འདབ་མ་དྲུག་ཅུ་རྩ་བཞི་ཞེས་བྱ་བ་ནས་བརྩམས་ཏེ། ཀུན་ནས་རྣམ་པར་གནས་པའོ། །ཞེས་བྱ་བའི་མཐར་ཐུག་པས་ནི། ཤེས་རབ་དང་ཐབས་འབབ་ཞིག་གི་དུས་ཀྱི་ཁྱད་པར་བཞི་པོ་རེ་ཞིག་སྤྲུལ་པའི་སྐུ་ལ་སོགས་པའི·····རང་བཞིན་རྣམས་སུ་ཡང་འགྱུར་རོ་ཞེས་རྟོགས་པར་བྱ་སྟེ། དེ་ལ་ལྟེ་བའི·····འཁོར་ལོ་ལ་སྤྲུལ་པའི་སྐུ་སྟེ། སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ཀྱི་ཕུང་པོ་དང་སྐྱེ·······མཆེད་ཀྱི་རང་བཞིན་གྱི་སངས་རྒྱས་དང་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས་སྐྱེད་པར··བྱེད་དོ། །སྙིང་གའི་འཁོར་ལོ་ལ་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་སྟེ། ཧཱུྃ་ཡིག་ལ་སོགས་པའི··རྣམ་པ་ཕུང་པོ་དང་ཁམས་ཉེ་བར་སྤྱོད་པའི་གཟུགས་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ། །མགྲིན་པའི་འཁོར་ལོ་ལ་ལོངས་སྤྱོད་རྫོགས་པའི་སྐུ་ཡང་སྟེ། འདི་རྣམས་ཀྱིས་ཆོས··

བཅུ་དྲུག་འདབ་མ་ལོངས་སྤྱོད་པའོ། །
དེ་བཞིན་འདབ་མ་སུམ་ཅུ་གཉིས། །
བདེ་ཆེན་ཡེ་ཤེས་ཆེན་པོ་རུ། །
ཀུན་ནས་རྣམ་པར་གནས་པའོ། ༡ །
སྤྲུལ་པ་དེ་ལ་དབུས་སུ་ནི། །
སྣེ་ཚན་བརྒྱད་པོ་རྣམས་ཀྱིས་བསྐོར། །

ཀྱི་བདུད་རྩི་ཡོངས་སུ་ལོངས་སྤྱོད་ཅིང་སྨིན་པ་ལས་སྐྱང་ངའི་ཕྱིར་རོ། །སྤྲི...
བོའི་འཁོར་ལོ་ཡེ་ཤེས་ཆེན་པོ་ངོ་བོ་ཉིད་ཀྱི་སྐུ་སྟེ། ཀུན་རྫོབ་པའི་' བྱང་ཆུབ་
ཀྱི་སེམས་ཀྱི་རང་བཞིན་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ། །

སྐུ་གསུམ་ལུས་ཀྱི་དབུས་སུ་ནི། །
འཁོར་ལོའི་རྣམ་པས་ཡང་དག་གནས། །
སྐུ་གསུམ་ཡོངས་སུ་ཤེས་པ་ནི། །
བདེ་བ་ཆེན་པོའི་འཁོར་ལོར་བརྗོད། །

ཅེས་བྱ་བ་དང་། དེ་བཞིན་དུ།

སྐུ་དང་མཛད་པ་གང་གིས་འགྲོ་ཕན་ཕྱིར། །
རིགས་དང་ལྷ་མོ་རིགས་ཀྱི་གཙོ་བོ་རྣམས། །
རང་ལུས་སྟོགས་སུ་སོན་པའི་རང་བཞིན་དེ། །
ཞི་བ་རྡོ་རྗེ་འཆང་སྣང་བརྟེན་པར་བསྒྲུབ། །ཞེས་བྱ་བའོ། ༤–༡།

སྤྲུལ་པའི་འཁོར་ལོའི་དབུས་སུ་ནི། །ཞེས་བྱ་བ་ནས་བརྩམས་ཏེ། ཧཾ་གི་ཡི་གེ་འབབ་བར་བྱེད། །ཅེས་བྱ་བའི་མཐར་ཐུག་པའི་གཞུང་ནི། སེམས་

---

༡ རྒྱ་དཔེར༌ (པ་ལྦཾ) ནོན་ནམ།

ཡིག་འབྲུ་རྣམས་ཀྱི་གཟུགས་མཆོག་ནི། །
ཨ་ནི་ཡི་གེ་དམ་པ་ཡིན། ༧ །

ཆོས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་དམ་པར་གྲགས། །
ཧཱུྃ་ཡིག་གཞམ་དུ་མེད་པར་འདོད། །
དབྱངས་ཡིག་ལྷ་དང་ཡང་དག་ལྡན། །
ཡ་ར་ལ་ལྷས་རྣམ་པར་བརྒྱན། ༨ །

ལོངས་སྤྱོད་འཁོར་ལོའི་དབུས་གནས་པ། །
ཨོཾ་[1]ནི་ཡིག་འབྲུ་གསལ་བར་བྱེད། །
ཆ་[2]ནི་བཞི་པོ་རྣམས་ཀྱིས་ཀྱང་། །
ཀུན་ནས་ཡོངས་སུ་བསྐོར་བ་ཡིན། ༩ །

བདེ་ཆེན་འཁོར་ལོ་ཆེན་པོ་ལ། །
ཧཾ་ཡིག་ཐིག་ལེའི་གཟུགས་ཅན་ནོ། །

ཅན་ཐམས་ཅད་ཀྱི་འཁོར་ལོའི་བརྟེན་པ་སྔགས་ཀྱི་སྐྱུ་ཁྲོང་དུ་ཆུད་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར་གསུངས་པ་ཡིན་ནོ། དེ་ལ་སྤྲུལ་པའི་འཁོར་ལོ་ཐོབ་པ་ན། ཚུལ་གང་གིས་དབུས་སུ་ཨ་ཡིག་དང་། འདབ་མ་རྣམས་ལ་ཨ་ལི་ཀཱ་ལི་རྣམས་སོ། །ཆོས་སྐུ་ཧཱུྃ་གི་ཡི་གེ་མཁའ་འགྲོ་ལྷའི་ས་བོན་མ་ཉིང་བཞི་དང་བཅས་པ་རྣམས་སོ། །མགྲིན་པར་ནི་ཨོཾ་ཡིག་རིང་པོ་བཞིའམ། དབྱངས་བཅུ་དྲུག་གིས་བསྐོར་བའི་ཚངས་པའོ། །སྤྱི་བོར་ཁ་འོག་ཏུ་སྟུགས་པའི་ཧཾ་གི་ཡི་གེ ཨ་ལི་ཉིས་འགྱུར་གྱིས་བསྐོར་བ་རྣམས་གོ་རིམས་བཞིན་དུ་དཀྱིལ་འཁོར་ཆེན་པོ་དང་སྙོམས་པར་ཞུགས་པའི་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་དཀྱིལ་འཁོར་དང་། སྙོམས་པར་ཞུགས་པའི་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་དཀྱིལ་འཁོར་ཤའི་མཐའ་དང་ཤའི་དབུས་ཀྱི་རྩ་བཞི་ནི་ཧེ་ཙ

---

༡ ཙོ་ཉེ་. སྡེ་. ཨོཾ། ༢ ཁེ་. ཚོ་ནི།

ཟླ་བ་ཉི་མར་རབ་གྲུགས་པའི། །
གཡོན་དང་གཡས་[1]པའི་ངོས་སུ་ནི། ༡༠ །

མགྲིན་པ་ནས་བརྩམས་གཡོན་པའི་རྩ། །
ལོངས་སྤྱོད་རྫོགས་པའི་སྐུ་ཅན་མ། །
ལྟེ་བའི་ངོས་སུ་[2]ངལ་བསོ་ཞིང་། །
འོག་ཏུ་ཁ་བལྟ་ཆང་འབབ་མ། ༡༡ །

ལྟེ་བ་ནས་དེ་རྩ་གང་ཞིག །
དེ་བཞིན་སྟེང་དུ་ཁ་བལྟ་འབབ། །

ཀའི་དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་རང་བཞིན་གྱི་འཁོར་ལོ་འདི་རྣམས་རྟོགས་པར་བྱས་པ་ཡིན་ནོ། ༧–༨ །

དེ་བཞིན་དུ། ཟླ་བ་ཉི་མར་རྣམ་གྲུགས་པ། །ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་འཁོར་ལོ་ལ་བརྟེན་པར་གྱུར་པའི་རྩ་གཉིས་པོ་གསུངས་ཏེ། འཁོར་ལོ་རྣམས་ཀྱི་གཡོན་དང་གཡས་དག་ཏུ་ཟླ་བ་དང་ཉི་མ་དག་སྟེ། སྲོག་དང་ཐུར་སེལ་ལས་སྟེང་དང་འོག་ཏུ་ཁྲེ་བ་དང་ཁྲག་གི་ཁམས་རབ་ཏུ་འབབ་པ་དག་ནི། ལ་ལན་དང་། རསན་ལ་གནས་པ་ཤེས་པར་བྱ་སྟེ། འདིས་ནི་ཕྱི་རོལ་དུ་ཟླ་བ་དང་ཉི་མར་སྣང་བ་ནི་ནང་དང་འབྲེལ་བ་ཁོ་ནའོ་ཞེས་བརྗོད་པ་ཡིན་ནོ། ༡༠ །

རྫས་དེ་དག་གི་འབབ་པའི་སྒོ་འི་རྣམ་པ་སྣང་ངར་བྱ་ངའི་ཕྱིར། མགྲིན་པ་ནས་བརྩམས་ཞེས་པ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། གང་འདིར་གཡོན……ལོགས་སུ་ལལནར་བཤད་པའི་རྩ་དེ་ནི། འོག་གི་གདོང་ཅན་མགྲིན་པ་ནས…

---

1 སྟེ་༷ གནས། 2 རྒྱ་དཔེར་༷ (མཆུ) དབུས།

མགྲིན་པའི་ནང་དུ་ངལ་བསོ་ཞིང་། །
ཁྲ་བ་[1]འབབ་པར་རབ་ཏུ་གྲགས། ༡༢ །

ཚང་ནི་ཟླ་བ་ཞེས་བཤད་དོ[2]། །
ཁྲག་ནི་ཉི་མ་ཞེས་བརྗོད་དོ། །
སྙོ་གཉིས་ཡང་དག་གནས་པ་སྟེ། །
འོག་དང་སྟེང་དུ་ཡང་དག་བརྟེན[3]། ༡༣ །

བརྩམས་ནས་ལྟེ་བའི་དབུས་ཛི་སྲིད་བར་སྐྱོས་བྱེད་འབབ་པ་དང་། དེ་བཞིན་དུ་གང་འདིར་གཡས་ལོགས་སུ་རསམནར་བཤད་པའི་རྩ་གང་ཡིན་པ་ནི། ཟླ་བ་དང་ཁྲ་བ་དང་ཐུར་སེལ་གྱི་ཀླུང་ངོ་[4]། །དེ་ལ་ཁྲག་ནི་ཉི་མ་དང་སྲོག་གི་ཀླུང་སྟེ། ཁ་དོག་དང་བྱེད་ལས་ལས་སོ་ཞེས་པ་ཚིག་གི་ལྷག་མའོ། །ཟླ་བ་དང་ཉི་མ་འདི་དག་ནི་སེམས་ཀྱི་སྙོའི་དབྱེ་བ་གཉིས་ཏེ། གཡས་དང་གཡོན་གྱི་ལམ་གྱི་རང་བཞིན་ལ་བརྟེན་ནས་སྟེང་དང་འོག་ཏུ་རབ་ཏུ་འཇུག་ཅིང་རྒྱུ་བས་རབ་ཏུ་འབབ་པ་དག་ནི་འཛིག་རྟེན་དབང་ཕྱུག་དང་། ནམ་མཁའི་སྙིང་པོའི་རང་བཞིན་དང་། འོད་དཔག་མེད་དང་། རིན་ཆེན་འབྱུང་ལྡན་གྱི་རང་བཞིན་དུ་ཤེས་པར་བྱ་སྟེ།

དཔག་མེད་རྡོ་རྗེ་ཉི་མ་དག །
འཁོར་བ་སྐྲུན་པའི་རྩ་བ་གཉིས། །

ཞེས་གསུངས་པའི་ཕྱིར་རོ། །ཕྱི་རོལ་དུ་ཡང་གང་གི་ཚེ་ནུབ་པའི་རི་ལ་ཉི་མ་འོག་ཏུ་འགྲོ་བ་དེའི་ཚེ་འཆར་བའི་ཕྱིར་ན་ཟླ་བ་སྟེང་དུ་འགྲོ་སྟེ། བཟློག་པ་ལས་ཀྱང་ངོ་། །སེམས་ཀྱི་སྙོ་ལ་བརྟེན་པའི་ཟླ་བ་དང་ཉི་མ་གང་ཡིན་པ.....

༡ རྒྱ་དཔེར་༠ (རཀྟ) ཁྲག ༢ སྣ་༠ ཏེ། ༣ སྣ་༠ བསྟེན། ༤ ཅོ་ནེ་༠ ཟླ་བ།

འདི་དག་[1] བླ་བ་ཉི་མ་སྨྲེ[2]། །
རྩ་གཉིས་གཉིས་སྲུ་ཡང་དག་འཇུག[3] །
དཔའ་བོ་མཁའ་འགྲོ་མ་རྣམས་ཀྱི། །
འགྲོ་དང་འོང་བ་རྣམས་ཀྱི་རྒྱུན། ༡༨ །
ནུབ་པ་དང་ནི་འཆར་[4] བའི་དོན། །
གཉིད་ལོག་སད་པ་དག་ཏུ་གནས། །
གཡོན་དང་གཡས་པའི་ངོས་སྲུ་ནི། །
དབྱུངས་ཡིག་བཅུ་གཉིས་ཡང་དག་གནས། ༡༩ །

འདི་དག་སྨྲེ། དེ་ཉིད་ནི་དཔའ་བོ་དང་མཁའ་འགྲོ་མ་རྣམས་ཀྱི་འགྲོ་བ་དང་འོང་བ་རབ་ཏུ་འཇུག་པའི་རྒྱུན་དུ་ཤེས་པར་བྱའོ། །དེ་བཞིན་དུ་ཁམས་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞི་པོ་རྣམས་ནི་དཔའ་བོ་རྣམས་ཏེ། དེ་རྣམས་ནི་བླ་བ་རྒྱུ་བ་རྣམས་སོ། ཁྲག་འབབ་པའི་རྩ་དེ་རྣམས་ནི་མཁའ་འགྲོ་མ་རྣམས་ཏེ་ཉི་མ་རྒྱུ་བ་རྣམས་སོ། །དེ་ལྟར་ན་ལུས་པ་མེད་པའི་ཕྱིར། གང་ཞིག་སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ཀྱི་ཡིན་ནོ་ཞེས་བྱ་བར་ཤེས་པར་བྱའོ། ༡༡–༡༨ །

དེ་བཞིན་དུ་ཕྱི་རོལ་གྱི་འཆར་བ་དང་ནུབ་པ་ནི་ནང་ཉིད་དུ་རབ་ཏུ་གནས་སོ་ཞེས་བསྟན་པའི་ཕྱིར། འཆར་བ་དང་ནི་ནུབ་བྱེད་པ། །ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། དེ་ལ་གང་གི་ཚེ་སྒྲོག་གི་རླུང་གཡས་པའི་སྣ་བུག་ལ་ཤར་བ་དེའི་ཚེ་ཐུར་སེལ་གྱི་རླུང་གཡོན་པའི་སྣ་བུག་ནས་ནུབ་ཅིང་འགྲོའོ། །དེ་ལྟར་ཉིན་དང་མཚན་མོར་བླ་བ་དང་ཉི་མ་རབ་ཏུ་རྒྱུ་བ་ནི་སེམས་ཅན་ཐམས་ཅད་ཀྱི་གནས་ཉིད་དེ། གཉིད་ལོག་པ་དང་སད་པ་ཡང་དེ་ཁོ་ན་བཞིན་དུ་ཤེས་པར་བྱའོ། །དེ་བཞིན་དུ་གཉིད་ལོག་པ་ལ་ཡང་བླ་བའི་ཆ་དང་ཉི་མའི་ཆའོ། །

---

༡ སྣ་° དང་། ༢ ཅོ་དགེར་° (ལྷུ་ཁྲི) བརྗོད། ༣ ཅོ་དགེར་° (ཨཀ་ནིཥྛ) རབ་ཏུ་གྲགས། ༤ སེ་° ཆབ།

སྟེང་དུ་ཁ་བལྟས་ལེགས་པར་བཤད། །
ཨི་གེ་ཨ་ལ་སོགས་པས་བསྐོར། །
འོག་ཏུ་ཁ་བལྟས་ལེགས་གནས་པ། །
ཀ་ལ་སོགས་པ་ངེས་པར་སྦྱར། ༡༦ །

ཡི་གེ་ཀྵཿ་དང་ཡང་དག་ལྡན། །
འོག་གི་ཆར་ཡང་དཀྲིས་པའོ། །

དེ་བཞིན་དུ་གཉིད་ལོག་དང་སད་པའི་གནས་སྐབས་ནི་ཟླ་བ་དང་ཉི་མའི་རང······
བཞིན་འོད་དཔག་མེད་དང་རིན་ཆེན་འབྱུང་ལྡན་དུ་ཤེས་པར་བྱའོ། །དབུས···
ཀྱི་ཀ་བ་ནི་དུས་སུ་འཆི་བ་ཡང་སྐྱེ་བར་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར། གཡོན་
དང་གཡས་པའི་ངོས་ཞེས་བྱ་བ་ནས་བརྩམས་ཏེ། འོག་གི་ཆར་[1]ཡང་རྣམ·····
པར་གནས། །ཞེས་བྱ་བའི་མཐར་ཐུག་པའི་གཞུང་གསུངས་པ་ཡིན་ཏེ། གཡོན་
དང་གཡས་ཀྱི་རྩ་ལ་མ་ནིང་གི་ས་བོན་སྦྲངས་པའི་དབྱངས་བཅུ་གཉིས་རྣམས་ཏེ།
གོ་རིམ་བཞིན་དུ་འོག་དང་སྟེང་གི་གདོང་པ་རྣམས་ཀ་ལ་སོགས་པའི་གསལ·····
བྱེད་ཉི་ཤུ་རྩ་བཞི་པོ་ཐིག་ལེ་དང་བཅས་པ་འོག་དང་སྟེང་གི་གདོང་རྣམས་ཀྱིས''
ཡོངས་སུ་བསྐོར་བ་རྣམས་ནི། ངོ་བོ་ཉིད་ཁོ་ནས་རྩ་ན་དའི་རྣམ་པར་གནས····
པའོ། །འདི་ཉིད་ནི། དབུས་སུ་བྱས་ནས་ངེས་པར་བྱ། །ཞེས་བྱ་བས····
གསུངས་པ་ཡིན་ནོ། །འོག་ཏུ་ཐུར་སེལ་གྱི་ལམ་དུ་ཐུར་སེལ་སྲུང་བར་བྱེད་པ་
ཀྵཿ་ཡིག་སྟེ། དུང་གི་ཕྱུག་རྒྱུ་ལ་གནས་པ་དེའི་སྟེང་དུ་ནི་རེ་ཕའོ། །ཆོས་ཀྱི་
འཁོར་ལོའི་དབུས་སུ་སོན་པའི་ཧཱུྃ་ཡིག་གི་འོད་ཟེར་རྣམས་ཀྱིས། གཡོན·····
དང་གཡས་ཀྱི་དབྱངས་དང་གསལ་བྱེད་རྣམས་དཀྲུགས་ནས་དབུ་མར་རབ་ཏུ······
འཇུག་པར་འགྱུར་ཏེ། དེའི་ཚེ་རིགས་ལྡན་མ་མཆོད་པའི་དབང་གིས་དུས་སུ''

---

[1] ཅོ་ནེ་ ༠ ཆ།

གང་ཚེ་མགྲིན་པར་[1] འདོད་ཆེན་གྱི། །
གཙུགས་ནི་ཟླ་བར་གནས་པ་ན། ༡༥ །
སངས་རྒྱས་རྣམས་ནི་དམ་པའི་སྐུ། །
དེ་ཚེ་ལོངས་སྤྱོད་རྫོགས་པར་བཤད། །
གང་ཚེ་རྡོ་རྗེའི་རྩེར་[2] གནས་པ། །
དེ་ཚེ་དེ་[3] ཡང་སྣ་རྩེ་རུའོ། ༡༦ །
གང་ཚེ་ལོངས་སྤྱོད་རྫོགས་པའི་སྐུ། །
ནུབ་པར་གྱུར་པ་དེ་ཡི་ཚེ། །

འཆི་བ་སླུ་བ་བྱས་ནས་རྣལ་འབྱོར་པ་རྡོ་རྗེ་འཆང་གི་སྒོམ་པ་ཆེན་པོ་ཐོབ་པར་འགྱུར་རོ། ༡༤–༡༦½ །

ད་ནི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་གནས་པ་ཡང་དག་པར་རྒྱུ་བའི་དབང་གིས་སྐུ་གསུམ་གྱི་རང་བཞིན་དུ་རྟོགས་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར། གང་ཚེ་མགྲིན་པར་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། གང་གི་ཚེ་མགྲིན་པར་ཆ་བཅུ་དྲུག་གི་རང་བཞིན་རོའི་རྣམ་པའི་ཟླ་བ་གནས་པ་དང་། དེ་བཞིན་དུ་སྣ་རྩེ་སྟེ། སྙིང་ག་དང་ལྟེ་བའི་རྩེ་མོ་དང་རྡོ་རྗེའི་རྩེ་མོ་ལ་ཡིན་པ་དེའི་ཚེ་བདེ་བ་ལོངས་སུ་རྫོགས་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར། ཟླ་བ་འདི་ནི་ལོངས་སྤྱོད་རྫོགས་པའི་སྐུའོ་ཞེས་བརྗོད་པར་བྱའོ། །དེ་ཁོ་ནའི་ཁྱད་པར་ལས། སངས་རྣམས་ཀྱི་སྡེ་ཚུང་པོ་རྣམས་ཀྱི་མཆོག་རང་རིག་པའི་སྐུར་ཤེས་པར་བྱའོ། །དེ་ཉིད་གང་ཞིག་རྡོ་རྗེའི་རྩེ་མོ་ལས་ཟླ་བ་ནུབ་པར་གྱུར་ཅིང་སྤྲུགའི་ནང་དུ་ལྷུང་བ་རྔངས་ཀར་གྱི་ཚད་དུ་གནས་པར་གྱུར་ཅིང་ཉི་མའི་དབུས་སུ་རབ་ཏུ་ཞུགས་པ་དེའི་ཚེ་འདིར་ནི་སྤྲུལ་པའི་སྐུ་ཞེས་བྱ་བའི་གྲངས་སུ་འགྲོའོ། །སངས་རྒྱས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་

---

[1] ཅོ་ནེ་༠ པ། [2] པེ་༠ སྣ་༠ ཅེར། [3] སྡེ་༠ ཅེ།

སྣ་གའི་ནང་དུ་ཕྱིན་དེ་ཡང་། །
ཡུངས་ཀར་ཙམ་དུ་རྣམ་བརྗོད་པ། ༡༩ །
ཉི་མའི་གཟུགས་སུ་ཡང་དག་བཤད། །
སྤྲུལ་པའི་སྐུར་ནི་བརྗོད་པ་སྟེ། །
སངས་རྒྱས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས། །
དེ་ཡིས་བསྐྱེད་ཅིང་འགྲོ་བའོ། ༢༠།
པདྨ་གར་གྱི་དབང་ཕྱུག་རྒྱལ། །
པདྨ་འབྱེད་པའི་འཁོར་པ་ཅན། །

དེའི་གདན་ཚོགས་གསུངས་ཏེ། དེའི་ཕྱིར་ཟླ་བ་དང་ཉི་མ་ཡང་དག་པར་སྦྱོར་བ་ལས། ཕུང་པོ་ལ་སོགས་པའི་རང་བཞིན་གྱིས་སངས་རྒྱས་དང་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་རྣམས་སྤྲོ་ཞིང་སྐྱེད་པར་བྱེད་དོ། །དེས་ན་འདི་ནི་སྤྲུལ་པའི་སྐུ་སྟེ་སོ་སོའི་སྐྱེ་བོ་ལྟ་བུ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་ལོངས་སྤྱོད་རྫོགས་པའི་སྐུ་ཉུབ་པར་འགྱུར་པ་ལས་སྤྲུལ་པའི་སྐུས་རེམས་ཅན་གྱི་དོན་བྱེད་དོ་ཞེས་བྱ་བར་རྣམ་པར་གཞག་གོ ༡༧–༢༠ །

འདི་ཉིད་ཉི་མའི་དབུས་སུ་གནས་ན་ཡང་། པདྨ་གར་གྱི་རང་བཞིན་དུ་བཤད་པ་ལ་འཇུག་གོ་ཞེས་རྟོགས་པར་བྱ་བའི་ཕྱིར། པདྨ་གར་དབང་…… རྒྱལ་པོ་སྟེ། །ཞེས་བྱ་བ་གསུངས་ཏེ། པདྨའི་གར་ནི་པདྨ་གར་ཏེ། དེ་ལ་འདོད་པ་རབ་ཏུ་འབྱུང་ངོ་ཞེས་པས། པདྨ་གར་གྱི་དབང་ཕྱུག་གོ །འབར་བར་གྱུར་པའི་ཉི་མ་དང་ཡང་དག་པར་སྦྱོར་བ་ལས་རྒྱའི་མཚལ་ལྟ་བུར་སྣང་བར་བྱེད་པའི་ཕྱིར་རྒྱལ་པོའོ། །དོན་དེ་ནི། པདྨར་སྣང་བའི་སྦྱོར་བ་ལས། །ཞེས་བྱ་བས་གསུངས་པ་ཡིན་ཏེ། པདྨར་སྣང་བ་ནི་རང་བྱུང་ངོ་། །དེ་དང་སྦྱོར་བ་ལས་གཅིག་ཏུ་གྱུར་པ་ཡང་པདྨར་སྣང་བའི་སྦྱོར་བ་ཅན་ཟླ་བ་ཞེས་བརྗོད་པར་བྱའོ། ༢༠½ །

སྤྲུལ་པ་ཡི་ནི་སྐུ་ཡི་གཟུགས། །
ཉི་མ་དེར་ནི་ཉུབ་པ་གང་། ༢༡ །
དེ་ཡི་རྫོགས་སངས་སེམས་ཞེས་བྱ། །
གོང་བུར་གྱུར་པས་རྟོག་པ་མེད། །
འཁོར་བའི་ལམ་དུ་[1]རྣམ་གཅོད་ཅིང་། །
སྤྲོས་པ་ཉེར་ཞི་ཞི་བ་སྟེ། ༢༢།

ལོངས་སྤྱོད་རྫོགས་པ་དང་སྤྲུལ་པའི་སྐུ་གསུངས་ནས། སྤྲུལ་པའི་སྐུ་ཡི་རང་བཞིན་ཅན། །ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་གསུངས་ཏེ། དེ་ཅི་སྟེ། སྤྲུལ་པའི་སྐུའི་མིང་ཅན་གྱི་ཉི་མ་དང་ཟླ་བ་ནུབ་པར་གྱུར་པ་དེ་ལ་རབ་ཏུ་ཞུགས་ཏེ། སྣང་བ་གཉིས་པོ་རོ་མཉམ་པ་ཉིད་ཐོབ་པ་ཡོད་ན། དེའི་ཐུང་ཆུབ······ སེམས་ཏེ། ཟླ་བ་དང་ཉི་མའོ། །གོང་བུར་གྱུར་པ་དྲི་མ་མེད་པ་ནི། གཉི་གའི་རྣམ་པར་རྟོག་པའི་རྟོག་པ་མེད་པ་སྟེ་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ཞེས་ཟེར་ཞེས་གཞན་དང་སྦྲེལ་ལོ། །ཅི་ལྟ་བུ་ཞེ་ན། སྣང་བ་གཉིས་དང་རོ་མཉམ་པ་ཉིད་ནི་འཁོར་བའི་ལམ་སྟེ། དེའི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་གཅོད་པ་གང་དུ་ཡིན་པ་དེ་ལ་དེ་སྐད་ཅེས··· བྱའོ། །ལོངས་སྤྱོད་རྫོགས་པ་དང་སྤྲུལ་པའི་སྐུ་ནི་སྤྲོས་པ་ཉེ་བར་ཞི་བ་གང་··· དུ་ཡིན་པ་དེའི་ཕྱིར། གཞི་མཐུན་པའི་བསྡུ་བའོ། །ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པ་ཉིད··· ཀྱི་ཕྱིར་ཞི་བའོ། །ཕན་ཚུན་འགལ་བའི་ཕྱོགས་གཉིས་པོ་སྤངས་པའི་ཕྱིར། གཉིས་གཉིས་མེད་པའོ། །རང་རིག་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་མཆོག་གོ །ཉོན་མོངས་པ་མེད་པའི་ཕྱིར་དག་པའོ། །རྡོ་རྗེ་ནི་སྟོང་པ་ཉིད་ཡིན་ལ། སེམས་དཔའ་ནི་སྙིང་རྗེ་སྟེ། དེའི་ངོ་བོ་ཡིན་པའི་ཕྱིར་ན་རྡོ་རྗེ་སེམས་དཔའི་རང་བཞིན་ནོ། ། ཐབས་རྣམ་པར་ཐར་པའི་སྒོ་གསུམ་དང་ཐབས་ལས་བྱུང་བ་རང་བཞིན་གྱིས····· འོད་གསལ་བའི་རྣམ་པར་ཐར་པའི་སྒོའི་རང་བཞིན་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་དཔལ་གྱི········

---

[1] རྣ. ནི།

གཉིས་མེད་མཆོག་ཏུ་དགའ་བའོ། །
རྡོ་རྗེ་སེམས་དཔའི་རང་བཞིན་ཉིད[1]། །
ཧེ་རུ་ཀ་དཔལ་ཞེས་བཤད་དེ། །
རྒྱུད་ནི་ཡོན་ཏན་རང་བཞིན་ཉིད། ༣༣ །
བགད་[2] དང་བལྟས་དང་ལག་བཅངས་ཀྱིས། །
རྒྱུད་[3] གསུམ་དུ་ནི་རྣམ་པར་གནས། །

ཙ་ཀའོ། །དེ་ཉིད་ནི་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ཞེས་བརྗོད་པར་བྱ་སྟེ། ཡིད་སྐྱོབ་པའི་ཕྱིར་དེ་ཉིད་སྔགས་སོ། འདོད་ཆགས་ལ་སོགས་པའི་ཉོན་མོངས་པའི་དྲ་བ་རྣྭ་ལྷ་བུར་ཟ་བའི་ཕྱིར། དེ་ཉིད་སྲིན་བུའོ། ༣༡–༣༣།

འོ་ན་རྣལ་འབྱོར་མའི་རྒྱུད་དུ་སྲིན་བུ་ཉིད་དུ་བསྟན་མོད། བྱ་བ་ལ་སོགས་པའི་རྒྱུད་རྣམས་སུ་མ་ཡིན་པའི་ཕྱིར། ཅི་ལྟར་ན་ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ནི་ཁྱབ་པར་བྱེད་པ་པོ་ཞེས་བྱ་ཞེ་ན། །དགོད་དང་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་བརྗོད་པར་བྱ་སྟེ། བྱ་བ་དང་སྤྱོད་པའི་རྒྱུད་རྣམས་སུ་ཐབས་དང་ཤེས་རབ་རྣམས་ཕན་ཚུན་དུ་དགོད་པའོ། །རྣལ་འབྱོར་གྱི་རྒྱུད་དུ་ནི་ལྟ་བའོ། །རྣལ་འབྱོར་དང་སྤྱོད་པ་གཉིས་ཀའི་རྒྱུད་རྣམས་སུ་ལག་པ་འཛིན་པ་སྟེ། འདི་རྣམས་ནི་ཉེ་བར་མཚོན་པའོ། །རྣལ་འབྱོར་ཆེན་པོའི་རྒྱུད་རྣམས་སུ་འཁྱུད་པ་དང་། རྣལ་འབྱོར་མའི་རྒྱུད་དུ་གཉིས་གཉིས་སོ། །དེ་གསུངས་པ།

དགོད་དང་ལྟ་བ་དག་གིས་སམ། །
འཁྱུད་དང་དེ་བཞིན་གཉིས་གཉིས་ཏེ། །
རྒྱུད་ནི་བཞི་པོ་རྣམས་ཀྱི་ཡང་། །
དགོངས་པའི་སྐད་ཀྱིས་བསྟན་པ་ཡིན། ། ཞེས་སོ།།

༡ རྒྱ་དཔེར༌། (ཤྲཱི་བཛྲ་སཏྭ་རུ་པ་ཀམ) དཔལ་ (ལྡན) རྡོ་རྗེ་སེམས་དཔའི་གཟུགས།། ༢ སེ༌། གད།
༣ སྟེ༌། རྒྱུ།

འདོད་ཆགས་ཉིད་དང་ཆགས་བྲལ་[1]དག།
སྤངས་ནས་ཡོན་དན་གནས་པའོ། ༢༣།
ཙ་ནི་ཐམས་ཅད་མཉམ་སྦྱོར་བ། །
མཁའ་འགྲོ་མ་ཡི་དྲ་བ་སྡོམ། །
གསང་བ་ཞེས་བྱ་ས་ཡི་ཁམས། །
མཆོག་ནི་དེ་བཞིན་རྩ་ཡིན་ནོ། ༢༤ །
དགྱེས་[2]པ་ལ་ནི་མེ་རུ་བ་ཤད། །
རླུང་ནི་ཐམས་ཅད་བདག་ཉིད་གནས། །

དེ་ལྟར་ན་འདོད་ཆགས་དང་ཆགས་བྲལ་དེ་གསུམ་པོ་ཟློས་ནས་རྒྱུད་ཐམས་ཅད་ཉིད་དུ་སྦྱིན་བྱུར་རྣམ་པར་གཞག་པའི་ཕྱིར། ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ཁྱབ་པར་བྱེད་པ་པོ་ཉིད་དོ་ཞེས་པས་སྐྱོན་མེད་དོ། ༢༢–༢༣ །

ཆོས་ཀྱི་སྐུ་དཀྱིལ་འཁོར་གྱི་འཁོར་ལོའི་རང་བཞིན་ཉིད་དུ་བསྟན་པའི་ཕྱིར། ཙ་རྣམས་ཐམས་ཅད་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། ཙ་ཐམས་ཅད་ཀྱིས་མཉམ་པར་སྦྱོར་བ་གང་གི་ཡིན་པ་དེ་ནི་ཙ་ཐམས་ཅད་མཉམ་པར་སྦྱོར་བ་སྟེ། དཔའ་བོ་ཉི་ཤུ་ཙ་ངཞི་དང་། དེ་རྣམས་ཀྱིས་ཉེ་ངར་མཆོན་པའི······ མཁའ་འགྲོ་མ་གང་ཡིན་པ་འདི་རྣམས་སོ། །དེ་རྣམས་ཀྱི་དྲ་བ་ནི་ཚོགས······ ཏེ། དེར་སྡོམ་པ་སྟེ[3]། དོན་དམ་པའི་བྱང་ཆུབ་ཀྱི་སེམས་ཀྱི་རང་བཞིན······ ཉིད་དོ་ཞེས་བྱ་བའི་དོན་ཏོ། །ཆོས་ཀྱི་སྐུ་ནི་རྣམ་པ་ཐམས་ཅད་པ་ཉིད་དུ······ བསྟན་པའི་ཕྱིར། གསང་ཆེན་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། གང··· ཞིག་རྒྱུད་ཀྱི་རྒྱལ་པོ་འདི་རྣམས་སུ་གསང་ཆེན་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་ནི········ དགོངས་པའི་སྐད་དེ། གང་ཞིག་ས་དང་ཆུ་དང་མེ་དང་རླུང་རྣམས་དང་། ཕྱི་

---

[1] སེ་ ◦ བྲལ་བ་དག [2] ཅོ་དབེར་ ◦ གསང་བ། [3] ཅོ་དབེར་ ◦ (༥༥) དེ་ཉིད་མང་འདུག

དག་ཏུ་བཞུགས་པ་ཞེས་བརྗོད་པ། །
སངས་རྒྱས་ཀུན་བདག་སྨོས་པའོ། ༢༦ །

ཡང་ན་མེ་ལོང་ལྟ་བུའི་ཚུལ། །
དེ་བཞིན་དུ་ཡང་མཉམ་པ་ཉིད། །
སོ་སོར་རྟོག་པ་ཤེས་པ་དང་། །
དེ་བཞིན་བྱ་བ་ནན་ཏན་དང་། ༢༥ །
དག་ཏུ་བཞུགས་པ་འདི་རབ་གསུངས[1]། །
ཤིན་ཏུ་རྣམ་དག་རང་བཞིན་ནོ། །

རོལ་རྣམས་དང་། ནང་རྣམས་དང་། འཁོར་ལོ་བཞི་རྣམས་སུ་བརྗོད་པར་བྱ་སྟེ། སངས་རྒྱས་ཐམས་ཅད་ཀྱི་བདག་ཉིད་ཀྱི་སྨོས་པ་དང་། བདེ་བ་ཆེན་པོའི་རང་བཞིན་དུ་རྣམ་པར་གནས་པ་ཆོས་ཉིད་ཀྱི་གཟུགས་ཡིན་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ། ༢༤–༢༦ །

ཡང་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས། དེ་ཉིད་མེ་ལོང་ལྟ་བུ་ལ་སོགས་པའི་སངས་རྒྱས་ལྔའི་རང་བཞིན་དུ་གསུངས་ཏེ། དེ་ལྟར་ན། སྣ་ཚོགས་པའི་ཤེས་བྱའི་དཀྱིལ་འཁོར་གཟུགས་བརྙན་དུ་གྱུར་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར། དེ་ཉིད་མེ་ལོང་ལྟ་བུའི་ཡེ་ཤེས་སོ། །ཀུང་མེད་ལ་སོགས་པ་རྣམས་ཤིན་ཏུ་གཅིག་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར། དེ་ཉིད་མཉམ་པ་ཉིད་ཀྱི་ཡེ་ཤེས་སོ། །དེ་ཉིད་དོན་དམ་པར་སོ་སོར་དཔྱོད[2]་པའི་ཕྱིར། སོ་སོར་རྟོག་པའི་ཡེ་ཤེས་སོ། །དེ་ཉིད་ལས་འགྲོ་བའི་དོན་རབ་ཏུ་འཇུག་པའི་ཕྱིར། དེ་ཉིད་བྱ་བ་ནན་ཏན་གྱི་ཡེ་ཤེས་སོ། །ཆོས་ཉིད་ཀྱི་གཟུགས་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་འདི་ནི་ཆོས་ཀྱི་དབྱིངས་ཀྱི་ཡེ་ཤེས་སོ། ༢༥–༢༥½ །

---

[1] ཅོ་ནེ་° སྡེ་° བསྒྲུངས། [2] སྡེ་° ཅོ་ནེ་° སྒྲོན།

ཡང་ན་རྣམ་སྣང་མཛད་ཉིད་དང་།
དེ་བཞིན་རིན་ཆེན་འབྱུང་བ་དང་། ༢༨

ཡང་ན་འོད་དཔག་མེད་པ་དང་།
ཡང་ན་དོན་ཡོད་དག་བཞུགས་ཏེ།
གོང་བུ་བདུད་རྩི་ལྷ་དངོས་ནི།
ཐིག་ལེའི་གཟུགས་ཏེ་ཡིད་རང་བཞིན། ༢༩

ཤིན་ཏུ་རྣམ་དག་ཡེ་ཤེས་ཆེ།
ལྷ་མོ་ཀུན་གྱི་རང་བཞིན་ཉིད།
རྡོ་རྗེ་སེམས་དཔའ་ཞེས་བཤད་ཅིང་།
བདེ་བ་མཆོག་ཅེས་བརྗོད་པ་ཡིན། ༣༠

ཡང་ན་རྣམ་པར་སྣང་མཛད་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་འདི་ཉིད་སངས་རྒྱས་ལྷའི་རང་བཞིན་ཉིད་དུ་གསུངས་ཏེ། དེ་ལྟར་ནི། རང་རིག་པའི་རྣམ་པས་སྣང་བར་མཛད་པའི་ཕྱིར། དེ་ཉིད་རྣམ་པར་སྣང་མཛད་དོ། །འདོད་ཆགས་ལ་སོགས་པ་རྣམས་ཀྱིས་མི་བསྐྱོད་པའི་ཕྱིར་དེ་ཉིད་མི་བསྐྱོད་པའོ། །འདི་ལས་ལོངས་སྤྱོད་རྫོགས་པ་དང་སྤྲུལ་པའི་རིན་པོ་ཆེ་འབྱུང་བའི་ཕྱིར། རིན་ཆེན་འབྱུང་ལྡན་ནོ། །ཡེ་ཤེས་ཀྱི་རང་བཞིན་གྱི་དཔག་ཏུ་མེད་པའི་འོད་གང་ཡིན་པ་འདི་ནི་འོད་དཔག་མེད་དོ། །གང་ལས་སེམས་ཅན་གྱི་དོན་གྱི་བྱ་བ་མ་ལུས་པ་གྲུབ་པ་དེ་ནི་དོན་ཡོད་གྲུབ་པའོ། །དོན་དམ་པའི་རང་བཞིན་དུ་གསུངས་ནས་བདུད་རྩི་ལྷ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་ཀུན་རྫོབ་ཀྱི་རང་བཞིན་དུ་གསུངས་ཏེ། གསང་ཆེན་ལ་སོགས་པ་ལྷ་རྣམས་བདུད་རྩི་ལྷའི་རང་བཞིན་ཡང་ཡིན་ལ། གོང་བུ་དང་ཐིག་ལེའི་རྣམ་པ་ནི་ནམ་མཁའ་ལྷའི་དབུས་སུ་རོ་མཉམ་པ་ཉིད་དུ་བཞུགས་པའོ། །ཀུན་རྫོབ་ཏུ་ཡང་རང་གི་ལུས་ལ་གནས

རང་བྱུང་གི་ནི་ངོ་བོ་ཉིད། །
ཆོས་ཀྱི་སྐུར་ནི་རབ་ཏུ་གྲགས། །
འདི་ཡི་ཤེས་རབ་ལྷན་ཅིག་སྐྱེས། །
དེར་བརྟེན་གཟུགས་འཆང་མི་གནས་པ། ༣༡ །

ལས་[1]ཀྱི་རླུང་གིས་སྤྲར་བ་ཡིས། །
ལྟེ་བའི་དཀྱིལ་འཁོར་དུ་ནི་འབར། །

པའི་ཡེ་ཤེས་ཆེན་པོ་ནི་ཤིན་ཏུ་རྣམ་པར་དག་པའི་ཡེ་ཤེས་སྒྲུ་སངས་རྒྱས······
རྣམས་གསུང་བར་མཛད་དོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཚིག་གི་ལྷག་མའོ། །རྡོ་རྗེ་སེམས···
དཔའ་ཞེས་བྱ་བས་དེ་ཉིད་ཀྱི་ཁྱད་པར་གསུངས་ཏེ། སྟོང་ངེས་པར་ཧྲུས་པའི་
མཆོག་ཏུ་བདེ་བའི་རང་བཞིན་རྒྱུ་དང་རྐྱེན་ལ་མི་ལྟོས་པ་གང་ཡིན་པ་ནི་ཆོས་ཀྱི་
སྐུའོ། །ཞེས་བརྗོད་པར་བྱ་སྟེ། འདིས་ནི་སྟོང་ཡང་དོན་དམ་པའི་རང······
བཞིན་ཉིད་དུ་རྟོགས་པར་བྱས་པ། བཅོམ་ལྡན་འདས་དཔལ་ཧེ་རུ་ཀ་སྐུ······
གསུམ་གྱི་རང་བཞིན་དུ་བསྟན་ནས། དེ་དང་དབྱེར་མེད་པའི་བཅོམ་ལྡན······
འདས་མ་ཕག་མོ་བསྟན་པའི་ཕྱིར། འདི་ཉིད་ཤེས་རབ་ཅེས་བྱ་བ་ལ·········
སོགས་པ་གསུངས་ཏེ། འདི་ཉིད་ཀྱི་སྟེ། ལུས་ཀྱི་བདག་ཉིད་ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་
པའི་རང་བཞིན་དཔལ་ཧེ་རུ་ཀའི་ལྟེ་བའི་དཀྱིལ་འཁོར་དུ་འབར་བ་སྟེ། བསྒྲུབ་
པར་བྱ་བ་དང་། སྒྲུབ་པར་བྱེད་པའི་སྦྱོར་བ་ལས་སྐྱེས་པའི་ལས་ཀྱི་རླུང་གིས་
ཡང་དག་བསྐྱེད་པའི་མེའི་གཟུགས་ཅན་མར་ཡང་དག་པར་རིག་པ་གང་ཡིན······
པ་དེ་ཉིད་ནི་འདིའི་ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པའི་ཤེས་རང་མ་རང་བཞིན་གྱིས་གྲུབ་པ······
ཟླ་བ་དང་ཟླ་བའི་འོད་ལྟ་བུའོ། །དེ་ཉིད་ནི་བཱ་རཱ་ཧཱི་སྟེ། བཱ་ཡིག་དང···
རཱ་ཡིག་ལས། རླུང་དང་ཕྱིན་ཟ་དག་གིས་ཧཾ་ལས་རམཧཱི་སྟེ་དགཱའ་བར······

[1] ཅོ་ནེ་ ༠ སྣེ་ ༠ ལུས།

དེ་ལ་ཕག་མོར་རྣམ་པར་བཞད། །
དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེ་ཉིད་དུ་བརྗོད། ༣༡ །
སྐྲ་[1]ཡི་རྩེ་མོ་བརྒྱ་སྟོང་ཆ[2]། །
གློག་འགྱུ་བ་དང་མཚུངས་པའི་འོད། །
ལྷའི་རྣལ་འབྱོར་དུས་སུ་ནི། །
བ་སྤུའི་ཁུང་བུའི་རྩེ་མཚམས་[3]ནས། ༣༢ །
ཕྱུང་སྟེ་ཕྱོགས་རྣམས་ཐམས་ཅད་དུ། །
ལྷ་དང་ལྷ་མིན་སྐྲིགས་མཇུབ་བྱེད། །

བྱེད་པ་འཇིག་ཀོ་ཞེས་པས་བར་ཀི་ཡིན་གྱི་ཕག་མི་གདོང་པ་ནི་མ་ཡིན་ནོ།། དཔྱིད་ནི་ཧཱུྃ་ཡིག་ལ་སོགས་པ་ཡིན་ལ། ཐིག་ལེ་ལྟ་བུ་ཡིན་པས་ཐིག་ལེ་སྟེ། དེ་ཉིད་པ་ན་ཡང་དག་པར་ཆོས་པའོ་ཞེས་གོང་དུ་བཤད་པ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་·········རོ། ༢༨—༣༡ །

སྐྲ་ཡི་རྩེ་མོ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་འདིའི་ཚད་གསུངས་ཏེ། གང་ཞིག་སྐྲ་ཡི་རྩེ་མོ་སྟོང་ཕྲག་བརྒྱ་སྟེ་འབུམ་གྱི་ཚད་ཀྱི་ཆ་ཤས་[4]ཏེ། དེ་ལྟ་བུའི་ཆ་ཤས་ཀྱི་རྣམ་པ་གང་གི་ཡིན་པ་དེ་ལ་དེ་སྐད་ཅེས་བྱའོ། །འདིས་ནི། འདིའི་ཤིན་ཏུ་ཕྲ་བ་ཉིད་རྟོགས་པར་བྱས་པ་ཡིན་ཏེ། རྣལ་འབྱོར་པའི་ཡེ་ཤེས་···ཀྱི་བསྒྲོད་པར་བྱ་བ་ཉིད་ཀྱི་ཕྱིར་རོ། །ཡང་གསུངས་པ།

པད་རྩའི་སྐྱུད་པ་ལྟ་བུ་རབ་ཕྲའི་གཟུགས་ཅན་མ། །
བསྐལ་མེ་སྟོན་སོང་བདེ་ཆེན་གནས་ནི་ཛཱ་ སྲིད་པར། །
ཁྱབ་ཅིང་གནས་གང་སྐྱེས་བུ་ཆེན་པོས་ཉེར་ཐོབ་པ། །
དེ་ནི་ཀེ་ཙ་ཀ་མཆོག་ཤེས་རབ་མར་བརྗོད་དོ། ། ཞེས་སོ།།

---

༡ སེ་ ◦ སྐུ། ༢ སེ་ ◦ ཆེ། ༣ སྡེ་ ◦ མཚུངས། ༤ སྡེ་ ◦ ཁ་ཆས།

སྙིང་ག་ཆོས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་དང་། །
ལོངས་སྤྱོད་འཁོར་ལོ་བསྲེགས་ནས་ནི། ༢༨ །

སྣ་ཡི་བུ་ག་གཡས་པ་ནས། །
ཀུན་ནས་ངེས་པར་བྱུང་ནས་ནི། །
མཛོད་སྤུ་ཙ་ནི་གནས་པ་ཡི། །
བུ་ག་ནས་ནི་ཕྱོགས་བཅུ་ཡི། ༢༤ །
སངས་རྒྱས་བྱང་ཆུབ་སེམས་དཔའ་ཡིས། །
ཞངས་ཀྱི་བུ་ག་གཡོན་པ་ནས། །

གློག་འཁྲུ་བ་དང་མཚུངས་པའི་འོད། ཅེས་བྱ་བ་ནི། འཇིགས····
པའི་གླིང་པའི་འོད་ལྟ་བུའོ། །ལྷ་ཡི་རྣལ་འབྱོར་དུས་སུ་ནི། །ཞེས་བྱ་བ་ལ་
སོགས་པས་དེའི་བྱེད་པ་པོ་གསུངས་ཏེ། ལྷའི་རྣལ་འབྱོར་ཏེ། ཤེས་རབ་དང་
ཐབས་གཉིས་སྦྱོར་བ་དེའི་དུས་སྐབས་སུའོ། །དེ་ཉིད་ནི་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་མེ་འབར་
བའོ། །རྣལ་འབྱོར་པས་བ་སྤུའི་བུ་གའི་མཚམས་ཐམས་ཅད་ནས་འཐོན་ཏེ།
ལྷ་དང་ལྷ་མིན་ཏེ། ཕུང་པོ་དང་། དབང་པོའི་རྣམ་པར་རྟོག་པ་བསྐྱིགས····
པར་བྱས་ནས། ཆོས་དང་ལོངས་སྤྱོད་རྫོགས་པའི་འཁོར་ལོའི་མདུད་པའི···
གཟུགས་ཀྱི་ཕུང་པོ་དང་ཁམས་ཀྱི་རྣམ་པར་རྟོག་པའི་བུད་ཤིང་བསྲེགས་ནས····
གཡས་ཀྱི་སྣ་བུག་ནས་འཐོན་ཏེ། མཛོད་སྤུར་སོན་པའི་བུག་པ་ནས་ཕྱོགས···
བཅུར་གནས་པ་དེ་རྣམས་ཀྱི་སྤྱི་བོའི་བུག་པར་ཕྱུགས་ནས། དེ་རྣམས་ཀྱི······
འཁོར་ལོ་བཞི་པ་བསྲེགས་ཏེ། སླར་ཡང་སྣ་བུག་གཡོན་ནས་འཐོན་ཏེ། སྤྱི་
བོའི་བུ་ག་ནས་ཕྱུགས་ནས་སྔར་བཞིན་དུ་བསྲེགས་པས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ··
རྣམས་འཕེལ་བར་བྱེད་དོ། །ལྟེ་བའི་དཀྱིལ་འཁོར་དུ་བསྡུན་པར་འགྱུར་ཞིང···
རྣམ་པར་ཐིམ་པར་བྱེད་དོ། །ཡང་གསུངས་པ། བསྒྲུབ་བྱ་དང་སྒྲུབ་བྱེད··

སྤྲི་ཛོར་ཞུགས་ནས་འཁོར་ལོ་ནི། |
ཡང་དག་བསྒྲིགས་ནས་རྣམ་སྦྱང་སྟེ། ༢༦ |
སྔོན་སྨྲས་ཉིད་ཀྱི་བྲུ་ག་ནས། |
སྤྲི་བོ་ནས་ནི་ཡང་ཞུགས་པས། |
སངས་རྒྱས་རྣམས་ནི་བསྒྲིགས་པ་ལས། |
སླར་ཡང་དགའ་བ་བསྐྱེད་བྱ་སྟེ། |
ལྟེ་བའི་དཀྱིལ་འཁོར་དུ་འོངས་ནས། |
སྔོན་བཞིན་དུ་ནི་གནས་པར་གྱུར། ༢༧ |

ཡང་དག་པར་སྦྱོར་བ་ལས་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་མེ་འདི་ནི། ལྟེ་བའི་དཀྱིལ་འཁོར་དུ་ཐིམ་པར་བྱེད་དེ། འབར་བའི་སྣང་བ་རྣམས་ཀྱིས་དམ་ཚིག་གི་འཁོར་ལོར་གནས་པའི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་རྣམས་བསྒྲིགས་ནས། འོངས་སྤྱོད་རྫོགས་པའི་འཁོར་ལོར་གནས་པའི་ཐབས་ལ་ལན་གསུམ་དུ་བསྐོར་ཏེ། མཛོད་སྤུར་སོང་ནས་གནད་ཀྱི་སྒོ་ཕྱེ་སྟེ། ཨོཾ་ཊྱཱན་གྱི་མིང་ཅན་ནས་ཕྱོགས་བཅུར་གནས་པའི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་རྣམས་ཀྱི་ཛཱ་ལནྡྷ་རའི་མིང་ཅན་གསེར་གྱི་སྒོ་ནས་ཞུགས་ཏེ། སྔོན་དུ་དེ་རྣམས་ཀྱི་འཁོར་ལོ་བཞི་པོ་བསྒྲིགས་ནས། སྤྱིར་བཤད་པའི་སྒོ་ནས་འོ་མའི་རྒྱུན་གྱིས་སོང་ནས་བསྒྲིགས་པའི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་རྣམས་དགའ་བ་བསྐྱེད་པར་བྱེད་དོ་ཞེས་སོ། །རྒྱུད་ཀྱི་རིམ་པ་དང་ཡེ་ཤེས་ཀྱི་རིམ་པ་སྤྱད་པར་བྱེད་དེ[1]།

གཡོན་དང་གཡས་པའི་ལོགས་སུ་ནི། |
དབྱངས་ཡིག་བཅུ་གཉིས་ཡང་དག་གནས། |

ཞེས་བྱ་བ་འདིས་ནི་སྔགས་ཀྱི་རིམ་པའོ། །ཆོས་ཀྱི་སྐུ་རྣམ་པར་དཔྱོད་པ་ན་གསང་བའི་རིམ་པའོ། ༢༢–༢༧ |

---

༡ རྒྱ་དཔེར་。 (ཨུཀྟེ) བརྗོད་པ་ཡང་༡༦ག

[1]དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེར་ཆོས་དང་ལོངས་སྤྱོད་རྫོགས་པ་དང་སྤྲུལ་པ་དང་སྐུ་གསུམ་མཚོན་པ་སྟོན་དུ་འགྲོ་བ་དཔལ་ཧེ་རུ་ཀ་ནི། དཔྱིད་ཀྱི་རྡོ་རྗེ་ཕག་མོ་ཐིག་ལེར་བརྗོད་པ་དང་། འགྲོ་བ་དང་འོང་བ་དང་རྒྱུད་དང་སྔགས་དང་ཡེ་ཤེས་དང་། གསང་བའི་རིམ་པ་དང་། སྤྲུལ་པ་དང་ལོངས་སྤྱོད་རྫོགས་པ་དང་ཆོས་དང་བདེ་བ་ཆེན་པོའི་འཁོར་ལོ་[2]པདྨ་བཞི་པོ་དང་། དབྱངས་ཡིག་[3]བཅུ་གཉིས་དང་། ཡི་གེ་སུམ་ཅུ་རྩ་བཞིའི་རང་བཞིན་དུ་དུས་གསུམ་དུ་བཞུགས་པའི་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་རྒྱས་པར་[4]བསྟན་པ་སྟེ་བཅུ་པའོ། །

ཉེ་བར་བསྡུ་བ་གསུངས་པ། དེ་ལ་སྐུ་གསུམ་གྱིས་འཁྲུད་པ་ལ་ནི། འཁོར་ལོ་བཞིར་བཤད་པ་དང་། རླུང་བ་གཉིས་སུ་ངེ་བཤད་པ་དང་། རོ་མཉམ་པ་ཉིད་དུ་རྟོགས་པར་བྱས་པས་གསུངས་པ་ཡིན་ནོ། །ནད་དང་ཐིག་ལེ་ཕྲད་པར་བཤད་པ་ནི། ཧེ་རུ་ཀ་དང་རྡོ་རྗེ་ཕག་མོ་དག་དཔྱིད་དང་ཐིག་ལེར་བརྗོད་ཅིང་གསུངས་སོ། །འགྲོ་བ་དང་འོང་བའི་སྐབས་ནི། དེ་དག་གི་ཡང་དག་པར་སྦྱོར་བ་གསུངས་སོ། །སྔགས་དང་རྒྱུད་དང་ཡེ་ཤེས་དང་གསང་བའི་རིམ་པ་བཤད་པ་ནི།

གཡོན་དང་གཡས་པའི་ལོགས་སུ་ནི། །
དབྱངས་ཡིག་བཅུ་གཉིས་ཡང་དག་གནས། །

ཞེས་བྱ་བའི་ཚིག་འདི་དང་། དེ་བཞིན་དུ། འདི་ཉིད་ཤེས་རབ་ལྡན་ཅིག་སྐྱེས། །ཞེས་བྱ་བ་ནས་བཟུམས་ཏེ། འཁོར་ལོ་ནི། ཡང་དག་བསྒྲིགས་ནས་ངེས་འབྱུང་སྟེ། །ཞེས་བྱ་འདི་མཐར་ཐུག་པའི་ཚིག་དང་། དེ་བཞིན་དུ།

བསྒྲིགས་པ་ཉིད་ཀྱི་སངས་རྒྱས་རྣམས། །
སླར་ཡང་དགའ་བ་སྐྱེད་པར་བྱེད། །

༡ རྒྱ་དཔེར། (ཤྲཱི) དཔལ། ༢ རྒྱ་དཔེར། (ཀ་ཏ) ལོར་སོན་པ། ༣ སྣར། སྡེ། ཡི་གེ
༤ རྒྱ་དཔེར། རྒྱས་པར་མི་གསལ།

གང་ཞིག་རལ་གྲི་དང་ནི་མིག་སྨན་རྐང་པ་བྱུག་པ་རི་ལུ་ས་འོག་
གནོན་སྒྲིན་མོ། །
འཛིག་རྟེན་གསུམ་གྱི་ཁོངས་ན་སྤྱོད་པའི་མདོ་རྒྱུད་རྟོགས་གནས་
ལས་ཀྱི་[1]རྗེས་འགྲོ་དངོས་གྲུབ་རྣམས། །
གང་ཞིག་ཐམས་ཅད་དུ་ནི་རྫུ་འཕྲུལ་ཆེ་བ་རང་གནས་འདོད་པ་དམ་
པ་ལྷ་ལྡན་པ། །
དེ་དག་ཐམས་ཅད་དཔྱོད་ཀྱི་ཐིག་ལེའི་རྣལ་འབྱོར་མཐུ་སྟོབས་ལས་ནི་
བྱུང་བར་བསྟན། །

ཅེས་བྱ་བ་འདི་དང་།

ལྟེ་བའི་དཀྱིལ་འཁོར་དུ་འོངས་ནས། །
སྔ་མ་བཞིན་དུ་གནས་པར་འགྱུར། །

ཞེས་བྱ་བ་འདྲིས་རིམ་པ་བཞི་པོ་སྔགས་དང་རྒྱུད་དང་ཡེ་ཤེས་དང་གསང་བ་རྣམས་བཤད་ཅིང་བསྟན་པ་ཡིན་ནོ། །དེ་བཞིན་དུ་སྤྲུལ་པ་ལ་སོགས་པའི་འཁོར་ལོ་བཞི་པོ་ལ། གང་ཞིག་དབྱངས་ལྷ་ལ་སོགས་པ་རྣམ་པར་དགོད་པ་དང་བསྡུས་ནས། ཨཱ་ལི་ཀཱ་ལི་གཉིས་པོ་ཉིས་འགྱུར་དུ་བསྒྱུར་བ་དང་། ཀྵཱུ་ཡིག་ལ་སོགས་པའི་ས་བོན་ལྷ་བྲི་དང་མ་ནིང་གི་ས་བོན་རྣམ་པར་དགོད་པ་དང་། ཚངས་པ་རིང་པོ་རྣམ་པར་དགོད་པ་དང་། ཨཱ་ལི་སུམ་ཅུ་རྩ་གཉིས་ཀྱིས་ཡོངས་སུ་བསྐོར་ངའི་གཞོམ་དུ་མེད་པའི་ཡི་གེ་རྣམ་པར་དགོད་པ་རྣམས་ནི།

སྤྲུལ་པའི་འཁོར་ལོ་ཡི་དབུས་སུ་ནི། །
སྡེ་ཚན་བརྒྱད་ཀྱིས་ཡོངས་སུ་བསྐོར། །
ཡི་གེ་རྣམས་ཀྱི་མཆོག་གཟུགས་ཀྱིས། །
ཨ་ནི་ཡི་གེ་དམ་པའོ། །

---

༡ སྣ་༠ ཀྱིས།

སྤྲོད་པའི་བརྟུལ་ཞུགས་པ་དཔལ་ནག་པོ་ཞེས་བརྗོད་པས། བླ་མའི་མན་ངག་ཞུས་ནས་རྗེ་བཙུན་དཔལ་ཧེ་རུ་ཀའི་བཀའ་ཡང་མིག་ལམ་དུ་[1]གྱུར་པ་རྟོགས་ཏེ། དཔལ་འཁོར་ལོ་སྡོམ་པའི་མན་ངག་ལས་ཕྱི་རོལ་དང་མཐུན་པ···· ནང་གི་ཚུལ་ལས་རང་བཞིན་བསམ་གཏན་གྱིས་གསལ་བར་བྱ་སྟེ་བློ་གྲོས་དམན་པས་གོ་བར་བྱ་བའི་ཕྱིར། དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེ་ཞེས་བྱ་བའི་མཚོན་པ་སྟེ། རྡོ་རྗེ་ཕག་མོ་དང་དཔྱིད་དཔལ་ཧེ་རུ་ཀའི་བཀའ་ལུང་གིས་བསྟན་པ་ལས་དཔྱིད་ཀྱི····· ཐིག་ལེ་ཞེས་བྱ་བ་དེ་བརྗོད་པའི་གཞུང་རྫོགས་སོ།། ༎

ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པའི་གཞུང་གིས་གསུངས་པ་ཡིན་ནོ།།

མདོར་བསྟན་པ་ལ་ལྟོས་ནས་རྒྱས་པར་བསྟན་པ་སྟེ། མདོར་བསྟན་པ་ནི་ཡང་དག་པར་བསྡུས་པས་ཁོང་དུ་ཆུད་པར་བྱེད་པའོ། །རྒྱས་པར······ བསྟན་པ་ནི། རྒྱ་ཆེན་པོས་སོ་ཞེས་བྱ་བ་ནི་ཚིག་གི་ཕྲག་མ་སྟེ། རྒྱས་པར་བསྟན་པ་འདི་རྣམས་ནི་ལེའུ་ཞེས་བྱ་བའི་དོན་ཏོ། གང་ཞིག་རལ་གྲི་དང······ མིག་ཅེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པའི་དངོས་གྲུབ་ཆེན་པོ་བརྒྱད་པོ་རྣམས་ཀྱི་དོན་ནི··· སྔར་གསལ་བར་བཤད་པ་དེ་རྣམས་ཏེ། དེ་རྣམས་སྔར་གསུངས་པའི་དཔྱིད··· ཀྱི་ཐིག་ལེའི་སྒྲུབ་པའི་ཐབས་ཀྱི་ཆོ་ག་རྫོགས་པ་ལས་འགྱུར་རོ། །ཞེས······· བསྒྲུབ་པར་བྱས་པ་ཡིན་ནོ།།

དབང་པོ་ཞན་པའི་སེམས་ཅན་ཡོངས་སུ་གཟུང་བའི་ཕྱིར་[2]དང་། འདི་ནི་དབང་པོ་རྣོན་པོ་འི་གང་ཟག་གི་ཡུལ་ཡིན་ནོ་ཞེས་བསྟན་པའི་ཕྱིར། མདོར་བསྟན་པ་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ་གསུངས་པ་ཡིན་ཏེ། མདོར་བསྟན་པ་ལས་ན། བླ་མའི་ཞབས་ཀྱི་བཀའ་དྲིན་ཏེ། དེའི་ཞབས་ཀྱི་ཆུ་སྐྱེས་ཀྱི་རྡུལ་རིན་པོ་ཆེ་སྟོན་པ་པོ་བླ་མ་ཡང་དག་པར་རྟོགས་པའི་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་ཀྱི་རིན་པོ་ཆེ་རྣམ་པར་འབྱེད་པ་ལ་མཁས་པ་རྣམས་ཀྱིས་ཡང་དག་པར་བརྒྱན་པའི་མཁས་པ་[3]གང་ཡིན་པའོ།།

---

༡ རྒྱ་དཔེར་༎ (སྭཔྣ་ག་ཏ་མ་ཏྲ་ཡཾ) མི་ལམ་དུ་རྟོགས་པ་འཛིན་པས།
༢ རྒྱ་དཔེར་༎ (ཡ་དི་ཏྲེ་ཏ) དོར་བའི་ཕྱིར། ༣ རྒྱ་དཔེར་༎ (མ་ཎྜི་ཏཱཿ) བརྒྱན་པ།

མཁས་པ་དམ་པ་བློ་གྲོས་བཟང་། །
གྲགས་པའི་ཞལ་སྔ་ནས་དང་ནི། །
སྨྲ་བསྒྱུར་མར་པ་ཡིད་གཞུངས་བློ། །
ཆོས་ཀྱི་དབང་ཕྱུག་ཅེས་བྱས་བསྒྱུར། །
རྒྱུད་རྒྱལ་བདེ་མཆོག་སྒྲུབ་ཐབས་ཀྱི། །
གཙུག་གི་ནོར་བུ་བ་དན་ཏུ[1]། །

དེ་བཞིན་དུ་གང་ཡང་གཞན་དུ་རྒྱས་པར་བསྟན་པ་དང་། ཤེས་རབ་སའི་མངོན་པར་བརྗོད་པ་དང་། སློབ་དཔོན་དེའི་བཀའ་དྲིན་ལས་ལྷན་ཅིག་སྐྱེས་པ་སྦྱོང་བས་ན། ཀང་པ་སོ་སོ་དང་། ཆོག་སོ་སོའི་ངག་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་འགྱུར་བ་མེད་པར་སྣང་བར་མཛད་པའི་བཅོམ་ལྡན་འདས་དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་རྒྱལ་བ་མཆོག་རྣམས་ཀྱིས་ཡང་དག་པར་རོལ་པར་མཛད་པ་འབད་པ་དང་བཅས་པས་ཉེ་བར་ཐོབ་པ་རྣམས་ཏེ། གང་ཁོ་ན་སྦྱོང་བ་དེ་ཁོ་ན་མདོ་དང་རྒྱུད་ཐམས་ཅད་ཀྱི་ནང་དུ་བལྟ་བར་བྱའོ། །གསུངས་པ།

ལུང་ལས་ཡིད་ཆེས་ཉིད་དང་ནི། །
དེ་བཞིན་བླ་མ་ལས་ཡིད་ཆེས། །
རང་ལས་ཡིད་ཆེས་ཉིད་དང་ནི། །
དེ་བཞིན་གཞན་ལས་ཡིད་ཆེས་པ། །
ཡིད་ཆེས་བཞི་ཡི་གཟུང་བར་བྱ། །

ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པས་གསང་བའི་དེ་ཁོ་ན་ཉིད་རབ་ཏུ་གསལ་བ་ལས་གསུངས་པའི་ཕྱིར་རོ། །དེ་བཞིན་དུ་གང་ཡང་རྡོ་རྗེ་མཁའ་འགྲོ་དང་ལྡན་པའི་རང་གི་སྙིང་པོ་ཡང་ཕྱི་རོལ་དུ་མ་ཡིན་ཏེ། དེ་ལྟར་བྱས་ནས་བདག

---

[1] སྣ° པདཏུ།

ཟས་[1]གཙང་སྲས་པོའི་རིགས་བྱུང་ལ། །
གྲགས་མཆོག་ཞེས་རབ་ཆེས་བྱ་ཡི། །
སྨིན་བྱའི་ཚོས་ཡིན་དེ་དགྱེས་ནི། །
འགྲོ་ཀུན་རབ་རིབ་སངས་[2]པར་ཤོག །

གིས་དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེ་འདི་བྲུས་པ་ཡིན་ནོ། གང་ལས་དད་པ་བརྟན་པོས...... འཛིན་པར་བྱེད་པ་དེ་རྣམས་ནི་གཞལ་དུ་མེད་པའི་[3]དད་པ་བརྟན་པོས་བཟུང་...... བའི་གཞུང་བྱེད་པ་ཉིད་ཀྱིས་རང་བཞིན་བརྟན་པའི་སྒོ་ནས་གཞུང་རྫོགས་པར...... བརྟན་པའི་ཕྱིར་ཞེས་པ་དཔལ་ལྡན་བླ་མ་སངས་རྒྱས་ཞེས་བྱ་བ་ལ་སོགས་པ...... གསུངས་སོ། བདག་ལ་ཕན་པ་རྗེ་རྗེའི་བླ་མ་སངས་རྒྱས་དང་བྱང་ཆུབ......... སེམས་དཔའི་བཀའ་ཐོབ་པ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པའི་རྒྱུར་གནས་པ། སྤྱོད་པའི་བརྟུལ་ཞུགས་ནག་པོ་པ་བདག་གིས་དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེར་བརྗོད་པ་འདི་ནི། རྒྱས་པར་བསྟན་པ་བཅུའི་བདག་ཉིད་དུ་ངེས་པ་གང་ཡིན་པ་ནི་ཡོངས་སུ་རྫོགས་པ་སྟེ། རྒྱུད་ཐམས་ཅད་ཀྱི་དོན་ཡང་དག་པར་བསྡུས་པས་གཞན་ལ་ལྟོས་པ་མེད་པའི་ཕྱིར་རོ་ཞེས་བྱ་བའི་དོན་ཏོ་ཞེས་པ་རྫོགས་པའི་རིམ་པའི་སྐབས་པའི...... ཐབས་ཀྱི་ཚིག་དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པ་གསང་བ་ཆེན་པོའི་སྒྲོན་མ་ལས། རྒྱས་པར་བསྟན་པ་བཅུ་པའི་རྒྱས་པར་བཤད་པའོ། །དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེའི་རྒྱ་ཆེར་འགྲེལ་པ་རྫོགས་སོ།། །།

ས་སྐྱོང་འཛིན་མའི་ཐིག་ལེའི་གཙུག་རྒྱན་ནགས་ནང་དུ། །
འཕགས་ཡུལ་མཁས་པའི་དཔྱིད་ཀྱི་རིན་ཆེན་རབ་བཀོད་པ། །
དེ་ཚེ་དཔྱིད་ཀྱི་ཐིག་ལེའི་རྒྱས་འགྲེལ་མེ་ཏོག་གི །
རྫོགས་པའི་སྣང་རྩེ་ཐུང་བ་གཞོན་ནུས་འཐུངས་པའོ། །

---

༡ ཅོ་ནེ་° སྲས། ༢ སྡེ་° སར། ༣ རྒྱ་དཔེར་° (པྲམེཡཾ) གཞལ་དུ་མེད་པ།

སྒྱུ་ངན་གྱིས་གདུངས་རིམས་བདབ་འཁྲུལ་པ་ཡུལ་ལ་མངོན་ཕྱོགས་རྣམ་པར་ཉམ་ངེས་གནས། །
བསྒོམ་པ་མེད་ཅིང་སྲུང་མ་མེད་དང་ཕྲ་མ་ཞུགས་དང་སྐྲུབ་པ་མེད་པ་ཡི། །
རྒྱལ་པོ་ལ་ནི་ཡུལ་དུ་ཤེས་པ་ཇི་ལྟར་རང་དོན་བརྗོད་པ་མི་འདོར་ལྟར། །
སེམས་ཀྱི་རྒྱལ་པོ་མི་ཁོམ་བརྒྱད་དང་འབྲེལ་པ་ཚུལ་ནི་འདི་ཉིད་དོ།། ༎

རྒྱ་གར་ཤར་ཕྱོགས་ཀྱི་མཁས་པ་ཆེན་པོ་ནགས་ཀྱི་རིན་ཆེན་ཞེས་བྱ་བ། བཅོམ་ལྡན་འདས་དཔལ་རྡོ་རྗེ་རྣལ་འབྱོར་མའི་ཞབས་ཀྱི་ཐིག་ལེ་ལ་ཡང་དག་པར་རེག་པས། དཔལ་ཧེ་རུ་ཀའི་དགྱེད་ཀྱི་དགའ་བ་ཡང་དག་པར་ཐོབ་པ་དེ་ལ། ཆོས་ཀྱི་རྒྱལ་པོ་གྲགས་པ་འབྱུང་གནས་རྒྱལ་མཚན་དཔལ་བཟང་…པོ་ཞེས་བྱ་བ། དེ་བཞིན་གཤེགས་པ་ཐམས་ཅད་ཀྱི་གསང་བའི་མཛོད་མཐའ་དག་གཟིགས་པའི་སྤྱན་དང་ལྡན་པ་དེས་གསོལ་བ་བཏབ་ནས། དེའི་བཀའ…ལུང་དང་། གྲུབ་པའི་སྐྱེས་བུ་ཞང་གི་རིང་ལུགས་པ་ཆེན་པོ་བསོད་ནམས་རིན་ཆེན་གྱིས་ཀྱང་བསྐུལ་ནས། པཎྜི་ཏ་ཆེན་པོ་དེ་ཉིད་དང་། གཞོན་ནུ་དཔལ་གྱིས་རྒྱལ་པོའི་ཕོ་བྲང་སྔེའུ་གདོང་དུ་བསྒྱུར་ཅིང་ཞུས་པའོ།། ༎

